अष्टपाहुड
अमृत
भाग १

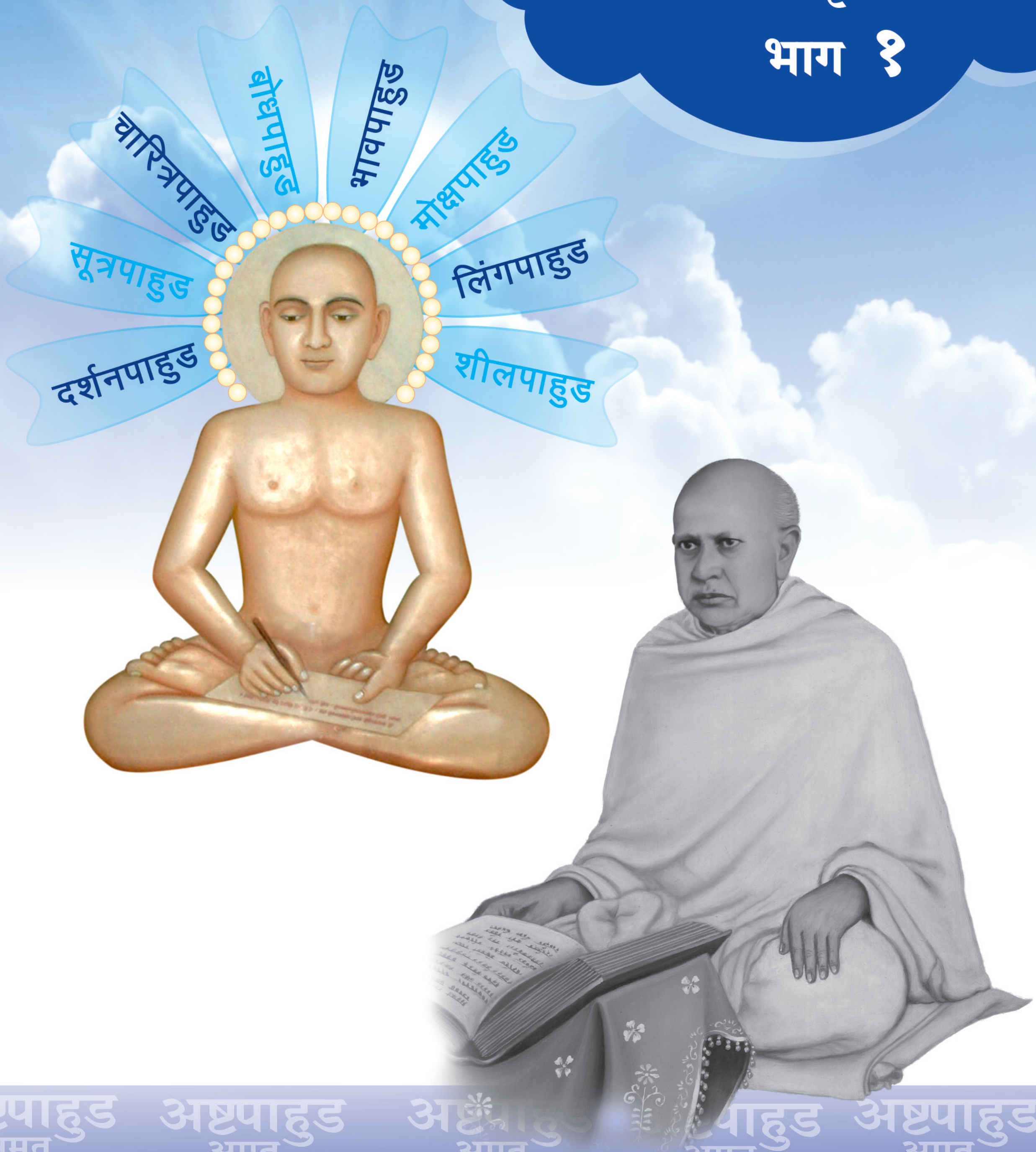

अष्टपाहुड अमृत

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(भाग-1)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम श्री अष्टपाहुड़
पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1973-74 में हुए शब्दशः प्रवचन
दर्शनपाहुड़ गाथा 1 से 36; प्रवचन नं. 1 से 31

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2078

वीर संवत
2548

ई. सन
2022

—: प्रकाशन :—

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250   फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

उपरोक्त मंगलाचरण में शासननायक महावीरस्वामी के पश्चात् श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके जिन्हें तीसरे नम्बर पर नमस्कार किया गया है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव वर्तमान जैनशासन के शासनस्तम्भ हैं, जिन्होंने मूल मोक्षमार्ग को शास्त्रों में जीवन्त रखकर अनेकानेक भव्य जीवों पर असीम उपकार किया है। वर्तमान जैनसमाज श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव से सुचारूरूप से परिचित है ही, तथापि उनके प्रति भक्ति से प्रेरित होकर उनके प्रति उपकार व्यक्त किये बिना नहीं रह जा सकता।

आपश्री ने स्वयं की अनुभवगर्भित कलम द्वारा निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप कैसा होता है, उसे भाववाहीरूप से अनेक परमागमों में प्रसिद्ध किया है। जंगल में रहकर स्वरूप आराधना में लीन रहते-रहते, केवलज्ञान की तलहटी में पहुँचकर, स्वसंवेदनमयी प्रचुर स्वसंवेदन में रहकर पवित्र मोक्षमार्ग प्रसिद्ध किया है। अनुभवप्रमाण इन सर्व से बलवान प्रमाण गिनने में आया है, जो आपके प्रत्येक वचन में प्रसिद्ध हो रहा है। अनेक महान आचार्यों ने भी आपका उपकार व्यक्त करके कहा है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यदि इस काल में मोक्षमार्ग को प्रसिद्ध न किया होता तो हम मोक्षमार्ग को किस प्रकार प्राप्त कर सकते?

संवत् 49 में विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धरस्वामी की दिव्य देशना को प्रत्यक्ष सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर आपने अनेक परमागमों की रचना की है। पंच परमागम वर्तमान जैनसमाज में प्रसिद्ध हैं। उसमें अष्टपाहुड़ ग्रन्थ भी समाविष्ट है। अष्टपाहुड़ ग्रन्थ की रचना देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ दार्शनिक दृष्टिकोण से रचा गया है। आठ अधिकार (पाहुड़) की रचना में प्रत्येक में भिन्न-भिन्न विषयानुसार सूत्रों की रचना की गयी है। प्रत्येक अधिकार में वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करके विपरीत अभिप्राय किस प्रकार के होते हैं और उनका क्या फल आता है तथा सम्यक् अभिप्राय का फल क्या आता है, उसका स्पष्ट चित्रण कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने चित्रित किया है।

शास्त्रों में तो आचार्य भगवन्तों ने निष्कारण करुणा से भव्य जीवों के हित के लिये रचना तो की है परन्तु वर्तमान दुषमकाल में उसका भाव समझना अत्यन्त विकट हो गया था और विपरीत अभिप्रायों की प्रचलितता और रूढ़िवाद में समाज जब डूबा हुआ था, ऐसे कलिकाल में, विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना को साक्षात् सुनकर भरतक्षेत्र में पधारनेवाले भावितीर्थाधिनाथ परमकृपालु सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सूर्य समान अवतार, मुमुक्षु जीवों के मिथ्यात्व-अन्धकार को मिटाने के लिये हुआ। अनेक रूढ़िचुस्तता, मिथ्या अभिप्राय, क्रियाकाण्ड में मोक्षमार्ग समझकर, मानकर उसकी आराधना चलती थी, उसमें पूज्य गुरुदेवश्री ने निष्कारण करुणा से शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की अन्तरखोज द्वारा तथा श्रुतज्ञान की लब्धि द्वारा सत्य मोक्षमार्ग का स्वरूप खुल्ला किया। पूज्य गुरुदेवश्री ने 45 वर्ष तक अनेक परमागमों पर प्रवचन किये, जिसमें अनेकानेक सिद्धान्तों को प्रसिद्ध करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रसिद्ध किया। प्रत्येक प्रवचनों में आत्मा का मूलभूत स्वरूप, निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग का स्वरूप, मुमुक्षुता, सिद्धान्तिक वस्तु का स्वरूप, मुनिदशा का स्वरूप, निमित्त-उपादान का स्वरूप, सर्वज्ञ का स्वरूप इत्यादि अनेक विषयों को स्पष्ट करके कहीं भ्रान्ति न रहे, इस प्रकार से प्रकाशित किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को अक्षरशः प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होना, वह इस मनुष्य जीवन का अमूल्य आनन्द भरपूर अवसर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अष्टपाहुड़ परमागम पर, ई.स. 1973-74 में हुए प्रवचनों को प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन शृंखला के प्रथम भाग में दर्शनपाहुड़ की गाथा - 1 से 36 तक के प्रवचन क्रमांक-1 से 31 तक का समावेश किया गया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इसी अष्टपाहुड़ परमागम पर ई.स. 1970-71 में हुए प्रवचनों का शब्दशः प्रकाशन 'अष्टपाहुड़ प्रवचन' भाग 1 से 7 तक पूर्व में गुजराती एवं हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा चुका है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में संग्रहित करने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हाल कर रखा, तदर्थ उसके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन लें, कि जिससे यह

वाणी शाश्वत् विद्यमान रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवतीमाता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं।

समस्त प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स, भावनगर द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारूलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर सके, इस उद्देश्य से प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि आपको कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का अनुग्रह करें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ vitragvani.com पर शास्त्र-भण्डार, गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन के अन्तर्गत तथा vitragvani (app) पर भी उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधें, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

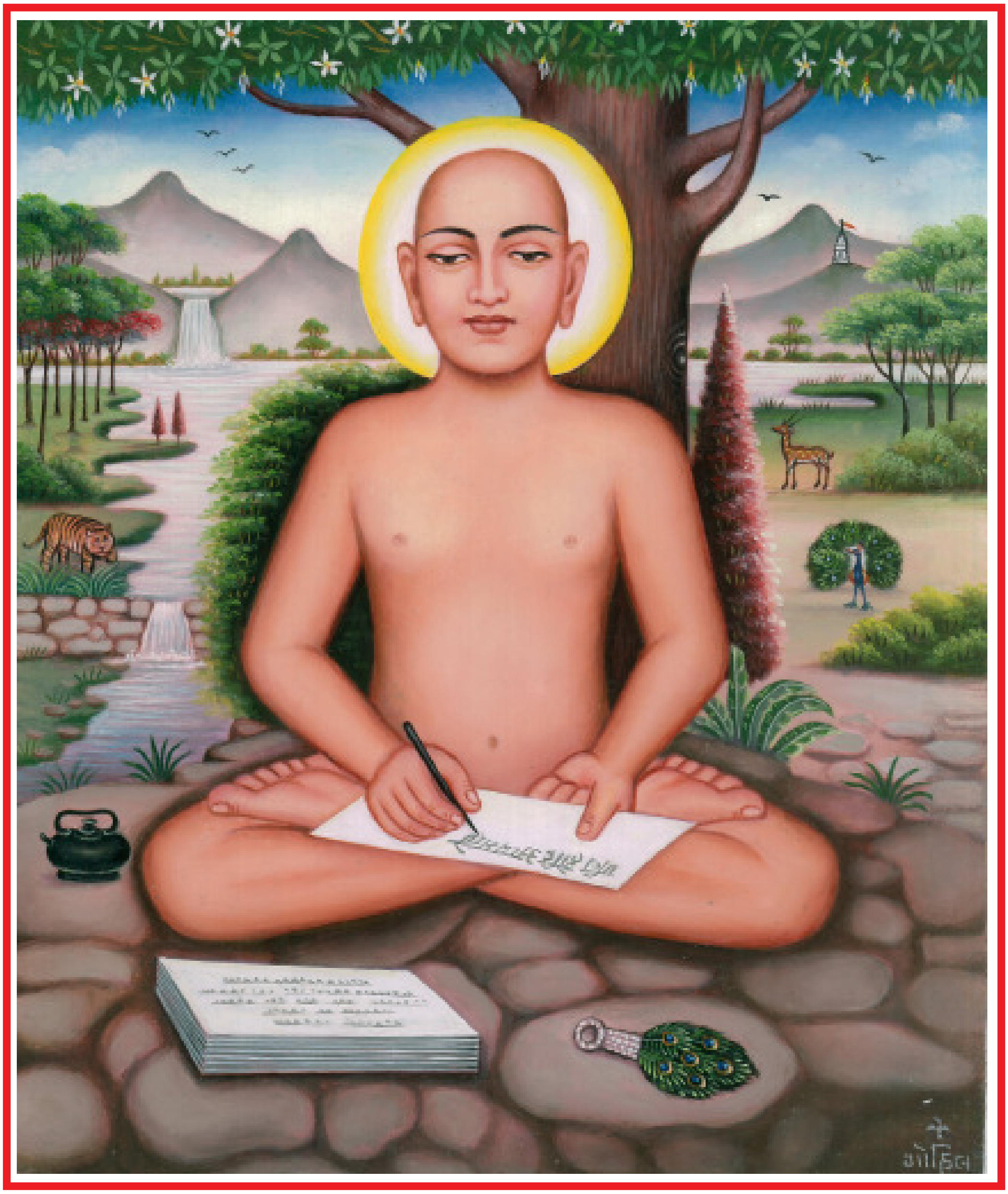

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — '**सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।**' इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
१	०९-०६-१९७०	१,२,	१
२	१६-०९-१९७३	२	१९
३	१७-०९-१९७३	२	३५
४	१८-०९-१९७३	२	५१
५	२०-०९-१९७३	२	६८
८	२३-०९-१९७३	२	८५
९	२४-०९-१९७३	२	१०१
१०	२५-०९-१९७३	२	११९
११	२७-०९-१९७३	२	१३५
१२	२८-०९-१९७३	२	१५४
१३	२९-०९-१९७३	२	१७०
१४	३०-०९-१९७३	२, ३	१८४
१५	०१-१०-१९७३	३, ४	१९९
१६	०२-१०-१९७३	५, ६, ७	२१४
१७	०३-१०-१९७३	८	२२९
१८	०५-१०-१९७३	९, १०, ११	२४७
१९	०६-१०-१९७३	११	२६२
२०	०७-१०-१९७३	१२, १३	२८०
२१	०८-१०-१९७३	१४	२९९
२२	०९-१०-१९७३	१५, १६	३१५
२३	१०-१०-१९७३	१६, १७	३३३

२४	२३-०६-१९७०	१८, १९, २०	३४९
२५	१३-१०-१९७३	१९, २०, २१	३६८
२६	१४-१०-१९७३	२१, २२	३८५
२७	१५-१०-१९७३	२२, २३, २४	४०२
२८	१६-१०-१९७३	२५, २६, २७, २८	४२०
२९	१७-१०-१९७३	२८, २९, ३०, ३१	४३८
३०	१८-१०-१९७३	३२, ३३, ३४, ३५	४५५
३१	१९-१०-१९७३	३५, ३६	४७१

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ईस्वी सन् १९७३-७४ के प्रवचन)

दर्शनपाहुड़

ज्येष्ठ शुक्ल ५, मंगलवार, दिनांक ०९-०६-१९७०
गाथा-१, २, प्रवचन-१

भगवान के मार्ग में विच्छेद न हो, ऐसे अनेक ग्रन्थ आचार्यों ने बनाये हैं। **उनमें दिगम्बर सम्प्रदाय मूलसंघ नन्दि आम्नाय सरस्वतीगच्छ में श्री कुन्दकुन्द मुनि हुए और उन्होंने पाहुड़ग्रन्थों की रचना की। उन्हें संस्कृत भाषा में प्राभृत कहते हैं...** लो, प्राभृत। **और वे प्राकृत गाथाबद्ध हैं।** गाथा प्राकृत है। **काल दोष से जीवों की बुद्धि मन्द होती है,...** काल दोष के कारण जीव की बुद्धि थोड़ी है। **जिससे वे अर्थ नहीं समझ सकते;...** इससे उनका अर्थ समझ में नहीं आता। **इसलिए देशभाषामय वचनिका होगी तो सब पढ़ेंगे...** प्रचलित भाषा में होगी तो सब पढ़ेंगे। **और अर्थ समझेंगे तथा श्रद्धान दृढ़ होगा...** सच्चा समझेंगे तो दृढ़ श्रद्धा होगी। **ऐसा प्रयोजन विचारकर वचनिका लिख रहे हैं,...** यह प्रयोजन विचारकर वचनिका लिखी जाती है। **अन्य कोई ख्याति,...** प्रसिद्धि **बड़ाई या लाभ का प्रयोजन नहीं है।** ऐसा वचनिकाकार कहते हैं।

इसलिए हे भव्य जीवों! इसे पढ़कर,... अर्थ समझकर। **अर्थ समझकर, चित्त में धारण करके यथार्थ मत के बाह्यलिंग...** दो बात पर वजन है। वीतरागमार्ग का मुनि का

बाह्यलिंग नग्न होता है और तत्त्वार्थ की श्रद्धा दृढ़ करना। **एवं तत्त्वार्थ का श्रद्धान दृढ़ करना। इसमें कुछ बुद्धि की मन्दता से...** बुद्धि की मन्दता से। **प्रमाद के वश अन्यथा अर्थ लिख दूँ...** अन्यथा कोई (दूसरा अर्थ) लिखा जाये **तो अधिक बुद्धिमान मूलग्रन्थ को देखकर, शुद्ध करके पढ़ें और मुझे अल्पबुद्धि जानकर क्षमा करें।** लो, यह हिन्दी भाषा बहुत सरल है।

अब दोहा—

वंदू श्री अरिहंत कूं मन वच तन इकतान।
मिथ्याभाव निवारि कैं करैं सु दर्शन ज्ञान॥

श्री अरिहन्त भगवान को मन-वचन और तन की एकता से वन्दन करता हूँ। मिथ्याभाव निवारण करके (अर्थात्) अज्ञान आदि मिथ्यात्व का नाश करके '**करैं सु दर्शन ज्ञान**' सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान करे, इसके लिये यह वचनिका मैं लिखता हूँ।

अब ग्रन्थकर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य ग्रन्थ के आदि में ग्रन्थ की उत्पत्ति... ग्रन्थ की उत्पत्ति कैसे हुई ? **उसके ज्ञान का कारण जो परम्परा गुरु का प्रवाह, उसे मंगल के हेतु नमस्कार करते हैं**—लो! अब कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं नमस्कार करते हैं।

काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकम्मं समासेण॥१॥

यह पहली गाथा है।

इसका देशभाषामय अर्थ—आचार्य कहते हैं कि मैं जिनवर वृषभ ऐसे जो आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव तथा अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान, उन्हें नमस्कार करके... पहले और अन्तिम दोनों आ गये। ऋषभदेव भगवान और वर्द्धमान तीर्थंकर। **दर्शन अर्थात् मत का जो मार्ग है, उसे यथानुक्रम संक्षेप में कहूँगा।** मत अर्थात् दर्शन। दर्शन उसे कहा जाता है कि मुनि का बाह्य-नग्नपना और अन्तर में वीतरागी दशा, उसे यहाँ मत और दर्शन कहने में आया है। **यथानुक्रम संक्षेप में कहूँगा।**

भावार्थ—यहाँ 'जिनवरवृषभ' विशेषण है;... उसका ऐसा अर्थ है। **उसमें जो जिन शब्द है, उसका अर्थ ऐसा है कि जो कर्मशत्रु को जीते, सो जिन।** कर्मशत्रु को

जीते, वह जिन। **वहाँ सम्यग्दृष्टि अव्रती से लेकर कर्म की गुणश्रेणीरूप निर्जरा करनेवाले सभी जिन हैं,...** लो! सम्यग्दृष्टि से लेकर गुणश्रेणीरूप निर्जरा करनेवाले सभी चौथे गुणस्थानवाले को भी जिन कहने में आते हैं। लो! सम्यग्दृष्टि की कोई गिनती नहीं। चारित्र होवे तो... ? कहते हैं न ? यहाँ तो कहते हैं सम्यग्दृष्टि से जिन कहने में आता है।

मुमुक्षु : चारित्र आंशिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग बात है, परन्तु मिथ्यात्व की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। वन्दन करनेयोग्य है। आता है या नहीं ?... छहढाला में आता है या नहीं ? 'लेश न संयम पै शुभनाथ जजे हैं' आता है ? जजे हैं – इन्द्र जिसे पूजते हैं। यहाँ तो चारित्र की... वीतरागी निर्ग्रन्थदशा, वह तो अलौकिक बात है। समझ में आया ? उसके हिसाब से सम्यग्दृष्टि तो हल्के हैं, परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन की भूमिका, अनन्त काल से नहीं प्रगट हुआ, ऐसा स्वरूप का भान, अनुभव, वह अलौकिक चीज़ है। जहाँ से मार्ग शुरु होता है, वहाँ से जिन कहने में आये हैं।

सम्यग्दृष्टि अव्रती से लेकर कर्म की गुणश्रेणीरूप निर्जरा करनेवाले सभी जिन हैं, उनमें वर अर्थात् श्रेष्ठ। इस प्रकार... जिनवर अर्थात् गणधर। जिन में भी वर अर्थात् प्रधान गणधर। **आदि मुनियों को जिनवर कहा जाता है;...** लो, गणधर को जिनवर कहा। **उनमें वृषभ अर्थात् प्रधान ऐसे भगवान तीर्थंकर परमदेव हैं।** लो! तीन बोल लिये। द्रव्यसंग्रह में शुरुआत में आता है न ? द्रव्यसंग्रह में आता है। **उनमें प्रथम तो श्री ऋषभदेव हुए और पंचम काल के प्रारम्भ तथा चतुर्थ काल के अन्त में अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमानस्वामी हुए हैं। वे समस्त तीर्थंकर जिनवर वृषभ हुए हैं...** लो! दूसरा अर्थ कहा। जिनवर, वह तो सर्व तीर्थंकर को जिनवर वृषभ कहने में आता है। **उन्हें नमस्कार हुआ। वहाँ 'वर्द्धमान' ऐसा विशेषण सभी के लिए जानना;...** ऋषभदेव... आत्मा ये सब वर्द्धमान भगवान सब ऋषभदेव कहलाते हैं।

क्योंकि सभी अन्तरंग एवं बाह्य लक्ष्मी से वर्द्धमान हैं... सर्व तीर्थंकर अन्तर्लक्ष्य में केवलज्ञानादि, बाह्य लक्ष्मी समवसरण आदि (से) वर्द्धमान हैं। **अथवा जिनवर वृषभ शब्द तो आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव को और वर्द्धमान शब्द से अन्तिम तीर्थंकर**

को जानना। इस प्रकार आदि और अन्त के तीर्थंकरों को नमस्कार करने से मध्य के तीर्थंकरों को भी सामर्थ्य से नमस्कार जानना। मध्य में सब बाईस तीर्थंकरों को भी नमस्कार हो गया। **तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग को तो परमगुरु कहते हैं और उनकी परिपाटी में चले आ रहे गौतमादि मुनियों को जिनवर विशेषण दिया, उन्हें अपरगुरु कहते हैं**—पर और अपर गुरु आता है कहीं? ऐई! पर-अपर गुरु आता है या नहीं कहीं? समयसार की पाँचवीं गाथा। परन्तु याद नहीं रहता न।

इस प्रकार परापर गुरुओं का प्रवाह जानना। पर सर्वज्ञ से लेकर अपर जो गौतम आदि मुनि अपने गणधर गुरु हो गये। **गुरुओं का प्रवाह...** अनादि मार्ग चला आता है, कहते हैं। **वे शास्त्र की उत्पत्ति...** उनसे शास्त्र की उत्पत्ति होती है। **तथा ज्ञान के कारण हैं।** इन तीन को **ग्रन्थ के आदि में नमस्कार किया।** लो, शास्त्र की उत्पत्ति के कारण हैं और ज्ञान का कारण है। शास्त्र की उत्पत्ति भी मुनियों से हुई है और ज्ञान का भी कारण हैं। इस कारण उन्हें नमस्कार किया जाता है।

अब, धर्म का मूल दर्शन है, इसलिए जो दर्शन से रहित हो, उसकी वन्दना नहीं करना चाहिए... अब यहाँ से मार्ग शुरु होता है। इसलिए पहले नमस्कार, वन्दन किया।

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो॥२॥

अर्थ—जिनवर जो सर्वज्ञदेव हैं, उन्होंने शिष्य जो गणधर आदिक को धर्म का उपदेश दिया है;... उन्होंने—भगवानों ने और गणधरों ने—धर्म का उपदेश किया। **कैसा उपदेश दिया है? कि दर्शन जिसका मूल है।** ऐसा धर्म उपदेशित किया है। लो, जिसमें सम्यग्दर्शन मूल है, ऐसा धर्म भगवान ने कहा है। यह दर्शनपाहुड़ है न? **कि दर्शन जिसका मूल है।** ऐसा धर्म उपदेशित किया है। **मूल कहाँ होता है? - कि जैसे मन्दिर की नींव...** नींव। मकान, मकान की नींव **और वृक्ष की जड़...** वृक्ष का मूल। **उसी प्रकार धर्म का मूल दर्शन है।** मन्दिर की नींव और वृक्ष का जैसे मूल (जड़ हो), वैसे धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन के बिना धर्म तीन काल में नहीं होता।

मुमुक्षु : चारित्र हो, उसे दर्शन हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र हो, उसे दर्शन होता ही है परन्तु चारित्र चाहिए न! चारित्र अर्थात् क्या? व्रतादि की क्रिया, वह चारित्र है? ऐई! देवीचन्दजी! बाहर पंच महाव्रत आदि के विकल्प हैं, वे कहीं चारित्र नहीं हैं; वे तो अचारित्र हैं। वह तो चारित्र का दोष है। सब सबेरे आया था। राग व्यवहार है, बन्ध का कारण है, इस आत्मा में वह परिणति नहीं है। जीव की परिणति नहीं है। आत्मा की वह पर्याय नहीं है। आहा..हा..! अरे! किसने सुना है? दर्शन वस्तु पूरी जैन का मूल, धर्म का मूल दर्शन है। धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है।

इसलिए आचार्य उपदेश देते हैं कि... इसलिए आचार्य महाराज उपदेश करते हैं। **हे सकर्ण...** पण्डित सत्पुरुषों! ऐसा। कान है और सुना है, ऐसा कहते हैं। जिसने तत्त्व की बात सुनी है, श्रद्धा की है, ऐसे **हे सकर्ण अर्थात् पण्डित सत्पुरुषो! सर्वज्ञ के कहे हुए उस दर्शनमूलरूप धर्म को अपने कानों से सुनकर जो दर्शन से रहित हैं,... सर्वज्ञ के कहे...** सर्वज्ञ परमात्मा, उन्होंने जो सम्यग्दर्शन धर्म कहा। राग और विकल्प तथा मन से पार, ऐसा चैतन्य ध्रुवस्वरूप। समझ में आया? उस चैतन्य भगवान ध्रुवस्वरूप की अन्तर प्रतीति और अनुभव में श्रद्धा। ऐसा सर्वज्ञ ने उपदेश किया है।

दर्शनमूलरूप धर्म को अपने कानों से सुनकर... सुनकर। **जो दर्शन से रहित हैं,...** जो सम्यग्दर्शन से रहित हैं। जिनकी श्रद्धा में राग से धर्म हो, पुण्य से धर्म हो, सर्वज्ञ के सिवाय कहे हुए तत्त्व भी सच्चे हैं, दूसरों के तीर्थक्षेत्र में भी धर्म होता है, दूसरे धर्म में भी कुछ धर्म है—ऐसी मान्यतावाले जीव हैं, वे सम्यग्दर्शनरहित हैं। समझ में आया? बद्रीनाथ के मन्दिर में से लिखान आया है। इसमें आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे बेचारे को खबर नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दूसरा पाप किया हो तो इन तीर्थों में नाश होता है, ऐसा लिखा है। कहाँ तीर्थ था? तीर्थ तो आत्मा है। आनन्दमूर्ति वीतरागस्वरूप के अन्तर जाने से, स्नान करने से तीर्थ होता है। वह तीर्थ है। ये बाहर के तीर्थ, वीतरागता के बाहर के

तीर्थ वह व्यवहार है, तो अन्य के तीर्थ तो है ही कहाँ। समझ में आया? सम्मेदशिखर, शत्रुंजय तीर्थ हैं, वे पाप का नाश करनेवाले तीर्थ नहीं। वह तो शुभभाव होता है, इससे जरा अशुभादि न हो, इतनी बात है। वह तीर्थ। तीर्थ तो आत्मा है। पूर्णानन्द का नाथ तरण उपाय के स्वभाव से जड़ा हुआ। समझ में आया? तीर्थ तो वह है। स्नान करनेयोग्य वह है।

अनन्त आनन्द और ज्ञान का स्वभाव, ऐसा जो आत्मा वह सर्वज्ञ ने कहा, वह आत्मा। वापस दूसरे आत्मा कहते हैं, वह आत्मा नहीं। इसलिए कहा न? **सर्वज्ञ के कहे हुए उस दर्शनमूलरूप धर्म को अपने कानों से सुनकर...** सर्वज्ञ भगवान ने कहा वह। सर्वज्ञ भगवान ने कहा हुआ मार्ग तो दिगम्बर दर्शन में ही है। अन्यत्र है नहीं। बात तो आयेगी। ऐसी स्पष्ट बात आयेगी इसमें तो। इसमें तो झटककर सब निकाल दिया है – ऐसा है। दिगम्बर दर्शन अनादि सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, उस मार्ग का स्वरूप परम्परा दिगम्बर धर्म में है। उसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं अंश भी है नहीं। उसके लिये यह दर्शनपाहुड़ बनाया है। देखो! दर्शन सर्वज्ञ का मूल है। कथन में दर्शन प्रधान बात आयी है। सम्यग्दर्शन तो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु जहाँ नहीं, वहाँ सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा? समझ में आया? ऐसा है, भाई! दूसरों को खराब लगे, खोटा लगे परन्तु मार्ग तो यह है। बहुतों को ऐसा होता है न, अन्दर से निकाले कि भाई! यह तो हमारा खण्डन करते हैं। ऐसा आया था, श्रीमद् ने खण्डन नहीं किया। वहाँ खण्डन करते हैं, इसलिए हमें सुनना नहीं। अरे भगवान! बापू! मार्ग तो यह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे ही न! परन्तु ऐसी कौन सी चीज़ है, जो सबको ठीक लगे? यह तो अपने अभी कहा। वचनिका, मोक्षमार्गप्रकाशक। ऐसी कौन सी चीज़ है, जो सबको ठीक लगे। मार्ग तो जो वीतराग ने कहा हो, वह आता है। समझ में आया? जो पक्षकार हो, उसे ठीक नहीं लगता। सत् की श्रद्धा के लिये तो तत्त्वार्थश्रद्धान होवे किस प्रकार? और विरुद्ध श्रद्धा मिटे किस प्रकार? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है।

दर्शन से रहित हैं, वे वन्दनयोग्य नहीं हैं;... यहाँ सिद्धान्त है, लो जिसे सर्वज्ञ परमात्मा ने दिगम्बर धर्म में जो मुनिपना कहा, दर्शन। है न? भावलिंग अन्तर तीन

कषाय का अभाव; बाह्य में नग्नदशा और व्यवहार में पंच महाव्रतादि के विकल्प, वह जैनदर्शन है अथवा दर्शन निश्चित है। अन्दर में ऐसे की श्रद्धा रागरहित ऐसे रहने की श्रद्धा अन्दर में, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। स्वभाव सन्मुख की श्रद्धा, ऐसा। ऐसी श्रद्धा से रहित है, फिर चाहे तो बड़ा महात्मा, आचार्य, उपाध्याय आदि नाम धरावे। **वन्दनयोग्य नहीं हैं;...** ऐसा है, पहले से यह शुरु किया है। कहो, शान्तिभाई! यह सब सत् का आग्रह नहीं होगा? सत्य तो यह है, भाई! सत्य कोई दो होते हैं? 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पन्थ।' सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग ने कहा हुआ परम्परा का मार्ग, ऐसा सम्यग्दर्शन नाम कान से सुना हो कि ऐसा सम्यग्दर्शन। ऐसे जीवों को, सम्यग्दर्शनरहित प्राणी हैं, उन्हें वन्दनयोग्य नहीं है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया? **'ण वंदिव्वो'** स्पष्ट है या नहीं? आहा..हा..! **दर्शनहीन की वन्दना मत करो।** लो, जिसे सम्यग्दर्शन का भान भी नहीं और देव-गुरु-शास्त्र की विपरीत श्रद्धा है और भले व्रतादि क्रिया बाहर में दिखायी दे, परन्तु वह तो दर्शनरहित है। वह वन्दनयोग्य नहीं है। कहो, समझ में आया? और उसका आदर करे तो मिथ्या श्रद्धावाला है और उसका आदर करे तो मिथ्या श्रद्धा का पाप लगता है। करे, करावे और अनुमोदे, तीनों पाप का फल है।

जिसके दर्शन नहीं है, उसके धर्म भी नहीं है,... जिसे सम्यग्दर्शन नहीं। वस्तु भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु चैतन्यध्रुव की अन्तर श्रद्धा नहीं; पर्यायबुद्धि है, रागबुद्धि है, संयोगबुद्धि है—ऐसे जीव सम्यग्दर्शनरहित हैं। उनमें धर्म नहीं। **जिसके दर्शन नहीं है, उसके धर्म भी नहीं है,...** मूल बिना **'मूलम नास्ति कुता शाखा'** जिसका मूल नहीं उसे शाखा या फल नहीं होते। समझ में आया? जिसके दर्शन नहीं है, उसके धर्म भी नहीं है। चाहे तो बारह व्रत और महीने-महीने खमण के पारणा, नग्न मुनि (हो) 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो', तो भी वह मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। आहा..हा..! गजब कठिन काम। **मूलरहित वृक्ष के स्कन्ध, शाखा, पुष्प, फलादिक कहाँ से होंगे?** लो, जिसका मूल ही नहीं। सम्यग्दर्शन ही नहीं। समझ में आया? पर से धर्म होगा, व्यवहार से, पुण्य से, क्रिया करते-करते धर्म होगा, निमित्त से लाभ होगा—ऐसी मान्यता है, वह तो दर्शनरहित मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो मानधाता बड़ा त्यागी हो तो भी वह वन्दन योग्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! गजब!

मुमुक्षु : कड़क स्वभाव......

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क है। ऐसी वस्तु है। कड़क कहो या सरल कहो, मार्ग यह है। कहो सेठी! अब मुनि मानकर आहार-पानी लेने का (करे) उसमें बड़ा कहाँ? श्रद्धा का भान नहीं, सम्यग्दर्शन की खबर नहीं।

मुमुक्षु : वेश देखकर वेश में क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वेश देखकर, वेश में क्या है? धूल।

मुमुक्षु : ऐसा माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है। क्या माने? उसके लक्षण हैं, वह दिखता नहीं कि यह कर्ताबुद्धि है, इसे मैं करूँ तो यह हो, इसे करूँ तो ऐसा हो। सदोष आहार लेते हैं, इत्यादि भाव हैं और मानते हैं कि मुनि हैं तो मिथ्यात्व का भाव है - ऐसा है, भाई! इस दर्शनपाहुड़ में तो।

मुमुक्षु : पहले से खोटा......

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से ही खोटा है, उसे खोटा सिद्ध किया है। प्रसिद्ध करके खोटा सिद्ध किया है। ऐसा है, भाई!

जिसके दर्शन नहीं है, उसके धर्म भी नहीं है, क्योंकि मूलरहित वृक्ष के स्कन्ध,... मूल ही नहीं हो वहाँ फिर स्कन्ध फला है, शाखा-डाली निकली है, पुष्प हुए हैं, फल हुए हैं—यह कहाँ से होगा? आहा..हा..! यह व्रत लिये और तप करे, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन होगा? कि नहीं। वह व्रत-तप है ही नहीं। सम्यक् मूल न हो, वहाँ व्रत-तप कैसे? आहा..! **इसलिए यह उपदेश है कि जिसके धर्म नहीं है, उससे धर्म की प्राप्ति नहीं...** भाषा देखो! पहले ऐसा कहा कि **जिसके दर्शन नहीं है, उसके धर्म भी नहीं है,...** जिसे दर्शन-समकित नहीं, उसे धर्म भी नहीं... जिसे धर्म नहीं उससे धर्म की प्राप्ति नहीं... उसके पास सुनकर लाभ मिले, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। सुनने जाऊँगा, सुनने जाऊँगा तो मिलेगा, इससे इनकार करते हैं, देखो! जिसकी श्रद्धा में खोट (विपरीतता) ही है।

मुमुक्षु : वह तो भगवान के शास्त्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के शास्त्र कहाँ हैं? उसे कहाँ भान है? समझ में आया? यह तो भाई! वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा के मुनीम होकर बात करें और करे खोटी। दिवाला निकालने की बात करे। उनसे धर्म की प्राप्ति नहीं है। वन्दन योग्य नहीं है। क्योंकि उनसे धर्म की प्राप्ति नहीं है, इसलिए आदर करनेयोग्य नहीं है। आहा..हा..! गजब काम।

फिर धर्म के निमित्त उसकी वन्दना किसलिए करें? देखो! ऐसे आत्माओं को धर्म के कारण से आदर कैसे करें? **ऐसा जानना।** ऐसा यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। ऐसा यहाँ जानना। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें अर्थ किया है। इन्होंने किया है न? यह कहाँ घर का किया है? **'दंसणमूलो धम्मो'** यह शब्द तो मूल पाठ में है। सम्यग्दर्शन मूल धर्म है। **'उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं'** जिनवरों ने शिष्य को उपदेश किया है। **'तं सोऊण सकण्णे'** यह बात सुनकर हे सकर्ण! हे कानवाले-सुननेवाले! ऐसा कहते हैं। **'दंसणहीणो ण वंदिव्वो'** पाठ है या नहीं? ऐई! देवीचन्दजी! आहा..हा..! दुनिया को तो ऐसा लगे। सब लाखोंपति-करोड़ोंपति मानते हों और ये सब लोग पचास-पचास हजार एकत्रित होते हों। अब वह कहे कि यह वन्दे नहीं, फट-फट हो। उसे धर्म की श्रद्धा नहीं, इसलिए वन्दन नहीं करते। ऐसे महामुनि त्यागी हुए, परन्तु कौन मुनि था? अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! देह की क्रिया जड़, उसके कर्ता हो। दया, दान, व्रत के परिणाम से मुझे धर्म हो, यह करते-करते—व्यवहार करते-करते हमारी निश्चय की शुद्धि हो, ऐसा माननेवाले समकित से रहित मिथ्यादृष्टि हैं। उनसे धर्म प्राप्त नहीं होता तो उनका आदर करके क्या करना? ऐसा कहते हैं। यह तो जवाबदारी आयी, सेठी! अभी तक सब गड़बड़ की है। यहाँ जवाबदारी है।

मुमुक्षु : आहार शुद्ध, मन शुद्ध, वचन शुद्ध.....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! वहाँ मुख्य प्रमुख व्यक्ति हो तो आहार-पानी देना पड़े। तिष्ठ, तिष्ठ... बनाया उनके लिये और (बोले ऐसा कि) आहार शुद्ध, वचन शुद्ध।

मुमुक्षु : आहार शुद्ध, मन शुद्ध, वचन शुद्ध.....

पूज्य गुरुदेवश्री : काय शुद्ध, वचन शुद्ध, यह झूठ बोलता है और उस झूठे को अनुमोदन करे और झूठे का अनुमोदन ले, ऐसी बात है, सेठी! देखो। आहा..हा..! मार्ग तो ऐसा है, बापू!

अब, यहाँ धर्म का तथा दर्शन का स्वरूप जानना चाहिए। अब स्वयं थोड़ा लिखते हैं। धर्म का और दर्शन का। सम्यग्दर्शन नहीं, यहाँ दर्शन की सामान्य बात है। जैनदर्शन। उसका स्वरूप जानना चाहिए। **वह स्वरूप तो संक्षेप में ग्रन्थकार ही आगे कहेंगे,...** ग्रन्थकार स्वयं उसका स्वरूप कहेंगे। **तथापि कुछ अन्य ग्रन्थों के अनुसार यहाँ भी दे रहे हैं:—** दूसरे ग्रन्थ के अनुसार थोड़ा यहाँ कहते हैं। **'धर्म' शब्द का अर्थ यह है कि जो आत्मा को संसार से उबारकर सुखस्थान में स्थापित करे, सो धर्म है...** लो! धर्म उसे कहते हैं कि आत्मा, संसार अर्थात् दु:ख की दशा, उससे उद्धार करके... उदयभाव संसार दु:खदशा है, उससे उद्धार करके-अभाव करके सुखस्थान में स्थापित करता है। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में स्थापित करे, उसे धर्म कहते हैं। लो, यह धर्म की व्याख्या।

'धर्म' शब्द का अर्थ यह है कि... इसका अर्थ ऐसा है कि **जो आत्मा को संसार से उबारकर...** यह सिद्ध करते हैं कि आत्मा को संसार है। आत्मा की पर्याय में राग-द्वेष, मिथ्यात्व, वह दु:खरूप दशा है, वह संसार है। आत्मा की वर्तमान दशा में अनादि अज्ञानी को मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव है, यह उसकी संसारदशा है। ऐसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष में से उद्धार करके स्वरूप में स्थापित करे, अन्तर अनन्त ज्ञानादि स्वभाव भगवान आत्मा का, उसमें स्थापित करे, उसे धर्म कहते हैं। ध्रुव के लक्ष्य से एक का व्यय करके एक का उत्पाद करे, उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? यह तो गजब व्याख्या है। यह धर्म की व्याख्या हुई।

और दर्शन अर्थात् देखना। दर्शन की व्याख्या करते हैं। दो बात करते थे न? **यहाँ धर्म का तथा दर्शन का स्वरूप जानना चाहिए।** धर्म की व्याख्या यह की। संसार अर्थात्? आत्मा की पर्याय में मिथ्यात्व / विपरीत अभिप्राय और राग-द्वेष (होवे), वह संसार है। उसे मिटाकर और वस्तु आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में स्थापित करे, ऐसी

दशा को धर्म कहने में आता है। कहो, समझ में आया? **और दर्शन अर्थात् देखना।** अब दर्शन की व्याख्या। **और दर्शन अर्थात् देखना।** देखने का नाम दर्शन है। **इस प्रकार धर्म की मूर्ति दिखायी दे, वह दर्शन है...** वीतराग प्रतिमास्वरूप मुनि, भावलिंगी। बाह्य में नग्नदशा, अन्तर में वीतराग मुद्रा। जिसे विकल्प की वृत्ति उठे, उसका वह कर्ता नहीं - ऐसा वीतरागभाव, ऐसा जो दर्शन। अभ्यन्तर और बाह्य ऐसा जो दर्शन।

इस प्रकार धर्म की मूर्ति दिखायी दे, वह दर्शन है तथा प्रसिद्धि में जिसमें धर्म का ग्रहण हो, ऐसे मत को 'दर्शन' कहा है। बाहर में जैनदर्शन, जैनधर्म—ऐसे प्रसिद्धता में धर्म का ग्रहण हो, ऐसे मत को दर्शन कहते हैं। **लोक में धर्म की तथा दर्शन की मान्यता सामान्यरूप से तो सबके हैं,...** साधारण धर्म-धर्म तो सब करते हैं न? और दर्शन-हमारा मत सच्चा... हमारा मत सच्चा... हमारा मत सच्चा... ऐसा तो सब करते हैं। कोई ऐसा कहता है कि हमारा दर्शन मिथ्या? **लोक में धर्म की तथा दर्शन की मान्यता सामान्यरूप से तो सबके हैं, परन्तु सर्वज्ञ के बिना...** यहाँ से बात है। **यथार्थ स्वरूप का जानना नहीं हो सकता;...** पहली सर्वज्ञ की सिद्धि करते हैं। जिसने तीन काल तीन लोक ज्ञान में जाने नहीं, ऐसे सर्वज्ञ के अतिरिक्त आत्मा और धर्म की बातें करे, वह सब बातें उसकी कल्पित और मिथ्या होती है। जिस मत में सर्वज्ञ होते हैं, उसका इसे निर्णय करना चाहिए। समझ में आया?

सर्वज्ञ के बिना यथार्थ स्वरूप का जानना नहीं हो सकता; परन्तु छद्मस्थ प्राणी अपनी बुद्धि से अनेक स्वरूपों की कल्पना करके... देखो! यह **अन्यथा स्वरूप स्थापित करके उनकी प्रवृत्ति करते हैं...** जाना नहीं और कहे ऐसा होता है, ऐसा होता है। वे तो अन्यथा प्रवृत्ति करते और कराते हैं। इसलिए वह धर्म नहीं है। देखो! पहले सर्वज्ञ परमात्मा कौन हैं, ऐसा सिद्ध करके, उन्होंने देखा हुआ - कहा हुआ, वह मार्ग सत्य है। समझ में आया?

सर्वज्ञ के बिना यथार्थ स्वरूप का जानना नहीं हो सकता; सर्वज्ञ के बिना यथार्थ स्वरूप में जानने में नहीं आ सकता। **परन्तु छद्मस्थ प्राणी अपनी बुद्धि से अनेक स्वरूपों की कल्पना करके अन्यथा स्वरूप स्थापित करके उनकी प्रवृत्ति करते हैं और जिनमत सर्वज्ञ की परम्परा से प्रवर्तमान है,...** वीतराग मार्ग तो सर्वज्ञ की परम्परा

से प्रवर्तता है। समझ में आया? **सर्वज्ञ की परम्परा से प्रवर्तमान है,...** परमेश्वर ने कहा, वह गणधर ने जाना, अनुभव किया, उनकी परम्परा से जो अनादि का मार्ग है, वह दिगम्बर सम्प्रदाय में चला आ रहा है। अन्यत्र वह मार्ग है नहीं। **इसलिए इसमें यथार्थ स्वरूप का प्ररूपण है।** सर्वज्ञ की परम्परा से जो मार्ग आया, उसमें देव का, गुरु का, शास्त्र का, तत्त्व का, धर्म का, मोक्षमार्ग का वास्तविक स्वरूप का कथन उसमें है, अन्यत्र है नहीं। कहो, समझ में आया?

वहाँ धर्म को निश्चय और व्यवहार—ऐसे दो प्रकार से साधा है। धर्म के दो प्रकार : निश्चय और व्यवहार। **उसकी प्ररूपणा चार प्रकार से है—**सर्वज्ञ के मार्ग में चार प्रकार के धर्म के नाम के कथन हैं। चार प्रकार से कथन हैं। **प्रथम वस्तुस्वभाव,...** चार प्रकार में पहला वस्तुस्वभाव धर्म। भगवान आत्मा... जो वस्तु, उसका स्वभाव, वह धर्म। आत्मा का स्वभाव वस्तु है, उसका स्वभाव, ज्ञान, दर्शन और आनन्द। उस ज्ञान, दर्शन और आनन्द का प्रगट होना, वह धर्म है। समझ में आया?

प्रथम वस्तुस्वभाव,... धर्म। एक। यह स्वभाव तो भगवान ने देखा, जाना-वैसा कहा वहाँ हो। अज्ञानी में कभी हो नहीं सकता। **उत्तम क्षमादिक दस प्रकार,...** धर्म। दूसरा। धर्म की व्याख्या दूसरी। उत्तम—सम्यग्दर्शनसहित सहनशीलता, क्षमा आदि की वीतरागता वह दस प्रकार का धर्म। वह दूसरे धर्म की व्याख्या है। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप...** तीसरी व्याख्या। धर्म की तीसरी व्याख्या। देखो! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तीन भी धर्म। आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति चैतन्य प्रभु में अन्तर्मुख होकर दर्शन-प्रतीति होना और अन्तर्मुख का ज्ञान होना और उसमें रमणता, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन को धर्म कहने में आता है। तीनों को धर्म कहने में आता है। तीनों को धर्म कहते हैं। वैसे तो चारित्तं खलु धम्मो; और धर्म का मूल सम्यग्दर्शन। यहाँ तो तीनों धर्म हैं। सम्यग्दर्शन स्वभाव धर्म है न? सम्यग्ज्ञान उसका धर्म है और सम्यक्चारित्र वीतरागी पर्याय भी धर्म है। तीनों धर्म है। वस्तु का स्वभाव है, ऐसी दशा प्रगट हुई है। कहो, समझ में आया?

और चौथे जीवों की रक्षारूप ऐसे चार प्रकार हैं। लो! जीव की रक्षारूप अर्थात् इसमें जीव स्वयं आया न?

मुमुक्षु : ....अपनी रक्षा........

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं। दूसरी किसकी रक्षा? ऐई! अपने जीव की राग से रक्षा करना, वह धर्म है। राग उत्पन्न होने नहीं देना।

मुमुक्षु : दूसरे जीव की रक्षा.....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे जीव का विकल्प, वह व्यवहार। निश्चय यह। स्वयं जीव में है या नहीं जीव? उसकी रक्षा अर्थात् क्या? जिसका स्वरूप ज्ञान-आनन्द आदि है, उसकी रक्षा। राग की रक्षा नहीं, व्यवहार की रक्षा नहीं। दया, दान, व्रत आदि विकल्प, वह तो हिंसा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : जीव को रागस्वरूप माने, वह रक्षा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : रागस्वरूप, आत्मा को रागस्वरूप माने तो मिथ्यात्व होता है।

मुमुक्षु : रक्षा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप की रक्षा होती है।

अपना आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, वैसी उसकी उत्पत्ति होना और दूसरे का आत्मा भी ज्ञानमय है, ऐसी ज्ञानमय उत्पत्ति होना, उसका नाम जीव की रक्षा और धर्म है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक तो धर्म का प्रकार यह कि वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म। उसी-उसी को दस प्रकार सम्यग्दर्शनसहित क्षमा, वह भी एक धर्म; तीसरा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय स्वभाव में ध्रुव के आश्रय से प्रगट होना। ध्रुव चैतन्यबिम्ब भगवान, नित्य सिद्धरूप वस्तु त्रिकाल शाश्वत्। उसके आश्रय से होनेवाला सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह धर्म; और उसके आश्रय से होनेवाली रागरहित की अहिंसा स्वभाव की उत्पत्ति, उसका नाम धर्म। कहो, समझ में आया?

ऐसे चार प्रकार हैं। वहाँ निश्चय से सिद्ध किया जाये, तब तो सबमें एक ही प्रकार है,... देखो! चारों में एक ही प्रकार है। शुद्धता। आहा..हा..! निश्चय से चार

वस्तु को सिद्ध करके **सबमें एक ही प्रकार है, इसलिए वस्तुस्वभाव का तात्पर्य तो जीव नामक वस्तु की परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है...** देखो! जीव नामक पदार्थ ऐसा भगवान आत्मा, उसका परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान ऐसे परिणाम, श्रद्धा-ज्ञान के ऐसे परिणाम, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम, वह पहला वस्तु का स्वभाव, वह धर्म है। राग और पुण्य आदि कहीं वस्तु का स्वभाव नहीं है। कहो, समझ में आया?

निश्चय से सिद्ध किया जाये, तब तो सबमें एक ही प्रकार है, इसलिए वस्तुस्वभाव का तात्पर्य तो जीव नामक वस्तु की परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है... भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान का पिण्ड है। उसमें एकाग्रता (होना), ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की चेतना, वह परिणाम, वह धर्म। ज्ञान-चेतना वह धर्म है। समझ में आया? वस्तु का स्वभाव परमार्थ, ऐसा कहा न? देखो! **दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है...** वह वस्तु का स्वभाव है। जानना-देखना ऐसा जो आत्मा का स्वभाव, उसे परिणाम में प्रगट करना। देखने-जानने के परिणाम, श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, वह चेतना के परिणाम, वह धर्म है। रागादि, वह चेतना का परिणाम, वह चेतना की क्रिया आयी, सबेरे आया था। चेतना की क्रिया। राग की या दया-दान, पर की दया-दान की क्रिया वह तो जीव की क्रिया ही नहीं।

मुमुक्षु : व्यापक का व्याप्य नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? इस श्रुत पंचमी से अष्टपाहुड़ शुरु होता है। सब छनावट होती है। किसी की लिहाज रखी जाये या किसी की शर्म से दूसरा हो, वह यह वस्तु नहीं है कि दुनिया के डर से अधिक लोग मानें और थोड़ा मानें और न मानें, इसलिए सत् की संख्या न हो, इसलिए सत् दूसरा हो जाये, ऐसा है नहीं। आहा..हा..! लोगों को बाहर की प्रवृत्ति के परिणाम पर पूरे धर्म का माप है। यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु का स्वभाव परमार्थरूप चेतना, ऐसा ज्ञान में चेताना-श्रद्धा-ज्ञान के परिणाम से—ऐसा चेतना परिणाम, वह धर्म है। वह मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : ज्ञान चेतना से....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ज्ञानस्वरूप आत्मा है। उसमें चेतना अर्थात् एकाग्र होना।

वह ज्ञान की चेतना। उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों उसमें आ गये। यहाँ तो अभी पहली व्याख्या करते हैं। वस्तुस्वभाव धर्म की व्याख्या। फिर दूसरी करेंगे। उसमें भी चेतना के परिणाम ही हैं। ऐसा सिद्ध करेंगे। आहा..हा..! समझ में आया?

वस्तुस्वभाव, उसे तो जीव भगवान आत्मा, वह वस्तु का परमार्थ दर्शन-ज्ञान, देखने-जानने का जिसका स्वभाव, उसमें एकाग्र होने पर जो चेतना दर्शन-ज्ञान-परिणति हो, वह वस्तु का स्वभाव और उसे धर्म कहने में आता है। शरीर की क्रिया नहीं; दया, दान के विकल्प, वह धर्म नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : सहकारी.....

पूज्य गुरुदेवश्री : सहकारी का अर्थ होवे वह हो। सहकारी कारण यहाँ कहाँ है? उसके घर में रहा। एक-दूसरे में तो अभाव है। सहकारी कारण का तो अभाव है।

मुमुक्षु : साथ में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे तो सब पूरी दुनिया होती है। लोकालोक है, यहाँ आ जाता है? लोकालोक है। केवलज्ञान में ज्ञात हो, वह लोकालोक ज्ञान में आ गया? रागादि सब हैं। हो, वह कहीं आत्मा का धर्म तो चेतना अन्दर परिणमना चैतन्य शुद्ध से, वह धर्म है। शान्तिभाई! आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऐसा जैन का स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा जैन का, वस्तु का स्वभाव ऐसा है, ऐसा कहते हैं। जैन का नाम ही कहाँ लिया? वस्तु जीव है, उसका परमार्थस्वभाव ही जानना-देखना ऐसे चेतनारूप परिणमना, वह धर्म है। ऐसा ही वह परमार्थ है। भगवान ने कहा, जाना और कहा है। वह वस्तु ही ऐसी है। जानन-देखन आनन्द प्रभु! उसकी अन्तर्दृष्टि करके जानन, देखन और आनन्द के, चेतना के परिणाम प्रगट हों, उसे यहाँ वस्तु का स्वभाव धर्म कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

और वह चेतना सर्व विकारों से रहित... दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है... देखो! **शुद्ध-स्वभावरूप परिणमित हो, वही जीव का धर्म है...** लो! राग और विकल्प से रहित शुद्ध चेतना हो, वह जीव का स्वभाव और धर्म है। अस्ति-नास्ति कहा। लो!

दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है और वह चेतना सर्व विकारों से रहित... दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण विकल्प है, वह तो विकार है। आहा..हा..! **सर्व विकारों से रहित शुद्ध-स्वभावरूप परिणमित...** भगवान पवित्र शुद्ध है, त्रिकाल शुद्ध है। उसका परिणमन शुद्ध होना, वह धर्म है। दूसरी शैली आती है न यहाँ तो! समयसार की शैली और... बात तो वह है परन्तु दूसरे ढंग से बात है। आहा..हा..! ऐई! सुजानमलजी!

मुमुक्षु : कड़क है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क। कड़क नहीं। जैसा है, वैसा है। कड़क तो अतिरेक कहलाता है। ऐसा स्वभाव.. आहा..हा..!

मुमुक्षु : मार्ग बिगड़ गया, इसलिए कड़क बात...।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए लगता है। लोगों को... इस प्रकार से माना है न कि यह मानो भगवान की भक्ति करते हैं और यात्रा करते हैं, पूजा करते हैं, यह सामायिक, प्रोषध, प्रतिक्रमण करते हैं, इसलिए धर्म। यह इनके माने हुए हैं। ये तो विकल्प हैं, भाई! यह तो शुभराग है। उस राग से, विकार से रहित शुद्ध चेतना का परिणमना, वह धर्म है। आहा..हा..! समझ में आया? वीतराग धर्म की यह व्याख्या। भाई! .... इसे रुचेगी नहीं ऐसा। इसने दूसरा रचा है न! फिर बारम्बार जब हो, तब ऐसा लगता है कि भाई! मार्ग तो यह है। ऐई! भाई! देखो! यह ऐसा है। स्त्रियों की बातें! धीरे-धीरे बैठेगी। नहीं रुचे तो यहाँ से चले जायेंगे। रुचेगी तो फिर वहाँ और थोड़ा-थोड़ा रुच गया। यह मार्ग तो कोई दूसरा लगता है। आहा..हा..!

इस देह को भूल जाओ, कहते हैं। यह तो मिट्टी जड़ है। विकल्प उठे, उसे भूल जाओ क्योंकि वह तो विकार है। भूलरहित स्वभाव जो त्रिकाल आनन्द और ज्ञानमूर्ति है, उसका उसरूप से परिणमन होना, विकाररहित स्वभाव शुद्धतासहित। शुद्धतासहित और विकाररहित, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : महाराज! भूल जाओ ऐसा आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को अन्दर याद करो। अन्दर परमात्मा आनन्दस्वरूप है, उसे स्मरण करो, इसे भूल जाओ, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो बात-बात में..... क्रिया कुछ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रिया नहीं आयी? भगवान आनन्दमूर्ति को याद करो। जिसका विस्मरण चलता है, उसका स्मरण करो; और जिसका स्मरण चलता है, उसका विस्मरण करो। पण्डितजी! आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मांगलिक में बहुत जगह कहा है। सबेरे मांगलिक आता है न?

अनादि भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द आनन्द है, उसका इसे विस्मरण है; और राग-द्वेष तथा मिथ्या अभिप्राय की इसे यादगिरी और स्मरण है। यह विस्मरण है भगवान आत्मा का, उसे स्मरण में लाना। स्मरण कब हो? उसे पकड़कर, अवाय करके-निर्णय करके और धारणा की हो तो स्मरण होता है। ज्ञानानन्दस्वरूप चिदानन्द प्रभु, चैतन्य के स्वभाव से अकेला भरा हुआ, उसका अवग्रह करके, निर्णय करके अन्दर धारण किया हो कि ऐसा स्वरूप है। उसका स्मरण करना और अनादि का विकार का स्मरण है, उसे विस्मरण करना। कहो, समझ में आया?

देखो! **जीव नामक वस्तु की परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है...** वह शुद्ध कहा। उस शुद्ध का परिणमन है। राग है, वह तो विकार है। वह शुद्ध का परिणमन नहीं। आहा..हा..! पंच महाव्रत के परिणाम, पर की दया का भाव, वह सब विकार है। उस विकाररहित शुद्ध चैतन्य का परिणमन, विकाररहित (परिणमन हो), उसे शुद्ध चेतना धर्म, वस्तु का स्वभाव कहते हैं। आहा..हा..! बहुत कठिन काम। लोगों में इतना सब बाहर का ऐसा हो.. हो.. हो हा... हो हा... (हो गयी है कि) यह बात बैठना कठिन पड़ती है। यह तो एकान्त है, परन्तु कोई साधन-फाधन है? विकार साधन और निर्विकार साध्य? ऐसा नहीं हो सकता। यहाँ तो विकाररहित ही कहना है, वहाँ फिर विकार साधन कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं।

वस्तु चैतन्य का स्वभाव भगवान, त्रिकाल, सर्व काल में शाश्वत् शुद्ध। अपने तीन बोल आये थे न? अन्तः, चिर, विशद्, लसत्... चार बोल थे। अन्तः, यहाँ झुकना

है न ? ऐसा कहते हैं। यहाँ ऐसे झुकना है न ? ऐसे झुकना है तो वह झुका हुआ असंख्य प्रदेशी अन्दर एकरूप है। और फिर... समझ में आया ? चिर सर्वकाले – ऐसा ही है वह। शाश्वत्। सर्व काल में ज्ञान–आनन्दमय वस्तु, ऐसी की ऐसी है। फिर विशद— सर्व काल शुद्ध है। भाव। यह भाव आया। सर्व काल शुद्ध है। लसत्। सर्व काल पृथक् है। गजब अर्थ निकाला है !

मुमुक्षु : सर्व काल और लसत्।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों में सर्व है। समझ में आया ? यह उसका स्वभाव ही ऐसा है, कहते हैं। तीनों काल अन्तः असंख्य प्रदेश का एकरूप, उसमें ऐसी की ऐसी स्थिति रहे, ऐसी वस्तु शाश्वत् है। काल रह गया अन्दर त्रिकाली। और उसका शुद्धत्वभाव, वह उसका भाव है, और उसका प्रत्यक्ष होना, वह प्रत्यक्ष त्रिकाल, प्रत्यक्ष हो, ऐसा उसका प्रत्यक्ष गुण है, ऐसा उसका स्वभाव है। उस स्वभाव का उस प्रकार से चैतन्य का शुद्धरूप से परिणमन होना, द्रव्य के आश्रय से शुद्ध का परिणमन होना, पर के आश्रय से विकाररहित परिणमन होना, उसे चेतनारूप धर्म कहने में आता है। देवीचन्दजी ! इसमें कोई शंका को स्थान ही नहीं है। क्यों होगा और कैसे होगा ? (ऐसा नहीं है)। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : साधन नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन–फाधन। यह स्वयं साधन है। यह तो सबेरे बात चलती है। आहा..हा.. ! कर्ता से, साधन–करण भिन्न नहीं हो सकता। यह तो सबेरे आता है। अभी आयेगा उसमें। आहा..हा.. ! करनेवाला भगवान आत्मा, उसके स्वभाव का साधन भी स्वयं ही है। उसे पर की तो अपेक्षा है ही कहाँ ? स्वतन्त्ररूप से करे, उसका साधन, स्वतन्त्ररूप से साधे, वह साधु। पर की अपेक्षा रहे, उसमें स्वतन्त्र कहाँ रहा ? आहा..हा.. !

मुमुक्षु : साधे कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनेकान्त है। स्व साधन से होता है और पर साधन से नहीं होता। कहीं कहा हो तो वह व्यवहार से कथन है। इसलिए पर से नहीं होता, ऐसा अनेकान्त है। लो, अभी एक बात ली। दूसरी लेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र कृष्ण ४, रविवार, दिनांक १६-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-२

..... शास्त्र है भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कृत। दर्शनपाहुड़ चलता है। दूसरी गाथा।

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो ॥२॥

अर्थ—जिनवर जो सर्वज्ञदेव हैं, उन्होंने शिष्य जो गणधर आदिक को धर्म का उपदेश दिया है;... धर्म का उपदेश किया। **कैसा उपदेश दिया है ? कि दर्शन जिसका मूल है।** ... वहाँ आता है अन्त में कि ऐसे दर्शन की श्रद्धा, वह समकित है। ऐसा कही आता है अन्दर। टीका में आता है अन्त में। ... पीछे कहीं है। अन्तिम शब्द हैं। यहाँ दर्शन किसे कहते हैं ? मुख्यरूप से तो अभ्यन्तर दर्शन-ज्ञान-चारित्र दशा, बाह्य में नग्न दशा और पंच महाव्रत के विकल्प, ऐसी जो मुद्रा, ऐसा जो दर्शन, उसे जैनदर्शन कहते हैं। समझ में आया ? फिर चौथे में सम्यग्दर्शन लेते हैं, परन्तु मूल यह (चारित्र) है। यह दंसण अर्थात् दर्शन अर्थात् जो देखने में आवे मूर्ति। आत्मा अभ्यन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और बाह्य में नग्न मुनि, व्यवहार पंच महाव्रत के विकल्प, ऐसी वस्तु को जैनदर्शन कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? आचार्य का हृदय यह है। फिर उसमें (चौथे गुणस्थान का) दर्शन—समकित आ जायेगा। परन्तु मूल यह दर्शन कहा जाता है। यह दर्शन जिसे हो... उसे मूर्ति कहा जाता है। लिखेंगे अन्दर बहुत। आहाहा ! समझ में आया ? और वह वन्दन के योग्य है, ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त वीतराग मार्ग को छोड़कर दूसरे वेश हुए, श्वेताम्बर आदि, वह वेश वन्दनीय नहीं है। आहाहा ! सुजानमलजी।

मुमुक्षु : मुनि वन्दनीय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे मुनि हों। मुनि कैसे ? उसे जैनदर्शन कहते हैं। दर्शनपाहुड़ में '**दंसणमग्गं**' है न ? दर्शन ... मार्ग यह। ... उसका मत—वह जैनदर्शन का मत। यह अभ्यन्तर और बाह्य जिसे मुनिपना यथार्थ प्रगट हुआ है, वह दर्शन की मूर्ति देखे, उसे जैनदर्शन कहा जाता है। समझ में आया ? स्पष्टीकरण भाई करेंगे, पण्डितजी स्वयं

पण्डित जयचन्द्रजी। परन्तु मूल यह है। देखो, है न? कि धर्म का मूल दर्शन।

इसलिए आचार्य उपदेश देते हैं कि हे सकर्ण... सकर्ण अर्थात् कानवाले समूह, सुना है। **अर्थात् सत्पुरुषों! सर्वज्ञ के कहे हुए उस दर्शनमूलरूप धर्म को अपने कानों से सुनकर...** दर्शन मूलरूप धर्म। चारित्र का जो धर्म जैनमार्ग का, वह दर्शनमूल अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और बाह्य वेश नग्न दिगम्बर। यह बात है। **उस दर्शनमूलरूप धर्म को अपने कानों से सुनकर, जो दर्शन से रहित हैं,...** जैनदर्शन, वह ऐसा जैनदर्शन। **वे वन्दनयोग्य नहीं हैं;...** कुन्दकुन्दाचार्य के समय सम्प्रदाय निकल गया था, इसलिए यह स्पष्ट करना पड़ा। आहाहा!

वीतराग का जैनमार्ग अर्थात् चारित्र का मार्ग। वह चारित्र अर्थात् जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित है, ऐसी चारित्र की मूर्ति और बाह्य में दिगम्बर मूर्ति। अकेली बाह्य यथाजात (दशा), वह नहीं। यह आगे कहेंगे, यह १४वीं गाथा में कहेंगे। अभ्यन्तर भी जिसे अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, आत्मा का ज्ञान जिसे हुआ है, तदुपरान्त जिसे स्वरूप में लीनता और रमणता चारित्र की हुई है—इन तीन की एकता में जो रमते हैं और बाह्य में यह दशा है। जैसी तीर्थंकर ने दीक्षा ली, वे जिन... जैसी जिन तीर्थंकर ने दीक्षा ली, उस समय जो दृश्य था, वह मुनि का दृश्य होना चाहिए। सेठ! समझ में आया?

जिनदर्शन में एक ऐसा भी अर्थ है। अन्दर अर्थ में आयेगा अन्दर। तीर्थंकर भगवान जब दीक्षित हुए नग्नरूप और अन्तर में आनन्दसहित की दशा, उसे भगवान ने जैनदर्शन कहा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। फिर आगे समकिती भी लेंगे। परन्तु ऐसी बात हो, उसकी श्रद्धा करे, उसे समकित होता है, ऐसा। ऐसा जो मुनिपना चारित्र जो मोक्ष का मार्ग, वह जैनदर्शन। उसकी जो श्रद्धा करे... यह मूल सूत्र है, आगे कहीं है। आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, परन्तु व्यवहार में ऐसी लाईन उसकी हो। मुनिपना ऐसा होता है, वह संवर-निर्जरा की दशा उत्कृष्ट आदि हो, उस समय विकल्प भी पंच महाव्रतादि का होता है, दूसरा नहीं होता। संयोग में वस्त्र और पात्र भी नहीं हो सकते। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग ने कहा है। समझ में आया?

यह कहते हैं, **सर्वज्ञ के कहे हुए उस दर्शनमूलरूप धर्म को अपने कानों से**

सुनकर जो दर्शन से रहित हैं, वे वन्दनयोग्य नहीं हैं;... आहाहा! **इसलिए दर्शनहीन की वन्दना मत करो।** वीतरागमार्ग जो ऐसा चारित्रसहित का सम्यग्दर्शन-ज्ञान और वेश यह, इससे रहित को वन्दन न करो, वह मार्ग जैन का नहीं। आहाहा! समझ में आया? दिगम्बर में भी मात्र बाह्य नग्न और अट्ठाईस मूलगुण, वह कोई वस्तु नहीं। वह तो निमित्त में ऐसा होता है। परन्तु अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान, सामान्य द्रव्य ध्रुव का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन प्रथम हुआ है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' (समयसार) ११वीं गाथा। भूतार्थ भगवान त्रिकाल स्वरूप धाम, ध्रुव, उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ है, उसके साथ सम्यग्ज्ञान है, उसके साथ वीतराग परिणतिरूप चारित्र है। उसके साथ व्यवहार में अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, नग्नदशा है। उसे जैनदर्शन और उसे जैनधर्म का मूल कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? फावाभाई! यह तो भाई! मार्ग यह है जरा। और अष्टपाहुड़ लेने का मन हुआ। पहले सुना कि आठ वर्ष पहले (वांचा) है। फिर लगा फिर से (लेते हैं)। ठीक अब, कहा, यह बाहर प्रकाशित हुए हैं न यह।

मुमुक्षु : नयी प्रकाशित हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नयी प्रकाशित हुई। यह अक्षर अच्छे हैं इसमें। पुराना है न। यह पुराना है और यह नया है। आहाहा!

ऐसा जैनदर्शन जहाँ नहीं और दूसरे प्रकार से मानकर मुनिपना आदि माना है, वेश भी दूसरा जहाँ माना है, वह जैनदर्शन नहीं है। सेठ! आहाहा!

दर्शनहीन की वन्दना मत करो। ऐसा जो दर्शन, उसे छोड़कर, अपनी कल्पना से पंथ निकाला है, उसे वन्दन न करो, ऐसा कहते हैं। सेठ! स्वरूपचन्दभाई! यह जैन मार्ग तो अलग बात है। **जिसके दर्शन नहीं है, उसके धर्म भी नहीं है,...** जिसे ऐसे दर्शन की श्रद्धा नहीं, ऐसा वीतरागमार्ग—मोक्ष का मार्ग, वह ऐसा होता है, ऐसा जैनदर्शन जिसे नहीं, उसे धर्म नहीं। जयन्तीभाई! इस बार यह दूसरे प्रकार का सुना।

मुमुक्षु : नयी पद्धति से।

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्धति तो (वही है)। कथन का प्रकार (अन्तर)। आहाहा!

क्योंकि मूलरहित वृक्ष के स्कन्ध... जिसका मूल ही नहीं। 'मूलं नास्ति कुतो

शाखा।' जिसका मूल नहीं उसे **वृक्ष के स्कन्ध,...** स्कन्ध बड़ा होता है न। **शाखा...** डाली, **पुष्प फलादिक कहाँ से होंगे ?** कहाँ से होंगे उसे ? **इसलिए यह उपदेश है कि जिसके धर्म नहीं है, उससे धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती,... उससे धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती,...** समझ में आया ? आहाहा ! **जिसके धर्म नहीं है, उससे धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर धर्म के निमित्त उसकी वन्दना किसलिए करें ?** नया है न भाई ! नया नहीं ? कहाँ से आया ? सेठ से मिला ? ठीक। कितने रखे हैं तुमने यह ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : समाप्त हो गये ? तुमने मँगाये हैं न कानपुर से ? आनेवाले हैं। आनेवाले हैं परन्तु अब... आहाहा !

अब, यहाँ धर्म का तथा दर्शन का स्वरूप जानना चाहिए। धर्म और दर्शन किसे कहते हैं, उसका स्वरूप जानना चाहिए। **वह स्वरूप तो संक्षेप में ग्रन्थकार ही आगे कहेंगे, तथापि कुछ अन्य ग्रन्थों के अनुसार यहाँ भी दे रहे हैं**—पण्डित जयचन्द्रजी कहते हैं। **धर्म शब्द का अर्थ यह है कि जो आत्मा को संसार से उबारकर सुखस्थान में स्थापित करे, सो धर्म...** धारती इति धर्म। यह रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है। जो चार गति में भटकते को धार रखे, दुर्गति में पड़ते हुए को धार रखे, उसका नाम धर्म। मिथ्यात्व और राग-द्वेष में पड़ते हुए को टिका ले अद्धर से, उस दशा को धर्म कहते हैं। उसे धर्म कहा जाता है अन्दर। लो ! आहाहा ! लो !

अब आगे स्वरूप कहते हैं। **जो आत्मा को संसार से उबारकर सुखस्थान में स्थापित करे, सो धर्म है और दर्शन अर्थात् देखना।** देखना, (ऐसा) यहाँ अर्थ किया। दर्शन—देखना है। समकित भी लेंगे बाद में। **इस प्रकार धर्म की मूर्ति दिखाई दे, वह दर्शन है...** आहाहा ! वीतरागभाव अन्दर और बाह्य वीतरागमूर्ति। जैसी जिनभगवान ने दीक्षा ली थी और (जो) दशा (होती है), वह दशा दिखायी दे। आहाहा ! **धर्म की मूर्ति दिखाई दे, वह दर्शन है...** यहाँ अर्थ यह किया है, भाई ! समकित तो है गौण में अन्दर। वह बाद में लेंगे। मूल यह है। मुख्य यह बतलाना है। समझ में आया ? **'दंसणमग्गं'** ऐसा कहा है। जैनदर्शन की रीति और पद्धति और मार्ग क्या है, वह कहूँगा। आहाहा !

त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो जैनदर्शन कहा, वह क्या? कि मुनिपना, वह जिनदर्शन। आहाहा! भावलिंग जिसे अन्तर में प्रगट हुआ है और द्रव्यलिंग में भी जिसे नग्नदशा और वीतरागमुद्रा दिखती है। वह **दिखाई दे, वह दर्शन है...** पण्डितजी! यह दूसरे प्रकार का विषय है। दर्शनपाहुडं अर्थात् समकित है। वह समकित है सही गौण में, परन्तु मुख्य में तो यह है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य जगत को सत्य की प्रसिद्धि के लिये सत्य जैनदर्शन क्या है, वह इसमें कहते हैं। आहाहा!

तथा प्रसिद्धि में जिसमें धर्म का ग्रहण हो, ऐसे मत को दर्शन कहा है। देखो! **प्रसिद्धि में जिसमें धर्म का ग्रहण हो... जिसमें धर्म का ग्रहण हो, ऐसे मत को दर्शन कहा है।** वीतरागमार्ग जो मुनिपना, और जो उसकी व्यवहार आदि क्रिया, वह व्यवहार-निश्चय दोनों हैं। उनसे धर्म प्राप्त होता है, उनसे धर्म प्राप्त होता है। ओहोहो! यहाँ मुख्यता की बात है न! **धर्म की मूर्ति दिखाई दे, वह दर्शन है...** दर्शन की व्याख्या यह की है। दर्शन की व्याख्या यहाँ समकित, ऐसा नहीं किया। समझ में आया? और कल कहा था। कहा न? सोने से पहले दोपहर में जरा दिमाग में आ गया। कहा, इसमें निःशंक आदि नहीं। भाई! कल कहा था। इसलिए यह समकित की मुख्यता का कथन इसमें नहीं है। इसमें पूरा दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित का वीतरागमार्ग जो मुनि का है, उसका वर्णन है। उस जैनदर्शन से भ्रष्ट हुए, उनमें से उबारने के लिये यह बात ली है। आहाहा! समझ में आया? श्वेताम्बर आदि सब पंथ जितने निकले, वे सब जैनदर्शन नहीं। वह जैन का दर्शन व्यवहार भी नहीं और निश्चय भी नहीं। ऐई! जयन्तीभाई! किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं करना, वैर नहीं। तत्त्वैषु मैत्री। परन्तु वस्तुस्थिति यह है। ऐई! धीरुभाई! यह उनको तो अभी कान में नया पड़ता है। यह मार्ग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जैनदर्शन अर्थात्? **धर्म की मूर्ति दिखाई दे, वह दर्शन है तथा प्रसिद्धि में जिसमें धर्म का ग्रहण हो...** जिसमें धर्म का ग्रहण हो, चारित्र का, सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित **ऐसे मत को दर्शन कहा है।** आहाहा! भगवानजीभाई! यह मार्ग कुन्दकुन्दाचार्य ने तो बहुत स्पष्ट कर दिया है। देखो! अनादि का मार्ग है। अनादि का तो यह मार्ग है, भाई! उसमें

से यह नये निकले श्वेताम्बर और स्थानकवासी और यह तेरापंथी तुलसी। अब तुम तो यहाँ बहुत बार आ गये न, तुमको कहाँ नया लगे? भाई! भाई तो यहाँ आ गये। अधिक स्पष्ट होता है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य तो स्पष्ट करके कहते हैं। '**दंसण मूलो धम्मो**' वहाँ '**दंसण मूल**' का यह अर्थ किया कि धर्म का मूल जैनदर्शन, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति सहित... जो है, वह धर्म दर्शन का मूल है। वह दिखाई देता है। देखना कहा है न दर्शन का अर्थ अभी? दिखाई दे रहा है। आहाहा! वह स्वयं जैनदर्शन है। समझ में आया? और ऐसे जैनदर्शन की श्रद्धा करे, उसे समकित होता है। इससे विरुद्ध कोई श्रद्धा करे तो मिथ्यादर्शन होता है।

मुमुक्षु : दोनों में से एक का भी श्रद्धान न होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक का श्रद्धान... मिथ्यात्व, वह तो अनादि का है। आहाहा! यह तो मूढ़ अज्ञान है। यहाँ तो जैनदर्शन भगवान ने क्यों कहा? आहाहा! पण्डित जयचन्द्रजी ने भी काम किया है न! पण्डित है, गृहस्थाश्रम में है, परन्तु कैसा अर्थ कियाय है, देखो न!

मुमुक्षु : श्रद्धा-ज्ञान तो बराबर होना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्रद्धा-ज्ञान तो बराबर होना चाहिए। गृहस्थाश्रम में समकिती को वह श्रद्धा-ज्ञान तो बराबर होना चाहिए। चारित्र भले न हो। समझ में आया? वह भी मार्ग में है। कहा है न वहाँ रत्नकरण्ड श्रावकाचार में। 'दिठ्ठो मोक्ख मग्गो।' गृहस्थाश्रम में भी मोक्षमार्ग होता है, विपरीत दृष्टिरहित का। परन्तु अनगार नाम धराकर भी जो कुमार्ग में चलता है, मोही अनगार मिथ्यादृष्टि है। क्या आया है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। आहाहा! वह राग को धर्म माने, बाह्य क्रियाकाण्ड को धर्म माने, वह मुनि है तो भी मोही मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! व्यक्ति के प्रति की बात नहीं। वस्तु तो उसके अपने परिणाम का जवाबदार है। वस्तु की स्थिति यह है। उसमें किसी को वैसा (बुरा) लगाने की बात

नहीं है। मार्ग यह है, भाई! अनादि वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का त्रिलोकनाथ अनन्त तीर्थंकरों का मार्ग तो जैनदर्शन है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो काम किया है न अभी! आहाहा! पंचम काल में तीर्थंकर जैसा काम किया है। अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसा काम किया है पंचम काल में। आहाहा! यह टीका, यह वस्तु! ओहोहो!

केवलज्ञान के पथानुगामी, केवलज्ञान के मार्ग में—पंथ में चलनेवाले। आहाहा! यह वीतराग का मार्ग खड़ा रखते हैं। कहा था न भाई चरणानुयोग में नहीं? यह (खड़े) हम प्रणेता। आहाहा! प्रवचनसार चरणानुयोग (सूचक चूलिका, गाथा २०१)। इस मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े, ऐसा लिखा है। चरणानुयोग में है। प्रवचनसार। ....मार्ग ...मोक्षमार्ग में हैं, जैनदर्शन में हैं और उसकी प्ररूपणा करनेवाले हम यह खड़े हैं। आहाहा! चरणानुयोग में शुरुआत की गाथा में है। समझ में आया? है? देखना है? प्रवचनसार है न? ऐसा जो जैनदर्शन का श्रमण का मार्ग अंगीकार करने का जो यथानुभूति मार्ग। यथानुभूत—जैसा हमने अनुभव किया, वैसा मार्ग। **उसके प्रणेता हम यह खड़े।** (२०१ गाथा)। संस्कृत में है। **'तत्प्रतिपत्तिवर्त्मनः प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम इति।'** आहाहा! यह भगवान ने कहा हुआ मार्ग, उस मार्ग में हम खड़े हैं। और उस मार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं। वीतराग ने जो मार्ग कहा... आहाहा! धीरुभाई! टीका में, प्रवचनसार है न! संस्कृत टीका है अमृतचन्द्राचार्य की। क्योंकि पाठ में ऐसा है और वहाँ कहा, इसलिए।

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे।
पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं॥२०१॥

अंगीकार करो अर्थात् हमने अंगीकार किया है, ऐसा अंगीकार करने का हम कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने केवलज्ञान का विरह भुलाया है। आहाहा! लोगों को रुचे, न रुचे, वह अलग वस्तु, परन्तु सत्य तो यह है। कान्तिभाई! कहा है न, देखो न! यह हम खड़े। आहाहा! संस्कृत टीका, हों! अमृतचन्द्राचार्य की। २०१ (गाथा) चरणानुयोग (सूचक चूलिका) की पहली गाथा। **'तत्प्रतिपत्तिवर्त्मनः प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम इति।'** हम यह खड़े। आहाहा! धीरुभाई!

मार्ग वीतराग का है, उसमें हम खड़े हैं और उसके कहनेवाले भी हम यह खड़े हैं कि देखो! यह मार्ग है। धीरुभाई ठीक प्रमोद में आते हैं। वह तो यह मार्ग है, बापू! इसे पहले पहिचान और श्रद्धा करनी पड़ेगी। आहाहा! देखो न! एक अमृतचन्द्राचार्य की टीका। भगवान त्रिलोकनाथ अनन्त जिनों—तीर्थंकरों ने कहा, जैनदर्शन का मार्ग, उसके अनुभव करनेवाले हम यह हैं। आहाहा! और उसके कहनेवाले भी हम हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा ही चला आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

कहते हैं कि अहो! **धर्म की मूर्ति दिखाई दे, वह दर्शन है...** सम्यग्दर्शन, वह दर्शन, (ऐसा) यहाँ अभी नहीं लिया। वह गौणरूप से लिया, आगे बात करेंगे। यह कहेंगे स्वयं, हों! अन्दर उतारेंगे। **धर्म की मूर्ति दिखाई दे,...** चारित्र की मूर्ति दिखाई दे। धर्म अर्थात् चारित्र। आहाहा! जिसकी वीतरागदशा और वीतराग मुद्रा। आहाहा! जिसे वीतराग दर्शन सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन वीतरागदर्शन ही होता है। राग सम्यग्दर्शन? राग तो चारित्र का दोष है। आहाहा!

आत्मा भगवान पूर्णानन्दस्वरूप का आश्रय लेकर जो दर्शन—समकित होता है, वह समकित वीतरागी पर्याय है। और उसका स्वसंवेदनज्ञान हो, आत्मा का ज्ञान, हों! शास्त्र आदि (का) ज्ञान, परज्ञान है, वह वस्तु नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उस ज्ञान का ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान है। वह जिन का यथार्थ ज्ञान। आहाहा! और उसमें रमणता। उसमें रमणता आनन्द की मौज करते हुए लीनता (हो), वह चारित्र, यह जैनदर्शन अथवा यह जैन का मत अथवा यह जैन का मार्ग है। आहाहा! यह अष्टपाहुड़ में आया। भाई ने कहा... यह... रामजीभाई ने कहा। ... ... परन्तु यह तो परिवर्तन होवे न बारम्बार। परिवर्तन। आहाहा! कहो, चेतनजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म का... धर्म अर्थात् चारित्र, उसका मूल जैनदर्शन। और सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की दशा, वह जैनदर्शन। वह दिखाई दे, ऐसी मूर्ति, वह

जैनदर्शन। आहाहा! अरे! वीतराग का मार्ग इसने जाना नहीं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ के हुकम में ऐसा मार्ग मिलना (दुर्लभ है)। अपनी कल्पना से मानकर रहा। ऐसे भव गंवाये इसने। आहाहा! समझ में आया? धर्म की मूर्ति दिख गयी। बड़े अक्षर (बोल्ड टाईप) में लिखा है इसमें, हों! पुराने में नहीं होगा बड़े अक्षर में। इसमें लिखा है भाई ने अपने। ...

तथा प्रसिद्धि में जिसमें धर्म का ग्रहण हो... आहाहा! **जिसमें धर्म का ग्रहण हो ऐसे मत को दर्शन कहा है। मत को दर्शन कहा है।** आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा ने दिगम्बर धर्म जो कहा... आहाहा! वह जैनदर्शन है। दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त कोई जैनदर्शन है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! श्रीपालजी! ठीक लगे, ठीक न लगे जगत को, क्या करें? अरेरे! सत्य बात कहने पर दुनिया को न भाये, परन्तु क्या हो? दूसरी बात... नहीं है। आहाहा! जैनदर्शन की मूर्ति साक्षात् जिसने अन्दर दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्रगट किये हैं। आनन्द की लहर में मजा करते हैं। आहाहा! और जिन्हें पंच महाव्रत के विकल्प और दिगम्बर मूर्ति शरीर की... ऐसे जैनदर्शन की श्रद्धा, ऐसे जैनदर्शन की श्रद्धा, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। दूसरे प्रकार से जैनदर्शन को माने, वह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा!

लोक में धर्म की तथा दर्शन की मान्यता सामान्यरूप से तो सबके हैं, परन्तु... ऐसा सब कहते हैं न कि भाई! हम धर्म करते हैं, धर्म करते हैं, ऐसा सब कहते हैं। **परन्तु सर्वज्ञ के बिना यथार्थ स्वरूप का जानना नहीं हो सकता;...** पहली यह बात सिद्ध की। क्योंकि सर्वज्ञ इसका स्वभाव—जीव का स्वभाव सर्वज्ञ है। भगवान आत्मा का स्वभाव—स्व-भाव—अपना भाव, वह सर्वज्ञस्वभाव है। ज्ञ—स्वभाव कहो या सर्वज्ञस्वभाव कहो। ऐसा सर्वज्ञस्वभाव जिसने पर्याय में प्रगट किया, वह सर्वज्ञ है। जिसके मत में आत्मा सर्वज्ञस्वभावी माना नहीं, उसे पर्याय में सर्वज्ञपना कभी नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा! यह सर्वज्ञ ने ही यह जाना और देखा है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण सर्वज्ञ, ज्ञ—स्वभाव, पूर्ण स्वभाव। वह सर्वज्ञ तो इसमें शक्ति है-गुण है। भगवान आत्मा में सर्वज्ञ नाम का एक अनादि-अनन्त गुण है। ओहोहो! उस जीवस्वभाव में—आत्मस्वभाव में सर्वज्ञ नाम का एक उसका अनादि गुण है। आहाहा!

अभव्य को भी वह होता है, (परन्तु वह) प्रगट नहीं कर सकता। समझ में आया? क्योंकि आत्मा जो है, वह तो ज्ञ—स्वरूप ज्ञान का पिण्ड और वह ज्ञान भी पूर्ण, ऐसी उसकी शक्ति सर्वज्ञ स्वरूपी है। ऐसा जिसके धर्म में नहीं, उसके धर्म में सर्वज्ञ नहीं हो सकते। समझ में आया? आहाहा!

यह **सर्वज्ञ के बिना...** और उस सर्वज्ञदशा के बिना। क्योंकि तीन काल और तीन लोक का सत् है वह। तीन काल और तीन लोक, वह सत् है। उस सत् का जाननेवाला सर्वज्ञ न हो तो यह सत् त्रिकाल है, ऐसा देखा किसने? कहा किसने? आहाहा! यह सर्वज्ञ का भी विवाद सम्प्रदाय में। दिगम्बर में भी विवाद, वे रतनचन्दजी मुख्त्यार...

मुमुक्षु : सहारनपुरवाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहारनपुर, हाँ वे। रतनचन्दजी और नेमिचन्दजी।

आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि जिसे एक सेकेण्ड असंख्यवें भाग में, छोटे में छोटे काल में, जिसकी शक्ति का विकास तीन काल तीन लोक एक समय में प्रत्यक्ष जाने, ऐसा स्वरूप है। ऐसे तीन काल तीन लोक की पर्याय प्रगट है, ऐसा वह ज्ञानी जानता है। आहाहा! भूत और भविष्य की पर्याय वर्तमान में नहीं, परन्तु जो हो गयी और होगी (उसे वर्तमानवत्) ज्ञान में ज्ञात होती है। आहाहा! समझ में आया? जैसे मिट्टी में से घड़ा होगा, तब ऐसा जानते हैं, वैसे द्रव्य की (भूत-भविष्य की) पर्याय प्रगट दिखती है। उस प्रकार से यहाँ जानते हैं। शक्तिरूप से है, इसलिए जानते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सर्वज्ञस्वभाव! आहाहा!

जिसे... आहाहा! अरे! उसकी प्रतीति बैठी, उसे तो सर्वज्ञस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? यह प्रतीति में आना, वह कहीं साधारण बात नहीं है। अल्पज्ञ पर्याय में सर्वज्ञस्वभावी आत्मा प्रतीति में आना, वह पर्याय के आश्रय से नहीं आता, वह त्रिकाली गुण के आश्रय से आता है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा जैसा द्रव्य में सर्वज्ञ गुण था, गुण में सर्वज्ञशक्ति थी, वैसी प्रगट पर्याय सर्वज्ञ (हुई), उन तीनों में सर्वज्ञपना ऐसा हो गया। आहाहा! उसे आत्मा पूर्ण कहते हैं। समझ में आया? लो, और सर्वज्ञ आया सही न?

सर्वज्ञ ने जैनदर्शन ऐसा देखा है। सर्वज्ञ ने ऐसा जैनदर्शन कहा है। अज्ञानी कल्पित करते हैं अपनी दृष्टि से, वह सब अज्ञान और भ्रमणा और मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! अरे रे! यह बात कहाँ से कान में पड़े इसे भाग्य बिना! और इसे पुरुषार्थ बिना यह बात बैठे कैसे? लो, पण्डितजी! समकित उसके काल में होगा पुरुषार्थ बिना? यह पुरुषार्थ। अरर! यह सुननेवाले भी कैसे हाँ करते हैं सब। दिगम्बर दर्शन अर्थात् तो, ओहोहो! परमात्मा का कहा हुआ प्रत्यक्ष स्वरूप, वह दिगम्बर दर्शन। आहाहा! उसके अनुयायियों को उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! बापू! उसमें इसके बिना शरण कहाँ है? आहाहा!

यहाँ तो टीकाकार कहते हैं, **सर्वज्ञ के बिना यथार्थ स्वरूप का जानना नहीं हो सकता;...** तीन काल—तीन लोक जिसने जाने नहीं, उसे यथार्थस्वरूप ख्याल में किस प्रकार आवे? कल्पना से सब बातें करे। समझ में आया? ऐसा आत्मा होता है और ऐसा होता है, यह तो सब कल्पना। जिसे सर्वज्ञशक्ति का प्रगटपना हो गया है। आहाहा! एक समय में जिसे तीन काल—तीन लोक हस्तामलक की भाँति (अपनी) पर्याय जानते हुए ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान ने आत्मा कहा। उन भगवान ने आत्मा का जैनदर्शनपना यह (कहा)। सम्यक् अनुभव, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—तीन की एकता में रमता हो, बाह्य में जिसकी दशा दिगम्बर मूर्ति (हो), आहाहा! उसका बारदान भी ऐसा होता है। माल तो ऐसा हो (परन्तु बारदान भी ऐसा होता है)। यह सूतली के थैले। सूतली के थैले हों, उनमें केसर रहे? केसर तो डिब्बे में और बरनी में रहती है। उसका बारदान भी अलग प्रकार का होता है। इसी प्रकार जहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का माल प्रगट हुआ, वहाँ उसका बारदान, अट्ठाईस मूलगुण विकल्प और नग्नदशा, वह उसका बारदान होता है। आहाहा! यह भगवान ने कहा हुआ स्वरूप है। समझ में आया? ओहोहो!

सर्वज्ञ के बिना यथार्थ स्वरूप का जानना नहीं हो सकता; परन्तु छद्मस्थ प्राणी अपनी बुद्धि से अनेक स्वरूपों की कल्पना करके... अज्ञानी कल्पना से अनेक मार्ग करे। आहाहा! **अन्यथा स्वरूप स्थापित करके...** उल्टा स्वरूप जगत के समक्ष स्थापित करता है। आहाहा! जाना नहीं इसने (कि) त्रिकाली वस्तु क्या है। एक-एक आत्मा की

ऐसी सर्वज्ञशक्ति। ऐसे अनन्त आत्मायें भगवान हैं। आहाहा! 'सर्व जीव है सिद्ध सम।' आता है ? सर्व जीव है सिद्ध सम। किसमें ? आत्मसिद्धि में। श्रीमद् की आत्मसिद्धि में। 'सर्व जीव है सिद्ध सम, जो समझे वह होय।' आत्मसिद्धि वाँचा है या नहीं भाई ? नोट है तुम्हारे घर में ? नहीं तो यहाँ से ले जाना। भाई के पास होगी आत्मसिद्धि। अथवा अपने यहाँ योगसार में आता है। 'स्र्व जीव है ज्ञानसम—ज्ञानमय।' आहाहा! 'धारे समता भाव...' योगसार में (आता है)। प्रभु सब ज्ञानमय अनन्त हैं। वह आत्मा अर्थात् ज्ञान की मूर्ति, चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा। राग और पुण्य, वह स्वरूप आत्मा का नहीं। आहाहा! इससे ऐसा हुआ कि चैतन्यस्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप, ज्ञानस्वरूप वह पूर्ण ज्ञानस्वरूप। ऐसे भगवान आत्मा में से जिसने सर्वज्ञपर्याय प्रगट की है, और उसने जो देखा, कहा, वह यथार्थ मार्ग है। इसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने अपनी कल्पना से तर्क से खड़ा करके मार्ग कहा, वह सब मिथ्यामार्ग है। आहाहा! कहो, सेठ! आहाहा!

उनकी प्रवृत्ति करते हैं... अपनी कल्पना से मार्ग चलाकर प्रवृत्ति करते हैं। **और जिनमत सर्वज्ञ की परम्परा से प्रवर्तमान है,...** अज्ञानी अपनी कल्पना से प्रवर्तन करते हैं और जिनमत... '**दंसण मूलो धम्मो**' (का) अर्थ करते हैं। मत किया था न भाई पहला। दर्शन अर्थात् जिनमत, ऐसा अर्थ किया था स्वयं ने। इसलिए यहाँ लाये वापस। **जिनमत सर्वज्ञ की परम्परा से प्रवर्तमान है,...** सर्वज्ञ की परम्परा से प्रवर्तमान है। धारावाही राज (मार्ग प्रवर्तता है)। आहाहा! महाविदेह में सर्वज्ञ परमात्मा तो राज मार्ग कहते हैं। साक्षात् प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। अनन्त तीर्थंकरों ने यही मार्ग कहा है। वह यह जैनदर्शन, वह दिगम्बर दर्शन। आहाहा! इससे कम, अधिक और विपरीत कुछ भी यदि कहे और माने, वह जैनदर्शन नहीं, मिथ्यादर्शन है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है न!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। समन्तभद्राचार्य कहते हैं। 'न्यून नहीं, अधिक नहीं, विपरीत नहीं। जैसा सर्वज्ञ ने कहा, वैसा ही मानता है।' आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! यह अज्ञानी अपनी कल्पना से प्रवृत्ति करते हैं, तब **जिनमत सर्वज्ञ की परम्परा से प्रवर्तमान है,...** ऐसा कहते हैं। **इसलिए इसमें यथार्थ स्वरूप का प्ररूपण है।**

आहाहा! दिगम्बर मार्ग में यह यथार्थ स्वरूप का प्ररूपण है। नन्दलालजी! ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वज्ञ को सिद्ध किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध किया। अज्ञानियों ने कल्पना से सब मार्ग चलाये हैं। आहाहा! श्वेताम्बर ने भी कल्पना से सब खड़ा किया है। सब शास्त्र कल्पना से बनाये हैं, हों! ... यह कहीं भगवान के कहे हुए नहीं हैं, समकिती के भी कहे हुए नहीं हैं। आहाहा! गजब बात है! मार्ग ऐसा है, भाई! दूसरे को दुःख लगे, न लगे, स्वतन्त्र जीव है। आहाहा! मार्ग तो जो हो, वैसा प्रसिद्ध होगा न! दूसरे प्रकार से कैसे प्रसिद्ध होगा? सौभागमलजी! आहाहा! यहाँ तो सभी हैं। स्थानकवासी हैं, मन्दिरमार्गी हैं, दिगम्बर हैं—सभी हैं। यह रामजीभाई स्थानकवासी थे। स्वरूपचन्दभाई मन्दिरमार्गी, यह दिगम्बर, यह भी दिगम्बर, यह स्थानकवासी। यहाँ सब इकट्ठे हुए हैं। आहाहा! अरे! यह बात पक्षपात की नहीं, प्रभु! यह बात तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुई, अनुभव में आयी, ऐसी यह बात है। आहाहा! इसे कलेजे में-ज्ञान में बैठ जाये कि ओहोहो! मार्ग तो यही है। समझ में आया? ऐसा मार्ग सर्वज्ञ की परम्परा का यथार्थ स्वरूप का प्ररूपण।

वहाँ धर्म को निश्चय और व्यवहार—ऐसे दो प्रकार साधा है। अब निश्चय और व्यवहार, दो प्रकार से उसका कथन किया। **उसकी प्ररूपणा चार प्रकार से है...** धर्म के चार प्रकार। **एक प्रथम तो वस्तुस्वभाव,...** वस्तुस्वभाव, वह धर्म। 'वत्थु सहावो धम्मो।' पद्मनन्दि पंचविंशति में यह सब अधिकार आते हैं। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी यह सब ... आता है। पण्डितजी ने, पण्डित जयचन्द्रजी ने चारित्र से मिलान कर यहाँ लिखा है। यह कोई उनके घर का नहीं है। है, ऐसा उसका यहाँ... अनुसार। आहाहा!

एक तो प्रथम **वस्तुस्वभाव...** आत्मा का वस्तु का स्वभाव, वह धर्म। अर्थात्? कि आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि रहे हुए हैं, वह धर्म। और उसका आश्रय लेकर प्रगट हो पर्याय, वह धर्म। द्रव्य और गुण तो धर्म स्वभाव से भरपूर पदार्थ हैं। यह वस्तु के स्वभाव का आश्रय करके निमित्त और राग और पर्याय का आश्रय छोड़कर, वह त्रिकाल आनन्दस्वरूप वस्तु है, वस्तु का स्वभाव जो है, उसमें अनन्त गुण

हैं, जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति इत्यादि ऐसे स्व जिसके भाव हैं, स्व जिसका गुण है, स्व जिसका सत्त्व है, सत् ऐसा आत्मा, उसका यह सत्त्व है। आहाहा! ऐसे सत्त्व के आश्रय से जो दृष्टि करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है, उसका नाम धर्म। दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों एक... हो जाये। आहाहा! समझ में आया? इसमें बहुत समझना पड़े, हों! धीरुभाई! ऊपर-ऊपर से नहीं यह कुछ उसमें.... आ जाये। यह सब माँगते हैं कि यह आगम कब होगा? यह परमागम (मन्दिर)। मैंने कहा, भाई ... मकान का ... किया न! मकान सब... आहाहा! अब सब... गया लगता है। परमागम नहीं? ... ... आहाहा! यह भगवान की वाणी पधराई है। भगवान ने कहे हुए आगम, सन्तों ने कहे हुए शास्त्र, यह इसमें मूर्तिरूप से पधराये हैं। ४४८ पाटिया हैं। यह काम बाकी है। रात-दिन लिखा ही करते हैं। ... अपनी गुजराती भाषा क्या? छाँटना। आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा। **दूसरे उत्तम क्षमादिक दस प्रकार,...** धर्म। सम्यग्दर्शनसहित अन्दर में शान्ति, क्षमा आदि चारित्र के भेद हैं वे। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आदि वांचन हो गया है अपने। यह सब चारित्र के भेद हैं। दसों प्रकार चारित्र के प्रकार हैं। समझ में आया? यह उत्तम क्षमादि दस प्रकार। और **तीसरे, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप,...** तीसरा यह। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह धर्म। आत्मा के स्वरूप के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति होती है; चारित्र अर्थात् शान्ति, वह धर्म। एक वस्तुस्वभाव धर्म, क्षमा आदि दस लक्षण धर्म, तीसरा यह धर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। आहाहा! **चौथे, जीवों की रक्षारूप ऐसे चार प्रकार हैं।** सब जीवों की रक्षा अर्थात् किसी को नहीं मारना। उसमें स्वयं भी जीव आ गया।

मुमुक्षु : अपने को नहीं मारना तो दूसरे को नहीं मारने का भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे नहीं मारना अर्थात् हिंसा आत्मा की नहीं करना, अहिंसा प्रगट करना अर्थात् कि राग की उत्पत्ति नहीं करना, ऐसी जो आत्मा की अहिंसा दशा, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! यह दया धर्म, हों! पर की दया का भाव तो राग है। और वह भी पर की दया कर कहाँ सकता है? वह तो अपना राग करता है, परन्तु पर की दया पाल सकता है? पर की पर्याय रख सकता है कोई? तीन काल में नहीं। मात्र अपने

परिणाम होते हैं, दूसरे को नहीं मारने के। परन्तु वे परिणाम परलक्षी राग है, वह धर्म नहीं। आहाहा!

धर्म तो भगवान ने आत्मा में... कहा न पुरुषार्थसिद्धि उपाय में? प्रादुर्भाव, राग का प्रादुर्भाव न होना (वह अहिंसा है)। पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य (कृत)। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो काम किया है, गजब किया है! आहाहा! भगवान को अनुसरकर पथानुगामी थे सभी मुनि। केवली के मार्गानुसारी थे। आहाहा! उनके मार्ग में चलते-चलते केवलज्ञान लेनेवाले हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग जैनदर्शन दिगम्बर सिवाय अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया? दिगम्बर दर्शन, वह पंथ नहीं, पक्ष नहीं, वाड़ा नहीं; वह वस्तु का स्वभाव है। यह सब निवृत्ति लेकर थोड़ा करना पड़ेगा यह। भाई को कहते हैं।

मुमुक्षु : ठगों का क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अपने आप आते हैं उसके पास। आहाहा! ठगों की टोली। आहाहा!

मुमुक्षु : ठगों का कुछ कर नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? किसका करे? बापू! इस शरीर के रजकण की पर्याय भी बदलने को समर्थ नहीं। परद्रव्य के लिये प्रभु पंगु है। परद्रव्य की क्रिया करने के लिये भगवान आत्मा पंगु है। अपनी क्रिया करने के लिये पुरुषार्थ का पिण्ड है स्वयं। आहाहा! अकेला पुरुषार्थ। और वह भी पुरुषार्थ तो पर्याय में अनन्तवें भाग है। क्योंकि स्वयं ही पुरुषार्थ का पिण्ड है। वीर्य का पिण्ड है वह। अनन्त चतुष्टय है न शक्ति में? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। तो अनन्त वीर्य का तो पिण्ड है वह। उसमें से यह मोक्ष का पुरुषार्थ तो अनन्तवें भाग निकलता है। आहाहा! समझ में आया? और इस धर्म में तो पुरुषार्थ से ही धर्म होता है। लक्ष्मी आदि मिलना, वह तो पूर्व का पुण्य हो तो मिले। ... लाख पुरुषार्थ करे और मर जाये नहीं! आहाहा!

कहते हैं, **ऐसे चार प्रकार हैं। वहाँ निश्चय से सिद्ध किया जाये, तब तो सब में एक ही प्रकार है।** चारों एक ही प्रकार है। वस्तु का स्वभाव पर्याय में प्रगट हुआ, वह

दस प्रकार का धर्म, वह सम्यग्दर्शन (-ज्ञान-) चारित्र धर्म, जीव को राग की उत्पत्ति न हुई और अहिंसा की उत्पत्ति हुई, वह भी यही है। यह चारों ही एक ही प्रकार है। आहाहा! यह पण्डित कितना मिलान करते हैं, देखो न! आहाहा! यह गृहस्थाश्रम में हैं, हों! यह त्यागी नहीं थे यह कहीं। वस्तुस्थिति है, वह तो यथार्थरूप से ग्रन्थों में से... आहाहा! उसे निवृत्ति बहुत है न! निवृत्ति में यह सब हुआ है या प्रवृत्ति करते-करते यह सब हुआ है ? आहाहा!

इसलिए वस्तुस्वभाव का तात्पर्य तो जीव नामक वस्तु की परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है... लो! देखा! वस्तु की व्याख्या करते हैं। **वस्तुस्वभाव का तात्पर्य तो जीव नामक वस्तु...** उसका **परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है...** वह वस्तुस्वभाव। **और वह चेतना सर्व विकारों से रहित शुद्ध-स्वभावरूप परिणमित हो, वही जीव का धर्म है...** उसे धर्म कहा। वस्तु सहावो धर्म। **तथा उत्तम क्षमादिक दश प्रकार कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा क्रोधादि कषायरूप न होकर अपने स्वभाव में स्थिर हो, वही धर्म है,...** आहाहा! **यह भी शुद्ध चेतनारूप ही है।** दसलक्षण धर्म, वह शुद्ध चेतनारूप का परिणमन। वस्तु का स्वभाव, वह भी शुद्ध चेतना दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणमन। दूसरे दो बोल कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ५, सोमवार, दिनांक १७-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-३

यह दर्शनपाहुड़। अष्टपाहुड़ में दर्शनपाहुड़। दूसरी गाथा का अर्थ चलता है न! **वहाँ धर्म को निश्चय और व्यवहार—ऐसे दो प्रकार से साधा है।** धर्म। व्यवहार निमित्तरूप है, निश्चय यथार्थरूप है। **उसकी प्ररूपणा चार प्रकार से है...** कल आ गया है। वस्तु का स्वभाव, उत्तम क्षमादि, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम और जीव की रक्षा, **ऐसे चार प्रकार हैं। वहाँ निश्चय से सिद्ध किया जाये, तब तो सबमें एक ही प्रकार है,...** चारों एक ही प्रकार से सिद्ध होते हैं। **इसलिए वस्तुस्वभाव का तात्पर्य...** अब पहले बोल की व्याख्या करते हैं। **वस्तुस्वभाव का तात्पर्य तो जीव नामक वस्तु की परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है...** लो! क्या कहा? जीव नाम का पदार्थ, उसके परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम। वे ज्ञान परिणाम, वह चेतना। आत्मा की जानन-देखन की चेतना, उसका शुद्ध परिणमन होना, वह धर्म है। समझ में आया? वस्तु का स्वभाव जो शुद्ध चैतन्य है, उसका श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति निश्चय, हों! यह निश्चय ज्ञान, दर्शन का, शुद्ध चैतन्य का परिणमन होना, वह वस्तु का स्वभाव धर्म कहा जाता है। ... समझे?

मुमुक्षु : वस्तु स्वभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वस्तुस्वभाव का अर्थ क्या? जानन-देखन, ऐसा जो भाव, जानने-देखने का परिणमन होना, शुद्ध परिणमन होना, वह चेतना है। यह चेतना, वह धर्म है।

वह चेतना सर्व विकारों से रहित... देखो! जानन-देखन चेतना का भाव, वह सर्व शुभादि विकाररहित **शुद्ध-स्वभावरूप परिणमित हो, वह जीव का धर्म है...** वह वस्तु का स्वभाव। **शुद्ध-स्वभावरूप परिणमित...** आनन्द और ज्ञान और शान्ति आदि स्वभाव के आश्रय से परिणमन हो, उस चेतना के परिणाम को धर्म कहा जाता है। यह धर्म की व्याख्या।

तथा उत्तम क्षमादिक दस प्रकार कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा क्रोधादि

कषायरूप न होकर... क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, उसरूप नहीं होकर **अपने स्वभाव में स्थिर हो...** चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव में स्थिर रहे, **वही धर्म है,...** समझ में आया? आहाहा! क्रोध, मान, माया, लोभ का अर्थ पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव से रहित **अपने स्वभाव में स्थिर हो...** चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्दघन में स्थिर रहना, वह धर्म है। लो, यह धर्म। आहाहा! **वह भी शुद्ध चेतनारूप ही हुआ।** उसके साथ मिलान किया ऊपर के साथ। जैसे यह ज्ञान, दर्शन और चारित्र का परिणमन कहा। ज्ञान-दर्शन की पर्याय का परिणमन, उसे चारित्र कहा, उसे धर्म कहा। इसी तरह क्रोधादि रहित आत्मा के स्वभाव में स्थिरता, वह भी शुद्धचेतना परिणाम ही है। समझ में आया? व्याख्या तो बराबर की है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है। **वह भी शुद्ध चेतनारूप ही हुआ।**

अब तीसरा। **दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने का तात्पर्य यह है कि तीनों एक ज्ञानचेतना के ही परिणाम हैं,...** क्या कहते हैं यह? सम्यग्दर्शन, वह ज्ञानस्वभाव का ही परिणमन है। सम्यग्ज्ञान, वह भी ज्ञानस्वभाव का ही परिणमन है और सम्यक्चारित्र, वह भी ज्ञानस्वभाव का ही परिणमन है। है? **ज्ञानचेतना के ही परिणाम हैं,...** कौन? दर्शन, ज्ञान और चारित्र। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वह त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से जो उत्पन्न होते हैं, वे तीनों ज्ञानचेतना हैं। उसमें व्यवहार राग का चेतना, वह है नहीं। आहाहा! ज्ञानचेतना के ही परिणाम हैं। सम्यग्दर्शन निश्चय, वह भी ज्ञायकस्वभाव आत्मा के सन्मुख की जो प्रतीति, वह ज्ञान के ही परिणाम हैं, अर्थात् आत्मा के ही परिणाम हैं। वे कोई राग के परिणाम नहीं। इसी तरह सम्यग्ज्ञान पर्याय, हों! वह भी आत्मा जो वस्तु है, उसका जो ज्ञान, उसका जो आत्मज्ञान, वह भी आत्मा के ही परिणाम हैं, अर्थात् कि वे ज्ञान के ही परिणाम हैं, अर्थात् कि वह ज्ञान की ही चेतना है। समझ में आया?

इसी प्रकार चारित्र। चारित्र, वह स्वरूप की अन्दर स्थिरता, वह भी ज्ञान की ही स्थिति है, आत्मा के स्वभाव की ही स्थिति है और वह ज्ञानचेतना है। समझ में आया? तीन बोल हुए। **वही ज्ञानस्वभावरूप धर्म है...** आत्मा का ज्ञायकभाव त्रिकाल, उसमें लीनता होना, वह ज्ञानस्वभावरूप परिणाम है। वह कोई रागभावरूप परिणाम नहीं। धीरुभाई गये? गये। कहते थे। समझ में आया? **यह भी शुद्ध चेतनारूप ही धर्म है।** आहाहा!

अब जीवों की रक्षा। चौथा बोल। जीवों की रक्षा का अर्थ? **जीव क्रोधादि कषायों के वश होकर...** राग के, द्वेष के वश होकर हिंसा तो होती है, अपने स्वरूप की जो हिंसा होती है। कहो, समझ में आया? **कषायों के वश होकर...** राग के वश होकर, द्वेष के वश होकर अपनी पर्याय शान्ति और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्ध पर्याय के विनाशरूप (जितनी) उसमें राग की उत्पत्ति (होती है), उतनी हिंसा होती है। आहाहा! मार्ग, वह मार्ग है न! भगवान की भक्ति में राग होता है, कहते हैं, उतनी आत्मा की हिंसा होती है, ऐसा कहते हैं। ऐ... पण्डितजी! हो भले, परन्तु है, वह स्वरूप की शान्ति की हिंसा होती है। अकषायभाव ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, उसमें इतना राग, वह हिंसा है, वह जीव की दया नहीं वहाँ। आहाहा! अपने जीव की दया नहीं, तथा उसमें पर जीव की दया नहीं, राग हुआ उसमें। आहाहा! समझ में आया?

क्रोध, मान, माया, लोभ। द्वेष के दो भाग—क्रोध और मान, राग के दो भाग—माया और लोभ। अर्थात् जितने अंश में राग और द्वेष में वश होता है, उतने अंश में... **अपनी या पर की पर्याय के विनाशरूप मरण तथा दुःख संक्लेश परिणाम न करे...** देखो! राग के परिणाम, वे दुःख परिणाम हैं। आहाहा! यह तो (समयसार) ७२ गाथा में बहुत विस्तार से आ गया था। वहाँ (संवत्) २०१३ के वर्ष में। क्या कहलाता है? ईसरी। ७२ गाथा। राग का भाग, वह दुःखरूप है, आस्रव है। शुभ और अशुभराग दोनों आस्रव हैं, वे दुःखरूप हैं। उनसे रहित आत्मा के स्वभाव में लीनता होना, वह सुखरूप है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ बहुत चला था। सब थे वहाँ। सेठ भी थे। परन्तु वहाँ कहाँ सेठ को अन्दर जानने की दरकार थी? क्या कहा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बताया था वहाँ, यह व्याख्या ही पहले कही। तुम ऐसा भी बोले थे कि यह बात तो सच्ची लगती है। परन्तु निमित्त... निमित्त का अर्थ क्या हुआ? यह चर्चा चली थी।

भगवान के श्रद्धा, ज्ञान और उनकी पूजा, भक्ति का भाव, वह राग है, वह त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से होनेवाली श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति में निमित्त कहलाता है, परन्तु उस निमित्त से यहाँ होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो अपनी और पर की

पर्याय के विनाशरूप मरण, वह हिंसा और दु:ख संक्लेश परिणाम, वह हिंसा। उसे न करे, वह रक्षा। आहाहा! पहली तो अपनी पर्याय की रक्षा करनी है न! राग न करना, वह जीव की पहली अपनी पर्याय की रक्षा है। आहाहा! पुरुषार्थसिद्धि में आया है न! राग का प्रादुर्भाव, वह हिंसा। पुरुषार्थसिद्धि (उपाय), अमृतचन्द्राचार्य (कृत), जितने अंश में राग, उतने अंश में हिंसा। जितने अंश में आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम (हों), वह अहिंसा और अबन्ध। आहाहा! लोगों को व्यवहार ऐसा लगा गले। व्यवहार होता है, निमित्त होता है, परन्तु वह चीज़ कोई स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति को मदद करे, अर्थात् कि उससे यहाँ निश्चय हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अपनी पर्याय का... और पर की पर्याय का मृत्यु होने का हो तो होती है, तब वह तो निमित्त कहलाता है। परन्तु पहले स्वयं ने राग किया मारने का या बचाने का... आहाहा! जीव को बचाने का रागभाव हुआ, वहाँ हिंसा हुई। गजब बात है! आहाहा! शान्ति के प्राण वहाँ घात होते हैं। आहाहा!

ऐसा अपना स्वभाव ही धर्म है। चारों बोल। **ऐसा अपना स्वभाव ही धर्म है।** चाहे तो... समझ में आया? वस्तु का स्वभाव शुद्धरूप परिणमे, वह धर्म। दर्शन, ज्ञान और चारित्र के विकाररहित शुद्धपरिणाम, वह धर्म और दस प्रकार का समाधि भाव, वह शुद्धचेतना परिणाम भी धर्म और अपने में राग की उत्पत्ति न हो, अहिंसा आत्मा में प्रगट हो, वह धर्म। इन चारों में शुद्धचेतना के ही परिणाम हैं। भिन्न-भिन्न रीति से बात की है। आहाहा! भारी कठिन लगे लोगों को। निमित्त से होता है, व्यवहार से होता है, व्यवहार में कुछ निश्चय का अंश है—ऐसी उस समय बात चलती थी। समझ में आया? व्यवहार में निश्चय का अंश है ही नहीं। निश्चय में निश्चय है, व्यवहार में व्यवहार है। दोनों भिन्न चीज़ है। भिन्न चीज़ है, लो। आहाहा! **इस प्रकार शुद्ध द्रव्यार्थिकरूप...** यह निश्चयनय का—द्रव्यार्थिकनय का कथन है।

मुमुक्षु : द्रव्य की पर्याय को द्रव्यार्थिक क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य की पर्याय अभेद है न, इस अपेक्षा से। द्रव्य की पर्याय अभेद है, इस अपेक्षा से। यह पर्याय अभेद हुई न? इस अपेक्षा से द्रव्यार्थिकनय कहा। व्यवहार

है, वह पर्यायार्थिकनय है, ऐसा। पर्याय जो शुद्ध होकर द्रव्य के साथ अभेद हुई, इस अपेक्षा से द्रव्यार्थिकनय, शुद्ध की पर्याय को द्रव्यार्थिकनय का विषय कहकर कहा है।

मुमुक्षु : पर्याय को द्रव्यार्थिकनय का विषय (कहा) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अभेद हुई इसलिए। आहाहा! इसलिए कहते हैं न, पर्यायार्थिक अर्थात् भेदरूप व्यवहार। व्यवहार पर्याय-आश्रित, वह भेदरूप है और निश्चय द्रव्य के आश्रय से है, वह अभेदरूप है। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञायकभाव चैतन्यबिम्ब, उसके आश्रय से हुए निर्मल परिणाम, वह निश्चयनय का, द्रव्यार्थिकनय का विषय गिनकर कहा है कि जिसमें द्रव्य का आश्रय होकर द्रव्य में पर्याय अभेद, अभेद अथवा सन्मुख होती है। समझ में आया?

इस प्रकार शुद्ध द्रव्यार्थिकरूप निश्चयनय से साधा हुआ धर्म एक ही प्रकार है। धर्म तो एक ही प्रकार से है। चार प्रकार से वर्णन किया है। वह धर्म की पर्याय, द्रव्य की अपेक्षा से तो व्यवहार हो जाती है, परन्तु यहाँ तो व्यवहार से भिन्न बतलाकर निश्चय परिणाम को निश्चय कहना है। वह व्यवहार बतलाना है न जरा। रागादि भेदरूप भाव है, उसकी अपेक्षा से इसे (-शुद्ध परिणाम को) निश्चय कहकर शुद्धद्रव्यार्थिक कहा है। आहाहा! यह अपेक्षा है। देखो न! कितना स्पष्ट किया है! पण्डित जयचन्द्रजी पण्डित हैं। समझ में आया? शान्ति से आग्रह छोड़कर समझे तो समझ में आये, ऐसा है। पूर्व का आग्रह रखकर समझेगा तो नहीं होगा वहाँ। व्यवहार से ऐसा होता है, निमित्त से ऐसा होता है, ढींकने से ऐसा होता है। व्यवहार, व्यवहार के स्थान में है। निमित्त, निमित्त के घर में—स्थान में है। निश्चय, निश्चय के स्थान में है। दोनों भिन्न हैं और दोनों विरुद्ध है। समझ में आया? निश्चयनय का विषय और व्यवहारनय का विषय दोनों विरोध है। आहाहा! ऐसा (वाँचन) करने को निवृत्त कौन हो? धन्धे के कारण फुरसत न हो, उसमें दो घण्टे आवे, उसमें कुछ स्थूल बातें करे, ठीक पड़े। यह चले।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... हो गया जाओ। मन्दिर में दर्शन कर आवे। फिर खेलो ताश। गंजीपो कहते हैं न? ताश।

मुमुक्षु : अपने पाना कहते हैं, वे ताश कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ताश—पाना। ...इन्दौर। हम निकले थे सामने... सब इकट्ठे हों। ... अरे! भगवान! ऐसा मनुष्यदेह मिला, उसमें ६०-६० वर्ष की उम्र हो गयी। उसमें ऐसा काम... आहाहा! अरे! जिन्दगी का अन्त आया देह छूटने का, उसमें भी इसके लिये—आत्मा के लिये समय नहीं। समझ में आया? ऐसा समय कब मिले? उसमें ऐसे खेल और खेल में काल व्यतीत करना पाप में और दाँत और मजाक निकाले। टीपे न पाना में टीपे। बादशाह आया मेरे, इक्का आया। आहाहा! हारे तो शिथिल पड़ जाये।

मुमुक्षु : उसमें कुछ लेना-देना होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ लेना-देना नहीं। आहाहा! अरेरे! यहाँ तो लेने-देने की बातें हैं। आत्मा में शान्ति साधना और अशान्ति को छोड़ना—यह धन्धा आत्मा का है। होवे अशान्ति, व्यवहार होवे सही, परन्तु निश्चय में तो उसे छोड़नेयोग्य है, दुःखरूप है। उसे निमित्त देखकर साधन भी कहे, परन्तु वह साधन यथार्थ में नहीं है। आहाहा! सब बातें (कठिन)।

इस प्रकार व्यवहारनय... यह व्यवहारनय से अधिकार है। **पर्यायाश्रित है, इसलिए भेदरूप है...** देखो! एक अंश है न! पर्याय, वह भी भेद है। त्रिकाली द्रव्य का एक अंश पर्याय, वह भी भेद है। भेद की दृष्टि से वह सब व्यवहार है। आहाहा! **व्यवहारनय से विचार करे तो जीव के पर्यायरूप परिणाम अनेक प्रकार हैं...** उसमें एक ही प्रकार था निश्चय में। चारों भेद कहे थे, परन्तु शुद्ध चेतनास्वरूप का परिणमन एक ही रूप धर्म है। विकार का परिणमन, वह धर्म नहीं। वह एक ही रूप—प्रकार था। व्यवहार में अनेक प्रकार से ... आहाहा! व्यवहार **पर्यायरूप परिणाम अनेक प्रकार हैं, इसलिए धर्म का भी अनेक प्रकार से वर्णन किया है।** शुभ का अनेक प्रकार का वर्णन आवे। शुभ को भी धर्म भी कहा जाये, (परन्तु) व्यवहार धर्म है, वास्तविक धर्म नहीं। आहाहा! यह निश्चय धर्म जहाँ हो, वहाँ ऐसा व्यवहार पुण्य के परिणाम व्यवहार धर्म हों, उतना ज्ञान कराने के लिये कथन है। आहाहा! समझ में आया?

धर्म का भी अनेक प्रकार से वर्णन किया है। वहाँ... अब सिद्धान्त कहते हैं।

प्रयोजनवश एकदेश का सर्वदेश से कथन किया जाये, सो व्यवहार है,... एक अंश को पूर्ण कहना, वह व्यवहार। जैसे कि निश्चय आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान का आंशिक अनुभव हुआ, उस अनुभव को अनुभव पूर्ण कहना... पूर्ण अनुभव तो चौदहवें के अन्त में होता है... समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पूर्ण भाव तो चौदहवें के अन्त में (होता है), तथापि छठवें में भी मोक्षमार्ग कहना, वह व्यवहार है। एक अंश को पूर्ण कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! यह बाद में भी आता है। छठवीं गाथा में आयेगा। सूत्र (सूत्रपाहुड़) की छठवीं गाथा में। आठ बोल आते हैं धर्म के। सूत्र (पाहुड़) की छठी गाथा में। ... यह अपने वाँचन हो गया है, यह तो फिर से लिया (कि) ताजा हो।

मुमुक्षु : वाँचन हो गया है...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आहाहा!

एकदेश का सर्वदेश से कथन किया जाये, सो व्यवहार है,... वहाँ है न उसमें। कितना पृष्ठ? ४५? **इसमें भी जब तक अनुभव की साक्षात् पूर्णता नहीं हो, तब तक एकदेशरूप होता है, उसको कथंचित् सर्वदेशरूप कहकर कहना व्यवहार है...** ४५ पृष्ठ पर है। इस नये में, हों! पुराने में नहीं। पुराने में नहीं, कहा न! सुनते नहीं। नये में है। इसका बराबर ध्यान नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नीचे से ऊपर का। नीचे के पेरेग्राफ से ऊपर का। **निश्चय मोक्षमार्ग है, इसमें भी जब तक अनुभव की साक्षात् पूर्णता नहीं हो, तब तक एकदेशरूप होता है, उसको कथंचित् सर्वदेशरूप कहकर कहना व्यवहार है...** यह आया था। उसमें यद्यपि अपने आया था सूत्रपाहुड़ में। आहाहा! व्यवहार को भी समकित कहना, व्यवहार को ज्ञान कहना, ऐसा कहते हैं, भाई! वास्तव में तो अंश है, एक पर्याय का भाग। एक नय का अंश है न वह? उसे समकित कहना, वह सब व्यवहार है। आहाहा! व्यवहार समकित अर्थात् समकित है नहीं व्यवहार। समकित तो निश्चय एक ही प्रकार का समकित है। परन्तु उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग और वह भाव होता है, और इसका (—निश्चय का) आरोप उसे देते हैं। वह समकित की पर्याय नहीं; है तो

राग की। आहाहा! विपरीत है। चारित्रगुण की भी विपरीत है। उसे समकित कहना, वह असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! कठिन मार्ग वीतराग का। आहाहा!

यहाँ तो '**दंसण मूलो धम्मो**' जो है न, उसका यह सब व्याख्यान चलता है। समझ में आया? '**दंसण मूलो धम्मो**' जैनदर्शन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मूर्ति। अर्थात् मुनि निर्ग्रन्थ लिंग और निर्ग्रन्थ भाव, वह जैनदर्शन, वह जैनदर्शन की मूर्ति। आहाहा! वह '**दंसण मूलो धम्मो**' यह। निश्चय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणमनवाला मुनि, वह निश्चय जो वस्तु है, वह धर्म का मूल है। और फिर कहते हैं अभी कि सम्यग्दर्शन, वह चारित्र का मूल है। लो, उसका ... समझ में आया? पुस्तक तो है न तुम्हारे घर में? ... आहाहा! यह तो जिसे गरज हो कि मेरा हित कैसे हो? मेरा कार्य कैसे हो? मुझे मेरा कार्य कैसे हो? उसकी जिसे गरज हो, उसकी यह बात है। दुनिया में दिखाव, दुनिया में प्रसिद्धि, दुनिया में हम बड़े... आहाहा! उसमें सब काल जाता है भटकने का। आहाहा!

उसमें नहीं आता? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है, समकित। समकित-सन्मुख मिथ्यादृष्टि। आता है न! समकित-सन्मुख मिथ्यादृष्टि। वहाँ, यह तो कार्य मेरा है, ऐसा आता है। आता है? शुरुआत में... शुरुआत में आता है। मेरे हित की बात है। है इसमें?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। ... है न, देखो! यही शब्द आया। क्योंकि इसमें तो मेरा ही प्रयोजन गिना जाता है। क्या कहे?

मुमुक्षु : बाह्य में व्यवहार में भी मेरा प्रयोजन?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें धूल भी प्रयोजन नहीं, वह दुःख है।

'**कोई मन्दकषाय आदिक का कारण पाकर ज्ञानावरणीय आदि कर्म का क्षयोपशम हुआ...**' उघाड़। **तत्त्वविचार करने की शक्ति प्रगट हुई है और मोह मन्द हुआ, इससे तत्त्वविचार में उद्यमी हुआ।** देखा! आहाहा! तत्त्व के विचार में प्रयत्नवान हुआ है। दो बातें कीं। एक तो राग मन्द है और ज्ञान का क्षयोपशम है, उस प्रकार के

विचार करने का। आहाहा! और **मोह मन्द हुआ, इसलिए तत्त्वविचार में उद्यमी हुआ है। बाह्य निमित्त देव-गुरु-शास्त्र आदि का होने पर उनके द्वारा सत्य उपदेश का लाभ हुआ। वहाँ अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्ग के देव-गुरु-धर्म आदिक के, जीवादि तत्त्वों के, स्व-पर के व अपने को अहितकारी-तथा हितकारी भावों के इत्यादि, उपदेश से सावधान होकर ऐसा विचार किया कि अहो! मुझे तो उस बात की खबर ही नहीं।** ऐसा का ऐसा बीड़ी में गँवाया, ऐसा कहते हैं। जिसे जो हो, वह। यह तो बड़े सेठ की बात... आहाहा!

मुमुक्षु : इन्होंने उसमें गँवाया, हमने वकालत में गँवाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सामने सेठ हो, उसे कहा जाये न! आहाहा! अरे! मुझे तो इस बात की खबर ही नहीं। मैं भ्रम से भूलकर पर्याय में तन्मय हुआ। देह अच्छा दिखे न, वस्त्र-बस्त्र पहने और साफ-सुथरे। मर गया ऐसा का ऐसा। आहाहा!

मैं भ्रम से भूलकर प्राप्त पर्याय में तन्मय हुआ हूँ। इस पर्याय की तो थोड़े काल ही स्थिति है। थोड़े काल की है। आहाहा! **यहाँ मुझे सर्व निमित्त मिले हैं, इसलिए मुझे इस बात का बराबर निर्णय करना चाहिए। क्योंकि इसमें तो मेरा ही प्रयोजन भासित होता है।** स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! **ऐसा विचाकर जो उपदेश सुना, उसका निर्धार करने का उद्यम किया।** आहाहा! बहुत अच्छा लिखा है। मेरा काम है इसमें तो बापू! तुझे क्या काम है परन्तु दूसरा? दूसरे का काम कर कहाँ कर सकता है? दूसरे काम के अधिकारी। दूसरे का काम अर्थात् उसकी पर्याय। वह पर्याय बिना का है कि तू उसकी पर्याय करे? आहाहा! ऐसी बात है, भाई! और राग का काम, वह तो तूने अनन्त काल से किया है। वह तो उसके कारण भ्रम में भूल गया अनन्त बार। कहो, सेठ! यह लड़के और स्त्री के लिये मर गया ऐसे का ऐसा। पूरे दिन ... करके। आहाहा! यह ठगों की टोली है, इसका क्या करना? कहे। भाई ने कहा न, तुम्हारे भाई ने, छोटे भाई ने। ठगों की टोली है, उसका क्या करना? वह तो उसके कारण से रहे, तब तेरे कारण से क्या है? धूल? थे कहाँ तेरे? वह तो भटकते-भटकते यहाँ आये। रजकण भटकते यहाँ परिणमे। तुझे और उन्हें सम्बन्ध क्या है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

व्यवहारनय से विचार करें तो जीव के पर्यायरूप परिणाम अनेक प्रकार हैं, इसलिए धर्म का भी अनेक प्रकार से वर्णन किया है। उसमें भी आया। चरणानुयोग में नहीं ? चरणानुयोग में। आठवें अध्याय में मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आया है कि वीतराग धर्म तो है वह है, एक ही है। परन्तु बाह्य उसके अनेक प्रकार के निमित्त... उसमें आता है। चार अनुयोग में ... एक में चरणानुयोग में। समझ में आया ? है ? .... **चरणानुयोग में जैसे जीवों को अपने बुद्धिगोचर धर्म का आचरण हो, वैसा उपदेश दिया है।** यह व्यवहार। **अब धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है, वही है।** बहुत ही... **परन्तु उसके साधनादिक उपचार से धर्म कहे जाते हैं।** यह व्यवहार। आहाहा! **वहाँ व्यवहारनय की प्रधानता से अनेक प्रकाररूप उपचार धर्म के भेदादि का उसमें निरूपण किया जाता है।** यह वह बात। आहाहा! गजब परन्तु कहाँ का कहाँ आ जाता है! बहुत बात....

इसलिए धर्म का भी अनेक प्रकार से वर्णन किया है। वहाँ (१) प्रयोजनवश एकदेश का सर्वदेश से कथन किया जाये, सो व्यवहार है... यह निमित्त का जो कथन होता है, वह सब एकदेश है—अंश। वह व्यवहार का अंश है न ? उसे पूरा कहना कि यह समकित है, यह ज्ञान है, यह चारित्र है, यह अनुभव पूर्ण है, वह सब व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया ? उन सब व्यापारी को.... वकीलों को तो बुद्धि होती है, परन्तु व्यापारियों को ऐसा सब विचारने में...

मुमुक्षु : व्यापारी को बुद्धि नहीं होती... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी यह बात करे। याद आया था। उसकी यह बातें...

मुमुक्षु : बुद्धि तो सब लेकर आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा, क्षयोपशम तो है भाई! अब यहाँ तत्त्व के विचार कर उद्यम करना। इसलिए व्यापारी कहे कि अपने को कुछ बहुत... नहीं पड़ती। वह की वह बातें करना व्यापार में। विद्यालय में मास्टर नहीं ? पंतु। कैसा ? पंतु। भाई कहते थे न ? वह का वह सिखलाना, वह के वह अंक। कोई तर्क नये अन्दर से आवे, यह नहीं। कल याद आया था। वह की वह बातें और ... दूसरा कुछ नहीं। आहाहा!

यहाँ तो वीतराग का मार्ग तर्क से इसे बैठना चाहिए। ऐसे का ऐसे बैठे सुनकर,

ऐसा नहीं। न्याय से इसे बैठना चाहिए। समझ में आया? इसके भाव में इसे आना चाहिए कि ओहो! वस्तु (की) तो ऐसी स्थिति है। वहाँ कहा है न। ... जहाँ तक भगवान कहते हैं, वह बात अपने को न बैठे, वहाँ तक उसका विचार करके निर्णय करे। ऐसा भी कहा है। बहुत खोला है वहाँ। यह तो ... सातवाँ अध्ययन (अधिकार) तो वहाँ लिख लिया था, (संवत्) १९८४ में, ८४ के वर्ष। क्योंकि पुस्तक रखते नहीं। मस्तिष्क में ऐसा नहीं था कि यह... बहुत लोग बेचारे देते थे। यह सच्चा लिखा... बापू! बहुत यथार्थ तत्त्व है यह। जीवणलाल ने लिख दिया था। बहुत बात परन्तु ओहोहो! निश्चय और व्यवहार की सन्धि समझे बिना... निश्चयाभासी और व्यवहाराभासी का कथन है, बहुत सरस।

यहाँ कहते हैं, **अन्य वस्तु में अन्य का आरोपण अन्य के निमित्त से और प्रयोजनवश किया जाये वह भी व्यवहार है,...** घड़े में जैसे यह घी का घड़ा है। **वहाँ वस्तुस्वभाव कहने का तात्पर्य तो...** आ गया यह। **प्रयोजनवश किया जाये, वह भी व्यवहार है, वहाँ वस्तुस्वभाव कहने का तात्पर्य तो निर्विकार चेतना के शुद्धपरिणाम के साधनरूप...** यह वस्तुस्वभाव का व्यवहार कहते हैं वापस। उस वस्तुस्वभाव का चेतना परिणाम जो कहा था न? उसमें भाई! उसका—साधक का व्यवहार कहते हैं। आहाहा! चैतन्य परिणाम, भगवान आत्मा के आश्रय से जो शुद्ध चैतन्य परिणाम (हुए) वे तो निश्चय-यथार्थ, परन्तु उसमें निमित्तरूप अनेक प्रकार के समिति, गुप्ति, व्यवहार आदि के भाव हों साधकरूप, साधक अर्थात् व्यवहार साधनरूप, हों! निश्चय साधक नहीं। आहाहा! वापस कोई ऐसा कोई कहे कि देखो, (व्यवहार) वह साधक है और वह निश्चय साध्य है। यह पंचास्तिकाय में आता है, व्यवहार साधन-साध्य। वह तो व्यवहार साधन का अर्थ—निश्चय के अपने स्वरूप का साधन करता है, वहाँ आगे उस प्रकार की विकल्प की दशा ऐसी ही हो तो वह पात्र होगा, ऐसा बतलाने के लिये उसे साधक कहा है। ... व्यवहारनय से साधक कहा है। खोटे नय से साधक कहा है। आहाहा! ऐसा है भाई! वस्तु तो यह है। आहाहा!

(३) मन्दकषायरूप शुभ परिणाम है... लो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के स्वभाव के आश्रय से हुए परिणाम के काल में राग की मन्दतारूपी मन्द कषायरूप परिणाम होते

हैं। आहाहा! गजब! पण्डितजी ने भी कितना स्पष्टीकरण किया है, देखो! गृहस्थाश्रम में (रहकर)। बहुत... इसमें '**दंसण मूलो धम्मो**' का अर्थ कहा...

मुमुक्षु : बहुत दिमाग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत दिमाग। वस्तुस्थिति वर्णन की है। आहाहा! जैनदर्शन। जैनदर्शन अर्थात् जैनमार्ग अर्थात् मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग की... अभ्यन्तर और बाह्य। आहाहा! ऐसा... दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं निश्चय और व्यवहार एक भी सच्ची नहीं होती। आहाहा! परन्तु अब क्या हो? उसे ऐसा हो जाये कि यह... है। ...नहीं, बापू! यह तो वस्तु का स्वभाव है, ऐसा स्वरूप ही है। चैतन्य को अवलम्बकर दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, उसे अभ्यन्तर त्याग हो गया सब और बाह्य त्याग नग्नपना आदि... आहाहा! वह वास्तव में यह दर्शन है। और धर्म का मूल वह है। आहाहा! समकित तो धर्म का मूल है ... भूमिका में। यह धर्म का मूल ऐसी चीज़ है। वीतराग का मोक्षमार्ग, उसे साधनेवाले तीन (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र), वह जैनदर्शन है। आहाहा! जैनदर्शन कहीं होना चाहिए न?

कल कहा नहीं था रात्रि में थोड़ा? (समयसार) १५वीं गाथा का। जैनशासन और जैनदर्शन दो चीज़... १५वीं गाथा में ऐसा कहा।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

जिनशासन का सम्यग्दर्शन-ज्ञान। क्या कहा? रात्रि में कहा था। नहीं थे? तुम रात्रि में नहीं थे? रात्रि में नहीं आते। रात्रि में ऐसा कहा था कि एक ओर परमात्मा समयसार (में) ऐसा कहते हैं कि आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, सामान्य, एकरूप ... जाने, देखे, अनुभव करे, वह जैनशासन को अनुभव करता है। वहाँ चारित्र इकट्ठा नहीं। आंशिक स्थिरता है, वह अलग बात है। वहाँ ज्ञान की, दर्शन की, स्थिरता के अंशों, इतनी बात है, बस। इस जैनदर्शन में चारित्र की मुख्यता से ऐसी बात कही। आहाहा! सूक्ष्म बात है, सेठ!

समयसार १५वीं गाथा में ऐसा कहा है कि जो कोई भगवान आत्मा को, राग और

संयोगी निमित्त—चीज़ से बद्ध नहीं, वह तो अबद्ध अमूर्तस्वरूप है, सामान्य है, ध्रुव है, दु:ख के विकल्प से रहित आनन्द का धाम है। ऐसा जिसने दृष्टि में, ज्ञान में जाना आत्मा को, उसका शुद्ध उपयोग, वह जैनशासन है। आहाहा! जैनशासन का ज्ञान और श्रद्धान यह है। समझ में आया? यहाँ जैनदर्शन कहा, उसमें चारित्र लेना है। यह तो मार्ग.... समझ में आया? आहाहा! सन्तों की पद्धति और रीति तो कोई अलौकिक! जैसे-जैसे विचार करे, वैसे-वैसे उसकी घड गहरी-गहरी बैठ जाये। समझ में आया? जैनदर्शन... दर्शन, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागता की परिणति और उसके अन्दर छठवें गुणस्थान में होते हैं। विकल्प और पंच महाव्रत ... निमित्त है यह तो। उसे यहाँ निमित्त में नग्नपना ही निमित्त है। उसे जैनदर्शन कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार की सन्धि।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दोनों साथ में ऐसे ही होते हैं, ऐसा। निश्चय ऐसा होता है और व्यवहार भी साथ में ऐसा ही होता है, दूसरा होता नहीं। हीराभाई! नवरंगभाई गये न! बहुत सरस बात आयी। जैनदर्शन की आयी न! नवरंगभाई सवेरे गये। आये थे। आहाहा! अमृत का प्रवाह है, भाई! अमृत के वायु-वाया है। आहाहा!

कहते हैं कि जैनशासन में तो सम्यग्दर्शन और ज्ञान ही आता है। शासन है न? ...है न उसका, ज्ञान है न। ...ज्ञान लिया है न? चौदहवीं में दर्शन लिया, पन्द्रहवीं में ज्ञान लिया। चारित्र तो सोलह में लिया है। आहाहा! यहाँ जैनदर्शन कहकर गजब किया है! दर्शन मार्ग। जैनदर्शन का मत, जैनदर्शन का मार्ग, जैनदर्शन की रीति। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—तीन की एकतासहित उसका जो विकल्प आदि का व्यवहार, ...का व्यवहार, वही वस्तु होती है। उसका निश्चय-व्यवहार इसके अतिरिक्त दूसरा हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? समयसार और यह सब बातें कुन्दकुन्दाचार्य की गूढ और गम्भीर बहुत। यही पुकार करते हैं कि भगवान के समीप जाकर यह सब आया है। समझ में आया? चारों ओर देखने जाये तो मेल ऐसा आवे, ऐसा ही आवे... ऐसा हो कि आहाहा! यह वह कहीं पद्धति! उसका आत्मा अन्दर स्वीकार करके पुकार करे। आहाहा! उसे दूसरे को कहाँ पूछना है? आहाहा! तू ही अनुभवकर, तुझे सुख होगा,

दूसरे को न पूछ। आता है न भाई ? समयसार। आहाहा! तेरा मार्ग, प्रभु! तेरे पास है न! इतने ... शुभराग के... निमित्त पंच महाव्रतादि के, ये सब... होते हैं।

यह शुभ परिणाम होने पर बाह्य क्रिया **उन सभी को व्यवहारधर्म कहा जाता है।** व्यवहारधर्म का अर्थ, वह धर्म तो है नहीं, परन्तु उसे आरोप से व्यवहारधर्म कहा जाता है। ऐसा है। आहाहा! वास्तव में यह पुण्यभाव है। निश्चय की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र की भूमिका में जितना राग की मन्दता का भाव आवे। व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार शास्त्र का ज्ञान और व्यवहार आचरण राग की मन्दता, उसे व्यवहार धर्म कहते हैं। वह परमार्थ धर्म नहीं है। उसे निमित्त देखकर व्यवहार का आरोप दिया। धर्म तो एक ही प्रकार से है। परन्तु धर्म का कथन—निरूपण दो प्रकार से है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग तो एक ही प्रकार से है, परन्तु उसका निरूपण दो प्रकार से है। जो साथ में राग होता है, उसे व्यवहार समकित कहना; शास्त्र के ज्ञान को ज्ञान कहना, वह सब व्यवहार है। राग की मन्दता को चारित्र कहना, वह व्यवहार है। ऐसा निरूपण किया जाता है। वस्तु तो एक ही है। स्व के आश्रय से धर्म होता है, वह एक ही प्रकार है। आहाहा!

मुमुक्षु : फिर यह व्यवहार जानने का काम किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है न। आता है न ? काम क्या, वस्तु आती है न बीच में ? जब तक पूर्ण सर्वज्ञ न हो, तब ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। इसलिए उसे जानना चाहिए। समझ में आया ? जानना, वह प्रयोजनवान है; आदरना, वह प्रयोजनवान नहीं। आहाहा! ऐसा ... मार्ग वीतराग का। बहुत गड़बड़ कर डाली। चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा हो गया है। कल एक बड़ा लेख आया था, भिण्ड से मुमुक्षुओं का। बहुत तूफान किया था। सब विरोधियों को बुलाया था... अरे! भगवान! रतनलालजी और सबको बुलाकर चर्चा करते हैं पुस्तक यह। अरे! भगवान! क्या करते हो, बापू ? आहाहा!

मुमुक्षु : जितना विरोध होगा, उतना ही प्रचार बढ़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... विरोध करने जैसा नहीं है। तत्त्वेषु मैत्री ... सब प्राणी ... सभी प्राणियों के प्रति आत्म... आत्मस्वभाव, वह आत्मधर्मी—साधर्मी है। आत्मा की अपेक्षा से प्रत्येक आत्मा साधर्मी है। पर्याय में अन्तर है, ऐसा यहाँ बतलाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सन्धि कर लेना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... सन्धि हो? वह ऐसा कहे कि पाँच हजार रुपये लेने हैं, बनिया कहे किसान को। कणबी समझे? कृषिकार। पाँच हजार लाओ। यह जाने बनिया कि इसके पास पाँच हजार है नहीं। मुश्किल से तीन हजार दे तो। .... वह कहे कि परन्तु एक हजार से ऊपर एक पाई दूसरी नहीं। मेरे पास है ही नहीं हजार के ऊपर। यह कहे कि पाँच हजार में एक पाई कम लेना नहीं। ऐइ... मांडे लो। यह सन्धि करने के लिये बनिया। वह पन्द्रह सौ पर आवे तो यह आवे साढ़े चार हजार पर। वह आवे दो हजार पर तो यह आवे तीन हजार पर। ऐसे करते... करते... दो हजार में पूरा पड़े। ऐसी सन्धि हो। ऐसी यहाँ सन्धि है? सेठ! बनिया तो ऐसा करे न! न पहुँचे तो क्या करे? लो! दस हजार माँगता हो, उसके पास न हो।

मुमुक्षु : पैसा न हो तो करे क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे अब? ... कितनों से माँगते हों, ऐसा जाने कि यह तो व्यक्ति जरा नंगा है, बापू! तुझे ठीक हो तो देना। फरियाद करने की नहीं। कुंवरजीभाई! पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार, हों! ठीक पड़े तो देना। हम फरियाद करनेवाले नहीं कोर्ट में। आहाहा! न दे तो हमारे कुछ नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मन्दकषायरूप परिणाम, उसे **उसी प्रकार रत्नत्रय का तात्पर्य स्वरूप के भेद दर्शन-ज्ञान-चारित्र...** यह पहले क्या कहा? वस्तु (स्वभाव) धर्म की व्याख्या की, भाई! वस्तुस्वभाव का धर्म, उसके साथ यह वस्तुस्वभाव, वह व्यवहार। उसके साथ व्यवहार कहा। वस्तुस्वभाव का धर्म जो है, उसके साथ वस्तु के स्वभाव का धर्म व्यवहारपना। वस्तुस्वभाव का निश्चयधर्म के साथ वस्तु के स्वभाव का व्यवहार सम्बन्ध बताया है। समझ में आया? आहाहा!

उसी प्रकार रत्नत्रय का तात्पर्य स्वरूप के भेद दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा उनके कारण बाह्य क्रियादिक हैं, उन सभी को व्यवहार धर्म कहा जाता है। समझ में आया? रत्नत्रय का जो स्वरूप भगवान आत्मा का, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के आश्रय से जो निर्विकल्पदशा (होती है), वह तो सच्चा धर्म है। अब उसके ... भेद(रूप) दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद बतलाना। सम्यग्दर्शन का भेद,

ज्ञान का भेद, चारित्र का व्यवहार सब। और **उनके कारण बाह्य क्रियादिक हैं, उन सभी को व्यवहार धर्म कहा जाता है।** आहाहा! समझ में आया? धर्म का अनेक प्रकार उसका भेद आ गया, उसमें वह ... वस्तु के स्वरूप में आ गया।

यहाँ रत्नत्रयरूप जो धर्म, आत्मा के शुद्ध चैतन्य के आश्रय से हुई दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह तो निश्चयधर्म। अब व्यवहार उसके साथ क्या? उसके साथ का व्यवहार क्या? समझ में आया? कि उसके भेद। व्यवहारदर्शन, व्यवहारज्ञान, व्यवहारचारित्र। **तथा उनके कारण बाह्य क्रियादिक हैं, उन सभी को व्यवहार धर्म कहा जाता है।** समझ में आया? आहाहा! उसमें समाहित हो गया वह। एक, दो और तीन कहा है, हों! देखो?

उसी प्रकार (४) जीवों की दया... अब। जीव की दया, वह धर्म कहा था न निश्चय। उसका अब व्यवहार कहते हैं। जीव की दया। दया का अर्थ क्या था? राग की उत्पत्ति नहीं। आत्मा के स्वभाव के आश्रय से वीतराग परिणति की उत्पत्ति, वह दया और वह अहिंसा। आहाहा!

मुमुक्षु : इसका नाम ही दया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम ही दया है न! वह दया कहाँ थी? पर की दया का भाव तो राग है, वह तो हिंसा है। और पर की दया कौन पाल सकता है? तीन काल में कोई कर सकता है? उसे जिलाने के परिणाम उसके हैं, उसे वह कर सकता है? उसे मार सके इसके परिणाम? पर की पर्याय को मारे कौन? और पर की पर्याय को रखे कौन? आहाहा! ऐसा मार्ग भारी, भाई! अलौकिक मार्ग है।

मुमुक्षु : मार्ग तो अलौकिक ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोकोत्तर न हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें निश्चय और उसके साथ ऐसा व्यवहार। ऐसा निश्चय, उसके साथ ऐसा व्यवहार। आहाहा! दस प्रकार के... आदि धर्म, वह निश्चय परिणाम, उसके साथ राग की मन्दता का भाव होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ६, मंगलवार, दिनांक १८-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-४

अष्टपाहुड़। दूसरी गाथा का भावार्थ चलता है। दूसरा पेरेग्राफ है यहाँ गुजराती में। पृष्ठ पाँच। धर्म की व्याख्या की है। निश्चय और व्यवहार। निश्चय धर्म तो... उसमें होगा। **एकस्वरूप अनेकस्वरूप कहने में स्याद्वाद से विरोध नहीं आता,...** वहाँ से आता है। निश्चय धर्म तो द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अपना स्वभाव जो शुद्ध द्रव्यस्वभाव, उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, वह निश्चयधर्म। वह एक ही प्रकार से होता है—निर्विकल्प। और उसके साथ व्यवहार का भाव, व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र (रूप) जो राग की मन्दता, उसे भी व्यवहार धर्म कहा जाता है। वह व्यवहार धर्म अनेक प्रकार से होता है और निश्चयधर्म एक प्रकार होता है। उसका यह योगफल है।

वहाँ एकस्वरूप अनेकस्वरूप कहने में... अर्थात् क्या कहा? कि वस्तु जो परमानन्द मूर्ति प्रभु, उसका आश्रय लेकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, वह अभेद एकरूप होते हैं। भले उसकी शुद्धि बढ़े, शुद्धि बढ़े, तथापि एकरूप है, अभेद है। समझ में आया? और उस स्थान में व्यवहार समकित, ज्ञान, चारित्र कषाय की मन्दता के परिणाम अनेक प्रकार के होते हैं, उसे भी व्यवहार धर्म का, निश्चय धर्म के साथ में उसे व्यवहार धर्म का आरोप आता है। वह है। तो कहते हैं कि **वहाँ एकस्वरूप अनेकस्वरूप कहने में स्याद्वाद से विरोध नहीं आता,...** निश्चयधर्म एकरूप और व्यवहारधर्म अनेकरूप। अपेक्षा से कहने में विरोध नहीं आता। राग की अनेक प्रकारता होते हैं। शुभराग असंख्य प्रकार का है। शुभराग तो अनेक प्रकार से होता है, और वस्तुस्वभाव के आश्रय से हो, वह एक प्रकार से धर्म होता है। दोनों में विरोध नहीं आता।

कथंचित् विवक्षा से... किसी अपेक्षा से कथन करना कि व्यवहार की अपेक्षा से अनेक है, निश्चय की अपेक्षा से एक है। यह **सर्व प्रमाण सिद्ध है।** प्रमाण सिद्ध है। **ऐसे धर्म का मूल दर्शन कहा है,...** उस धर्म का मूल दर्शन कहा। **इसलिए ऐसे धर्म का श्रद्धा, प्रतीति, रुचिसहित आचरण करना ही दर्शन है,...** यहाँ तो यह दर्शन लेना है न!

समझ में आया? ऐसा जो निश्चयधर्म और व्यवहारधर्म, उस धर्म की श्रद्धा, उसकी प्रतीति और रुचि सहित आचरण। अन्तर स्वभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह निश्चय और विकल्प का व्यवहार, वह सब व्यवहार। नग्नपना... वह भी व्यवहार है। उस धर्म की श्रद्धा, ऐसे धर्म की रुचि, ऐसे धर्म का आचरण करना, वह दर्शन है। सम्यग्दर्शन एक ऐसी चीज़ है। धर्म की मूर्ति निर्ग्रन्थ मुनि, उन्हें ही यहाँ दर्शन कहा गया है। समझ में आया? जैनदर्शन अर्थात् स्वभाव के आश्रय से, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ हो और व्यवहार के विकल्प की मर्यादा जो हो, वह गुणस्थान ऐसा हो और मुनि की दशा तो नग्न दिगम्बर होती है। यह जैनदर्शन की मूर्ति है, वह दर्शनस्वरूप है। समझ में आया?

जैसे वृक्ष के मूल बिना स्कन्धादिक नहीं होते। इस प्रकार दर्शन को धर्म का मूल कहना युक्त है। सारा धर्म का मूल वह है। धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है, यह फिर गौण की बात है। यह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अन्तर परिणमन और विकल्परूप बाह्य और नग्न बाह्य, उस धर्म का मूल यह चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? यह अनादि का जैनधर्म ही इस जाति का है। आहाहा! समझ में आया? उसे दर्शन कहा। **इस प्रकार दर्शन को धर्म का मूल कहना युक्त है। ऐसे दर्शन का सिद्धान्तों में जैसा वर्णन है, तद्नुसार कुछ लिखते हैं।** अब उस दर्शन के अन्दर सम्यग्दर्शन जो होता है, उसका वर्णन है। समझ में आया? दर्शन तो यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन और व्यवहार विकल्प और नग्नपना। परन्तु उसमें सम्यग्दर्शन जो मुख्य है, उसका वर्णन यहाँ करेंगे, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जैनदर्शन का अर्थ ही यह है, वीतरागी परिणमन दर्शन-ज्ञान-चारित्र का। और राग की भूमिका में पंच महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण आदि, पाँच समिति, गुप्ति, व्यवहार, हों और नग्नदशा, वह जैनदर्शन है। वह जैनदर्शन की मूर्ति है। यह अनेक भेद पड़े थे, उस समय का यह कथन है। श्वेताम्बर पंथ निकला था न उस समय! तो कहते हैं कि जैनदर्शन तो यह है। जिसका वेश वस्त्र भी नहीं और जिसकी श्रद्धा भी स्वद्रव्य के आश्रय से हुई है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रमणता, वह जैनदर्शन अर्थात् दर्शन का स्वरूप ही यह है। समझ में आया? और ऐसी वस्तु हो, उसकी श्रद्धा सहित स्व के आश्रय से श्रद्धा, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? और ऐसे दर्शन से जो भ्रष्ट

है, वह सब (में) भ्रष्ट—श्रद्धा में भ्रष्ट, ज्ञान में भ्रष्ट, चारित्र में भ्रष्ट है। आहाहा! पक्ष से लगे, पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया?

अब यहाँ सम्यग्दर्शन की व्याख्या। **वहाँ अन्तरंग सम्यग्दर्शन तो जीव का भाव है...** जीव की पर्याय है। व्यवहार सम्यग्दर्शन तो राग की पर्याय है। वह जीवभाव की पर्याय नहीं, वह विभाव की पर्याय है। आहाहा! व्यवहार हो सही, वह तो ऊपर कहा। परन्तु वह जीव की पर्याय, वास्तविक तत्त्व नहीं है। आहाहा! **अन्तरंग सम्यग्दर्शन...** अन्तरंग सम्यग्दर्शन है न! यह तो बाह्य सम्यग्दर्शन है। व्यवहार, वह तो राग है, विकल्प है। जीव की पर्याय भाव है। जीव आनन्दस्वरूप निर्विकल्प वीतरागमूर्ति जीव है। जीव अर्थात् आत्मा अर्थात् वीतरागमूर्ति ध्रुव। वीतराग मूर्त स्वरूप ध्रुव की पर्याय। उसके (ध्रुव के) आश्रय से प्रगट हुआ निर्विकल्प वीतरागी भाव, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग में वीतरागी पर्याय, वह धर्म है।

मुमुक्षु : व्यवहार सम्यग्दर्शन तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार तो आरोपित धर्म कहा, यथार्थ नहीं।

मुमुक्षु : वास्तव में अधर्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : अधर्म है। आरोप से कथन। यहाँ धर्म है, धर्म है तो वहाँ व्यवहार का आरोप दिया है। वास्तविक वह नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न, निश्चयाभास और व्यवहाराभास। मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है। निश्चयस्वभाव की दृष्टि है, वहाँ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि राग को निमित्त देखकर, उसे व्यवहार समकित कहा। वास्तविक वह व्यवहार समकित है नहीं। और वह तो बन्ध का कारण है। परन्तु यहाँ का आरोप देकर, यह निश्चय है तो वह व्यवहार है, ऐसा आरोप किया। आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत! समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान है। चैतन्य आत्मज्ञान... आत्मज्ञान। आत्मा को स्पर्शकर जो ज्ञान, वह ज्ञान निश्चय है और साथ में शास्त्र का ज्ञान विकल्पवाला, वह व्यवहार है। इसका आरोप दिया वहाँ। वास्तव में वह ज्ञान है ही नहीं। वह तो रागवाला ज्ञान है। आहाहा!

इसी प्रकार आत्मा के आश्रय से दर्शन, ज्ञानसहित स्वरूप की निर्विकारी परिणति

स्वसंवेदन का उग्रपना होना, वह चारित्र है, वह यथार्थ चारित्र है। परन्तु उस चारित्र के साथ राग—पंच महाव्रतादि परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण आदि का राग निमित्त देखकर, उसे व्यवहारचारित्र कहा जाता है। वह वास्तविक चारित्र नहीं है। व्यवहारनय का कथन निमित्त पर (आरोप करके) अन्यथा कथन करता है। आहाहा! इसमें बड़ा विवाद आया है न व्यवहार-निश्चय का। यह व्यवहार का, देखो! यह व्यवहार कहा, परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या? किसे होता है? निश्चय हो, उसे व्यवहार होता है। जिसे निश्चय नहीं, उसे व्यवहार कैसा? वह तो व्यवहाराभास अनादि का है। समझ में आया?

कहते हैं कि वह **अन्तरंग सम्यग्दर्शन तो...** जीव की पर्याय है, ऐसा। भाव अर्थात् पर्याय। **वह निश्चय द्वारा उपाधिरहित शुद्ध जीव का साक्षात् अनुभव होना, ऐसा एक प्रकार है।** निश्चय द्वारा—अन्तर आश्रय द्वारा उपाधिरहित—विकल्परहित शुद्ध जीव का साक्षात् अनुभव—वेदन सीधा। आहाहा! अनुभूति। क्योंकि उसका स्वभाव ही साक्षात् अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष दृष्टा है। ऐसा ही उसका स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? **उपाधिरहित शुद्ध जीव का साक्षात् अनुभव...** अर्थात् कि ज्ञान की प्रत्यक्ष पर्याय अन्दर में प्रगट होती है। आहाहा! मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो साक्षात् होते हैं। उन्हें पर की अपेक्षा नहीं। यह प्रत्यक्ष मति-श्रुतज्ञान ऐसा जो अनुभव, वह एक प्रकार से है। उसका प्रकार अनेक नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? इस दूसरी गाथा का अर्थ बहुत भरा है, बहुत पृष्ठ हैं। एक सूत्र (पाहुड़) की छठवीं गाथा का। यहाँ ... विस्तार करना हो, समझाना हो तो समझावे न!

ऐसा अनुभव अनादि काल से मिथ्यादर्शन नामक कर्म के उदय से अन्यथा हो रहा है। कर्म का उदय तो निमित्त है, परन्तु मिथ्यात्वभाव के कारण वह सम्यग्दर्शन विपरीत हुआ है। कर्म से कहा तो कर्म निमित्त है। निमित्त का—उदय का स्पर्श जीव की पर्याय को है ही नहीं। जीव की पर्याय कर्म के उदय को स्पर्शती नहीं और कर्म का उदय (रूप) जड़ की पर्याय मिथ्यात्व को स्पर्शती नहीं। आहाहा! वह मिथ्यात्व परिणाम, वह कर्म के निमित्त से हुआ, इसलिए ऐसा कहा। **मिथ्यादर्शन नामक कर्म के उदय से अन्यथा हो रहा है।** अनुभव। आत्मा का अनुभव आनन्द का चाहिए, उसके बदले राग का अनुभव रहा है। ऐसा कहते हैं। जो आत्मा की शान्ति का अनुभव, वह

वास्तविक सम्यग्दर्शन की अनुभूति है। उस सम्यग्दर्शन के साथ यह अनुभूति होती है, इससे आगे कहेंगे। अनुभूति, वह बाह्य लक्षण है। प्रतीति उसका यथार्थ लक्षण है। परन्तु उससे पहिचान कराते हैं; इसलिए उसे व्यवहार कहा है। और वह व्यवहार शरण है। दूसरा कोई उपाय नहीं। ज्ञान से जाने बिना दूसरा कोई उपाय नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है।

ऐसा अनुभव अनादि काल से मिथ्यादर्शन नामक कर्म के उदय से अन्यथा हो रहा है। अर्थात्? यहाँ आत्मा की शान्ति और आनन्द का ज्ञान प्रत्यक्ष होना चाहिए, उसके बदले—उसके स्थान में मिथ्या अभिप्राय का परिणमन है, इसलिए दुःख का वेदन है, दुःख का अनुभव है। वह मिथ्यादर्शन, राग-द्वेष अनन्तानुबन्धी का (भाव होता है), वह सब दुःख है। आहाहा! समझ में आया? **सादि मिथ्यादृष्टि के उस मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं...** अनादि मिथ्यादृष्टि को तो एक ही होती है—दर्शनमोह—मिथ्यात्व। परन्तु **सादि मिथ्यादृष्टि के उस मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं—मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति...** तीन। समकितमोहनीय **उनकी सहकारिणी अनन्तानुबन्धी...** उसके साथ रहनेवाली, सहकारिणी—साथ में। **अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से चार कषाय नामक प्रकृतियाँ हैं।** प्रकृति है और यहाँ भाव है। **इस प्रकार सात प्रकृतियाँ ही सम्यग्दर्शन का घात करनेवाली हैं;...** लो! यह सातों ही भाव सम्यग्दर्शन का घात करनेवाली है। मूल तो यह भाव है, हों! घातिकर्म द्रव्य और भाव दो प्रकार से हैं। घातिकर्म—द्रव्यघाति और भावघाति। द्रव्यघाति पर (पर्याय), भावघाति अपनी पर्याय। समझ में आया?

भाई! यह तो कुछ अभ्यास चाहिए। अनन्त काल में इसे विपरीत मान्यताएँ घुस गयी हैं। उन्हें (निकालने के लिये) अभ्यास चाहिए। समझ में आया? आत्मा के लक्ष्य से... स्वाध्याय... चाहिए। आहाहा! मेरा हित करना है, ऐसा जिसे (लगे कि) अरे! यह हित के काल का काल है यह सब। ऐसा इसे लगे कि मुझे हित करना है। अरे! अनन्त काल से अहित तो करता आया है। कर्म के कारण नहीं, अपनी विपरीतता के कारण। आहाहा!

अनादि से जो प्रकृति का कार्य हो रहा है, कहते हैं। **इस प्रकार सात प्रकृतियाँ**

ही सम्यग्दर्शन का घात करनेवाली हैं;... आहाहा! **इसलिए उन सातों के उपशम होने से पहले तो इस जीव को उपशम समकित होता है।** उपशम समकित पहले होता है। तब तो पाँच को उपशम करता है, परन्तु यहाँ सादि से लिया है।

इन प्रकृतियों का उपशम होने का बाह्य कारण... सामान्य से बाह्य निमित्त कारण **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हैं,...** है तो वह प्रकृति का उपशम करने का अपना पुरुषार्थ। समझ में आया? परन्तु बाह्य कारण निमित्तरूप से कौन होता है, वह यहाँ समझाते हैं। **उनमें द्रव्य में तो साक्षात् तीर्थंकर के देखनादि (दर्शनादि) प्रधान हैं,...** त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवली परमात्मा को देखना, सुनना, वह सम्यग्दर्शन में बाह्य निमित्तरूप से कहे जाते हैं। परन्तु निमित्तरूप से कब कहने में आवे? कि स्वभाव के आश्रय से प्रगट करे, तब उन्हें निमित्तरूप से कहा जाता है। समझ में आया? जिसने आत्मा के अवलम्बन से पर की अपेक्षा और आश्रय बिना, अपने आत्मा के स्वभाव के आश्रय से जिसने नैमित्तिक दशा—सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, उसे ऐसे बाह्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव बाह्य निमित्त के आरोप से निमित्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

तीर्थंकर के देखनादि... तीर्थंकर को देखना, सुनना, वह मुख्य वस्तु है द्रव्य में। द्रव्य अर्थात् बाह्य चीज़। **क्षेत्र में समवसरणादि...** भगवान का समवसरण धर्मसभा आदि प्रधान है। **काल में अर्धपुद्गलपरावर्तन संसार भ्रमण शेष रहे वह...** अर्धपुद्गल (परावर्तन) संसार रहे, वह निमित्त है। वहाँ रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दर्शन करे, तब उसे अर्धपुद्गल (परावर्तन) हो जाता है। यहाँ कहते हैं कि अर्धपुद्गल (परावर्तन) रहे, वह समकित में बाह्य निमित्त है। बड़ा अन्तर है। विरुद्ध है, बहुत विरुद्ध है। रतनचन्दजी की सर्वज्ञ की श्रद्धा में बहुत अन्तर, बहुत अन्तर, बहुत बड़ा अन्तर है। मूल शास्त्र के अर्थ से अन्तर है। भाई ने जवाब दिये हैं। दरबारीलाल कोठिया ने ठीक जवाब दिये हैं। फिर दूसरा आया है, उसका देंगे अब।

सर्वज्ञ अर्थात् क्या? ओहोहो! एक समय की पर्याय में किसी की अपेक्षा रखे बिना प्रगट ऐसा सब जाने। प्रगट पर्याय है भविष्य की और भूत की, (ऐसा जाने)। वर्तमान की तो है, परन्तु प्रगट परिणमन है, ऐसा वे जानते हैं। समझ में आया? ऐसे सर्वज्ञ भगवान के समवसरण आदि बाह्य प्रधान निमित्त कहे जाते हैं। ओहोहो! गौतम

देखो न, समवसरण में गये। मानस्तम्भ को (देखा), आहाहा! एकदम परिवर्तन हो गया। वाणी निकली। आहाहा! वे तो निमित्त हैं, उपादान तो स्वयं का है। निमित्त से हुआ नहीं। हुआ है उपादान से। तब उसे यह निमित्त है, ऐसा कहा जाता है। वह अर्धपुद्गल परावर्तन संसार (बाकी) हो, वह सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का वह काल निमित्त है।

तथा भाव में अधःप्रवृत्त करण आदिक हैं। लो! अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, यह भाव है, यह निमित्त है। भाई! यहाँ निमित्त में डाला, बाह्य में डाला यह। शुद्ध आत्मा के सन्मुख के परिणाम, वह कारण है। वह है तो बाह्य निमित्त है। वह भाई देते हैं न बहुत? कान्तिलाल। धवल का दृष्टान्त देकर कहते हैं, देखो! इस करण से होता है, देखो! यह शुभभाव है। तीन करण शुभभाव है, उससे समकितदर्शन होता है। ऐसा बहुत कहता है। खबर है न हमको। आहाहा! वह तो निमित्त है। समझ में आया? वस्तु की स्थिति है, ऐसा न जाने और आड़ा-टेढ़ा करे, वह नहीं बैठता। ऐसा कि यह अधःकरण आदि शुभभाव है, वहाँ कहाँ शुद्धभाव है? परन्तु उससे होता ही नहीं। यह तो कहा है, वह निमित्त से व्यवहार से कहा है। आहाहा! और उसके परिणाम तो शास्त्र में लिखा है न पण्डित जयचन्द्रजी ने—शुद्धात्म-अभिमुख परिणाम। शुद्ध -अभिमुख उसके परिणाम, वह कारण है। आहाहा! क्या हो लोगों को बैठे जिस प्रकार से उसमें? परिणति जिस प्रकार से बैठी हो, वह उसे हटती ही नहीं।

मुमुक्षु : उसकी परिणति के अनुसार ही अर्थ करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे अनुसरकर ही अर्थ करे फिर सब।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... क्या हो? ऐसा तो यह व्यवहार में देखो न, यह क्या कहा? बाह्य निमित्त वहाँ है। क्या कहा? देखो! है? कारण सामान्य, उसके बाह्य कारण। ऐसा लिया है न? बाह्य कारण सामान्य। संक्षेप में-संक्षेप में, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। द्रव्य तो तीर्थंकर आदि का देखना-सुनना, क्षेत्र में समवसरण आदि जो कोई तीर्थक्षेत्र बड़े और काल में अर्धपुद्गलपरावर्तन निमित्त। वह अर्धपुद्गलपरावर्तन करा देता है समकित? और समवसरण का देखना, वह समकित करा देता है? तीर्थंकर का सुनना और जो देखना, वह करा देता है?

मुमुक्षु : अध:करण आदि नहीं कराते?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो अपने परिणाम इस ओर हुए तो अर्धपुद्‌गल (परावर्तन) हो गया है वहाँ। अर्धपुद्‌गल (परावर्तन संसार) ही उसे होता है। समझ में आया? यह तो बातें ऐसी हैं, भाई! उसका जितना प्रमाण हो, उतनी रीति से समझना चाहिए। कम, अधिक, विपरीत डालेगा तो उल्टी श्रद्धा होगी। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी का मार्ग है। यह कहीं पामर का मार्ग नहीं। आहाहा!

सर्वज्ञ... सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें एक समय में प्रत्यक्ष तीन काल-तीन लोक पर्याय में ज्ञात हो गये हैं। उन्हें जानने की पर्याय इतनी हुई, उसे जाना। आहाहा! ऐसे भगवान के मार्ग में कम, अधिक, विपरीत उनके मार्ग से नहीं हो सकता, नहीं चलता अन्दर। यह तो बाह्य कारण कहे। यहाँ क्या कहा? **भाव में अध:प्रवृत्त करण...** बाह्य कारण सामान्य संक्षिप्त में यह कहा। आहाहा! भाई! यह तो बाह्य कारण कहा अध:प्रवृत्त। आहाहा! पण्डितजी ने भी स्पष्टीकरण (किया है)। पहले के तो पण्डित बहुत... दृष्टि-ज्ञान में बराबर... ओहोहो!

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन के परिणाम... जो जैनदर्शन है, उसमें सम्यग्दर्शन हो। दर्शन तीनों को कहा। दर्शन-ज्ञान-चारित्र और बाह्य... परन्तु उसमें जो सम्यग्दर्शन है, वह कैसा होता है, उसकी बात है। समझ में आया? यह तो निरुपाधि आत्मा की अनुभूति के परिणाम से ज्ञात हो, इसलिए इसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन कहा जाता है। वह एकरूप है, वह एक ही रूप है और बाह्य उसके कारण—बाह्य कारण निमित्तरूप से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होते हैं। द्रव्य में भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का देखना और सुनना, वह निमित्त बाह्य कारण; क्षेत्र में समवसरण आदि और तीर्थ के स्थान, वे भी बाह्य निमित्त कहे जाते हैं और अर्धपुद्‌गलपरावर्तन जो संसार रहे, वह भी बाह्य निमित्त है। आहाहा! समझ में आया? वास्तव में तो उसके स्वकाल के परिणाम से अपने में समकितदर्शन होता है। उसका स्वकाल है वह।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वकाल में अपना सम्यग्दर्शन हो, उसमें अर्धपुद्‌गलपरावर्तन

(संसार) निमित्तरूप से कहा जाता है। आहाहा! और उस निमित्त को द्रव्यसंग्रह में हेय कहा है। हेय है, काल है सही, काल की ... यह चर्चा बहुत चली थी हमारे (संवत्) १९८४। ८४ के वर्ष राणपर चातुर्मास में जाना था न। यहाँ दामनगर हमारे चर्चा बहुत चलती थी। वहाँ दामोदर सेठ गृहस्थ थे न, तो... दृष्टि बहुत विपरीत, बहुत विपरीत। पहले तो हाँ करते, समयसार, कहा, देखो यह समयसार अशरीरी (होने की) चीज़ है। ऐसी चीज़ कहीं नहीं है और इसके बिना संसार का नाश होगा नहीं। सच्ची बात है। कौन माने ? फिर जब ऐसा हुआ कि यह तो समयसार का आश्रय लेकर यह तो ... हो गये। गजब! आहाहा! यह समयसार का दोष निकालने लगे। अमुक में यहाँ भूल है, जीव में ऐसा है, अजीव में ऐसा है। अरे! भाई!

समयसार तो भगवान की वाणी साक्षात्। आहाहा! दिव्यध्वनि सीधे भगवान के पास सुनी, आये, ऐसा यहाँ कहा है। यह भगवान का सन्देश है। समयसार, यह त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान का सन्देश है। आहाहा! इस समयसार में जो यह वर्णन है, वह अलौकिक वर्णन है। आहाहा! यह द्रव्यसंग्रह में वह आया भाई! काल का अधिकार आया वहाँ। वही मैं वाँचता था तब वहाँ। ८४ की बात है। जीवराजजी दरवाजे के पास बैठे हुए ऐसे उपाश्रय में। मैं उस दरवाजे पर वाँचता था। ... था बड़ा। उसमें... थे। ऐसा हो तो ऐसा होगा और अमुक होगा, काल पके तब होगा, पुरुषार्थ काम नहीं करता, फलाना और ढींकणा। मौके से वहाँ मुझे यह वाँचने में आया, उसी समय। काल निमित्तमात्र हेय है। द्रव्यसंग्रह में है।

मुमुक्षु : मूलकारण तो अपनी आराधना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने स्वरूप-सन्मुख आराधन, वही सम्यग्दर्शन है। समकितदर्शन में वह कारण है। दृष्टि गुलाँट खाती है, ऐसे द्रव्य पर जाती है, तब समकित होता है। बाह्यकारण तो निमित्त है। आहाहा! वस्तुस्थिति हो, ऐसा होता है न! समझ में आया? (संवत्) १९८४ की बात है। १६ और २९ = ४५ वर्ष हुए। नहीं, कहा, मार्ग तो यह है। आहाहा! काल हेय है और दूसरे प्रकार से मैंने कहा, कि इस काल में, स्वकाल में हुआ, वह ज्ञान सच्चा किसे होता है? कि जिसे द्रव्य का ज्ञान हो, उसे स्वकाल में हुआ, उसका ज्ञान सच्चा होता है। समझ में आया? यह काल पर्याय, कहा न टोडरमलजी

ने कि अपने काल में होता है। काल में होता है काललब्धि से, पर्याय का काल है, वैसा होता है, उस पर्याय का ज्ञान कब होता है ? वह द्रव्य का ज्ञान करे तो उस पर्याय का ज्ञान होता है। अकेला पर्याय का ज्ञान सच्चा नहीं होता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया ? आहाहा! अरे! मार्ग, वह मार्ग है न! जिसे कोई निमित्त की अपेक्षा नहीं, ऐसा कहना है। यहाँ तो व्यवहार समझाना है, इसलिए निमित्त कौन है, यह बतलाना है।

मुमुक्षु : ज्ञान कराना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान कराना है। अपेक्षा है ही नहीं। आत्मा को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में ज्ञान-चारित्र प्राप्त करने में कोई निमित्त की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! विकारी पर्याय में जहाँ निमित्त—पर की अपेक्षा नहीं, ऐसा ६२ गाथा (कहती है), पंचास्तिकाय। विकार-मिथ्यात्व होने में। अरे! राग-द्वेष होने में पर की अपेक्षा बिना, जीव पर्याय में एक समय में षट्कारकरूप से विकार स्वयं करता है। द्रव्य-गुण का आश्रय नहीं, निमित्त का लक्ष्य नहीं। आहाहा! विकार में यह है तो निर्विकारीदशा में क्या होगा ? आहाहा! समझ में आया ? यह तो एक बाह्य निमित्त ऐसे हों, उसका ज्ञान कराते हैं। यह निमित्त से हुआ नहीं, बाह्य कारण से हुआ नहीं। उस समय लक्ष्य यहाँ था, वहाँ से छूटा (और) गया यहाँ, तब हुआ है। आहाहा! ऐसा मार्ग। यहाँ तो वह कान्तिलाल कहता है न बारम्बार, इसलिए अटका जरा। देखो! इसमें शुभभाव से समकित होता है, ऐसा कहा है। शुभभाव से रस घटे, स्थिति घटे, अमुक हो, ढींकणा हो। कहते हैं न ? कल ऐसी चर्चा हुई, पण्डितजी के साथ चर्चा हुई। इसलिए यह होता है और यह होता है।

यहाँ तो परमात्मा का कहा हुआ पण्डितजी स्वयं लिखते हैं। आहाहा! कि वे सब निमित्त तो बाह्य कारण हैं। अध:करण और अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरण, वह बाह्य कारण है। आहाहा! गोम्मटसार में ऐसा आता है कि इस करण से प्राप्त होता है। वह बाह्य कारण की व्याख्या है। आहाहा! ऐसा मार्ग! अन्तरंग कारण तो निरुपाधि परिणति द्रव्य के आश्रय से होती है। उसमें कोई अपेक्षा निश्चय में है नहीं। कोई निमित्त

की अपेक्षा नहीं। यह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं कि उस समय उसका लक्ष्य वहाँ से छूटा और यहाँ गया, वह यह चार कारण इसे बताते हैं। समझ में आया? आहाहा! सेठ! यह सब समझना पड़ेगा, हों! अद्धर का अद्धर रखा है अभी तक। अभी तक अद्धर रखा है। ऐसा निर्णय हुआ नहीं था न! आहाहा!

ऐसा काल कब आवे? बापू! आहाहा! यह समझने का प्रसंग और यह वस्तु! अरे! उभरने के अवसर के काल में यह बात नहीं समझे तो फिर जायेगा निगोद में। आहाहा! किसी की सिफारिश, बाहर की सिफारिश काम नहीं आयेगी। सिफारिश कहते हैं न? सिफारिश नहीं? सिफारिश। काल पक गया, सब अवसर आ गया है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ अटका। भाव में अध:प्रवृत्त करण बाह्य कारण सामान्यपने के बोल में लिया। आहाहा! बहुत सरस लिया है, बहुत सरस बात है। पण्डित जयचन्द्रजी भी... जयपुर के हैं न? ओहोहो! न्याय की... है न यह। ऐसे गृहस्थाश्रम में पण्डित ऐसा (लिखे) और यह त्यागी को भान नहीं होता कुछ। अरेरे! भाई! उसके हित के लिये बात है, हों! तेरा हित कैसे हो, उसकी तुझे दरकार नहीं और तू किसका साधु हुआ? आहाहा!

मेरा दर्शन स्वतन्त्र, मेरा भगवान परमात्मा मैं हूँ। उसके आश्रय से मेरा दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वतन्त्र पर की अपेक्षा बिना होता है। आहाहा! ऐसी जिसे श्रद्धा नहीं, उसे किसी प्रकार सम्यग्दर्शन नहीं होता। यह जैनदर्शन लिया है न? और आगे कहेंगे, ऐसा न माने, ऐसा जैनदर्शन है, उसे न माने, उसे सम्यग्दर्शन नहीं है। समझ में आया? आहाहा! दूसरी गाथा के कितने पृष्ठ भरे हैं, देखो न!

मुमुक्षु : शुरुआत की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरुआत की है। '**दंसण मूलो धम्मो**' यहाँ से शुरु किया है न! आहाहा! देखो न, यह च.... गये? मलूकचन्दभाई गये? ठीक। जयन्तीभाई। आज वहाँ रखेंगे। ग्यारह बजे से अभी साढ़े दस से वह रात के ग्यारह तक। ग्यारह घण्टे तक खून निकाले उसमें से सब। एक ओर ओर दूसरी ओर सुधरा हुआ, वह का वह खून वापस यहाँ डाल दे। बारह घण्टे। आठ दिन में दो बार। मंगल और शुक्र। बारह-बारह घण्टे। लाख, डेढ़ लाख खर्च किये। लाख से पाँच लाख हो तो मैं दूँगा, जा। परदेश में भेजा है।

बहुत खर्चा हुआ। डेढ़ लाख का खर्च हो गया। बारह महीने में ६० हजार का खर्च। यह किडनी सब निर्बल हो गयी और कुटुम्ब में से किडनी मिले तो स्वस्थ रहे, नहीं तो हो गया अब ऐसा का ऐसा। कुटुम्ब में किसकी अच्छी है। कितनों को कुटुम्ब को एक-एक किडनी है। आहाहा! यह संसार। जवान अवस्था है अभी ४४ वर्ष की। कल आये थे न! कल शाम को गये जयन्तीभाई। मलूकचन्द का तीसरे नम्बर का लड़का। पहला वह निहाल, स्वीट्जरलैण्ड, दूसरा पूनम, तीसरा यह और चौथा नाम नहीं खबर।

मुमुक्षु : तकलीफ उसे है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे है। यहाँ बैठा था। कल बैठा था साथ में। उसे स्वयं को। आज अभी दस बजे बैठेगा। बारह घण्टे तक खून निकालेंगे। सब खून बाहर निकालकर, वह सुधारकर वापस अन्दर डालेंगे। आहाहा! यह संसार, यह क्या ? यह देह की... स्वरूपचन्दभाई! यह सोने का पिण्ड लगे इसे। धूल भी नहीं। आहाहा! सड़ा हुआ है सड़ा हुआ। यह सब अन्दर सड़ा हुआ है। किडनी। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा को स्व-समकितदर्शन प्राप्ति में स्व का आश्रय, वही अपेक्षित है। पर की अपेक्षा निश्चय में है नहीं, परन्तु व्यवहार से, कौन निमित्त था, उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं। यह अध:करण और अपूर्वकरण, वह भी, कहते हैं, बाह्य निमित्त है। राग मन्द—शुभभाव है।

मुमुक्षु : और मिथ्यादर्शन की भूमिका में वह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न मिथ्यादर्शन की भूमिका में है न तीन यह। समकित कहाँ हुआ है ? समकित बाद में होता है। आहाहा! उसका जोर देते हैं बहुत, धवल में से।

मुमुक्षु : गुणश्रेणी निर्जरा तो होती है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणश्रेणी धूल में भी नहीं होती। वह तो स्व के आश्रय से होती है। स्व का आश्रय लिया है न, इसलिए यहाँ से होती है। उससे होवे वह तो राग है, ... है, वह तो बाह्य निमित्त है। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग, बापू! यह वह कहीं... इन्द्रा एकावतारी और गणधर उस भव में मोक्षगामी, इस बात को सुनकर अनुभव करते हैं। आहाहा! यह कोई पामर का मार्ग नहीं है। अरबों रुपये का व्यापार करनेवाला हो,

उसकी दुकान पर तेली को बैठावे ३० रुपये का वेतनवाला। क्या करता होगा वह? आहाहा! उसकी पेढ़ी में तो बहुत होशियार व्यक्ति और लाखों रुपये का वेतन हो उसका तो। अरबोंपति के व्यक्ति के मुनीम होना, और दुकान में—गद्दी में बैठना, वह बड़ा होशियार होता है। भगवान के मार्ग को समझने के लिये बहुत पात्रता चाहिए। आहाहा! समझ में आया? कोई अपेक्षा मस्तिष्क में न रखकर निश्चय से वह स्व की अपेक्षा से होता है।

यह तो छठवीं गाथा (बोल) में कहा न, छठवें बोल में—२० अलिंगग्रहण। २० बोल है न अलिंगग्रहण के? उसका छठवाँ बोल है। पहला बोल यह है कि इन्द्रिय से ज्ञात हो ऐसा नहीं है। इन्द्रिय से जानता नहीं है—दूसरा बोल। इन्द्रिय के प्रत्यक्ष का विषय नहीं, तीसरा बोल। चौथा—दूसरे सब अनुमान... दूसरे अनुमान द्वारा जान सके, ऐसा यह आत्मा नहीं। स्वयं अनुमान करे, वह आत्मा नहीं। अनुमान करे, वह आत्मा ही नहीं। अकेला अनुमान कर सके, वह आत्मा नहीं। आत्मा तो प्रत्यक्ष होता है। और छठवाँ बोल यह लिया है कि अपने स्वभाव से ज्ञात होता है, ऐसा प्रत्यक्ष दृष्टा है। आहाहा! १७२ गाथा, प्रवचनसार। २० बोल हैं। अलिंगग्रहण के २० बोल। आहाहा! भगवान तो अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष है। आया था न यहाँ प्रत्यक्ष अनुभव? वह परोक्ष रहे, यह भी चीज़ नहीं। आहाहा! वस्तु... वस्तु... वस्तु... अपने ज्ञान से प्रत्यक्ष होता है, वह अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़ है, वह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसे यह बाह्य निमित्त से कहने के लिये इतना ज्ञान कराते हैं। बाह्य निमित्त से होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भाव में अध:प्रवृत्त करण आदिक हैं। अर्थात् अपूर्वकरण (अनिवृत्तिकरण) आदि ... **(सम्यक्त्व के कारण) विशेषरूप से तो अनेक हैं।** पहले सामान्य कहे वे। बाह्य कारण सामान्य कहे संक्षिप्त में। यह विशेष। **उनमें से कुछ के तो अरिहन्त बिम्ब का देखना,...** है न, भगवान की प्रतिमा को देखता है, उसमें से यह विचार आ जाता है, अन्दर ढल जाता है। यह निमित्त से बात। ओहो! यह तो बिम्ब पड़ा है अक्रिय। कुछ हिलता नहीं, चलता नहीं, बोलता नहीं, कहता नहीं कुछ। ऐसे स्थिर हो गये हैं। अक्रिय—रागरहित चीज़—ऐसा अन्दर होने से वह अन्दर में ढ़ल जाता है। उसे (प्रतिमा

को) बाह्य निमित्त कहा जाता है। उससे होता नहीं, परन्तु वहाँ से लक्ष्य छूटकर अन्दर में गया है, तब निमित्त कौन था, उसका लक्ष्य कराने के लिये उसे निमित्त कहा है। आहाहा! ऐसे भगवान विराजते हों।

उसमें तो ऐसा लिया था। भावदीपिका में लिया है? पंच संग्रह में, नहीं? वह हजार... पंच संग्रह में लिया है। दीपचन्दजी ने। दस हजार तीर्थंकर की महिमा से एक प्रतिमा की महिमा बड़ी है। क्योंकि... यह तो मैंने फिर निकाला उसमें से, जब पढ़ा तब, कि तीर्थंकर तो अमुक समय में होते हैं। भगवान तो सदा विराजते हैं। आहाहा! तीर्थंकर... यह लिया है न इतना? केवली से, नहीं? तीर्थंकर की अपेक्षा इसका... है? लाओ न। होवे वह समय पर काम आवे। रामजीभाई कानून बताते होंगे या नहीं वहाँ?

मुमुक्षु : उसके बिना माने नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने नहीं। आहाहा! वस्तु यह है। दिगम्बर गृहस्थों ने भी वस्तु का वर्णन किया है। परम्परा सत्य (बात) मिली, सत्य प्रवाह का प्रपात मिला। आहाहा! दिगम्बर धर्म अर्थात् सत्य जैनदर्शन का प्रपात। उसमें हुआ ग्रन्थ, उसमें अन्दर चिपट गया। हो गया। जाओ। सीधा पृष्ठ ही यहाँ आया। देखो न! कुदरत क्या करती है न! सामने आया, देखो! 'महिमा हजार दस सामान्य जु केवली की, ताके सम तीर्थंकरदेव जी की मानिये।' अभी यहाँ विचार करूँ, परन्तु पृष्ठ कितना? तो वह पृष्ठ सामने पड़ा है। पुण्य का योग भी ऐसा साथ में है। कुदरत सामने आती है।

कहते हैं, 'महिमा हजार दस सामान्य जु केवली की,...' सामान्य केवली हो दस हजार। 'ताके सम तीर्थंकरदेव जी की मानिये।' दस हजार (केवली) उनकी अपेक्षा इनकी—तीर्थंकर की महिमा अधिक है। 'तीर्थंकरदेव मिलै दसक हजार ऐसी, महिमा महान एक प्रतिमा की जानिये।' 'जिनप्रतिमा जिनसारखी।' ऐसा वर्णन किया है न बनारसीदास ने? 'जिनप्रतिमा जिनसारखी वन्दे... बनारसीदास' यहाँ यह वाँचते समय विचार यह हुआ हो कि ऐसा कैसे? कि तीर्थंकर भगवान तो अमुक समय में होते हैं और अमुक समय में नहीं होते। अन्यत्र हों। और प्रतिमा भगवान की मन्दिर में पधराई है, (वह तो) सदा हाजराहुजूर।

मुमुक्षु : अपने गाँव में न ही हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहा न कि वहाँ सर्वत्र घूमते हैं। यह मन्दिर की प्रतिमा तो हाजराहुजूर। तीर्थंकरदेव की अपेक्षा जिसकी महिमा... ऐई! स्वरूपचन्दजी! यहाँ तो ऐसी बातें हैं। आहाहा! दीपचन्दजी, हों! अनुभवप्रकाश, चिद्विलास। बहुत जोरदार व्यक्ति। उन्होंने यह वर्णन किया है। आहाहा! पृष्ठ १९ है। उपदेशसिद्धान्त रत्न। लो। उपदेशसिद्धान्त रत्न।

मुमुक्षु : १९ पृष्ठ? २० में एक कम।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक है तुम्हारे यहाँ? अध्यात्म पंचसंग्रह। खबर नहीं होगी। पैसे कितने हैं, वह खबर है इसे। यह अध्यात्म पंचसंग्रह पुस्तक है। सेठ को थोड़ा... बड़े होकर ऐसा सब ध्यान रखना चाहिए। यह नोट सब धूल में कुछ नहीं मिलता। 'सो तो पुण्य होय तब विधि सौं विवेक लिये, प्रतिमा के ढिग जाय सेवा जब ठानिये।' आहाहा! वह तो महापुण्यशाली को इस जाति का विवेक होता है, कहते हैं। 'नाम के प्रताप सेती तुरत तिरे है भव्य, नाम महिमा विनतैं अधिक बखानिये।' ... नाम की महिमा बहुत है। आहाहा! स्थापना का कहा है, नाम का नहीं। अध्यात्म पंचसंग्रह है भाई का। ज्ञानदर्पण में ३१वाँ या दूसरा कुछ होगा। ज्ञानदर्पण। ३१वाँ कुछ है। स्वरूपानन्द। ज्ञानदर्पण पृष्ठ ३१। है, लिखा है सही सामने। ३१। हाँ ३१। हाँ यह। नहीं, वह दूसरी बात है। (पद–८८, ८९)

जैसो बीज होय ताकौ तैसो फल लागै जहाँ,
यह जग माहिं जिन-आगम कहावे।
क्रिया शुभ कीजे पै न ममता धरीजै कहूं,...

शुभभाव आवे, विनय आवे, विवेक हो। 'हूजै न विवादी यामैं पूज्य भावना ही है।' बहुत विवाद नहीं करना कि ... भगवान का पूज्यपना शुभभाव का होता है। 'हूजै न विवादी यामैं पूज्य भावना ही है।' आहाहा!

कीजै पुन्यकाज सौ समाज सारो पर ही को,
चेतना की चाहि नाहिं सधै याकै नाहीं हैं।

चेतना का फल तो अपने आश्रय से सधता है। ऐसा भाव भगवान का विनय, बहुमान आता है न? इसलिए बहुत व्यवहार का... समझ में आया। आहाहा! दीपचन्दजी हैं।

(सम्यक्त्व के बाह्यकारण) विशेषरूप से तो अनेक हैं। उनमें से कुछ के तो अरिहन्त बिम्ब का देखना,... त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की प्रतिमा को बिम्ब कहा है। जैसे भगवान हों, वैसी प्रतिमा होती है, ऐसा। उसे कुछ दूसरा नहीं होता। अलंकार, वस्त्र और फलाना और ढींकणा नहीं होता, इसलिए बिम्ब कहा। जैसा सामने हो, वैसा दर्पण में दिखता है। जैसे भगवान वीतराग थे, वैसा प्रतिबिम्ब—मूर्ति ऐसी होनी चाहिए। उसके लिये शृंगार और फलाना और ढींकणा, वह सब वीतराग की मूर्ति नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इससे कहा। **अरिहन्त बिम्ब का देखना, कुछ के जिनेन्द्र के कल्याणक आदि की महिमा देखना,...** जिनेन्द्रदेव के कल्याणक हों। जन्म कल्याणक, गर्भ कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवल(ज्ञान) कल्याणक, उसे देखकर भी होता है। छठवें पृष्ठ पर, छठवें पृष्ठ पर। छठवें पृष्ठ पर। कल्याणक आदि की महिमा। दीक्षा कल्याणक होता है, उसे देखने से निमित्त बने विशेष में। अपने स्वभाव का आश्रय करके हुआ, तब उस समय वहाँ लक्ष्य था, वहाँ से छूटकर यहाँ गया, इतनी बात है। परन्तु उससे हुआ नहीं।

तीन काल-तीन लोक में **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** (समयसार) ११वीं गाथा। भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन तीन काल-तीन लोक में होता है। **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** त्रिकाल भूतार्थ सामान्य द्रव्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** यह सब निमित्त के कथन ज्ञान के कहे जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कुछ के जातिस्मरण,... किसी को जातिस्मरण होकर सम्यग्दर्शन हो जाता है। ओहोहो! ऐसे भव और यह! एकदम अन्दर में चला जाता है। **कुछ के वेदना का अनुभव...** नारकी के (दु:ख)। नारकी को वेदना बहुत होती है, तब विचार आया हो और अन्दर उतर गया हो तो वह वेदना निमित्त कहलाती है। बाकी तो वेदना अनन्त बार

(अनुभव) की है। परन्तु जब उस वेदना का विचार आने पर अन्दर में उतरा, तब उसे निमित्त कहा जाता है। विशेष निमित्त कहा जाता है। वे सामान्य चार कहे। समझ में आया? **कुछ के धर्म श्रवण...** किसी को धर्म श्रवण होकर समकित होता है। सुनकर। ऐसा जहाँ सुने वहाँ अन्दर ऐसा हो जाता है, ओहोहो! ऐसा मार्ग वीतराग का! ओहो! अलौकिक निर्विकल्प कल्पवृक्ष मेरा पड़ा है न अन्दर। चिन्तामणि रत्न का हीरा मैं हूँ न! ऐसा भगवान ने सुनाया और उतर गया अन्दर। समझ में आया? किसी को धर्म श्रवण... यह विशेष कारणों की व्याख्या चलती है। **कुछ के देवों की ऋद्धि का देखना...** देवों की बड़ी ऋद्धि ऐसे देखे, ओहोहो! यह वह क्या है यह! ऐसे यह पुण्य के फल, यह पुण्य किसने बाँधा और किस प्रकार का? ऐसा विचार करने पर अन्दर में उतर जाये और बाह्य का विशेष निमित्तकारण कहलाये। व्यवहार से बात है। आहाहा!

इत्यादि बाह्य कारणों द्वारा मिथ्यात्वकर्म का उपशम होने से उपशमसम्यक्त्व होता है। लो! **तथा इन सात प्रकृतियों में छह का तो उपशम या क्षय हो और एक सम्यक्त्व प्रकृति का उदय हो, तब क्षयोपशम...** पहली उपशम की व्याख्या की। सात का उपशम हो जाये, वह उपशम। छह का उपशम और एक का उदय। उपशम वह क्षय और एक का उदय, उसे क्षयोपशम कहते हैं। **इस प्रकृति के उदय से किंचित् अतिचार—मल लगता है...** (उस) समय में बन्ध होता नहीं। **सात प्रकृतियों का सत्ता में से नाश हो, तब क्षायिक सम्यक्त्व होता है।** लो! यह सम्यग्दर्शन जिनदर्शन का मूल यह मूर्ति, उसका मूल सम्यग्दर्शन। आहाहा! समझ में आया? विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक २०-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-५

(अष्टपाहुड़) चलता है। उसमें दर्शनपाहुड़ है। कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में पहले दर्शनपाहुड़ कहते हैं। दर्शनपाहुड़ की बात ऐसी है पहली-मुख्य कि जो आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—तीनों अन्तर में प्रगट हुआ हो। आत्मा चिदानन्द... यहाँ दर्शन में सम्यग्दर्शन की व्याख्या अब करते हैं। दर्शन तो तीनों मिलकर दर्शन है। आत्मा में, अन्तर शुद्ध चैतन्य आत्मा, उसके अनुभव में प्रतीत होना, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है और निश्चयज्ञान वह आत्मा के अवलम्बन से हुआ हो, उसका नाम सच्चा ज्ञान कहते हैं और उसमें लीनता, चारित्र की आनन्द की लीनता, वह निश्चयचारित्र। उसका व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह समकित का व्यवहार और ज्ञान का व्यवहार... भगवान कहते हैं, शास्त्र का ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान का व्यवहार, वह व्यवहार। और पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, वह व्यवहार (चारित्र)। यह निश्चय और व्यवहार दो हो और जिसकी नग्नमुद्रा हो, उसको यहाँ दर्शन कहने में आता है।

मुमुक्षु : धर्म की मूर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म की मूर्ति है। आहाहा!

अपना स्वरूप भगवान आत्मा, आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्तर—अभ्यन्तर दृष्टि में, राग बिना, मन के सम्बन्ध बिना अपने आत्मा के आनन्द की प्रतीति अनुभव में हो, वह सम्यग्दर्शन है और उसका ज्ञान और चारित्र तीनों मिलकर मोक्षमार्ग है। और मोक्षमार्ग में व्यवहार जो है व्यवहारसमकित, व्यवहारज्ञान, वह व्यवहारमोक्षमार्ग है। और बाह्य में जिसकी नग्नमुद्रा हो—यह तीनों मिलकर दर्शन कहने में आता है। पण्डितजी! दर्शन की मूर्ति है यह। वीतरागस्वरूपी परमात्मा अपना आनन्दमूर्ति प्रभु उसकी वीतरागी प्रतीति, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र, वह निश्चय और साथ में रागरूप भाव व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारज्ञान, वह रागभाव है और साथ में नग्नमुद्रा। यह तीनों मिलकर जैनदर्शन अथवा दर्शनस्वरूप वह दर्शन की मूर्ति है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि तो नग्न ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह भाव हो तो। अकेली नग्न (दशा) करे? अकेला नग्न तो अनन्त बार हुआ है।

अन्तर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध निरंजन आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है, उस आनन्द का वेदन होकर सम्यग्दर्शन हो, उसका नाम अभी दर्शन का पहला भाग सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह व्याख्या चलती है। दर्शन में पहला सम्यग्दर्शन कैसा? समझ में आया? आहाहा! वस्तु वीतरागपर्याय—वीतरागभाव उसके साथ उसके योग्य रागभाव, उसके साथ शरीर की नग्नमुद्रा—यह तीनों मिलकर यहाँ दर्शन कहने में आता है।

मुमुक्षु : जैनदर्शन यह है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

और जैसे दर्शन की श्रद्धासहित, ऐसे दर्शन की... मूल दर्शन वह है, तो मूल दर्शन की श्रद्धासहित जिसको आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, उसको यहाँ दर्शन का पहला भाग सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! सेठ! समझ में आया? ज्ञान का भाव सूत्र में लेंगे भाई! यहाँ दर्शन है न, तो तीन भाग में से दर्शन की व्याख्या यह सब करते हैं—सम्यग्दर्शन, उसके साथ का ज्ञान वह सूत्र(पाहुड़) में कहेंगे। उसके साथ का चारित्र वह चारित्र(पाहुड़) में कहेंगे। समझ में आया कुछ? अरे! यह तो भाई! जिसे अन्दर जन्म-मरण चौरासी के अवतार करके दुःखी है वह। जन्म-मरण कर-करके दुःखी है। अनन्त ऐसे जन्म (किये)। अनादि का आत्मा है, वह नित्य आत्मा कहीं क्षणिक है? नित्य वस्तु अविनाशी अनादि का आत्मतत्त्व है। वह अनन्त काल रहे हैं। ऐसे आत्मा चौरासी के अवतार में अरे! ऐसी चीज़ होने पर भी जन्म-मरण में भटकता हुआ वह दुःखी है। उस दुःख से मुक्त होने का उपाय क्या है? समझ में आया? बीच में गुजराती आ जायेगी।

उसका उपाय आत्मा का सम्यग्दर्शन करना, वह पहला उपाय है। अथवा वह दर्शन का रूप जो वीतरागी पर्याय और राग और निमित्त नग्न, उसकी पहली श्रद्धा (होना), वह दर्शन का मूल है। समझ में आया? ऐसा दर्शन मूल वह है। और उस मूल

में फिर सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वीतरागी पर्यायसहित, रागसहित, नग्नसहित ऐसी दशा अनादि की वीतरागमार्ग में ऐसी चली आयी है। तो वह दर्शन का मूल कहने में आता है। आहाहा! और उसमें अब सम्यग्दर्शन क्या, वह बात चलती है। समझ में आया?

यहाँ आया है, देखो! सूक्ष्म अधिकार है भाई यह तो। अनन्त काल से उसने वास्तविक सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिन्होंने एक समय—सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसे आत्मा का स्वभाव जिसने प्रगट किया, ऐसे परमात्मा, जिनके मुख से निकला मार्ग जैनदर्शन, वस्तुदर्शन, स्वभावदर्शन है। आहाहा! वह दर्शन पूरे धर्म का मूल है। समझ में आया? और उस दर्शन में भी पहला सम्यग्दर्शन अभ्यन्तर है, उसकी बात यहाँ चलती है। पण्डितजी! आहाहा!

तीन प्रकार की व्याख्या आ गयी। **इस प्रकार उपशमादि होने पर जीव के परिणामभेद से तीन प्रकार होते हैं...** सम्यग्दर्शन का परिणाम तीन प्रकार का है। एक उपशम सम्यग्दर्शन, एक क्षायिक और क्षयोपशम, ऐसे तीन प्रकार हैं। समझ में आया? आत्मा का... शुद्ध भगवान आत्मा परिपूर्ण शान्तरस का पिण्ड, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। आहाहा! उस आत्मा के अन्दर उपशमभावरूप सम्यक् का परिणाम होना, वह प्रथम समकित कहने में आता है। और उसमें छह प्रकृति का उपशम और एक का उदय रहे, ऐसा आत्मा का परिणाम, उसको क्षयोपशमसमकित कहते हैं। और सातों का नाश होकर निर्मल सम्यग्दर्शन (हो), उसको क्षायिकसमकित कहते हैं। आहाहा! तीनों जीव के परिणाम हैं। समझ में आया? परिणाम अर्थात् उसकी अवस्था है—उसकी दशा है। त्रिकाल जो भगवान आत्मा नित्यानन्द उसका तीन प्रकार का परिणाम है। आहाहा! इसमें समझना भारी कठिन। जगत में बाह्य की चीज़ में इतना सब बेचारा दौड़ गया कि पूरी चीज़ पड़ी रही। अनन्त काल अनन्त... अनन्त काल।

तो कहते हैं, वह परिणाम अति सूक्ष्म है। भगवान आत्मा निर्विकल्पतत्त्व प्रभु शान्तरस और आनन्दरस का पिण्ड आत्मा, उसकी श्रद्धा का परिणाम सूक्ष्म है। समझ में आाय? सारा आत्मा अति सूक्ष्म है तो उसकी श्रद्धा का परिणाम तो सूक्ष्म है। आहाहा!

समझ में आया? अनन्त काल में कभी उसने सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट की नहीं। उसके बिना उसने व्रत, नियम और तप अनन्त बार किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो।'

मुमुक्षु : उसमें मिथ्यात्व मन्द होता होगा या नहीं होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द तो होता है अनन्त बार।

मुमुक्षु : तो कैसे धर्म नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द, वह धर्म है? मिथ्यात्व मन्द, अनन्तानुबन्धी का रस मन्द वह तो कर्मधारा में मन्द-तीव्र है, आत्मा में कहाँ वह बात है? आहाहा! क्या कहा, समझ में आा? क्या कहा? मिथ्याभ्रान्ति और उसका निमित्त कर्म दर्शनमोह, उसमें मन्द रस तो अनन्त बार किया था। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो..' तब। छहढाला में आता है न? छहढाला में आता है।

मुमुक्षु : मन्द करते-करते उसका अभाव होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होता मन्द कषाय करते-करते। उससे रहित होकर, रुचि छोड़कर स्वआश्रय चिदानन्द प्रभु, आत्मा का आनन्दनाथ, उसकी अन्दर स्व अपेक्षा से प्रतीति होना, पर की अपेक्षा बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : उसके थोड़े से प्रतिशत तो दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह थोड़े प्रतिशत देते हैं न! सौ में सौ प्रतिशत उसके। दोकड़ा कहते हैं? प्रतिशत। थोड़ा प्रतिशत दो राग की मन्दता को। एक अंश भी नहीं। आनन्दमूर्ति प्रभु...

मुमुक्षु : राग की मन्दता नहीं, मिथ्यात्व की मन्दता में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व की मन्दता में कुछ लाभ नहीं। ऐई! चेतनजी! अभव्य को भी मन्दता अनन्त बार होती है। क्या है उसमें? कभी मुक्ति नहीं पाने (वाला) जीव है, जैसे गोरडू मूंग और मठ होता है या नहीं? पानी से चढ़ता नहीं, बफता नहीं वह। भले चूरा होता है। पापड़ हो, सीझे नहीं, ऐसा अनन्त अभव्य जीव है, उसका भी मिथ्यात्व मन्द और अनन्तानुबन्धी मन्द अनन्त बार हो गया।

मुमुक्षु : किस प्रकार मन्द होता है? नौवें ग्रैवेयक जाये ऐसा होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नौवें ग्रैवेयक क्या? कितना मन्द! गृहीत मिथ्यात्व छूट गया। आहाहा! अगृहीत में भी मिथ्यात्व का रस मन्द है। ऐई! उससे क्या? वह कोई चीज़ है? आहाहा!

मुमुक्षु : यह सब समझकर क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको सत्य समझना हो तो यह है। अनन्त काल से चार गति में भटकते भटकते...

मुमुक्षु : आप तो सब पर्याय की बात करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की बात कहाँ है? ऐ... चेतनजी! मोक्षमार्ग यह पर्याय है। मोक्षमार्ग कोई द्रव्य, गुण नहीं। सिद्ध भी पर्याय है। पर्याय में कार्य होता है, द्रव्य में कार्य नहीं होता। द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वह तीन प्रकार के जो परिणाम हैं, वह सूक्ष्म हैं। यह कहते हैं। सम्यग्दर्शन के परिणाम सूक्ष्म हैं।

मुमुक्षु : स्वयं को पता नहीं चलता?

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता है। नहीं चलता (ऐसा है)?

मुमुक्षु : ... ऐसी बात नहीं कही।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अभी वह नहीं कहते हैं। स्वयं को भी (पता) चलता है और दूसरे को भी चलता है। परन्तु उसके लक्षण से चलता है। अति सूक्ष्म बोल है। आहाहा!

यह तो आगे कहा है न। अन्दर लिखा है इसमें। स्पष्टीकरण कर डाला है। यह किसी ने लिखा है। यहाँ कहा था व्याख्यान में वह। व्यवहार का शरण का अर्थ, ज्ञान से—अनुभूति से सम्यग्दर्शन का निर्णय करना, वह व्यवहार है। समझ में आया? इसमें लिखा है। आयेगा। किसी ने डाला है। व्याख्यान में आया है। व्यवहार का शरण अर्थात् क्या? आत्मा की अनुभूति होना, वह ज्ञानपर्याय है और उससे दर्शनपर्याय का निर्णय

करना कि यह दर्शन है, वही व्यवहार है। एक गुण की पर्याय से दूसरे गुण की पर्याय का निर्णय करना, वह व्यवहार है। आहाहा!

यह तो जिसका चार गति का दु:ख लगा हो। चार गति परिभ्रमण करते-करते अनन्त भव हुआ। कीड़ा, कागडा, कौआ, ओहोहो! नरक योनि, पशु। आहाहा! देखो न, आज एक शरीर वहाँ देखा था। गन्ध आती है। उसका शरीर होगा, तब बहुत आनन्द में होगा। इतनी गन्ध मारे सड़क के ऊपर। नीचे कोई मुर्दा पड़ा था, पशु का होगा। यह तो रजकण धूल है। गन्ध हो तो भी धूल है और सुगन्ध हो तो भी धूल है। यह तो मिट्टी है। आत्मा तो अन्दर अरूपी आनन्दकन्द प्रभु है। खबर नहीं (कि) क्या चीज़ है। आहाहा! अपनी चीज़ क्या है? और अपने में क्या नहीं है? और अपनी चीज़ किसमें नहीं है? खबर नहीं। ऐसा भेदज्ञान के बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। सम्यग्दर्शन परिणाम सूक्ष्म है, वह बात अभी करना है। समझ में आया?

वे परिणाम अति सूक्ष्म हैं, केवलज्ञानगम्य हैं,... सीधा देखने में केवलज्ञानी देखते हैं, ऐसा कहते हैं। आत्मगम्य है—अनुभूति से गम्य है। आयेगा। स्पष्टता करेंगे। **इसलिए इन प्रकृतियों के द्रव्य पुद्गलपरमाणुओं के स्कन्ध हैं, वे अति सूक्ष्म हैं,...** और उसका कर्म जो जड़ है, वह भी अति सूक्ष्म परमाणु सूक्ष्म है। **और उनमें फल देने की शक्तिरूप अनुभाग है, वह अति सूक्ष्म है,...** जड़कर्म में अनुभाग—फल देने की शक्ति वह है रूपी, परन्तु अति सूक्ष्म है। **और उनमें फल देने की शक्तिरूप अनुभाग है, वह अति सूक्ष्म है, वह छद्मस्थ के ज्ञानगम्य नहीं है।** अल्प ज्ञानी को सीधा ज्ञान से जानने में आये ऐसी चीज़ नहीं। **वे भी केवलज्ञानगम्य हैं।** कौन? प्रकृति, हों! पहले आत्मा का शुद्ध सम्यग्दर्शन का परिणाम वह अति सूक्ष्म और प्रकृति जो निमित्तरूप है, वह भी अति सूक्ष्म। दोनों केवलज्ञानगम्य सीधा है।

तथा उनका उपशमादिक होने से जीव के परिणाम भी सम्यक्त्वरूप होते हैं, वे भी अति सूक्ष्म हैं, वे भी केवलज्ञानगम्य हैं। तथापि जीव के कुछ परिणाम छद्मस्थ के ज्ञान में आने योग्य होते हैं, वे उसे पहिचानने के बाह्य चिह्न हैं,... बाह्य चिह्न हैं। सम्यग्दर्शन आत्मा की प्रतीति। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, उसकी प्रतीति के परिणाम

सीधे जानने में नहीं आते हैं। परन्तु बाह्य चिह्न से अनुभूति से जानने में आते हैं। आहाहा! **जीव के कुछ परिणाम छद्मस्थ के ज्ञान में आने योग्य होते हैं, वे उसे पहिचानने के बाह्य चिह्न हैं, उनकी परीक्षा करके निश्चय करने का व्यवहार है...** आहाहा! बाह्य चिह्न अनुभूति के साथ में ही सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन साथ में अनुभूति। आत्मा का ज्ञान और वेदन साथ में होता है। आहाहा! यह आत्मा के आनन्द के स्वाद के लक्षण से या अनुभूति के लक्षण से सम्यग्दर्शन का चिह्न जानने में आता है। वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : पहले सम्यग्दर्शन या व्यवहार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन व्यवहार नहीं। सम्यग्दर्शन तो निश्चय है। सम्यग्दर्शन के परिणाम को अनुभूति और आस्वाद आनन्द का स्वाद से जानना, वह व्यवहार है। एक पर्याय से दूसरी पर्याय का जानना, वह व्यवहार है। सम्यग्दर्शन व्यवहार नहीं, वह तो निश्चय है। आहाहा! देखो न, कितना अच्छा लिखा है! आहाहा! गृहस्थ है परन्तु चारों ओर से मेल करके बहुत स्पष्ट है। आहाहा! न्याय से एकदम वस्तुस्थिति है यह।

पहिचानने के बाह्य-चिह्न हैं, उनकी परीक्षा करके निश्चय करने का व्यवहार है - ऐसा न हो तो छद्मस्थ व्यवहारी जीव के सम्यक्त्व का निश्चय नहीं होगा और तब आस्तिक्य का अभाव सिद्ध होगा... आहाहा! **व्यवहार का लोप होगा - यह महान दोष आयेगा।** अन्तर अनुभव की दृष्टि में सम्यग्दर्शन का भान होता है। समझ में आया ? ऐसा न हो तो व्यवहार का लोप हो जाये। फिर यह समकिती है और स्वयं समकिती है, ऐसा निर्णय न हुआ तो व्यवहारी केवल अज्ञानी हुआ। बाहर में उसको चारित्र न हो और सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो, उसके चिह्न से जो जानने में न आये तो व्यवहार कैसे करना कि यह धर्मी है, यह गुरु है, शास्त्र है ? आहाहा! समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बातें हैं।

मुमुक्षु : सूक्ष्म ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय भी अनेक आते हैं।

आस्तिक्य का अभाव सिद्ध होगा, व्यवहार का लोप होगा—यह महान दोष आयेगा। इसलिए बाह्य चिह्नों को आगम, अनुमान तथा स्वानुभव... देखो तीनों। आहाहा! एक तो शास्त्र-आगम से जानना। एक बात। वह परोक्ष हुआ। अनुमान से

जानना, वह भी परोक्ष हुआ। स्वानुभव से जानना या अपने वेदन से जानना, स्वसंवेदन, ज्ञान ज्ञान से वेदने में आता है, उससे जानने में आता है।

मुमुक्षु : मुख्य चिह्न यही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य चिह्न। परन्तु यह बाह्य चिह्न।

मुमुक्षु : स्वानुभव भी बाह्य चिह्न? व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान की पर्याय है न। ज्ञान की पर्याय है और यह दर्शन की पर्याय है।

मुमुक्षु : स्वगुण की पर्याय नहीं है, श्रद्धागुण की नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है। कितनी बात ली है देखो। आहाहा! समझ में आया?

बाह्य चिह्नों को आगम,... सिद्धान्त शास्त्र से, **अनुमान...** से। जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ मैं—ऐसी प्रतीति अनुमान में आती है। और **स्वानुभव...** में-प्रत्यक्ष वेदन में ज्ञान में शान्ति का वेदन और सम्यग्ज्ञान का वेदन (होना), उससे वह अनुमान से बाह्य चिह्न से जानने में आता है। समझ में आया कुछ? परीक्षा करके निश्चय करना चाहिए ऐसा। ऐसे... ऐसे ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बड़े व्यक्ति की हमारे छोटे व्यक्ति की परीक्षा करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं बड़ा है और स्वयं अपनी परीक्षा करे। ... क्या अपना। अपने स्वरूप की अपनी परीक्षा अपने करे। बाद में दूसरी चीज़ तो है। शास्त्र में चला है धवल में। यह जीव भव्य है या अभव्य? मतिज्ञान में विचार करने से उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निश्चय है, ऐसा ख्याल आ गया। उससे निश्चित करते हैं कि यह तो भव्य है। ऐसा धवल में पाठ है। यह प्राणी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवन्त है। निश्चय हों! आहाहा! ऐसा मतिज्ञान में अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा का बोल चला है। सर्वार्थसिद्धि आदि में केवल यह दक्षिणी है या नहीं, ऐसा चला है। फिर निर्णय किया अवग्रह, ईहा से। यह स्थूल की बात है। धवल में सूक्ष्म बात ली है। समझ में आया? कि यह व्यक्ति कौन है? काठियावाड़ी है (कि) दक्षिणी इतना पहले। बाद में निर्णय

करना कि यह काठियावाड़ी लगता है। बाद में धारणा करना अवाय... करके। यहाँ तो आत्मा में लिया है धवल में। यह प्राणी भव्य है कि अभव्य ? मोक्ष जानेयोग्य है कि मोक्ष जानेयोग्य नहीं ? ऐसा जहाँ मतिज्ञान काम करता है तो उसका विचार करते हैं कि ओहो! निश्चयसम्यग्दर्शन दशा बराबर जानते हैं। और निश्चयज्ञान और स्वरूप की रमणता सम्यग्दृष्टि को मतिज्ञान में पर का भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भान होता है। आहाहा! समझ में आया कुछ ? समझणुं कांई, यह काठियावाड़ी भाषा है। समझ में आया कुछ ? गुजराती आ जाये न थोड़ी-थोड़ी। आहाहा! समझ में आता है या नहीं ?

भगवान आत्मा 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसे आत्मा की अन्तर प्रतीति स्व के आश्रय से होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन निश्चय कहने में आता है। वह कैसे परखने में आता है ? वह बात चलती है। आहाहा! कि आगम से, अनुमान से और स्वसंवेदन से। **वे चिह्न कौन से हैं, सो लिखते हैं...** देखो! **मुख्य चिह्न तो उपाधिरहित शुद्धज्ञान चेतनास्वरूप आत्मा की अनुभूति है।** मुख्य चिह्न, हों! है वह भी बाह्य चिह्न। आहाहा! भगवान आत्मा राग का विकल्प जो राग है राग विकल्प। दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत सब शुभराग है। और गुण-गुणी का भेद भी करते हैं तो वह भी विकल्प राग है। तो उस राग की उपाधि से रहित। है ? **मुख्य चिह्न तो उपाधिरहित शुद्धज्ञान चेतनास्वरूप आत्मा की अनुभूति है।** केवल पवित्र भगवान आत्मा, वह ज्ञान शुद्ध चैतन्य उसमें विकल्प का अभाव होकर उपाधिरहित अपना अनुभव का परिणाम— अनुभूति वह उसका मुख्य चिह्न है। सम्यग्दर्शन को जानने में अनुभूति उपाधिरहित परिणाम वह बाह्य चिह्न सम्यग्दर्शन को जानने में है। अरेरे! बहुत सूक्ष्म बात है। समझ में आया ?

यद्यपि यह अनुभूति ज्ञान का विशेष है,... आहाहा! अनुभव, वह तो ज्ञान की दशा है। **तथापि वह सम्यक् होने पर होती है,...** आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान उसकी प्रतीति के साथ में अनुभूति होती है। है ? **सम्यक् होने पर (ही अनुभूति) होती है,...** अनादि अज्ञान में तो राग और द्वेष का ही वेदन—अनुभूति है। संकल्प-विकल्प... संकल्प-विकल्प का वेदन वह तो दु:ख है। आहाहा! बराबर होगा यह ? भगवानजीभाई!

ये सब पैसेवाले कहलाते हैं न धूलवाले। धूल के स्वामी। करोड़पति, अरबोंपति। ऐई! सेठ! तुम दुःखी हो, ऐसा कहते हैं यहाँ। परसन्मुख का लक्ष्य है कि यह पैसा मेरे, स्त्री मेरी, प्रतिष्ठा मेरी वह मिथ्यात्व का लक्षण महा दुःखरूप उपाधि है। आहाहा! उस उपाधि से रहित निरुपाधि ज्ञान का अनुभव होना, वह समकित का बाह्य लक्षण है। मुख्य चिह्न में यह है। आहाहा! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ का मार्ग अलौकिक मार्ग है, भाई! चौरासी के अवतार में भटक-भटककर अनन्त काल गंवाया है। परन्तु यह सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह समकित, वह समकित नहीं। वह तो यह निश्चय हो, तब उसको व्यवहार कहने में आता है। ओहोहो! भगवान आत्मा महिमावन्त प्रभु पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन उसकी अन्तर में अनुभूति के साथ में प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

कहते हैं कि यह बाह्य चिह्न कहते हैं। क्योंकि सम्यक्त्व होने पर होती है, इसलिए बाह्य चिह्न है, ऐसा। कौन? अनुभूति। ज्ञान का अनुभव, वह सम्यक् होने पर होती है। उस कारण से अनुभूति को बाह्य चिह्न कहने में आता है। **ज्ञान तो अपना अपने को स्वसंवेदनरूप है...** ज्ञान है, वह अपने आपको वेदता है। स्वसंवेदन। ज्ञानस्वभाव जो चैतन्य प्रज्ञाब्रह्म भगवान, प्रज्ञा—ज्ञानस्वरूप वह ज्ञान, ज्ञान से वेदन में आवे। राग नहीं, मन नहीं, पर नहीं। आहाहा! सेठ! ऐसा तो कभी-कभी सुनने को मिले।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : समझने की दरकार कहाँ की है अभी तक। आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञान तो अपना अपने को स्वसंवेदनरूप...** स्वसंवेदन। जानन—ज्ञान स्वभाव जो है, यह जानना, जानना, वह ज्ञान स्व—अपने से प्रत्यक्ष अन्दर ज्ञान का वेदन हो, राग और निमित्त के सम्बन्ध नहीं, उसका नाम अनुभूति का स्वसंवेदन लक्षण है। वह समकित का बाह्य लक्षण है। आहाहा! मूल चीज़ सम्यग्दर्शन बिना सब बात चलती है अभी। सम्यग्दर्शन क्या है? वह तो बस भगवान की श्रद्धा करो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह समकित। वह समकित नहीं है। वह तो मिथ्यात्व है भेद की श्रद्धा। समझ में आया?

वस्तु भगवान चैतन्यमूर्ति अस्तित्व-मौजूद चीज़ है। परमानन्द और शान्त का रसरूप मौजूद चीज़ है आत्मा। जैसे शक्कर में मिठास पड़ी है और सफेदपना जैसे है; वैसे भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और शुद्धता पड़ी है। आहाहा! ऐसा भगवान यह आत्मा अपने आत्मा के अन्तर में बहिर्मुख की दृष्टि छोड़कर अन्तर्मुख दृष्टि करके जो ज्ञान का वेदन आया, उसका नाम अनुभूति है और यह अनुभूति सम्यग्दर्शन का मुख्य बाह्य चिह्न। आहाहा! आणन्दभाई! ऐसा सूक्ष्म तो कभीकभार मिलता है। आहाहा!

उसका रागादि विकाररहित शुद्धज्ञानमात्र का अपने को आस्वाद होता है कि... देखो! अब आस्वाद आया। ज्ञान का वेदन कहकर फिर आस्वाद कहा। उसके पुण्य-पाप का विकल्प जो उठते हैं, वृत्ति उठती है दया, दान, भक्ति, भगवान का स्मरण, वह सब राग है। सब विकल्प वृत्तियाँ है, दुःख है। आहाहा! बहिर् ऊपर लक्ष्य जाने से जो वृत्ति उठती है, वह सब दुःख है। समझ में आया? यह विकार है, वह कर्म के... देखो! **अपने को आस्वाद होता है कि— रागादि विकाररहित शुद्धज्ञानमात्र का...** केवल ज्ञानमात्र ज्ञानभाव स्वभावमात्र। जिसमें राग का लेश अंश नहीं। आहाहा! सूक्ष्म तो है, भाई। '**दंसण मूलो धम्मो**' यह सिद्ध करते हैं न? दर्शन मूल धर्म तो यह मूर्ति है। उसका मूल पहला सम्यग्दर्शन। आहाहा! समझ में आता है? आहाहा!

मुमुक्षु : समझ में आवे परन्तु सूक्ष्म बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म है परन्तु क्या करे? दूसरी चीज़ क्या है? जो रीत है, उसकी रीत से है न। आहाहा! उसने कभी परिचय किया नहीं, उसका विचार किया नहीं कि मैं अन्दर कौन हूँ? आत्मा जो वस्तु कहने में आती है आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... परन्तु वह आत्मा है कौन? और कैसा है? कौन है? कहाँ है?

मुमुक्षु : उघाड़वाली भूमिका में निश्चित करना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले शुरुआत में निर्णय करना चाहिए। आहाहा!

मुमुक्षु : एक ज्ञानगुण जो कहा एक ज्ञानगुण...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों? गुण की पर्याय में, एक साथ में सब गुण की पर्याय है न? परन्तु ज्ञान जानता है, इसलिए ज्ञान-श्रद्धान लिया है। ज्ञानपर्याय के साथ अनन्त गुण

की पर्याय साथ में ही है। साथ में ही है। परन्तु ज्ञान का वेदन है, वह प्रत्यक्ष है। दूसरी चीज़ श्रद्धा, चारित्र, आनन्द वह अपना अस्तित्व रखते हैं, परन्तु वह अपने को नहीं जानते, पर को भी नहीं जानते। ज्ञान जानता है। आहाहा! क्योंकि आत्मा में तो अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, चारित्र, स्वच्छता, प्रभुता, विभूता (आदि) अनन्त। ज्ञान के सिवा प्रत्येक गुण अपनी मौजूदगी रखते हैं। परन्तु यह मौजूदगी है या नहीं उसका उसको ज्ञान नहीं है। उसका ज्ञान, ज्ञान में है। ज्ञान की पर्याय में सारा द्रव्य, सारे गुण, सारे अनन्त गुण और स्वयं—सब ज्ञानगुण की पर्याय में जानने में आता है। असाधारण एक गुण हो तो ज्ञान की पर्याय एक ही है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ अधिकार आया है तो लेना पड़े न? सूक्ष्म पड़े फिर भी। यहाँ तो अपने ३९वाँ वर्ष चलता है बाह्य परिवर्तन का। यहाँ तो सुननेवाले तो बहुत हैं।

कहते हैं कि प्रभु आत्मा... यहाँ तो जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन अर्थात्। अेटले—अर्थात् आत्मा परिपूर्ण भगवान अनन्त गुण का धाम, उसकी अन्तर्मुख की प्रतीति, अन्तर्मुख का ज्ञान, अन्तर्मुख की लीनता और उसके साथ भूमिका प्रमाण में राग की मन्दता का भाव हो, वह व्यवहार और उस भूमिका में शरीर की नग्नदशा ही होती है। ऐसी (अन्तर) दशा हो उसके लिये। जिसको ऐसी दशा नहीं है, उसकी नग्नदशा अनन्त बार की, वह कोई चीज़ है नहीं। समझ में आया? आहाहा! उस दर्शन में सम्यग्दर्शन मूल पहली चीज़ है। समझ में आया? और उस सम्यग्दर्शन में, ऐसा मार्ग है मोक्ष का मार्ग ऐसी श्रद्धासहित अन्तर के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, उसका बाह्य लक्षण अनुभूति है, ऐसा कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन से सम्यग्दर्शन सीधा जानने में आता नहीं। सूक्ष्म है। सीधा जानने में नहीं आता। बहुत सूक्ष्म है। वह केवलज्ञानी जानती हैं। यहाँ तो ज्ञान से जानने में आता है। आहाहा! समझ में आया कुछ? देखो न, गृहस्थाश्रम में इतना लिखा है।

मुमुक्षु : पंचम काल के पण्डित होंगे यह?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल के पण्डित होंगे? सेठ! यह लिखनेवाले पंचम काल के हैं या चौथे काल के? यह तो समझने के लिये कहते हैं। आहाहा! ऐसा कहते

हैं कि यह तो चौथे काल की चीज़ है। पंचम काल में कोई दूसरा मार्ग होगा। काल लागू पड़ता ही नहीं।

मुमुक्षु : कुछ तो सुधार होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुधार होना चाहिए न। यह जो अज्ञान मानते हैं, उसमें सुधार करते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा वह सम्यग्दर्शन—उसमें सुधार होता है। वह तो बिगाड़ है। अपना भगवान पूर्णानन्द प्रभु, जैसी उसकी मौजूदगी—अस्ति है, ऐसा ही प्रतीति में ज्ञान अनुभूति के साथ में आना। आहाहा!

उपाधिरहित... है न? रागादि विकाररहित। पहले उपाधिरहित कहा पहली लाईन में, उसका स्पष्टीकरण किया उपाधि अर्थात् क्या? **रागादि विकाररहित...** विकल्प की उपाधि शुभराग की उपाधि भी जहाँ नहीं। आहाहा! ऐसे **विकाररहित शुद्धज्ञानमात्र...** केवल प्रभु चैतन्यमूर्ति ज्ञान। ज्ञान प्रज्ञाब्रह्म ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा है। आहाहा! वह **शुद्धज्ञानमात्र का अपने को...** देखो! अपने को अपने में, ऐसा कहते हैं। **आस्वाद होता है कि जो यह शुद्धज्ञान है, सो मैं हूँ...** आहाहा! बड़े अक्षरों में लिखा है। **जो यह शुद्धज्ञान है, सो मैं हूँ और ज्ञान में जो रागादि विकार हैं, वे कर्म के निमित्त से उत्पन्न होते हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है।** ओहोहो! दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, पूजा, यात्रा के जो विकल्प उठते हैं, वह मैं नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन में भान होता है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धज्ञान है, सो मैं हूँ और ज्ञान में जो रागादि विकार हैं, वे कर्म के निमित्त से उत्पन्न होते हैं,... उपाधि (है)। **वह मेरा स्वरूप नहीं है।** मैं निरुपाधि चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा (हूँ)। आहाहा! ऐसी बात कभी आती है विशेष। आहाहा! सूक्ष्म पड़े तो क्या करे? **इस प्रकार भेदज्ञान से...** इस प्रकार का अर्थ? मैं चैतन्य ज्ञानस्वरूप हूँ और यह रागादि विकार उपाधि पर के निमित्त से है, ऐसा दो के बीच में भेदज्ञान होना। आहाहा! भेद हुआ न? तो भेद (हुआ) तो दो आये न? कि मैं शुद्धज्ञानमूर्ति हूँ और रागादि विकार पर के निमित्त से उपाधि उत्पन्न हुई है, वह मेरी नहीं।

इस प्रकार भेदज्ञान से ज्ञानमात्र के आस्वादन को... ज्ञानमात्र के स्वाद में **ज्ञान**

की अनुभूति कहते हैं... आहाहा! यह ज्ञान का आस्वादन आना, उसको ज्ञान की अनुभूति कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? 'मूळ मार्ग सांभळो जिननो रे...' वीतराग का मार्ग यह है। सर्वज्ञ परमात्मा तीन काल—तीन लोक जिनको अरिहन्तपद में जानने में आया, उस अरिहन्त की मुख की दिव्यध्वनि का यह भाव है। आहाहा! अरेरे! मनुष्यदेह पाया और इसकी समझ भी नहीं, उसकी खबर भी नहीं, उसको क्या निर्णय और क्या चीज़ है, उसकी खबर पड़ती नहीं। आहाहा!

वह ज्ञानमात्र... भेदज्ञान कहा न? मैं तो शुद्धज्ञान हूँ। शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञानस्वरूपी मैं हूँ और रागादि पर है, मेरा स्वरूप नहीं। ऐसा दोनों के बीच में भेदज्ञान से ज्ञानमात्र का आस्वादन (होना), राग का स्वाद नहीं, ज्ञानमात्र का आस्वादन (होना), उसको ज्ञान की अनुभूति कहते हैं। आहाहा! सेठ! पुस्तक है या नहीं घर पर? घर पर है? नहीं है, ठीक। यहाँ से पहले लिया था न? पहले लिया था ना? कहते थे न? यह पुस्तक थी न पहले? तुम्हारे पास थी?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक। अभी अपने आया नहीं है पार्सल। वहाँ से निकल गया है। रेल है न। बारह, पन्द्रह दिन हो गये।

मुमुक्षु : आदमी भेजा था। जंक्शन में वहाँ कहीं पड़ा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़ा होगा।

मुमुक्षु : यहाँ से जाके बाहर ... पड़ा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक कहते हैं सेठ। वहाँ पड़ा होगा। उनको मालूम होगा न। व्यापारी हैं।

मुमुक्षु : ऐसा होता है कई बार।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। बात सच्ची है। ऐसा होता है। फिर जहाँ पड़ा हो, वहाँ पड़ा रहे। व्यक्ति जाये तो, हमारा माल क्यों यहाँ पड़ा है?

मुमुक्षु : ...वहीं पड़ा रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। क्या कहते हैं? ओहोहो! कितनी बात ली है!

इस प्रकार... इस प्रकार। मैं यह ज्ञान शुद्ध हूँ, यह रागादि पर है—ऐसे ज्ञानमात्र का आस्वादन को ज्ञान की अनुभूति कहते हैं। आहाहा! **वही आत्मा की अनुभूति है।** यह ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है। (समयसार) १४-१५ (गाथा में) आता है। १४ में आता है। आहाहा! **तथा वही शुद्धनय का विषय है।** देखो भाषा! वहाँ भी ऐसा कहा है १४ में। आत्मा की अनुभूति कहो, आत्मा कहो, शुद्धनय कहो। नहीं तो शुद्धनय तो वास्तव में त्रिकाली चीज़ को, त्रिकाली चीज़ को शुद्धनय कहा ११वीं गाथा में। समझ में आया? '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' भगवान ने भूतार्थ—सत्यार्थ पूर्ण स्वरूप उसको ही शुद्धनय कहा है। परन्तु यहाँ तो शुद्धनय का विषय कहो तो भी द्रव्य है और द्रव्य के आश्रय से पर्याय प्रगट हुई, वह भी शुद्धनय के विषय में अभेद गिनने में आती है। क्योंकि व्यवहारनय का विषय भेद और राग है। उस कारण से पहले कहा था। द्रव्यार्थिकनय की यह बात चली और अब व्यवहार की बात करते हैं। समझ में आया? पहले बात आ गयी है।

द्रव्यार्थिकरूप निश्चयनय से साधा हुआ धर्म एक ही प्रकार है। इस ओर है। चौथे पन्ने पर है। अब व्यवहारनय पर्यायाश्रित कहते हैं। **द्रव्यार्थिकरूप निश्चयनय से साधा हुआ धर्म...** देखा! है तो शुद्धपर्याय। परन्तु उसको द्रव्यार्थिकनय का निश्चयनय से साधा हुआ धर्म, ऐसा कहा। आहाहा! शुद्ध पर्याय हुई न? शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के आश्रय से हुआ है तो उसको निश्चयनय कह दिया (कि) वह शुद्धनय है। क्योंकि वह रागादि भाव उत्पन्न होता है, वह व्यवहार बताना है। तो इस पर्याय को निश्चय बताना है। आहाहा! नहीं तो वास्तव में तो शुद्धनय का विषय तो ध्रुव है। परन्तु ध्रुव के आश्रय से जो निर्मलदशा उत्पन्न हुई, उसके साथ में राग है, उसको व्यवहार कहना है तो इसको निश्चय कहते हैं। वह अशुद्धनय है, तो यह शुद्धनय है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धनय का विषय है। **ऐसी अनुभूति से शुद्धनय के द्वारा...** ऐसी अनुभूति से शुद्धनय के द्वारा, **अनुभूति से शुद्धनय के द्वारा ऐसा भी श्रद्धान होता है कि जो सर्वकर्मजनित रागादिभाव से रहित...** मैं तो कर्म और राग—विकल्प से रहित **अनन्त**

चतुष्टय मेरा स्वरूप है। आहाहा! पहले शुद्धज्ञानमात्र हूँ—ऐसा कहा था न? शुद्धज्ञान हूँ; रागादि पर है। अब उस शुद्धज्ञान के साथ अनन्त चतुष्टय को मिलाया। समझ में आया? मैं शुद्धज्ञान हूँ, राग पर है।—ऐसी अन्तर में ज्ञानमात्र की अनुभूति भेदज्ञान से हो। तो अब कहते हैं कि ज्ञानमात्र जो कहा उसके साथ अनन्त चतुष्टय है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, वह अन्दर साथ में है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय या गुण?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण... गुण त्रिकाल। ऐसा मैं हूँ, ऐसा पर्याय मानती है। रागभाव से रहित... कहाँ आया? **अनन्त चतुष्टय मेरा स्वरूप है,...** पर्याय ने ऐसा निर्णय किया कि अनन्त चतुष्टय मेरा स्वरूप है। मेरी चीज़ है जो आत्मा, उसमें अनन्त ज्ञान है। ज्ञान की मर्यादा क्या? जिसका स्वभाव ज्ञान, आनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य। आहाहा! अरे! उसके घर की उसको खबर नहीं। उसके घर की उसको खबर नहीं। 'घर का लड़का चक्की चाटे, पड़ोसी को आटा।' क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : घर का सुत कुँवारा डोले पड़ोसी को फेरा...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **अनन्त चतुष्टय मेरा स्वरूप है,...** आहाहा! ऐसा कहा न? अनुभूति से शुद्धनय का ऐसा श्रद्धान होता है। ऐसा कहा न? ऐई! छोटाभाई! **ऐसा भी श्रद्धान होता है... मैं सर्व कर्मजनित रागादिकभाव से रहित अनन्त चतुष्टय मेरा स्वरूप है,...** आहाहा! **अन्य सब भाव संयोगजनित हैं...** दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि, भगवान का स्मरण, भक्ति आदि यह सब, राग है। वह संयोगजनित उपाधि है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसी आत्मा की अनुभूति, सो सम्यक्त्व का मुख्य चिह्न है।** यह मुख्य चिह्न बताने को इतनी बात कही। आहाहा! अरेरे! भगवान साक्षात् प्रभु चैतन्यज्योत, प्रज्ञाब्रह्म जलहल ज्योति ज्ञानस्वरूपी परमात्मा आत्मा स्वयं, उसका अनुभव—ज्ञान की अनुभूति पर्याय में (हो), वह अनुभूति समकित का मुख्य चिह्न है। समझ में आया?

यह मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी के अभाव से समकित होता है,... आहाहा! यह तो मिथ्या विपरीत अभिप्राय और अनन्तानुबन्धी अस्थिरता का, स्वरूपाचरण से विरुद्ध

ऐसा अनन्त अभाव से समकित होता है। तब तो उसको चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ उत्पन्न होती है। आहाहा! तब तो उसको अविरती सम्यग्दृष्टि कहने में आता है। आहाहा! श्रावक तो बहुत दूर रह गये। सच्चे हों! ये बाड़े के नहीं। बाड़े के है न, ये सभी श्रावक। बाड़े के श्रावक वह श्रावक है ही नहीं। अभी सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी खबर नहीं (तो) श्रावक कहाँ से हुआ? समझ में आया? और साधु जो कहते हैं वह भी सम्यग्दर्शन बिना साधु कहाँ से आया? सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! जगत की मानी हुई चीज़ है। वीतराग की मानी हुई चीज़ नहीं। आहाहा!

जिसको अन्तर आत्मा में आनन्दस्वरूप प्रभु ज्ञानस्वभावी अनन्त चतुष्टय स्वरूप ऐसी चीज़ की अन्तर्मुख होकर आनन्द का वेदन सहित ज्ञान की अनुभूति न हो तो वहाँ समकित दर्शन है नहीं। आहाहा! उस बात की तो बात ही नहीं है, वह तो मानो कुछ नहीं। यह करो, व्रत करो, तप करो, अपवास करो, यात्रा करो। आहाहा! समझ में आया? वह सब राग की क्रिया है और उसमें धर्म मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

कहते हैं, वह उसका **मुख्य चिह्न है।** (अनन्तानुबन्धी) अभाव होता है, उसका चिह्न यह अनुभूति। **उस चिह्न को ही सम्यक्त्व कहना, सो व्यवहार है।** देखो भाषा! है न? ज्ञानगुण की अनुभूति को ही समकित कहना, वह व्यवहार है। सम्यग्दर्शन की पर्याय भिन्न है, अनुभूति की भिन्न है। उसको अविनाभावी साथ में है तो उस अनुभूति को ही समकित कहना, वह व्यवहार है। यह व्यवहार है, दूसरा नहीं। उसकी परीक्षा की व्याख्या करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ६ और ७
आवाज खराब होने से वे प्रवचन नहीं लिये गये हैं।

भाद्र कृष्ण १२, रविवार, दिनांक २३-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-८

यह अष्टपाहुड़ है। सम्यग्दर्शन के लक्षण की बात चलती है। मोक्षमार्ग क्या है? कि अपना चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व स्वभावभाव, (उसमें) अन्तर्मुख होकर पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए। यह सम्यग्दर्शन बिना किसी भी चीज़ (से) धर्म उसको होता नहीं। समझ में आया? अपनी चीज़ सम्पदा आनन्दस्वरूप, उसका अन्तर में अनुभव और दृष्टि बिना जितना व्रत, नियम, तप, पूजा, भक्ति, दान आदि करे, वह सब संसार में रुलने के लिये है। समझ में आया? पहले सम्यग्दर्शन और उसके साथ उसका आत्मा का ज्ञान, दूसरा ज्ञान हो—न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं परन्तु आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द है, ऐसा तलस्पर्शी अर्थात् उसका स्पर्श करके जो ज्ञान होता है, उसका नाम आत्मज्ञान है। उसके उपरान्त स्वरूप में लीनता, रमणता, आनन्द का प्रचुर संवेदन, उसका नाम चारित्र है। यह तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? और उन तीनों में से सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी बात चलती है।

सम्यग्दर्शन का लक्षण तो अन्तर्मुख स्वभाव-सन्मुख की प्रतीति है। मुख्य लक्षण तो अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान पूर्ण शुद्ध ध्रुव नित्य सामान्य वस्तु जो अनादि-अनन्त ऐसी जो चीज़ आत्मतत्त्व है, उसमें दृष्टि का प्रसार करना, वर्तमान ज्ञान की पर्याय को उसमें जोड़ देना। आहाहा! बहुत कठिन। उसने कभी किया नहीं। जन्म-मरण में दुःखी है वह। आहाहा! तो आत्मा के स्वरूप का अन्तर दृष्टिपूर्वक जो अन्तर ज्ञान होता है, उसका स्वरूप क्या है, वह बताते हैं। लक्षण, अन्तर लक्षण तो उसकी प्रतीति है। भान (होना कि) यह आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध है, ऐसी दृष्टि होकर प्रतीति होना, वह उसका मुख्य लक्षण है। परन्तु वह प्रतीति सीधी समझ में आती नहीं। तो उसका बाह्य लक्षण, अनुभूति उसका मुख्य बाह्य लक्षण, प्रधान बाह्य लक्षण है। समझ में आया? प्रधान अर्थात् मुख्य बाह्य लक्षण।

अनुभूति (अर्थात्) आत्मा के सम्यग्ज्ञान का वेदन। अनुभूति है तो ज्ञान की पर्याय, परन्तु साथ में आत्मा की शान्ति का वेदन सम्यक् श्रुतज्ञान में होता है, उसको यहाँ अनुभूति कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान! उसने कभी अनन्त काल में (किया नहीं)। आहाहा! अपनी कभी दया ली नहीं। पुस्तक आयी हैं, भाई! जिनको पढ़ना हो, वह ले लेना। पढ़ने के लिये। फिर रख देना। ज्यादा ले आये। समाप्त हो गये थे। आज रविवार है न। ... यहाँ तो वाँचन करके छोड़ देना।

मुमुक्षु : बिक्री विभाग में आ गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : १५० है न। १०० है। ५० आ गया। ठीक, आज रविवार है।

मुमुक्षु : सब बिक गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिक तो जायेगा उसमें क्या है?

मुमुक्षु : वह तो ऐसा कहते हैं कि नई आवृत्ति छपवाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो डेढ़ सौ अभी पीछे है न। पीछे पड़ा है बहुत। वह छपे तो सही पहले तुम्हारी भाषा में। यहाँ आईये यहाँ जगजीवनभाई! यहाँ जगह है।

आत्मा (ने) अनन्त काल में कभी दुःख का, भव का नाश करना, ऐसी दृष्टि कभी प्रगट की ही नहीं। अनन्त-अनन्त भव में मुनिपना लिया, त्यागी हुआ, हजारों रानियों को छोड़ दिया। और न छोड़े और संसार में रहा, वह तो महा दुःखी है ही, परन्तु हजारों रानी छोड़कर जो दीक्षित हुआ, नग्न मुनि हुआ, दिगम्बर हुआ, वनवास में रहते हैं, फिर भी अन्दर भगवान आत्मा का स्पर्श किये बिना उस क्रियाकाण्ड से भव का नाश होता नहीं। नेमचन्दभाई! ऐसी बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म बात है। ओहोहो!

दुःख और भव का नाश करने की पहली चीज़, जो भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द में भव और भव का भाव नहीं है, ऐसी चीज़ का अन्तर में स्वीकार, सत्कार, आदर, अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है और यह अनुभव उसका बाह्य लक्षण। मुख्य बाह्य लक्षण, हों! प्रधान बाह्य लक्षण। उसके बिना विशेष बाह्य लक्षण यह संवेग, निर्वेग, अनुकम्पा, आस्था यह विशेष लक्षण है। विशेष लक्षण में तो संवेग की व्याख्या, निर्वेग की व्याख्या आ गयी, अनुकम्पा की आ गयी। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन है, जिसको आत्मा का बोध जन्म-मरण नाश का बोध हुआ... आहाहा! भवभ्रमण में रुलते-भटकते उसकी योग्यता और सच्चा उपदेश गुरु का मिला और उसमें से आत्मा का स्पर्श हुआ तो वेदन में शान्ति... शान्ति... आदि होती है, वह तो प्रशम कहते हैं। बाह्य लक्षण (रूप) से प्रशम। अन्तर में शान्ति है, वह तो परमार्थ है। आहाहा! प्रशम अर्थात् यहाँ तो कषाय की मन्दता की अपेक्षा से कथन लिया है। पीछे संवेग होता है। अपना आत्मा आनन्दस्वरूप की जहाँ प्रतीति और भान हुआ, उसको तो अपना शान्ति आदि आत्मधर्म की अभिलाषा होती है। उत्साह। अपना स्वभाव पूर्ण हूँ, ऐसा उत्साह उसको होता है और वह धर्म का फल जो मुक्ति—परम आनन्दरूपी मुक्ति उसके प्रति उसका उत्साह वर्तता है। समझ में आया? धर्मी जीव का मोक्ष का मार्ग में और मोक्ष में उत्साह वर्तता है। यह उसका बाह्य लक्षण है।

और जब संवेग है तो साथ में निर्वेग (भी है)। पर से इच्छामात्र की क्रिया सबसे अभावरूप, वैराग्यरूप निर्वेद होता है। समझ में आया? अपना पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान, उसका अनुभव में प्रतीति सम्यक् हुआ तो उसमें अपना धर्म और धर्म के फल की उत्साह दशा, पर में उत्साह की निवृत्ति। समझ में आया? हो, चक्रवर्ती का राज भी हो सम्यग्दृष्टि को, परन्तु उत्साह की निवृत्ति है पर से। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन का बाह्य लक्षण कहने में आता है। मुख्य अनुभूति की अपेक्षा से यह विशेष बाह्य है। आहाहा! बहुत स्पष्ट किया है पण्डित जयचन्द्रजी ने।

एक-एक नरक में उसने अनन्त वेदना भोगी है। वह भगवान जाने और उसने भोगी है, ऐसी वेदना है। भूल गया। बाहर आया, जन्म हुआ, ऊंआ... ऊंआ... तुम वहाँ और हम यहाँ, हो गया जाओ। आहाहा! चौरासी के अवतार के दुःख, उसमें नरक की वेदना और निगोद में अल्पज्ञदशा की परतन्त्रता, वह महादुःख है। ऐसा दुःख अनन्त बार, अनन्त आदि बिना का काल, अनादि से ऐसे भोगते आता है। वह दुःख और भव का जिसको नाश करना हो तो उसको आत्मा का शरण लेना पड़ेगा। अपने आत्मा का शरण। अरिहन्त शरण मांगलिक में आता है या नहीं? अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू शरणं, केवलीपण्णंतो धम्मो शरणं, यह तो व्यवहार है। केवलीपण्णंतो धम्मो शरणं यथार्थ में है। आहाहा!

सर्वज्ञ ने कहा भगवान अरिहंतदेव ने परमेश्वर ने जो आत्मा पूर्ण शान्त का सागर है, उसमें अन्दर में घुस जाना। आहाहा! थोड़ा भाग लेने को, आनन्द का भाग लेने को अन्दर में जाना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। उसका बाह्य लक्षण में यह आया (कि) उसको अनुकम्पा होती है, सर्व प्राणी के प्रति। किसी के प्रति बैर विरोध नहीं। समझ में आया? धर्मी के अनुकम्पा लक्षण में सर्व जीव के प्रति, 'सर्व जीव है ज्ञानसम।' क्या है बाद में? 'धारे समताभाव'। सब भगवान स्वरूप से विराजमान है। पर्याय में-अवस्था में भूल हो तो उसको नुकसान है। समझ में आया? ऐसी सर्व प्राणी के प्रति मैत्री, अनुकम्पा ऐसा, यह सम्यग्दर्शन यथार्थ हो, उसका बाह्य लक्षण कहने में आता है।

पाँचवाँ। पाँच है न पाँच? **आस्तिक्य...** पाँच अंक है। वह पाँचवाँ आस्तिक्य। समझ में आया? सम्यग्दर्शन के बाह्य लक्षण में प्रशम, संवेग, निर्वेग, अनुकम्पा, यह चार आ गये। अब पाँचवाँ आस्तिक्य। **जीवादि पदार्थों में...** भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ने जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष—ऐसे पदार्थ (कहे, उसका) आस्तिक्यभाव (अर्थात्) इसकी सत्ता का स्वीकार (होना)। आहाहा! एक निगोद में इतना राई जितना कटका—टुकड़ा। थोड़ी गुजराती आ जाती है। पहले यह 'काणा' आया था उसे भाई हेमचन्दजी नहीं समझे। काणा क्या? काणा अर्थात् छिद्र। काणा आया था न कल। थोड़ी आ जाती है गुजराती हमारी। आहाहा!

कहते हैं कि एक टुकड़ा, निगोद है न आलू, प्याज, लहसुन, मूली, शकरकन्द इतना टुकड़ा लो तो उसमें तो असंख्य तो औदारिकशरीर है प्रभु! और एक शरीर में अब तक सिद्ध हुए अनन्त-अनन्त उससे अनन्तगुणा जीव एक शरीर में है। वस्तु ऐसी है। यह कहते हैं कि आस्तिक्य—श्रद्धा करनी चाहिए। समझ में आया? उसमें निगोद में भी अनन्त बार रहा। (लेकिन) भूल गया। बाहर में थोड़ी अनुकूलता हुई, कुछ पाँच-पच्चीस लाख पैसे हुए, कुछ शरीर ठीक, स्त्री, बच्चे, मकान, हजीरा (हुआ), ऐ... सेठ! हजीरा समझते हो? मकान को हम हजीरा कहते हैं। बड़ा दस-दस लाख का और पचास लाख का।

वोरा लोग होते हैं न वोरा? उसको जहाँ दफन करते हैं, उसको हजीरा कहते हैं। जामनगर में नदी के किनारे बड़ा हजीरा है। जामनगर में। हजीरा समझे? वहाँ वोरा मरे,

उसको दफन करते हैं। बड़ा हजीरा है। भाई! देखा है? सामने नदी के किनारे। वोरा होते हैं न, वह लोटिया वोरा। मर जाये, फिर उसे वहाँ दफन करते हैं, उसको हजीरा कहते हैं। इसको भी भगवान हजीरा कहते हैं। आहाहा! अपनी चीज़ क्या है, यह नहीं जाननेवाले जिन्दा मुर्दे हैं। ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। चलता शव-चलता मुर्दा। आहाहा! ओहोहो! कहते हैं मुर्दा है वह तो। चलता शव, ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! शव समझते हैं? शव नहीं समझते? यह मुर्दा। मुर्दे को शव नहीं कहते? ...नहीं समझते। भाषा बराबर नहीं है। शव नहीं होता है? मुर्दे को शव कहते हैं।

मुमुक्षु : मुसलमान शब्द लोगों ने प्रयोग किया। लाश कहते हैं लाश।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो शव कहते हैं। ऐसा पाठ है न संस्कृत में। अष्टपाहुड़ में पाठ है, इसमें। चलता शव है, मुर्दा है। जिसकी जीवनशक्ति चैतन्य की क्या है, अपने में सामर्थ्य कितना है और अपने स्वरूप में कितनी सम्पदा पड़ी है... आहाहा! उसका जहाँ भान नहीं है, वह चलता मुर्दा है। फिर करोड़ों, अरबोंपति हो। समझ में आया? जैसे यह धारूं होती है न, धारू। क्या कहते हैं? बड़े पहाड़ में इलिका रहती है न? नोळ और कौळ अन्दर रहते हैं। आहाहा! एकबार देखा था, जयपुर में बाहर गये थे। भाई साथ में थे पूनमचन्द गोदिका। दिशा के लिये बहुत दूर जाते थे। तो एक दूसरी जाति की थी ... क्या नाम था? नहीं? लोमड़ी। बहुत दूर गये थे जयपुर में। उसके ऊपर ... गुफा में रहती थी।

इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि लोमड़ी जैसा है, आत्मा का जिसको भान नहीं, यह सब मकान के पहाड़ में (रहनेवाला) लोमड़ी जैसा है। समझ में आया? अरे! तेरा जीवन क्या? तेरी शक्ति का सामर्थ्य क्या? जीवतरशक्ति दिमाग में आयी है। जीवतरशक्ति है न पहली? पहली है जीवतरशक्ति। अनन्त शक्ति में पहली जीवतरशक्ति है। जिसका ज्ञान-प्राण, दर्शन-प्राण, आनन्द-प्राण, सत्ता-प्राण स्वभाव है। आहाहा! ऐसी चीज़ की जिसको खबर नहीं, प्रतीति नहीं, वह चार गति में रुलनेवाला, भटकनेवाला दुःखी प्राणी है। तो यहाँ कहते हैं कि आस्था। सम्यग्दृष्टि को तो यह आस्था होती है। भगवान ने उतना कहा कि अभी तक छह मास और आठ समय, समझ में आया? समय। छह मास

और आठ समय उसमें ६०८ मुक्ति पाते हैं, सिद्ध सिद्ध। अभी तक कितने मुक्त हुए? ६०८, छह महीने और आठ समय में। उतने सिद्ध से... एक टुकड़ा लील, फूग—काई, आलू, शकरकन्द के टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में सिद्ध से अनन्त गुना जीव (होते हैं), ऐसी आस्था सम्यग्दृष्टि को होती है। समझ में आया? आहाहा! वह कहते हैं।

आस्तिक्य—जीवादि पदार्थों में अस्तित्वभाव... उसमें जीवादि में मोक्षपदार्थ भी आ गया। समझ में आया? जीव आदि है न? तो मोक्ष में अनन्त सिद्ध है। परमात्मा अनन्त सिद्ध हुए है। संसार का नाश कर अनन्त सिद्ध हुए, उसकी प्रतीति... पहले भगवान ने लिया है समयसार में। '**वंदित्तु सव्वे सिद्धे**' ओहो! अभी तक अनन्त परमात्मा हुए, उनको मैं मेरी ज्ञान की पर्याय में स्थापन करता हूँ। समझ में आया? यह जीवादि। यह तो शब्द संक्षिप्त है, भाव बड़ा है। जीव आदि। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष आदि **पदार्थों में अस्तित्वभाव, सो आस्तिक्यभाव है।** अस्तित्वभाव, उसमें अस्तित्वभाव, वह आस्तिक्यभाव है। आहाहा! मेरे जैसे अनन्त आत्मा हैं और अन्तरात्मा भी असंख्य हैं, परमात्मा अनन्त हैं, बहिरात्मा अनन्तगुणे हैं। आहाहा! समझ में आया? और उसमें तो संवर, निर्जरा भी आ गया। पुण्य-पाप के भाव, वह आस्रव है, दुःखरूप है—ऐसी आस्था समकिती को होती है। आहाहा! समझ में आया? और आत्मा में शुद्धस्वभाव के आश्रय से जितनी निर्मलता प्रगट हुई, उसका नाम संवर-निर्जरा है और पूर्ण निर्मलता, उसका नाम मोक्ष है। जीवादि पदार्थ में आ गया सब। आहाहा!

जीवादि पदार्थों में अस्तित्वभाव... 'है', ऐसा भाव है। 'है', ऐसा है। संसारी प्राणी अनन्त हैं, मोक्ष सिद्ध भगवान भी अनन्त हैं और अपना धर्म का साधन करनेवाले भी असंख्य हैं। समझ में आया? और धर्म का साधन नहीं करनेवाले अनन्त हैं। आहाहा! समझ में आया? अपने स्वरूप के पूर्ण जीवन की श्रद्धा हुई तो ऐसे सभी पदार्थों की श्रद्धा आस्तिक्यता होती है। बाह्य लक्षण कहते हैं न, बाह्य लक्षण। ऐसा हो और कोई अन्तर की प्रतीति न हो तो उस अपेक्षा से बाह्य लक्षण कहा है। परन्तु अन्तर की जहाँ प्रतीति है, वहाँ ऐसा बाह्य लक्षण होता है। आहाहा!

एक समय में तीन काल—तीन लोक जाने आत्मा, ऐसा केवलज्ञानी होता है, उसकी उसको श्रद्धा होती है, जीवादि पदार्थ में। आस्तिक्य। एक समय, एक 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाये। क। उसमें एक समय। केवलज्ञानी परमात्मा अरिहन्तदेव महाविदेह में साक्षात् विराजते हैं सीमन्धर प्रभु। ऐसे अनन्त सिद्ध और लाखों केवली विराजते हैं। तो एक समय में तीन काल—तीन लोक जाने, ऐसे एक ज्ञानगुण की एक पर्याय में इतना सामर्थ्य है, ऐसी उसको श्रद्धा होती है। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि अपना सर्वज्ञस्वभाव है, उसकी तो प्रतीति आ गयी है। तो उस अपेक्षा से केवलज्ञान श्रद्धा में तो आ गया। तो केवलज्ञान जगत में है, उसकी जो श्रद्धा, उसको आस्तिक्य होती है। आहाहा! समझ में आया?

जीवादि पदार्थों का स्वरूप सर्वज्ञ के आगम से जानकर... सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त देव त्रिलोकनाथ अरिहन्त परमात्मा, उनके मुख से जो आगम निकला, वह आगम से पदार्थ का ज्ञान होना चाहिए। लोग कल्पित कहकर कहते हैं (कि) एक आत्मा है और जड़ नहीं है, जड़ में आत्मा ... है। अनन्त नहीं है और केवल विज्ञान है और आत्मा को ... प्रमाण कहते हैं, कोई सारा व्यापक प्रमाण कहते हैं—वह सब कल्पना है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा ऐसा आगम में कहा, (ऐसा) जानकर। आहाहा! तो आगम निश्चित करना पड़ेगा न कि सर्वज्ञ का आगम क्या है? आहाहा! सर्वज्ञ क्या है जगत में? और सर्वज्ञ की वाणी क्या है? और वाणी में क्या पदार्थ कहा है? यह साधारण बात नहीं है। भाई! एक पाँच-दस लाख पैदा करने के लिये कितनी मेहनत करते हैं मजदूरी। मजदूरी... मजदूरी। ऐ... नेमचन्दभाई! कहो सेठ! क्या? मजदूरी करते हैं तुम सब मजदूरी। रात-दिन ऐसा करना... ऐसा करना... बड़ा मजदूर है। मजूर समझते हो? कुली। यह सुबह में काम नहीं करते? चार घण्टे। आठ बजे आये और बारह बजे चला जाये और दो बजे आये और छह बजे चला जाये। और तुम चार बजे आओ तो रात के दस बजे तक दुकान में। बड़ा मजदूर। कहो, नेमिचन्दभाई! क्या है इसमें? वह कुली होता है न? सुबह में आठ बजे आये बारह बजे चला जाये। बस। (दोपहर में) दो घण्टे बाद दो बजे आये तो छह बजे चला जाये। आपके दिन के पाँच बजे से रात के दस बजे तक। बारह बजे तक। ये बड़े मजदूर।

हमारी दुकान में ऐसा था, भाई! रात को नौ बजे निवृत्त होते थे, दस बजे निवृत्त होते थे। गाँव में साधु आये। आहाहा! हमारे वहाँ दस बजे तक काम चलता था दुकान पर। दुकान का धन्धा था न। तो गाँव में साधु आये साधु। उसमें थे न हम तो। साधु आये, तो हम तो भगत थे तो हम तो पहले चले जाते थे। दुकान का काम छोड़कर। हमारे भागीदार के भाई थे। रात को नौ बजे, दस बजे तक नामा लिखे। गाँव में साधु आये तो आठ बजे नामा लिखने के बाद जाये। फिर साधु बोले, आये रातडिया श्रावक। रात में आनेवाले। दिन में तो सामने भी न देखे। धन्धा होता है न। अभी तो बड़ा धन्धा है। ...लड़का है, मन्दिर बनाया है। हमारे ... लड़का भागीदार है। मन्दिर बनाया है। पूजा करे, भक्ति करे, शास्त्र वाँचन करे। ढाई लाख की आमदनी है एक वर्ष की आमदनी दुकान की। ढाई लाख।... भक्ति, पूजा, वाँचन करे। उस समय में तो कुछ नहीं था। रात को नौ बजे निवृत्त होकर जाये। आहाहा! ये बड़े मजदूर। यह सेठ तो कहते हैं, रात को बारह बजे तक (काम करे)। अरे रे!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही। ऐसी चीज़ जो संसार में रुलनेवाले मिथ्यादृष्टि अनन्त हैं, उसकी आस्था उसको होती है। और जो सम्यग्दृष्टि असंख्य हैं, पशु भी सम्यग्दृष्टि हैं। पशु हाथी, अश्व, सिंह, बाघ, आत्मभान है अन्दर ज्ञान का। (ऐसे) असंख्य हैं ढाई द्वीप बाहर। यहाँ कहते हैं कि उसको सबकी आस्था है। आगम के अनुसार है सब कितना जीव समकिती, कितना सिद्ध, कितना संसारी, कितना संवर, निर्जरा को साधनेवाले, ...उसकी उसको आस्था है। रंगुलालजी! समझ में आया? आहाहा! यह आस्था होती है या नहीं उसको? बुखार आया है। कुनैन ले, कुनैन। कुनैन कहते हैं न? क्या चीज़ है, क्या करती है, उसकी आस्था है। कुनैन ले और मर जाये। आहाहा!

हमारे यहाँ नहीं थे? भाई मलूकचन्दभाई नहीं? नहीं... भाई? यह मलूकचन्दभाई नहीं? उसने एक बार ... बुखार में।

मुमुक्षु : रेच।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लिया था? रेच, रेच। रेच लेना था। रेच लेते हैं न, उसकी जगह कुनैन आ गया। यह पूनमचन्द के पिता। पूनमचन्द है न उसका लड़का। चार

करोड़ रुपये मुम्बई। ४० लाख का मकान अभी लिया है। चार करोड़ हैं उसके पास। हमारे यह ब्रह्मचारी है न, उसके पिताजी हैं, उसके बड़े भाई हैं मलूकचन्द। ...आहाहा! उसमें आस्था हो कि कुनैन लेंगे तो बुखार मिट जायेगा। यहाँ आस्था नहीं है। मेरा चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ है। मैं उसका अनुभव करूँ तो मेरे भव का नाश हो जायेगा। समझ में आया? उसकी आस्था नहीं। उसकी आस्था। नेमिचन्दभाई! यहाँ तो बात ऐसी है। आहाहा!

सर्वज्ञ के आगम से (तत्त्व को) जानकर...जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध। अजीव में भी धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल है न सब? **उनमें ऐसी बुद्धि हो कि जैसे सर्वज्ञ ने कहे, वैसे यह हैं,...** सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की श्रद्धा हुई, उसके आगम की श्रद्धा हुई और आगम में कहा, ऐसे पदार्थ की श्रद्धा होती है। समझ में आया? **अन्यथा नहीं है, वह आस्तिक्यभाव है। इस प्रकार यह सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न हैं।** बाह्य चिह्न-लक्षण-निशान। ऐंघाण कहते हैं? निशान नहीं कहते हैं? निशान—चिह्न। हमारे यहाँ ऐंघाण कहते हैं। वह हरा बँगला है। लीला रंग होता है न हरा। वैसे यह उसका ऐंघाण है—चिह्न है। समझ में आया? वह तो बाह्य लक्षण इतना कहा।

अब **सम्यक्त्व के आठ गुण हैं—संवेग,...** वह दूसरा लिया है। उस संवेग से यह भिन्न है, उसमें समा जाता है। **संवेग,...** अपना स्वभाव शुद्ध का उत्साह, और उसका फल मोक्ष का उत्साह। **निर्वेग,...** पर से अरुचि होना, रागादि पर से वैराग्य हो जाना। आहाहा! अपनी चीज़ वह नहीं। उस सर्व चीज़ के प्रति उदास हो जाना अन्दर, वह समकित का बाह्य लक्षण है। **निन्दा,...** कोई दोष हो जाये तो अन्दर आत्मा में ऐसा आये कि अरेरे! यह क्या? अरे..! मैं तो पवित्र आनन्दस्वरूप (हूँ), ऐसा मेरी प्रतीति में आया है। यह क्या हुआ? ऐसे रागादि, दोषादि हो तो धर्मी को उसकी निन्दा आती है। निन्दा करते हैं कि यह ठीक नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया?

और **गर्हा,...** गुरु के पास कहना। गर्हा का अर्थ। धर्मात्मा गुरु के पास अपना दोष कहना कि मेरे से ऐसा हो गया है, ऐसा हो गया है। बड़ा पाप किया। मैं कहाँ जाऊँगा? और उसका फल क्या होगा? ऐसी गर्हा करे। पापादि करके... वह होता ही है। उसमें

क्या है ? ऐसा नहीं। सम्यग्दृष्टि को ऐसा नहीं होता है। समझ में आया ? उसकी निन्दा, गर्हा होती है। आहाहा! अरे! मेरी भूमिका में यह क्या ? विषय की आसक्ता। समझ में आया ? और व्यापार, धन्धे की तीव्रता परिणाम की, अरेरे! यह क्या ? उसमें तो मेरे पाप बँधते हैं। उसमें भलाई का कुछ अंश है नहीं। ऐसा पाप के भाव की निन्दा—गर्हा करते हैं। अपनी अन्दर निन्दा करना, वह निन्दा; गुरु के पास कहना वह गर्हा। कोई भी दोष ख्याल बिना रहे समकिती को, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? कोई भी दोष, अवगुण, वह ज्ञानी के ख्याल बिना है, ऐसा नहीं। सब ख्याल में आता है। समझ में आया ? तो कहते हैं कि गर्हा करते हैं।

उपशम,... प्रशम आ गया न, प्रशम ? आगे। ... प्रशम। **भक्ति,...** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा के प्रति भक्ति, पंच परमेष्ठी की भक्ति; निश्चय में अपने स्वरूप की भक्ति। यह तो बाह्य की बात है। समझ में आया ? अपना भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, उसका अन्दर भजन (अर्थात्) एकाग्र होना, वह अपनी भक्ति है और पंच परमेष्ठी की भक्ति, वह बाह्य है। समझ में आया ? भगवान का दास है, समकिती लघुनन्दन है। अपना भान सम्यग्दृष्टि को हुआ तो केवली परमात्मा का तो वह लघुनन्दन है—छोटा पुत्र है। आहाहा! समझ में आया ? आता है न लघुनन्दन ? बनारसीदास में। 'जिनेश्वर के लघुनन्दन।' बनारसीदास में आता है, समयसार नाटक में। यहाँ तो बहुत वर्ष पहले सब देखा था। (संवत्) १९७८ के वर्ष में। ५१ वर्ष हुए। यह सब देखा था। समयसार नाटक, प्रवचनसार। ७८-७८। कितने वर्ष हुए ? ५१। ५० और १।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ८७ वर्ष में भाई को कहा। बड़े भाई थे न हमारे। खुशालभाई बड़े भाई थे। बड़ा दीक्षा (महोत्सव) किया था उन्होंने। ६० वर्ष पहले दीक्षा। ६० वर्ष दीक्षा के हुए। ६० वर्ष पहले दीक्षा हुई। हाथी के हौदे दीक्षा ली थी उस समय। बाद में उनको कहा कि मैं तो छोड़ दूँगा। हाथी के ऊपर दीक्षा ली थी। ६० वर्ष हुए। भाई को कहा था तो भाई ने कहा, धीरे-धीरे छोड़ना। ८७, वींछिया। मैं तो छोड़ दूँगा। यह वस्तु नहीं, यह मार्ग नहीं। यह वेश नहीं, यह शास्त्र नहीं, यह धर्म नहीं। ८७। वींछिया,

वींछिया है न! प्रेमचन्दभाई! नये मकान के बाहर कठोडो है। ... मैं तो छोड़ दूँगा सब। भाई! धीरे-धीरे छोड़ना। तब नाम बड़ा था न! सम्प्रदाय में प्रसिद्धि बहुत थी। सब ९१ में छोड़ा। कितने वर्ष हुए? ९१ के फाल्गुन सुद ३ यहाँ आये हैं। फाल्गुन समझे न? फाल्गुन सुद ३ यहाँ आये हैं, (संवत्) १९९१। ...मकान है न। मकान है वहाँ। सवा तीन वर्ष वहाँ रहे। ९४ में यह मकान हुआ।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **संवेग, निर्वेद,...** है न? **भक्ति, वात्सल्य,...** भक्ति के बाद वात्सल्य। धर्मी को धर्मात्मा के प्रति प्रेम होता है। अपने से विशेष धर्म देखे तो उसको द्वेष हो जाये, ऐसा नहीं। ओहो! समझ में आया? छोटा लड़का बढ़ जाये... उसको भले सम्यग्दर्शन न हो परन्तु पहले प्रेम कितना! हमारे है न वह? कहाँ गया दिलीप? उसका दादा जादवजीभाई। उसके लड़के का लड़का है कलकत्ता में। पन्द्रह वर्ष। तीन वर्ष से उसको ऐसी कोई लगनी (लगी) है। बड़ा गृहस्थ है। लाखोंपति है, कलकत्ता में (ब्याज) का धन्धा है। पैसा करे न धारधीर—हुण्डी। उसके पिताजी वहाँ रहते हैं। ऐसी रुचि है... यहाँ... गृहस्थ है। पैसे-बैसे ले नहीं। मुफ्त में चलाते हैं। यहाँ भी आते हैं। अव्यक्त है। ऐसा धड़ाका बोले... भाई बैठते हैं न तुम्हारे साथ, नेमचन्दभाई! उसके लड़के का लड़का है। गृहस्थ है। बहुत लाखोंपति है। परन्तु उसकी तो ऐसी लाईन है... आत्मा ऐसा अखण्ड अभेद। ओहो! ऐसा बोले। अरे..! ये चीज जगत को क्यों नहीं बैठती? अभी तो १६वाँ वर्ष लगा। तीन वर्ष से यहाँ आते हैं। ...गृहस्थ है न वह तो... लड़के को सुनने को आज भी बैठ जाते हैं। बड़े-बड़े आदमी उसको सुनने बैठ जाते हैं। पन्द्रह साल की उम्र है। सेठिया है। शरीर भी सेठ जैसा बड़ा। बड़ा ऊँचा है सेठ। उसमें क्या है? ...ऐसी श्रद्धा का विश्वास तो करो। समझ में आया? ओहो! यह परमानन्द की मूर्ति और अभेद, वह सम्यग्दर्शन का विषय लिया है। भले दृष्टि न हो, परन्तु उसको उस जाति का उत्साह है। आहाहा! ...लड़के का लड़का। बड़े-बड़े २०-२० वर्ष का, २५ वर्ष का। यह १५ वर्ष का है। दिलीप को सुनो। दिलीप बहुत अच्छा बोलता है। आत्मा है या नहीं उसमें क्या? अव्यक्तपने भी श्रद्धा तो ऐसी होनी चाहिए न पहली? आहाहा! समझ में आया? यह तो कुछ भान न मिले और हम बड़े सेठ। ऐई! नेमिचन्दभाई! आहाहा!

भक्ति, वात्सल्य,... ओहो! देखो न। समझ में आया? आहाहा! कलकत्ता। दिल्ली। दिल्ली नहीं? सोगानी। सोगानीजी को नहीं जानते? सोगानी। कलकत्ता, कलकत्ता। सोगानी है न? निहालभाई सोगानी। बड़े लाखोंपति, बहुत लाखोंपति है। परन्तु उसको ऐसी चीज़ हो गयी यहाँ कि शरीर से भिन्न हो गये यहाँ। बात इतनी कही कि भाई! यह ज्ञान और राग दोनों भिन्न है। बहुत वाँचन किया था। बहुत दुकान-बुकान जाते थे। मैं तो... क्या कहा उसने? पंगु। मेरे को पंगु समझकर दो समय का आहार दे दो। मैं कुछ काम का रहा नहीं अब। नेमिचन्दभाई! सुना है आपने? सोगानी। उसका पुस्तक पढ़ा है या नहीं दो भाग? तीसरा भाग लिया न? तीसरा भाग पढ़ा है? नेमिचन्दभाई ने नहीं पढ़ा होगा। आहाहा! लोग बहुत पढ़ते हैं। उसमें क्या? ... प्रेम न हो तो क्या द्वेष होता है उसमें? समझ में आया? वात्सल्य होता है, प्रेम होता है। ओहोहो! कोई भी आत्मा आगे बढ़ो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करके केवलज्ञान पाओ। प्रमोद की बात है, उसमें क्या? समझ में आया? द्वेष नहीं होना चाहिए। द्वेष हो तो ... आहाहा! कहो, शान्तिभाई!

वात्सल्य और अनुकम्पा... यह एक ही बोल भिन्न किया अनुकम्पा का। पहले आ गया न पाठ? **यह सब प्रशमादि चार में ही आ जाते हैं।** वह आठों बोल। **संवेग में निर्वेद, वात्सल्य और भक्ति...** यह चार आ गये। **ये आ गये तथा प्रशम में निन्दा, गर्हा आ गई।** यह तीन सात। और एक अनुकम्पा। है न अनुकम्पा इसमें भी तीन, इसमें भी तीन। दोनों में है। आठ बोल है मिलान करके।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहे हैं,... सम्यग्दर्शन में आठ प्रकार के गुण-पर्याय, लक्षण, अंग... अंग। जैसे यह अंगी का यह अंग है न। पूरे शरीर को अंगी कहते हैं। हाथ-पैर को अंग कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन अंगी है, उसके यह आठ अंग हैं। आहाहा! समझ में आया? **उन्हें लक्षण भी कहते हैं और गुण भी (कहते हैं)। उसके नाम हैं— ...** धर्म की शुरुआत जिसको हुई है, ऐसा भव का नाश करके जिसने दृष्टि-प्रकाश किया, उसके यह आठ गुण, लक्षण, चिह्न कहने में आता है। **निःशंकित,...** सबका स्पष्टीकरण करेगा। धर्मी निःशंक होता है पदार्थ में और निर्भय होता है। धर्मी निर्भय होता है। वह स्पष्टीकरण करेंगे। **निःकांक्षित...** धर्मी को अपने अतिरिक्त दूसरे पदार्थ की

कांक्षा हो, ऐसा होता नहीं। आहाहा! नि:कांक्ष। मैं परमानन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु हूँ। मेरी भावना तो अपना स्वभाव पूर्ण हो, यह होती है। यह कांक्षा जैनमत के अतिरिक्त अन्यमत की या पुण्य की इच्छा आदि होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन भूमिका की बात चलती है।

निर्विचिकित्सा,... विचिकित्सा-जुगुप्सा न हो, ग्लानि न हो, द्वेष न हो। किसी के प्रति द्वेष न हो। आकांक्षा में पर में राग नहीं, इसमें द्वेष नहीं। किसी के प्रति धर्मी को द्वेष है नहीं। जहाँ देखो वहाँ परमात्मस्वरूप भगवान विराजते हैं। पर्याय में भूल है तो उसको नुकसान है। वस्तु तो वस्तु है। समझ में आया? तो किसी के प्रति द्वेष न हो। समझ में आवे सब बात। मिथ्यादृष्टि यह है, उसका फल अनन्त संसार है, परन्तु व्यक्ति के प्रति बैर नहीं। सब भगवान मैत्री है। आत्मारूप से आत्म साधर्मी है। आत्मारूप से, पर्यायरूप से नहीं। आहाहा!

अभी कलकत्ते रहकर आये। कितने दिन रहे? आठ? शशीभाई गये थे न वाँचन के लिये। अभ्यास... करने को गये थे, यह शशीभाई। जानते हो? यह शशीभाई को जानते हो? भावनगर रहते हैं। कलकत्ते गये थे।... पुस्तक ... मोढ है, अन्यमति है, जैन नहीं। वैष्णव है, परन्तु पीछे ऐसी लगनी लग गयी यहाँ की, तो हमारे यहाँ वाँचन करते हैं। अपने मण्डल में वाँचन करते हैं। वाँचन करने को कलकत्ता गये थे। बुलाया था कलकत्ता सबने। समझ में आया? तुम तो जैन सम्प्रदाय में जन्मे हो। यह तो जैन नहीं, वैष्णव है। वहाँ वाँचन करते हैं मण्डल में। कलकत्ता दसलक्षणी धर्म में वाँचन करने को गये थे। आठ दिन वहाँ वाँचन किया। आत्मा है तो कोई भी चीज़ की प्रतीति न कर सके यथार्थ? समझ में आया? आहाहा! परन्तु कितनों को दरकार कुछ नहीं है। होता है... होता है... होता है। होता है... मरकर जाये नरक और निगोद में। आहाहा! अनन्त में काल इलिका, कीड़ा होना मुश्किल है तो मनुष्य तो कहाँ से हो? आहाहा! अरे..! इसकी दुर्लभता की खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं कि किसी के प्रति धर्मी को बैर नहीं और किसी भी परपदार्थ के प्रति इच्छा—राग नहीं। आसक्ति का राग दूसरी चीज़ है। यह हो तो ठीक, ऐसी इच्छा

नहीं। **अमूढ़दृष्टि।** सम्यग्दृष्टि किसी भी तत्त्व में मूढ़ नहीं (होता)। बराबर यथार्थ उसको प्रतीति हो जाती है। सूक्ष्म मूल में अन्तर हो वह भी उसको ख्याल में जाता है। समझ में आया? अमूढ़दृष्टि। मुंझाय नहीं। मुंझवण को क्या कहते हैं? मुंझवण अर्थ क्या? घबराहट? घबराहट बराबर शब्द नहीं है। मूढ़ शब्द नहीं है? ... वह बराबर नहीं है। मूढ़ शब्द...

मुमुक्षु : भान नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं है। यह मूढ़ है। यह तो तुम्हारी भाषा हिन्दी भाषा में क्या है? भान नहीं, मूढ़ है। आहाहा!

धर्मी मूढ़ नहीं होता। सबका उसको ख्याल है, सूक्ष्म में सूक्ष्म बोल में अन्तर हो तो ख्याल आ जाता है कि यहाँ अन्तर है। समझ में आया? संख्या धर्म को माननेवाले थोड़े हो तो ऐसी शंका नहीं होती है, उसको मूढ़ता नहीं होती है कि यह क्या? ऐसा ही होता है। सत् समझने की चीज़ ही अल्प होती है। लाखों और करोड़ों समझ जाये, ऐसी यह चीज़ ही नहीं। समझ में आया? ऐसा मूढ़ नहीं होता धर्मी।

उपगूहन... दोष को गुप्त रखते हैं। अपने में दोष आता है, उसको छोड़ देते हैं। उपगूहन-अपनी शुद्धि को बढ़ाते हैं। **स्थितिकरण,...** अपने आत्मा में स्थिर करते हैं, परन्तु पर कोई धर्म से च्युत होता हो, उसको भी धर्म में स्थिर करते हैं, स्थितिकरण करते हैं। और **वात्सल्य,...** प्रेम करते हैं। ओहोहो! **और प्रभावना...** धर्म की प्रभावना। अपने स्वभाव की प्र-विशेष भावना करके प्रभावना करते हैं। बाहर में व्यवहार से देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि में बाहर में प्रभावना है। वह समकिती का बाह्य लक्षण आठ है। कहो, समझ में आया? निश्चय भी है और व्यवहार भी है।

वहाँ शंका नाम संशय का भी है और भय का भी है। एक-एक की व्याख्या करते हैं अब। शंका अर्थात् संशय। शंका को संशय भी कहते हैं और शंका को भय भी कहते हैं। **वहाँ धर्मद्रव्य...** भगवान ने एक धर्मास्ति द्रव्य देखा है चौदह राजुलोक में—ब्रह्माण्ड में। धर्मद्रव्य की उसको श्रद्धा होती है, संशय नहीं कि ऐसा क्या है? बहुत सूक्ष्म है, अन्यमत में तो कोई कहते ही नहीं। धर्मास्तिकाय कोई कहते ही नहीं। और

भगवान कहते हैं वह क्या है? ऐसा संशय धर्मी को होता नहीं। समझ में आया? धर्मास्तिकाय–धर्मद्रव्य।

अधर्मद्रव्य। एक धर्मद्रव्य होता है चौदह राजुलोक में। जीव—जड़ (पुद्गल) गति करते हैं तो निमित्तरूप से धर्मास्ति होता है। तत्त्व है। और स्थिर होता है गति करके, उसमें निमित्तरूप एक अधर्मास्तिकाय (नाम का) एक पदार्थ है। अधर्मास्तिकाय नाम का एक पदार्थ है। अरूपी है। सर्वज्ञ भगवान ने देखा है। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने देखा है, उसकी उसको संशय नहीं। निःसंशय मानते हैं। पण्डितजी! यह क्या? कोई कहते हैं कि जीव है, पुद्गल है, काल है, आकाश है। धर्म, अधर्म नया कहाँ से निकाला? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान ने ऐसे छह द्रव्य में दो द्रव्य लोकव्यापक अरूपी (कहे) हैं, उसमें धर्मी को संशय होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! वर्णन किया है न पहले सम्यग्दर्शन का, फिर सम्यग्ज्ञान, फिर सम्यक्चारित्र। अधर्मद्रव्य, **कालाणुद्रव्य।** कालाणु है न? काल अणु है एक सूक्ष्म। लोकप्रमाण धर्मास्तिकाय असंख्य प्रदेश अरूपी। एक-एक प्रदेश में एक-एक कालाणु है अरूपी, अनन्त गुण का पिण्ड काल अणु। काल का नाम। अणु सूक्ष्म। आहाहा!

कालाणु, परमाणु... एक रजकण पॉईन्ट उसका अन्तिम का भाग। यह अँगुली है उसके टुकड़े करते... करते... करते... करते... करते... अन्तिम का भाग रह गया, उसको परमाणु कहते हैं। यह तो बहुत रजकण का पिण्ड है। यह कहीं आत्मा नहीं और एक द्रव्य नहीं। उसके टुकड़े करते... करते... करते... अन्तिम का पॉईन्ट रहे, उसके दो भाग हो सकते नहीं, उसका नाम परमाणु कहते हैं। आहाहा! परम अणु, अन्तिम का छोटा तत्त्व उसकी श्रद्धा है, धर्मी को संशय होता नहीं। आहाहा! यह तो स्थूल बात है अभी।

इत्यादि तो सूक्ष्म वस्तु हैं... उसमें सम्यग्दृष्टि को संशय होता नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म है न, बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! **तथा द्वीप, समुद्र...** असंख्य तो द्वीप है। ये जम्बूद्वीप, लवण ऐसे असंख्य द्वीप है। जम्बूद्वीप में हम रहते हैं न, ऐसे-ऐसे असंख्य द्वीप हैं, असंख्य समुद्र हैं। सीधा-तिरछा। उसमें अन्तिम में तो असंख्य तिर्यंच समकिती ज्ञानी है। अन्तिम का स्वयंभूरमणसमुद्र है उसमें। समझ में आया? तो सब आगम

अनुसार मानते हैं, परन्तु संशय होता नहीं। ऐसा कहते हैं। यहाँ तो खबर ही नहीं क्या है ? क्यों है ? आहाहा! जैन सम्प्रदाय में जन्म हुआ, फिर भी जैन का व्यवहार क्या है, उसकी भी खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को उसमें शंका नहीं। **मेरुपर्वत आदि दूरवर्ती...** दूर है न मेरुपर्वत लाख योजन का। एक पदार्थ। **तथा तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि अन्तरित पदार्थ हैं;...** यहाँ तो है नहीं तीर्थंकरादि। दूर है। उसकी भी श्रद्धा उसको—ज्ञानी को होती है। **वे सर्वज्ञ के आगम में जैसे कहें है, वैसे हैं या नहीं हैं ? अथवा सर्वज्ञदेव ने वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक कहा है, सो सत्य है या असत्य है ?—ऐसे सन्देह को शंका कहते हैं।** ऐसा सन्देह और शंका धर्मी को तीन काल में होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा के अनुभव में प्रतीति हुई, उसके यह सब बाह्य लक्षण आस्तिक्य आदि कहने में आते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक २४-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-९

अष्टपाहुड़ चलता है। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि संवत ४९ में हुए। महासमर्थ। सर्वज्ञ भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहकर यह शास्त्र बनाया है। उसमें अष्टपाहुड़ में दर्शनपाहुड़ चलता है। दर्शनपाहुड़ में भी सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, वह चलता है। धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म की पहली सीढ़ी—सोपान, वह सम्यग्दर्शन है। आत्मा पर का तो कुछ कर सकता नहीं। वह आयेगा। शरीर, वाणी, देश, कुटुम्ब का, परवस्तु का तो कुछ कर सकता ही नहीं आत्मा। सम्यग्दृष्टि नहीं, मिथ्यादृष्टि भी नहीं कर सकता। मिथ्यादृष्टि माने कि मैं पर की सेवा करता हूँ। माने तो मिथ्याभ्रम अज्ञान है।

मुमुक्षु : पर की नहीं तो अपनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी आत्मा की सेवा करे। उसमें क्या? पर की सेवा करता हूँ, ऐसा माने, वह भ्रम अज्ञान है। दूसरा कर सकते नहीं कुछ। शरीर की करता नहीं। यह शरीर मिट्टी, जड़ है। उसमें रोग आता है तो क्या मिटा सकता है आत्मा?

मुमुक्षु : शरीर पर में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर में है। तुम्हारा है शरीर? यह तो जड़ है। पैसा तो पर में गया, शरीर पर में गया, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शरीर भी पर में जाता है और राग भी पर में जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे भी सूक्ष्म बात यहाँ तो चलती है। अन्दर में जाते हैं न। शरीर का कर सके, कोई देश का आत्मा कर सके... प्रेमचन्दजी! या मिल का कर सकता है... सबका आना चाहिए न।

मुमुक्षु : कर सकता है, इसलिए वेतन देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेतन देते हैं, वह तो पुण्य उसका है, उस अनुसार बाहर आता है। उसमें है क्या? थोथा है। समझ में आया? वह आयेगा अभी लिखा अन्दर में।

यहाँ तो कहना है कि आत्मा वस्तु है चिदानन्द प्रभु अनादि-अनन्त, वह अपने

अतिरिक्त परपदार्थ, देश, कुटुम्ब, शरीर का कुछ कर सकता नहीं। कोई कहे कि हम पर की सेवा करते हैं, वह मूढ़ जीव है।

मुमुक्षु : यह तो राजकोट में आपने कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजकोट में सुनाया था गाँधीजी को। गाँधीजी व्याख्यान में आये थे। (संवत्) १९९६, ज्येष्ठ शुक्ल १३, (संवत्) १९९५ में, ज्येष्ठ शुक्ल १३। गाँधीजी वहाँ थे। मोहनलाल गाँधी। व्याख्यान में आये थे। मोहनभाई के मकान में। कहा था, कोई भी परद्रव्य की मैं दया पाल सकता हूँ—ऐसा माननेवाला अज्ञानी मूढ़ है। बाद में याद करते थे। उसे बहुत याद नहीं करना। नेमिचन्दजी! उस वक्त सभा बड़ी थी। गाँधीजी आये थे उस समय। उसका है न? देसाई, महादेव देसाई। गाँधी थे... और उनकी वह स्त्री थी न? कस्तूरबाई। वह चार बार आयी थीं व्याख्यान में। ९५ का चौमासा था न। उसके घर आहार था, आणन्दभाई। उसके पिता नानालालभाई। उसके घर पर उनका मुकाम था गाँधीजी का। दस-दस हजार रुपये खर्चे। उस मकान में चौमासा था हमारा। तो आये थे। यह बात है अनादि की हम तो वह कहते थे, उस समय भी।

हम लोगों का कल्याण कर सकते हैं और पर की पर्याय मैं सुखी कर सकता हूँ और पर की दया मैं पाल सकता हूँ। वह भाव आये राग, परन्तु राग से पर की दया पल सके, ऐसे तीन काल—तीन लोक में ऐसी चीज़ वस्तु की स्थिति नहीं है। प्रेमचन्दजी! तुम्हारे लिये यह सब नया है। हाँ कहते हैं। सारा दिन उसके मिल का करते रहे। यह तो कुछ सुनने को नहीं मिला होता। समझ में आया? यहाँ तो आत्मा अपने को छोड़कर कोई दूसरी चीज़ को सुखी कर सके, दुःखी कर सके, अनुकूलता दे सके, प्रतिकूलता दे सके, तीन काल—तीन लोक में नहीं। क्योंकि जगत की चीज़ अपने से टिककर बदलती रहती है। वह पर के कारण से उसमें बदले, ऐसी वस्तु की स्थिति नहीं। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जगतचक्षु केवली, उन्होंने ऐसा कहा और ऐसा है। तो अब पर का कर सके नहीं, शरीर का कर सके नहीं। तो करे क्या अज्ञानभाव से? राग और द्वेष। शुभाशुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का भाव वह विकार है। व्रत, तप, अपवास, भक्ति, पूजा, हिंसा, झूठ, चोरी आदि भाव दोनों विकार है। अज्ञानी विकार करे और विकार फल चार गति के दुःख को भोगे।

मुमुक्षु : परम्परा से... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा किसने कहा? सेठ! पर के ऊपर डालो। हमें तो कुछ नहीं है। नहीं सेठ? आहाहा! पर कराता नहीं, वह भी आयेगा अभी यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की बात नि:शंक (की) चलती है न, नि:शंक? धर्मी जीव तो अपना चैतन्यस्वरूप शुद्ध आनन्ददल धन उसके अन्तर्मुख होकर प्रतीति करनेवाला बहिर्मुख का विकल्प आदि अपना नहीं, ऐसा अनुभव करनेवाला जीव धर्मी कहने में आता है। तो वह धर्मी का नि:शंक भाव क्या है, वह बात चलती है। समझ में आया? थोड़ा चला है यहाँ।

वहाँ शंका नाम संशय का भी है... है? पहली पंक्ति ऊपर। ऊपर। वहाँ धर्मास्ति एक तत्त्व भगवान ने देखा है। यहाँ सिद्ध होता है परन्तु अभी सब कहाँ ले? एक अधर्मद्रव्य है—वस्तु है, तत्त्व जगत का। कालाणु है और परमाणु है। वह सूक्ष्म वस्तु है। और **द्वीप, समुद्र...** असंख्य द्वीप और समुद्र है। ऐसा हम रहते हैं न, (वह) जम्बूद्वीप है, तो ऐसे-ऐसे असंख्य द्वीप समुद्र यहाँ तिरछा चारों ओर हैं। और **मेरु पर्वत आदि दूरवर्ती पदार्थ हैं...** मेरु दूर है लाख योजन का जम्बूद्वीप के मध्य में। **तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि अन्तरित पदार्थ हैं...** वर्तमान तीर्थंकर और चक्रवर्ती नजदीक में है नहीं, दूर है। यह **सर्वज्ञ के आगम में जैसे कहै हैं, वैसे हैं या नहीं?** ऐसी शंका अर्थात् सन्देह मिथ्यादृष्टि को होता है। समझ में आया? मिथ्या (दृष्टि) अर्थात् पापी प्राणी को ऐसी शंका उत्पन्न होती है। सेठ! पापी। सम्यग्दृष्टि धर्मी, मिथ्यादृष्टि पापी।

मुमुक्षु : पुण्यवाला कौन? पुण्य रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य-पाप दोनों पाप ही है। पुण्य है क्या है उसमें? राग की मन्दता दया, दान, व्रत, आदि शुभभाव, वह भी पाप है। आत्मा से खिसककर भाव होता है। वह कोई आत्मा की चीज़ नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात। जगत को धर्म समझना। अनन्त-अनन्त काल में कभी किया नहीं। चौरासी के अवतार (में) मर गया अवतार कर-करके। आहाहा!

कहते हैं कि वह सर्वज्ञ के आगम में भगवान त्रिलोकनाथ... रात्रि को पूछते थे

न कोई ऐसा ? तुम नहीं थे। भूगोल की बात तो जैन के हिसाब से मिलती नहीं। भूगोल का क्या काम है ? यहाँ आत्मा का काम है। समझ में आया ? यहाँ तो आत्मा (की) पहली बात है, पीछे भूगोल-फूगोल की बात है। अपने आत्मा की क्या चीज़ है, वह जाने बिना भूगोल-फूगोल की बात यथार्थ जानने में आती नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं कि त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो यह मेरुपर्वत, तीर्थंकर, चक्रवर्ती दूरवर्ती सूक्ष्म परमाणु आदि देखे हैं, ऐसा होगा या नहीं ? ऐसी शंका करनेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? उसको धर्म सम्यग्दर्शन है नहीं। आहाहा !

वे सर्वज्ञ के आगम में जैसे कहे हैं, वैसे हैं या नहीं ? अथवा सर्वज्ञ देव ने वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक कहा है... भगवान त्रिलोकनाथ ने अनेकान्तात्मक का अर्थ प्रत्येक वस्तु अपने से है, परवस्तु से नहीं, ऐसे अनेक धर्मवाली चीज़ देखी है। अपना आत्मा आत्मा से है, परपदार्थ से नहीं। परपदार्थ परपदार्थ से है, अपने आत्मा से नहीं। ऐसा जो अनेकान्त धर्म—स्वभाव कहा है। **सो सत्य है या असत्य ?—ऐसे सन्देह को शंका कहते हैं। जिसके यह न हो, उसे निःशंकित अंग कहते हैं...** आहाहा ! जिसको सम्यग्दर्शन और धर्म प्रगट हुआ हो, उसको यह शंका होती नहीं। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात। जगत को कुछ मिला नहीं, बेचारे ऐसे ही भटकते हैं। बेचारे समझते हैं ? वरांका-भिखारी। भिखारी है हों अरबोंपति, करोड़पति रांका-भिखारी हैं।

वह दरबार आये थे न एक बार यहाँ। भावनगर दरबार है न ! एक करोड़ का तालुका है। एक साल की करोड़ की उपज है। आये थे व्याख्यान में। यहाँ तो आते हैं न सब बड़े-बड़े। उसको एक बार कहा था कि दरबार ! एक मासिक में जिसको दस हजार, लाख लेना है तो वह माँगनेवाला भिखारी (छोटा) है, और बारह महीने पाँच करोड़ या करोड़ जिसको लेना है, वह बड़ा भिखारी है। कहा था सेठ ! यहाँ कहाँ हमारे पास मक्खन है ? कृष्णकुमार आये थे। दो बार आये थे। गुजर गये बेचारे। भावनगर दरबार दो बार यहाँ आये थे। एक बार ९७ में आये थे और दूसरी बार २००९ के वर्ष। मानस्तम्भ हुआ न। पाँच हजार लोग आये थे बाहर से।

अरे ! भिखारी है। आत्मा क्या चीज़ है ? उसमें क्या सम्पदा है ? उसमें क्या ऋद्धि-सृद्धि पड़ी है ? समझ में आया ? आहाहा ! आता है या नहीं, वह बनारसीदास में नहीं ?

रिद्धि सिद्धि वृद्धि दीसै घट में प्रगट सदा,
अंतर की लच्छीसौं अजाची लच्छपति है,
दास भगवंत के उदास रहे जगत सौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं। (मंगलाचरण, पद ७)

धर्मी गृहस्थाश्रम में भले हो। आहाहा! परन्तु रिद्धि, सिद्धि, वृद्धि अपने में देखते हैं। मेरा आनन्द और ज्ञान की समृद्धि मेरे पास है। यह रिद्धि धूल की... समझ में आया? मिट्टी-धूल वह तो जड़ स्वामी। उसका स्वामी होता है तो वह जड़ है। भैंस का स्वामी पाडा होता है। पाडा समझे? भैंसा। यह भैंस नहीं होती है? उसका स्वामी पाडा होता है। वैसे जड़ का स्वामी जड़ होता है। लक्ष्मी मेरी है, वह माननेवाला जड़ है। ऐई! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव को अपनी ऋद्धि अपने में दिखती है। रिद्धि-सिद्धि अपने में सिद्धि है। शान्त ज्ञानानन्दस्वभाव की दृष्टि हुई तो अपनी सिद्धि अपने में दिखती है। रिद्धि-सिद्धि वृद्धि, कहते हैं या नहीं? उसको पचास हजार का वेतन था लाख हो गया, उसको पचास लाख हो गया, पाँच करोड़ हो गया। वह वृद्धि नहीं। अपनी सम्पदा की दृष्टि में शुद्धि की वृद्धि जो होती है, उसको वृद्धि मानते हैं। आहाहा! 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा', समझ में आया? आहाहा! दास भगवन्त के... त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर का दास है। 'दास भगवन्त के उदास...' सारी दुनिया से मैं भिन्न हूँ। मुझे परपदार्थ से कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! 'दास भगवन्त के उदास रहे जगत सौं सुखिया सदैव।' यह सम्यग्दृष्टि जगत में सुखी है। राग और शरीर से अपनी चीज़ भिन्न है, ऐसा अन्तर में आनन्द का भान-बोध हुआ, वह जगत में सुखी है। 'सुखिया जगत में सन्त दुरिजन दुःखिया।' समझ में आया? अपनी चैतन्य ऋद्धि आनन्द का भान हुआ और आनन्द की पर्याय का स्वाद अन्दर में आया, वह सुखी जगत में है। बाकी सब दुखिया है। नेमिचन्दजी! पैसा तीस लाख का मकान किया है न जंगल में। दस लाख का अन्दर है। वहाँ ले गये थे न? दिल्ली हम आये थे न! बाहर ले गये थे। सात मील दूर है। बहुत दूर है। वहाँ ले गये थे। ... चलता था सब। धूल में है नहीं। वह अपनी चीज़ है? वह तो जड़ की चीज़ है। आहाहा!

सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं। आत्मा आनन्द शान्तस्वरूप पूर्ण आनन्द और ज्ञान से भरा है, ऐसी अन्तर में अन्तर्मुख होकर दृष्टि और भान हुआ, तो वह जगत में सुखी है। बाकी सब अज्ञानी प्राणी मिथ्या भ्रम में पड़ा है, वह सब दु:खी है। चाहे तो बादशाह हो या चाहे तो राजा या देव हो, वह सब प्राणी दु:खी है, आत्मा की ऋद्धि समझे बिना।

यहाँ कहते हैं, **ऐसे सन्देह को शंका कहते हैं। जिसके यह न हो, उसे नि:शंकित अंग कहते हैं तथा यह जो शंका होती है, सो मिथ्यात्वकर्म के उदय से होती है...** ऐई! सेठ! कर्म, कर्म है न? वह निमित्त है और भ्रमणा होती है अज्ञानी को अपने से, ऐसा कहते हैं, देखो।

मुमुक्षु : सोनगढ़ में ऐसा मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ में ऐसा मानते हैं। दूसरे दूसरा मानते हैं, ऐसा (ये) कहते हैं। बात सत्य है। वहाँ सेठ थे न! बड़ा बुन्देलखण्ड का बादशाह है वहाँ। धूल में भी नहीं है। समझ में आया? क्या लिखा है अन्दर? कोष्ठक में है देखो। **मिथ्यात्वकर्म के उदय से (उदय में युक्त होने से)...** यह अपनी ओर से है। जड़कर्म है, उसका जो पाक आता है तो अन्दर अपनी दृष्टि पर के ऊपर जाती है तो उसको निमित्त कहने में आता है। भ्रमणा अज्ञानी करते हैं। पर में सुख है, पर से मुझे लाभ होता है, मैं दूसरे को लाभ पहुँचाता हूँ, यह सब अज्ञानी का भ्रम पाखण्ड है। समझ में आया? यह कहते हैं देखो!

पर में आत्मबुद्धि होना... क्या कहते हैं देखो! शरीर मेरा है, शरीर का मैं काम कर सकता हूँ, देश का मैं काम कर सकता हूँ, पर को मैं लाभ पहुँचा सकता हूँ, यह सब पर में आत्मबुद्धि मिथ्याभ्रम अज्ञान है।

मुमुक्षु : बाहर का मानना सब छोड़ देना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : करता कहाँ है? मानता है। धूल में भी कर सकता नहीं। कहा था न, एक बार, रात्रि को कहा था। ४० वर्ष उम्र स्त्री की हो और ४५ वर्ष की अपनी उम्र हो। चालीस और पाँच। मरने पड़ा हो। जिज्ञासा नहीं है जिलाने की भावना नहीं है? तो क्या जिला सकते हैं? आयुष्य पूरा हो तो समाप्त हो जाये। उसका क्या पर कर

सकता है ? सबसे प्यारी स्त्री जिसको अज्ञानी कहते हैं अर्धांगिनी—आधा अंग है। धूल में नहीं है। अंग कैसा तेरे ? आहाहा! उसको प्रिय में प्रिय गिनते हैं, उसको भी जिला सकते तो नहीं और दूसरे का काम कर सकते हैं ? नेमिचन्दजी! क्या मिल का काम कर सकता है आत्मा ? नेमिचन्दभाई के ऊपर डालते हैं न। ऐई! पण्डितजी! सेठ! बीड़ी का काम कर सकते हैं ? पचास लाख, साठ लाख।

मुमुक्षु : बाहर में सब ऐसा ही मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो कहने में आता है।

यहाँ कहते हैं कि **पर में आत्मबुद्धि होना उसका कार्य है।** मिथ्याश्रद्धा का कार्य क्या ? कि पर मेरा है और मैं पर का कर सकता हूँ, वह उसका कार्य है। समझ में आया ? है ? है उसमें नेमिचन्दजी ? कार्य है न। पहले कहा वह। मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो मिथ्यात्व होता है, मिथ्यात्व (अर्थात्) विपरीत मान्यता। वह विपरीत मान्यता का लक्षण क्या कहते हैं ? कि पर में आत्मबुद्धि होना। समझ में आया ? शरीर का मैं कर सकता हूँ, देश को मैं सुखी कर सकता हूँ। समझ में आया ? और देश अनुकूल हो और मुझे आशीर्वाद मिले तो मेरा लाभ होगा, यह सब मिथ्या भ्रान्ति का कार्य है। कहो, सेठ! क्या है ? आहाहा!

पर में... एक ही शब्द पड़ा है। अपना चिदानन्द भगवान के अतिरिक्त... सिवाय कहते हैं न ? अलावा। पुण्य और पाप का भाव जो होता है विकल्प शुभ, अशुभराग भी मेरा है, वह आत्मबुद्धि मिथ्याभ्रान्ति अज्ञान है। आहाहा! महान पाप है। कसाईखाने के पाप से भी... पर में आत्मबुद्धि और पर का मैं कार्य कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता कसाई के पाप से भी बड़ा पाप है। लोगों को ख्याल नहीं ऐसे के ऐसे (चले जाते हैं)। है ?

पर में आत्मबुद्धि होना उसका कार्य है। जो पर में आत्मबुद्धि है, सो पर्यायबुद्धि है... शरीरबुद्धि है। शरीर मेरा है और शरीर का मैं काम (कर सकता हूँ)। पर्याय अर्थात् शरीर यहाँ लेना। समझ में आया ? मैं जैसे रखूँ, वैसे शरीर रह सकता है। और पीछे जैसे बिगाड़ना चाहूँ, उसको बिगाड़ सकता हूँ। यह शरीर जड़ मिट्टी है, उसका स्वामी होता है। वह जड़ का स्वामी है। पर्यायबुद्धि, शरीरबुद्धि है। आहाहा! और परीषह में

सदुपयोग कर सकता हूँ, पर के लिये। मूढ है। यह तो मिट्टी, जड़ है। उससे तेरा कार्य होता है ? समझ में आया ? आहाहा! **पर में आत्मबुद्धि होना...** यह पर में आत्मबुद्धि वह पर्यायबुद्धि। पर्याय अर्थात् शरीर मेरा है—ऐसी बुद्धि बिना पर का मैं कार्य कर सकता हूँ, ऐसी बुद्धि होती नहीं।

और पर्यायबुद्धि भय भी उत्पन्न करती है। शरीर मेरा है, परवस्तु मेरी है, ऐसा माननेवाले को भय भी उत्पन्न होता है। शरीर में रोग आया तो, आहाहा! मर जाऊँगा। कौन मरे ? तुम तो त्रिकाली चीज़ हो। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा रोग आ जाये। देखो न कल, वह बाई आती थी। आपकी समधन... सास आई थी न कल। आहाहा! महाराज! मुझे कुछ आशीर्वाद दो। आहाहा! दिगम्बर है। भावनगर। अपने चन्दुभाई है न, उसके छोटे भाई की वहाँ शादी की है, दिगम्बर में किया। वह आयी थी। दिमाग घूम गया है। आहाहा! तीन लोक का नाथ चैतन्य, सर्वज्ञ प्रभु... पागलपने में। आहाहा! पागल है। उसकी बेटी आयी थी। रो मत बा! रो मत यहाँ मत रो। ओहो... ऐसा करके रोने लगे। वह जाने कि महाराज के पास जाये तो महाराज से कुछ हो। हमारे पास कुछ नहीं है।

मुमुक्षु : आशीर्वाद दे तो ठीक हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आशीर्वाद से रोग मिट जाये ? शरीर में रोग होता है, वह तो उसके कारण से होता है। उसमें आत्मा को क्या ? आहाहा!

कहते हैं कि **पर्यायबुद्धि भय भी उत्पन्न करती है।** आहाहा! **शंका भय को भी कहते हैं,...** शंका को भय भी कहने में आता है। **उसके सात भेद हैं—इस लोक का भय...** अरे! इस लोक में मृत्यु तक अनुकूल सामग्री रहेगी या नहीं रहेगी ? ऐसा भय मूढ़ जीव को उत्पन्न होता है। सम्यग्दृष्टि धर्मी को ऐसा भय उत्पन्न होता नहीं। समझ में आया ? आहाहा! इस लोक में मैं जिन्दा रहूँगा, तब तक सब सामग्री रहेगी ? स्त्री, कुटुम्ब, मकान, इज्जत क्या होगा ? ऐसा डर, शरीर को अपना माननेवाले को ऐसा भय शंका उत्पन्न होती है। शरीर ही अपना नहीं है तो दूसरी चीज़ क्या अपनी है ? अपना देश कहते हैं न ? इसमें भी आया था। 'जीओ और जीने दो।' कैलेण्डर है न ? कल कैलेण्डर आया है, भाई! खबर है न ? बयाना, बयाना। बयाना का कैलेण्डर। भगवान की मूर्ति है न! हम गये थे न! तो पाँच सौ साल पहले की मूर्ति है सीमन्धर भगवान की।

लोगों को ऐसा लगा कि सीमन्धर भगवान की यहाँ क्यों स्थापना की ? सीमन्धर भगवान की प्रतिमा मूल वहाँ बयाना है, बयाना। उस ओर बयाना है न ? वहाँ मूल मन्दिर में है। गृहस्थ... परन्तु हम गये थे। संघ था पाँच सौ लोगों का। लिखा है उसमें कि यहाँ कानजीस्वामी आये थे। छह हजार रुपया दिया था उसको। बड़े भाई साथ में थे। घिया है राजकोट के। जानते हो ? करोड़पति हैं वह। बैठे हैं पीछे वह। उनके बड़े भाई साथ में थे। छह हजार रुपये दिये थे उन्होंने। दो हजार तो उन्होंने दिये अभिषेक करके। महाविदेह की सीमन्धर भगवान की प्रतिमा पाँच सौ वर्ष पहले की है। यहाँ तो... समझ में आया ? है उसमें देखो! ... यह प्रतिमा है वहाँ, पाँच सौ वर्ष पहले की। वेदी पर, बयाना में। हम गये थे। एक हजार लोग थे। श्री १००८ सीमन्धर स्वामी की प्राचीन संवत् १५०७, १५०७ की प्रतिमा है। सीमन्धर भगवान ऊपर लिखा है। जीवन्त स्वामी लिखा है। देखो, भाई क्या है ? जीवता स्वामी भगवान विराजते हैं महाविदेह में। महावीर आदि भगवान तो मोक्ष पधारे हैं। वे तो अशरीरी हो गये हैं। यह तो विराजमान महाविदेह में वर्तमान मौजूद शरीरसहित है। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। वर्तमान समवसरण में प्रभु विराजते हैं। (संवत्) १५०७ की है, भाई!

मुमुक्षु : ५२३ वर्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ५२३ वर्ष (पहले की)। उस समय हम गये थे तो ५१६ वर्ष। ५१६ वर्ष पहले की है। सात वर्ष हो गये न! (संवत्) २०१३ के वर्ष में गये थे। राजस्थान, दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, ब्याना, जिला भरतपुर, राजस्थान ऐसा लिखा है। प्रसिद्ध आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी संघ सहित (संवत्) १९७० में दर्शनार्थ पधारे थे, तब गद्‌गद् हो गये। फिर मैंने तो कहा था, भगवान ऐसे हैं। वहाँ कहा था। हिम्मतभाई थे ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम थे ?

मुमुक्षु : सुना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना था। मैंने तो कहा था कि भगवान विराजते हैं महाविदेह

में। हम वहाँ थे। वहाँ से हम आये हैं। कहा था हजारों लोगों के बीच में। यह भगवान विराजते हैं। समझ में आया? लोग बहुत थे। हजारों लोग। गाँव छोटा है। २५-३० घर थे। ५०० लोग तो हमारे साथ थे। और ५०० बाहर के पधारे थे। कोई ब्रह्मचारी राजकुमार ने लिखा है। आगरा का है। आगरा। जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी राजकुमार।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आगरा के हैं। वह यहाँ आये थे कुछ करने को। चक्रपाल। सिद्ध चक्रपाल। फिर यह विद्यानन्दजी आये थे।

भगवान विराजते हैं महाविदेह में परमात्मा साक्षात् केवलज्ञानी हैं। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक जानते हैं। णमो अरिहंताणं पद में विराजते हैं। महावीर भगवान आदि तो सिद्ध हो गये। णमो सिद्धाणं। उनको शरीर नहीं, वे तो सिद्ध हो गये। पाँच णमोकार (मन्त्र) तो याद है या नहीं? उसका अर्थ भी बराबर नहीं आता हो। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं, पर में आत्मबुद्धि होना, वह भ्रमणा का कार्य है और पर्यायबुद्धि से भय भी उत्पन्न होता है। इसलोक का भय होता है उसको। मेरा यह लोक तो मेरे पास है, धर्मी ऐसा जानता है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार यह लोक है—यह मेरा आलोक है नहीं। **परलोक का भय,...** अज्ञानी को परलोक भय (होता है कि) कहाँ जाऊँगा? यहाँ से मरकर कहाँ जाऊँगा? ऐसा भय अज्ञानी को होता है। धर्मी जीव को आत्मज्ञान है, उसको परलोक का भय है नहीं। मेरा परलोक भी आत्मा और यह लोक भी आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, तीसरा। **मृत्यु का भय,...** देह छूटने का भय। आहाहा! मर जायेंगे? कौन मरे? आत्मा मरे? चन्द्र मरे? सूर्य मरे? मरे कौन? चन्द्र मर जायेगा कभी? सूर्य मर जायेगा? इसी तरह आत्मा मरे? आत्मा तो अनादि अनन्त है। कल आया था न दोपहर को? दोपहर को आया था। स्वयंसिद्ध भगवान अनादि सत्ता चैतन्य भिन्न है। अनन्त काल रहेगा। वर्तमान क्षणिक जितना नहीं। नित्य उद्योतमय है। ओहोहो! ऐसे आत्मा को मृत्यु का भय नहीं। अज्ञानी को मृत्यु का भय होता है। हाय... हाय मर जायेंगे। कौन मरे? आत्मा जन्मता नहीं, आत्मा मरता नहीं। शरीर के संयोग को जन्म

कहते हैं और शरीर के वियोग को मृत्यु कहते हैं। आत्मा को जन्म-मरण है नहीं। आहाहा! खबर नहीं, अपनी चीज़ की खबर नहीं। मृत्यु का भय।

अरक्षा का भय,... कोई रक्षा करे तो मैं रह सकूँ। रक्षा न करे तो कैसे (रहूँ)? परन्तु किसकी रक्षा? त्रिकाल है न। अरक्षा है कहाँ? **अगुप्ति का भय,...** गुप्त रहूँ तो मेरी रक्षा हो। गुप्त रहूँ, अगुप्ति है इसलिए। यह तो गुप्त ही है, क्या कोई प्रवेश करता है अन्दर में? शरीर, वाणी, मन का प्रवेश यह भगवान आत्मा में है नहीं। यह तो भिन्न है। यह अगुप्तिभय अज्ञानी को होता है, ज्ञानी को होता नहीं। **वेदना का भय...** शरीर में रोग, रोग ऐसा रोग आवे (तो) अज्ञानी को त्रास हाय... हाय... यह क्या हुआ? शूल आया। शूल आता है न शूल? डबल निमोनिया। क्या कहते हैं तुम्हारा रोग अभी? हार्ट अटेक, यह अभी बहुत चला है। यह क्या कहते हैं खून का? ब्लडप्रेशर। और तीसरा? कैंसर। यहाँ कैंसर, यहाँ कैंसर, सिर का कैंसर, यहाँ कैंसर... आहाहा! बहुत सुना है। त्रास हो जाये। हाय... हाय...! सब व्याधि का उपचार है। क्षय का भी उपचार मानते हैं। यह तो यहाँ है न। हॉस्पीटल बड़ा है न। जीथरी, जीथरी। कैंसर का कोई उपाय नहीं है, मर जायेंगे। कौन मरे? देह तो नाशवान है, वह तो नाश होगा। तेरा कहाँ नाश है? तू तो अविनाशी आत्मा अनादि-अनन्त है। आहाहा! अज्ञानी को मृत्यु का भय है। समझे?

वेदना का भय रोग रोग। अकस्मात। अकस्मात हो जायेगा, बिजली गिरेगी, मकान गिरेगा, सर्प काटेगा, सिंह ले जायेगा, चोर ले जायेगा, अकस्मात् का भय अज्ञानी को है। ज्ञानी को अकस्मात का भय है नहीं। अकस्मात कुछ होता ही नहीं। मैं तो चिदानन्द आत्मा अनन्त आनन्द का पिटारा हूँ। मेरे पिटारे में किसी का अधिकार नहीं है। आहाहा! धर्म किसको कहते हैं, उसकी खबर नहीं। समझ में आया? **जिसके यह भय हों, उसे मिथ्यात्व कर्म का उदय समझना चाहिए...** उसको मिथ्यादृष्टि का विपरीत अभिप्राय, जैनदर्शन से, आत्मा से विपरीत मान्यतावाला जानने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि होने पर यह नहीं होते। आत्मा राग और पुण्य की क्रिया से भिन्न है, ऐसी आत्मा की दृष्टि जब हो तो ऐसा भय उसको होता नहीं। मैं तो नित्यानन्द प्रभु हूँ। समझ में आया? यह एक बोल कहा—नि:शंक। धर्मी जीव नि:शंक होता है। अज्ञानी

को शरीर के रोग (प्रति) भय आया करता है। आहाहा! और पर का मैं कर सकता हूँ। अरे! मेरे से पर में न हुआ कुछ, मैंने इतनी-इतनी तैयारी की (लेकिन हुआ नहीं), ऐसी अज्ञानी की मान्यता है। पर का क्या करे? आहाहा! शरीर में भी श्वास जब रुक जाता है। देने जाये मृत्यु के समय, साध्य हो तो। श्वास नाभि से हट गया है। नाभि है न यहाँ। श्वास चलता है वह जड़ है। यहाँ से यहाँ तक श्वास जब स्थान छोड़ देगा मृत्यु के समय में। साध्य ख्याल हो तो छोड़ देगा स्थान। ऐसा होगा। कहीं नीचे नहीं जायेगा। थोड़ा दोरावा। बे-दोरा। दोरा समझते हो? दोरा को क्या कहते हैं? धागा। धागा कहते हैं। एक धागा, दो धागा नाभि से छूट जाता है (मृत्यु) पहले। ऐसा होगा, कटक निकल जायेगा। ख्याल है कि यहाँ से छूट गया नाभि से। कर न नीचे। तेरा कार्य हो तो, तेरे से होता हो तो। आहाहा!

मुमुक्षु : डॉक्टर मिले तो हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में डॉक्टर मर जाते हैं। डॉक्टर मिले, पैसे खर्चे तो मिल जाये। धूल भी नहीं मिलती। आहाहा!

हमारे यहाँ शिवलाल पटेल थे न। वह बल्लभ पटेल नहीं? बल्लभभाई और विठ्ठल सेठ। उसके कुटुम्बी थे। यहाँ आये थे, रहते थे। उसको यहाँ नाभि से श्वास हट गया। यहाँ व्याख्यान सुनते थे। बहुत वर्ष तक रहते थे। शिवलाल पटेल है। किस गाँव के थे? करमसद। करमसद है न। गुजरात में ...करमसद। विठ्ठल पटेल, बल्लभ पटेल सब करमसद के। करमसद है आणंद के पास। हम गये थे। दुकान थी न। बीड़ी लेने का। ६७-६८ के वर्ष। संवत् ६७-६८। वहाँ बड़ी वरीयाली होती है न वरयाली समझते हैं? सौंफ। सौंफ का पानी डालकर बीड़ी होती है वहाँ। बीड़ी समझते हैं। यह तम्बाकूवाली बीड़ी होती है न। तो तम्बाकू में सौंफ का पानी डालते हैं। ऐसी बनाते हैं वहाँ। तो हम लेने को गये थे। बहुत बड़ा एक पटेल पटेल था कोई। वह तो दुकान पर थे। पालेज से। ६५-६६ की बात होगी। तो वहाँ के रहनेवाले हैं। उसको जब रोग हुआ। यहाँ रहते थे। वह शींग खाते थे। शींग क्या? मूँगफली। मूँगफली कहते हैं न? मूँगफली खाई और वहाँ आहार किया समिति में। आहार करके आये, बैठे। हम भोजन करके घूमने को निकले थे। कहा, क्या है पटेल? कहे, अन्तक्रिया। ऐसे बोले। क्या है?

अन्तक्रिया। अन्तिम क्रिया है। क्यों? श्वास हट गया। बैठे थे ऐसे। नीचे बैठे थे। श्वास नाभि से हट गया। क्या हुआ कुछ खबर नहीं। हम भोजन करके अभी आये हैं। रोग कुछ नहीं था। परन्तु मूँगफली खाई कच्ची। कच्ची सेंकते हैं न। वहाँ समिति का आहार बहुत अच्छा है। ... होता है न। वहाँ तो बहुत लोग आते हैं। खाकर आये और एकदम यहाँ बैठ गये। ३६ घण्टे रहे। डॉक्टर यहाँ थे। धर्म... धर्म... ऐई! धर्मचन्दजी तुम्हारा। उसने इंजेक्शन दिया। ३६ घण्टा। इंजेक्शन दिया पूरा हो गया। देह छूट गया। आहाहा!

श्वास की क्रिया नाभि से हटकर जब ऊँची चलती है, उसको नीचे बैठाने की अपनी ताकत नहीं। वह पर का कर सके? ऐई! सेठ! यह तो दृष्टान्त देते हैं। प्रत्यक्ष है न सब। हम पर का कर सकते हैं, पर को सुखी कर सकते हैं, पर को आहार दे, पानी दे—ऐसा धूल में भी नहीं कर सकते, वह तो जगत की चीज़ है। जगत की चीज़ उसके कारण से वहाँ जाती-आती है। समझ में आया? और उसका कुछ पुण्य हो तो संयोग मिले, पाप हो तो न मिले। तो उसके कारण से। तुम दे सकते हो? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को ऐसा अभिमान पर का होता नहीं। में पर को सुखी कर सकता हूँ, ऐसा नहीं होता। मिथ्यादृष्टि को ऐसा (है कि) मैं सेवा करता हूँ। पर की सेवा करता हूँ। डॉक्टर को अभिमान बहुत होता है। पर की सेवा। एक डॉक्टर आया था न। दूसरा पर की सेवा करता हूँ। हम समझते हैं सब। सेवा का अर्थ यह है कि मुफ्त में थोड़ा काम करे तो अपनी प्रसिद्धि हो तो डॉक्टरपना चले। समझ में आया? ऐई! सेठ! हमने तो सबको बहुत को देखा है न! डॉक्टर-बॉक्टर। यहाँ तो ६० साल तो निवृत्ति लिये हुए हैं। दुकान छोड़ी उसको ६० साल हुए। समझ में आया? दुकान पर भी निवृत्ति थी। पिताजी की दुकान थी। हम तो माल लेने को जाते थे मुम्बई आदि। ... सब जानते हैं कि सेवा कौन करते हैं। यह वकील भी ऐसे गप्प मारे। लोगों को हम अनुकूल कर देते हैं। ऐसा कहते हैं। पैसे लेते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये। यह ... वकील में पहले नम्बर में गिनने में आते थे। बड़ा वकील। उसको ... लेते। एक दिन का दो सौ रुपये। एक दिन के दो सौ हों। उसमें क्या? वकीलात करते हैं तो किसी को जिता देते हैं। धूल में भी नहीं करते। वह तो

उसका पुण्य का उदय हो तो ऐसा बनता है। बराबर है ? यहाँ कहते हैं सम्यग्दृष्टि को होने पर, यह भाव पर का कार्य मैं करता हूँ और पर से मेरे में कुछ होता है, ऐसी दृष्टि धर्मी की होती नहीं। यह दृष्टि हो तो वह अधर्मी है। आहाहा! एक बोल हुआ। वह एक बोल की अन्तर्भेद की बात करते हैं।

प्रश्न :- भयप्रकृति का उदय तो आठवें गुणस्थान तक है;... प्रभु! आप तो कहते हैं सम्यग्दर्शन आत्मा का ज्ञान हुआ, आत्मधर्मी हुआ तो उसको भय है ही नहीं। हमने तो सुना है शास्त्र में कि आठवाँ गुणस्थान। चौथा गुणस्थान सम्यक् धर्म, पाँचवाँ श्रावक। सच्चे श्रावक हों। यह वाड़े के वह श्रावक नहीं है और छठ्ठा (गुणस्थान) सच्चा मुनि, सन्त मुनि सच्चे हों। ऐसे मुनि तो अभी है नहीं कोई। समझ में आया ? और सातवें श्रेणी और आठवें में धारा। तो कहते हैं कि आठवें गुणस्थान तक तो भय का उदय होता है। शिष्य का प्रश्न है। और तुम कहते हों कि धर्मी को भय नहीं है। **उसके निमित्त से सम्यग्दृष्टि को भय होता ही है, फिर भय का अभाव कैसा है ?** शिष्य का प्रश्न है।

समाधान :- कि यद्यपि सम्यग्दृष्टि के चारित्रमोह... अस्थिर मोह के कारण **भेदरूप भयप्रकृति...** अस्थिर मोह का अन्तर्भेद। यह भय के उदय से जरा भय होता है। **तथापि उसे निर्भय ही कहते हैं; क्योंकि उसके कर्म के उदय का स्वामित्व नहीं है...** भय थोड़ा हो, परन्तु स्वामी नहीं। मेरी चीज़ नहीं। मैं तो आनन्दकन्द ज्ञाता-दृष्टा हूँ। आहाहा! ऐसे धर्मी को भय होने पर भी भय का धनीपना—स्वामित्व होता नहीं। आहाहा! भारी धर्म भई ऐसा! समझ में आया ? आहाहा!

और परद्रव्य के कारण अपने द्रव्यस्वभाव का नाश नहीं मानता। देखो! कोई सर्प काटे, कोई सिंह आ जाये, कोई तलवार से मारे। तो मेरा मृत्यु होता है, ऐसा मानते नहीं। वह तो शरीर का नाश है। नाशवान का नाश होता है। मेरा कहाँ नाश होता है समझ में आया ? **उदय का स्वामित्व नहीं है परद्रव्य के कारण अपने द्रव्यस्वभाव का नाश नहीं मानता।** कर्म के कारण से मेरा नाश होता है, शरीर के कारण से, शरीर नाश हुआ तो मेरा नाश होता है। सर्प ने काटा तो मुझे दु:ख हुआ, उसके कारण से। ऐसा नहीं मानते।

पर्याय का स्वभाव है... शरीर का तो स्वभाव जड़-मिट्टी है। **विनाशीक मानता**

है, इसलिए भय होने पर भी उसे निर्भय ही कहते हैं। लो। उसको थोड़ा भय होता है परन्तु निर्भय कहने में आता है। अपनी चीज़ में शंका नहीं पड़ती कि मेरी चीज़ में कुछ आघात पहुँचा हो, मृत्यु से-ऐसा मानते नहीं। बहुत कठिन भाई! **भय होने पर उसका उपचार भागना (पलायन) इत्यादि करता है...** लो। सम्यग्दृष्टि है, भान है, अपना अनुभव है, फिर भी थोड़ी अस्थिरता का दोष है। अस्थिर। वह चारित्र का दोष है, सम्यग्दर्शन का दोष नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि इत्यादि भागे भय से। हथियार हाथ में ले, गाँव छोड़ दे, प्लेग आया हो तो गाँव छोड़ दे। ऐसा धर्मी को भाव आता है, परन्तु समझता है कि यह तो मेरी अस्थिरता का दोष है। अस्थिरता का स्वामी होता नहीं। आहाहा!

अज्ञानी तो यह राग का स्वामी, भय का स्वामी और पर का (स्वामी), रोगादि मेरे में आया है, ऐसा मानते हैं। सूक्ष्म बात है। जन्म-मरण करके चौरासी के अवतार में दुःखी... दुःखी... दुःखी... है। उसको आत्मा क्या है उसकी खबर नहीं। आहाहा! जगत के लिये बहुत भाव किया, परन्तु जगत में कुछ फर्क होता है अपने भाव से— बिल्कुल नहीं। बिल्कुल तीन काल में नहीं। मानते हैं अज्ञानी मूढ़। मुझसे पर में ऐसा हुआ है। मैं था तो सब व्यवस्थित काम चलता है। नेमिचन्दजी! चार मिल में ध्यान रखते हैंतो चलती है न!

मुमुक्षु : वेतन मुफ्त का देते हैं? ध्यान न रखते हो तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुफ्त का ही देते हैं। ऐई! सेठ! यह ध्यान बहुत रखते हैं तो पैसा मिलता है? .... बहुत हैं गरीब साधारण बेचारे। हजार मिलना मुश्किल पड़े एक महीने के और तुम्हें लाखों रुपये मिलते हैं। समझ में आया? मिले क्या? संयोग में देखने में आता है। और मेरा है ऐसी ममता तुम्हारे पास आती है। चीज़ तो दूर रहती है। बराबर है भाई! लक्ष्मी आ जाती है अन्दर में? मेरा है, ऐसी ममता उसके है। उसके समीप में ममता आती है। आहाहा! समझ में आया?

उसका उपचार भागना (पलायन) इत्यादि करता है; वहाँ वर्तमान की पीड़ा सहन न होने से... ऐई! चेतनजी! रामजीभाई! पीड़ा आई। ... पीड़ा न हो बिल्कुल? पीड़ा होती है। श्रेणिक राजा भगवान के पास क्षायिक समकित (लिया)। हजारों राजा

चँवर ढाले। आत्मा का भान हुआ, मैं पर से भिन्न हूँ। मेरी चीज़ में राग नहीं, राग में मैं नहीं। द्वेष में, स्त्री-कुटुम्ब में मैं नहीं। मेरी चीज़ में मैं हूँ। ऐसा अनुभव आत्मा का हुआ। वह भी अन्त में जरा राग का अस्थिरभाव आ गया। सिर फोड़ा। मर गये। समकित में दोष नहीं। तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। अभी तो नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति हैं।

मुमुक्षु : उसी समय बाँधते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसी समय बाँधते हैं और अभी भी बाँधते हैं। चौरासी हजार में से ढाई हजार वर्ष हुए। चौरासी हजार पूरा होकर तीर्थंकर होंगे। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर। जैसे महावीर भगवान हुए, वैसे वह तीर्थंकर होंगे। समझ में आया? जिसको आत्मदर्शन, आत्मज्ञान हो गया, उसको ऐसा जो मृत्यु के समय परिणाम हुआ, उसके कोई दर्शन में दोष नहीं। समकित में दोष नहीं। समझ में आया? उसका लड़का था। कुणिक। श्रेणिक का। वह क्षायिक समकित थे। कुणिक जरा क्रूर था। उसके पिता को जेल में डाला। जेल में डाला था। पीछे उसकी माता पास गये। माताजी! कहते हैं अरे..! भाई! तेरे पिता के साथ क्या किया तूने? मुझे राज करना था। पिताजी तो मेरे विरोधी थे। अरे! भाई! तेरा जन्म हुआ, मेरे पेट में तुम थे। रानी कहती है उसकी माता। मेरे पेट में तुम थे तो हमको ऐसा मनोरथ हुआ कि पिताजी का खून मैं पीऊँ। माँस खाऊँ। ऐसा आया मेरे। तेरा जन्म हुआ। मैंने कूड़े में डाल दिया। उकरडा समझे? कूड़े का ढ़ेर।

मुमुक्षु : कचरे का ढ़ेर।

पूज्य गुरुदेवश्री : कचरे का ढ़ेर। जन्म हुआ तो डाल दिया था रानी ने। श्रेणिक आया। क्या हुआ पुत्र को? माता! अन्नदाता पुत्र को तो ऐसा... मेरे पेट में आया और आपका कलेजा खाने का भाव। मेरा जन्म हुआ तो मैंने तो फेंक दिया कूड़े के ढ़ेर में। वहाँ बालक जन्मा ताजा था न। कुकडा कहते हैं न? कुकड़ा नहीं होता? मुर्गा। मुर्गा। मुर्गा होता है न? कुकडा कहते हैं। उसने चोंच मारी। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... बहुत। श्रेणिक राजा गये। कहाँ गया बालक? पहला बालक है (और) ऐसा किया? पीड़ा... रोने लगे। एक दिन का बालक है अभी तो। ऐसे ... और पीड़ा... तेरे पिता ने तो ऐसा

किया। हैं ! अररर ! में बहुत पापी हूँ। मेरे पिताजी ने ऐसा किया। हाथ में हथियार लेकर जेल में डाला था वो तोड़ने को निकला। तोड़ा। उसको शंका पड़ गयी श्रेणिक को। अभी जेल में डाला, यह क्या करने को आता है ? सिर फोड़कर देह छोड़ दिया। नरक का आयुष्य था। पहली नरक में गये। पहली नरक में। चौरासी हजार वर्ष में। नरक का आयुष्य बँध गया था। फिर समकित हुआ आत्मज्ञान। आहाहा! परन्तु आत्मज्ञान दर्शन में दोष नहीं। ऐसी चारित्रदोष की पीड़ा आई और उपाय भी ऐसा खोजने को गये। यह कौन समझे ऐसी बात ? आहाहा! समझ में आया ?

रामचन्द्रजी जैसे पुरुषोत्तम पुरुष आत्मज्ञानी, ध्यानी और उस भव में मोक्ष जानेवाले। सीताजी को रावण ले गया। तो सीताजी समकिती थी, आत्मज्ञानी थी। यह भी आत्मज्ञानी थे। तो वृक्ष और पर्वत से पूछे, मेरी सीता... मेरी सीता... समकित में दोष नहीं था। वह चारित्रदोष की कमजोरी थी। ज्ञानी (अपने को) उसका स्वामी नहीं मानते। आहाहा! अज्ञानी को पता नहीं चलता कि यह चीज़ क्या है ? धर्मी होकर ऐसा कहे और अज्ञानी होकर छोड़ दे। स्त्री नहीं हमारी। उससे कोई समकिती धर्मी हो गया, ऐसा नहीं। यह चीज़ तो अन्दर की चीज़ है। समझ में आया ? शान्तिभाई !

कहते हैं कि **वहाँ वर्तमान की पीड़ा सहन न होने से वह इलाज (उपचार) करते हैं,...** धर्मी आत्मभान होने पर भी ऐसा कोई रोग आया इलाज करते हैं। विषय की वासना हुई... ... जाते है ... छोड़कर परन्तु उसका स्वामी नहीं होता। यह कोई बात है ! अपनी चीज़ अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान हैं, उसका जब भान हुआ, उससे विरुद्धभाव का एकत्व नहीं करते, स्वामी नहीं होते। आहाहा! समझ में आया ? **इलाज करते हैं, वह निर्बलता का दोष है।** अपनी पर्याय में निर्बलता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि को भी आ जाता है। परन्तु उसका स्वामी नहीं होता। यह मेरी चीज़ में और मेरे में हुई—ऐसे नहीं मानते। वह राग के भाव में ऐसा दोष आ गया। ओहोहो ! मैं तो आनन्द और ज्ञाता-दृष्टा आनन्द हूँ। ऐसी धर्मीजीव की अपनी दृष्टि कभी छूटती नहीं। राग का भी स्वामी-घणी होता नहीं। ऐसे को धर्म कहते हैं। समझ में आया ? भगवानजीभाई ! ऐसी बात कठिन, भाई ! आहाहा ! एक ओर अज्ञानी हो, शरीर में रोग आये, डर न करे, इलाज न करे, ... अज्ञानी है। क्योंकि यह तो मानते हैं कि शरीर का मैं कर सकता हूँ, पर का मैं कर सकता हूँ।

ऐसे माननेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि कदाचित् इलाज भी न करे, तो भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म का अन्तर, वह धर्मात्मा जाने। ऊपर की दृष्टि देखनेवाला। उपलक क्या? उपलक कहते हैं? उपलक कहते हैं? ऊपर-ऊपर से देखनेवाले का पता नहीं चले। समझ में आया? गहराई में तपास करे तो ख्याल में आ जाये कि यह अज्ञानी है या ज्ञानी है।

यहाँ कहते हैं **निर्बलता का दोष है।** आत्मा के भान में तो ज्ञान और, दर्शन, आनन्द हूँ। मैं ज्ञान कोई राग का कर्ता नहीं, तो पर की चीज़ का कर्ता तो मैं तीन काल में हूँ नहीं। ऐसा राग आ जाये थोड़ा, तो उसको कर्तापने का भान नहीं करते। मेरा कर्तृत्व है, ऐसा नहीं मानते। आहाहा! अज्ञानी तो थोड़ा भी पर का मैंने किया। देखो, मैंने उसको सुखी कर दिया। रोग में तड़पते थे, डॉक्टर आये, जिला दिया। धूल में जीवित रखता नहीं। उसका आयुष्य हो तो जीवित रहे अन्यथा मर जाये। तेरे से मरता है और तेरे जिता है वह? उसका आयुष्य कर्म है तो जीते हैं और आयुष्य कर्म समाप्त हो जाये तो देह छूट जाता है। तुम पर को मार सकते हैं और पर को जीवित रख सकते हो? मान्यता मूढ़ अज्ञानी की है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग का मार्ग बहुत कठिन। अलौकिक मार्ग है। लोग लौकिक लाईन पर चढ़ गये बाहर में। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि के सन्देह तथा भयरहित होने से निःशंकित अंग होता है। लो। निःशंक होता है आत्मा में। समझ में आया? राग होने पर भी उसका स्वामी नहीं होता। अज्ञानी को राग कदाचित् मन्द हो, परन्तु मूढ़ जीव (पर का) स्वामी होता है और मैं पर का कर सकता हूँ, ऐसी दृष्टि मिथ्यादृष्टि, पाखण्डी अज्ञानी की है। नेमिचन्दजी! यहाँ तो यह है। यहाँ कुछ मक्खन-बक्खन कुछ नहीं। मक्खन समझते हैं? मस्का-मस्का कहते हैं। मस्का। मस्का कहते हैं। मक्खन लगाये। बड़े सेठ आदि हो, अमलदार अनुकूल हो तो उसको मक्खन लगाये। पाटनीजी! यहाँ तो भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ और उसके सन्त, सत्य है वह प्रसिद्ध और जाहिर करते हैं। उसमें कुछ चीज़ भय या डर है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १४, मंगलवार, दिनांक २५-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-१०

अष्टपाहुड़। दूसरी गाथा। ... सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी शुरुआत उसको कहते हैं। उसके बिना सब व्यर्थ है। सम्यग्दर्शन न हो और व्रत, तप, भक्ति, पूजा और शुभभाव करे, सब संसार में रुलने का कारण है। समझ में आया? तो प्रथम जिसको जन्म-मरण चौरासी का अवतार... ओहोहो! इतना उसमें दुःख है। परिभ्रमण भवसमुद्र में डुबकी मारकर अनन्त भव किये। उस भव का नाश तो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति परिणाम से तो होता नहीं। परन्तु वह परिणाम ही संसार है। समझ में आया? यह शुभराग है, वही संसार है और उसको अपना मानना, वह मिथ्यात्व का बड़ा संसार है। आहाहा! समझ में आया?

शुभराग अपना है और अपना कर्तव्य है, ऐसी मान्यता, ऐसी दृष्टि महा विपरीत मिथ्यात्वभाव पूरा संसार है। उसमें अनन्त नरक-निगोद करने की ताकत है। आहाहा! यह क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। भूल की भी। उस भूल का नाश प्रथम चैतन्य भगवान पूर्ण शान्त आनन्द आदि शक्तियों का सागर आत्मा है। उस ओर की दृष्टि करके एकता का, द्रव्यस्वभाव वस्तु की एकता का अनुभव करना अपूर्व बात है। कभी उसने किया नहीं। यह पंथ लिया ही नहीं कभी। सभी भटकने के रास्ते हैं। अन्तर में चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण शुद्ध ऐसी दृष्टि करते ही अपने में आनन्द के भाव की वेदन शुरुआत हो जाती है। सुख के स्वाद की शुरुआत हो जाती है। यह सुख है। दुनिया में किसी चीज़ में सुख नहीं है। सुख तो अपने आत्मा में है। अन्तर्मुख दृष्टि करने से स्वभाव-सन्मुख होने से त्रिकाली ध्रुव में एकाकार होने से जो सम्यग्दर्शन होता है प्रथम। गृहस्थाश्रम में होता है, पशु को होता है, नारकी को होता है। तो प्रथम उसको आत्मा का स्वाद आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह स्वाद कैसा होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वाद आता है या नहीं? राग-द्वेष का, बीड़ी का, पैसे का। ऐसा स्वाद आता है, वह क्या है? राग का स्वाद है। जड़ का स्वाद नहीं।

मुमुक्षु : जड़ का स्वाद नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ का क्या स्वाद है ? जड़ तो मिट्टी-धूल है। रूपी है, भगवान आत्मा तो अरूपी है। उसमें तो पर-सन्मुख लक्ष्य करके जितनी संकल्प-विकल्प, राग-द्वेष की वृत्तियाँ उठती हैं, उसका वेदन है। मूढ़ मिथ्यादृष्टि अनादि से उसका वेदन करते हैं। परन्तु उसको तो खबर नहीं कि यह दु:ख है और मेरी चीज़ में आनन्द है। अज्ञान में कभी ऐसा प्रयत्न लिया ही नहीं, किया नहीं, उसका क्या स्वरूप है, वह जाना भी नहीं। आहाहा!

तो कहते हैं कि ऐसी सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी शुरुआत होती है। उसको नि:शंकता होती है। अपने स्वभाव की नि:शंकता और सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो पदार्थ कहा, उसमें नि:शंक होते हैं, उसमें शंका होती नहीं। आहाहा! समझ में आया ? यह बोल तो कह गये। आगे कांक्षा का बोल है। नि:कांक्ष। धर्मी को सम्यग्दर्शन हुआ है, अपने आनन्द का भान हुआ है। आहाहा! मेरी शान्ति... शान्ति मेरे में है, ऐसी अन्तर्दृष्टि होने से धर्मी को कांक्षा नहीं होती। परपदार्थ की भोग की अभिलाषा नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कांक्षा अर्थात् भोगों की इच्छा-अभिलाषा। आहाहा! क्या कहते हैं ? कि स्त्री, पैसे, लक्ष्मी, इज्जत सारी चीज़, उसकी भोगने की रुचि नहीं होती उसको। समझ में आया ? क्योंकि आत्मा के आनन्द की जब रुचि हुई तो पर के भोग की रुचि उसको नहीं। रुचिपूर्वक यह अभिलाषा नहीं। समझ में आया ? आहाहा! यह कोई बात है! प्रथम धर्म, हों! उसको भोग की इच्छा-अभिलाषा... **वहाँ पूर्व काल में किये भोगों...** पूर्व काल में जो भोग लिया है। **वांछा...** उसकी वांछा **तथा उन भोगों की मुख्य क्रिया में...** यह शरीर की क्रिया हुई विषय की, वासना की, भोग की। आहाहा! तो धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को, धर्म की शुरुआतवाले को यह क्रिया में वांछा होती नहीं। आहाहा! समझ में आया ? क्योंकि आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा, उसकी जब अन्तर में रुचि और दृष्टि हुई तो पूर्व काल में (भोगे) भोगों की वांछा उसको होती नहीं। आहाहा! बड़ा चक्रवर्ती पद मिला हो। जो कि चक्रवर्ती पद सम्यग्दृष्टि होने के बाद ही मिलता है।

आत्मा का भान होने के बाद ऐसी पदवी होती है। परन्तु उसके अतिरिक्त बड़ा देव होता है अहमेन्द्र। उसका भोग वहाँ लिया हो और देव होकर इन्द्राणी से भोग लिया हो, परन्तु जब आत्मा का भान, मैं तो आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ—ऐसी दृष्टि अन्तर में हुई तो वहाँ से पूर्व के भोग की वांछा नहीं होती। आहाहा!

और पूर्व में क्रिया शरीर की हुई हो, उसकी वांछा नहीं होती। और कर्म और कर्म के फल की वांछा नहीं होती कि ऐसा कर्म हो तो ठीक, पुण्य बँधे तो ठीक और उसका फल यह लक्ष्मी मिले तो ठीक, ऐसी वांछा धर्मी को नहीं होती। आहाहा! रुचिपूर्वक की वांछा। आसक्ति होती है, परन्तु वह आसक्ति तो निर्बलता के कारण से है। भोग की रुचि है और भोग में मिठास है, यह धर्मी की दृष्टि में से उठ जाता है। समझ में आया? तो कहते हैं, यह बात अलौकिक बात है, भगवान! ओहोहो! तेरी चीज़ की जहाँ महिमा आयी कि यह तो आनन्द की गठरी है। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द की गठरी है। जब उसको खोलते हैं। सम्यग्दर्शन द्वारा जब खोलते हैं, तो उसमें से आनन्द आता है। और राग और पुण्य की इच्छावन्त ने उस गठरी में ताला लगाया है। आहाहा! नवनीतभाई! और उसकी चाबी तो अन्तर में जाये दृष्टि तो चाबी मिले। आहाहा!

जिसको राग और पुण्यभाव... पाप की इच्छा तो दूसरी, परन्तु पुण्यभाव की जब रुचि और इच्छा है, तब तक तो आनन्द की गठरी को प्रभु! ताले लगाये हैं। केवल दुःख का वेदन अज्ञानी को है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! परम बात इतनी सूक्ष्म है। लोगों को सुनने मिली नहीं। बराबर है? एक तो यह संसार की अग्नि। होली समझते हैं? होली समझते हैं? यह फाल्गुन सुद पूनम को होली नहीं होती? अग्नि। ज्वाला। लकड़ी और गोबर डालते हैं न अन्दर। फाल्गुन सुदी पूनम होती है न। हम थे न एक बार वहाँ खण्डवा में। ओहोहो! होली... होली... खण्डवा में थे एक बार फाल्गुन सुद (पूनम) को। चारों ओर अग्नि... लकड़ी जले। ऐसे अज्ञान में तो सारी होली-अग्नि जली है। चाहे तो राजा हो, चाहे तो सेठ हो, चाहे तो देव हो। वह कषाय की अग्नि से जला हुआ... आहाहा! समझ में आया?

एक बार दृष्टान्त नहीं दिया था? वह चूड़ा का दृष्टान्त दिया था। चूड़ा चूड़ा है।

गाँव है चूड़ा। उसमें हलवाई था। कंदोई समझे? हलवाई। जैन था। स्थानकवासी थे। परन्तु हमारे पर प्रेम था। तो फिर भजिया... गांठिया कहते हैं। भजिया कहते हैं? चने के आटे का। वह करते थे। कढाई में। तेल में करते थे। तो उसके दुकान में करते थे, उसमें एक ... ऊपर से सर्प निकला। वह धुँए से ऊपर चल पड़ा। आधा पड़ा तेल में, आधा रहा बाहर में। सर्प। धुँआ निकले धुँआ निकले। सर्प पड़ा। आधा तेल में। और यह जैन आर्य व्यक्ति थे। हाय... हाय... फँस गया। अरर! एकदम जहाँ बन्द किया, झारी था न झारी, उससे ऐसे ले लिया। बाहर निकाला। आधा तो जल गया था और आधा रहा। तो चूल्हे में... चूल्हा है न चूल्हा। अग्नि हल... हल... हल... अग्नि उसमें घुस गया। क्योंकि भान न मिले। यह दु:ख से मुक्त कैसे होऊँ? ऐसा भान न मिले। इसलिए दु:ख से मुक्त होने के लिये नीचे धगधगती अग्नि थी। ऐसे बाहर निकाला तो अन्दर चला गया। राख। भस्म हो गया। आहाहा! यह तो दृष्टान्त हुआ। यह बना है, हों! ऐसे चौरासी लाख में अनादि अज्ञानी प्राणी मिथ्यात्व और राग-द्वेष से जलते हैं। उसमें थोड़ा बाकी हो तो फिर विशेष मिथ्यात्व और राग-द्वेष करते हैं। मिथ्याश्रद्धा। पुण्य से धर्म होता है, पर का मैं कर सकता हूँ, पर से मुझे आशीर्वाद मिले तो मेरा कल्याण होगा। ऐसी मिथ्या श्रद्धा का भ्रम। भ्रम में गहराई में जाकर आत्मा की शान्ति को जला देते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अरेरे! खबर नहीं उसको कि मैं क्या करता हूँ? कहाँ जाता हूँ? क्या होता है? और उसका क्या फल है? उसकी खबर नहीं। वह यहाँ कहते हैं। धर्मी को तो यह वांछा कर्म और कर्मफल की होती नहीं। ओहोहो! पुण्यभाव करूँ तो पुण्य बँधेगा और उसका फल मिले स्वर्ग और लक्ष्मी आदि (मिलेगी), ऐसी वांछा धर्मी को नहीं होती। आहाहा! उसकी भावना तो अपने आनन्द को पूर्ण करने की भावना है। समझ में आया? अपना आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप, अविकारीस्वरूप, ऐसा जो दृष्टि में आया है, उसको वृद्धि करके पूर्ण करने की भावना होती है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तेरी चीज़ सूक्ष्म बहुत है, प्रभु! ओहोहो! आचार्य तो प्रभु कहकर ही बुलाते हैं आत्मा को। भगवान आत्मा। ऐसा कहा है। ७२ गाथा है न ७२ समयसार।

समयसार की ७२ गाथा है न! ७२ नहीं? ७० और २। बहिन को तो वाँचन है न? आपको नहीं, बहिन तो बहुत पढ़ते हैं। ७२ गाथा है।

पुण्य और पाप का भाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का भाव, वह अशुचि है, मैल है और भगवान आत्मा तो निर्मलानन्द है, ऐसा लिया है वहाँ। टीका में लिया है, हों! आहाहा! शुभ और अशुभ हों। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, यह कमाना, लेना, ब्याज उपजाना, धन्धे आदि का भाव पापरूपी मैल है, अशुचि है, दुर्गन्ध है। आहाहा! वह तो है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह भी अशुचि, मैल और दुर्गन्ध है। यह अपनी सुगन्ध नहीं। ऐसा कहकर आचार्यदेव ने टीका में लिया है। संस्कृत टीका है।

भगवान आत्मा... आहाहा! शुभ-अशुभभाव तो मलिन, अशुचि है। प्रभु आत्मा निर्मलानन्द है, पवित्र है, उज्ज्वल है। ऐसा भेदज्ञान करने से—ऐसा मैल और निर्मल का भेदज्ञान भिन्न करने से आत्मा को सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी तब होती है, उसके बिना कर जाये सारी दुनिया में त्याग और तपस्या करके, क्लेश करके, (परन्तु) सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं। क्या कहा? **कर्म और कर्म के फल की वांछा तथा मिथ्यादृष्टियों के भोगों की प्राप्ति देखकर...** अज्ञानी हो और बड़ा राज मिला हो। एक-एक दिन की पाँच-पाँच, दस-दस, बीस-बीस लाख की आमदनी।

मुमुक्षु : यह अमेरिका के भोग को लागू पड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अमेरिका के भोग को लागू पड़ते हैं। भाई कहते हैं अमेरिका बहुत बढ़ा है आगे। धूल में भी बढ़ा नहीं है। पाप में बढ़ा है। यहाँ तो रास्ता दूसरा है भगवान! ऐई! आहाहा! अरबों रुपये हैं न वहाँ। अरबोंपति बहुत हैं वहाँ अमेरिका में। ५०-५० मंजिल के, क्या कहते हैं आपके? हजीरा-बँगला। उससे... क्या कहलाता है? लिफ्ट। बैठे हैं न हम बहुत बार। छह-आठ मंजिल का (मकान) हो तो लिफ्ट में बैठे। अभी मुम्बई गये थे न वहाँ छह मंजिल... छह मंजिल का... शान्तिभाई के वहाँ पालनपुरवाले। छह मंजिल, बारह मंजिल, बाईस मंजिल कुछ कहते हैं। छह मंजिल है, वहाँ रहने का था।

मुमुक्षु : सौ-सौ मंजिल तक...

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, बाह्य में हो।

मुमुक्षु : बहुत मजा आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मजा नहीं, धूल है। आहाहा!

यह कहते हैं यहाँ कि धर्मी को आत्मज्ञान में आनन्द आया है, उस दृष्टिवन्त धर्मात्मा को, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है और बड़ी लक्ष्मी दिखती है, उसके पास। समझ में आया? तो कहते हैं न, वह राजा... भाई! कौन कहा नहीं आपने? राजा।

मुमुक्षु : ईराक।

पूज्य गुरुदेवश्री : ईराक। हाँ। ईराक का राजा को... देश छोटा है। परन्तु उसको तेल का कुँआ निकला है। बहुत निकला। एक घण्टे में पाँच लाख की आमदनी।

मुमुक्षु : ... कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ कहते हैं। यह तो बात। राजा है। समझ में आया? इतना तेल निकला है। देश छोटा है। परन्तु तेल का कुँआ निकला है। बहुत पैसे। एक-एक घण्टे की लाखों की आमदनी। घण्टे की लाखों की आमदनी। फिर तो यह बैठे थे दस वर्ष पहले, उसको उठा दिया ... दूसरा बैठ गया।

मुमुक्षु : उसका भतीजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भतीजा। सुना है। बात आये। लोग बात करते हैं। हम कुछ पढ़ते नहीं। लोग बात करे कि ऐसा हुआ है। लो यह! एक घण्टे की लाख की आमदनी। दु:खी प्राणी है। ऐसा देखकर ज्ञानी को ऐसा नहीं होता है कि यह क्या? यह तो पूर्व का कुछ पुण्य हो तो ऐसी सामग्री हो, परन्तु है तो मूढ़ जीव। वहाँ से छोड़कर नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! नीचे नरक है। दस हजार की स्थिति कम से कम है। नारकी नीचे है। उसकी इतनी वेदना है शीत-उष्ण की वहाँ दस हजार वर्ष में कि एक कण जो अग्नि जितना यहाँ लाये। दस हजार योजन में लोग जल जाये। ऐसी कम से कम दस हजार की स्थिति है। बाकी लाखों, करोड़ों, अरब, असंख्य साल की स्थिति

है। बड़ा पापी तो वहाँ नरक में जाते हैं। यहाँ बादशाही दिखे उसको। और जहाँ पूरा हुआ (भव) तो नरक में। आहाहा! समझ में आया?

तो धर्मी गरीब हो समकित दृष्टि। उसको २५-५० रुपये मिलते हों मासिक का। अब यह सब बढ़ गया है। पहले तो चार-पाँच रुपये महीने (खर्चा) था। एक महीने के पाँच रुपये। अभी ७५-१०० हो गया खर्चा अनाज का। हमारे भाई नहीं तपसी थे न! ९२ के वर्ष। ९२। दो लोग दो महीने रहे थे। दाल-चावल, सब्जी। दो लोगों का दो महीने में २४ खर्चा। एक का ६ रुपये। अपने भाई तपसी दूसरे मकान में रहते थे न पहले? ९४ में तो यहाँ आया। जंगल में मकान था। सवा तीन साल तो वहाँ रहे। सवा तीन साल। स्टार ऑफ इण्डिया का मकान है। उस मकान का नाम स्टार ऑफ इण्डिया। वह सरकार का मकान था। सरकार से उसने ले लिया है। पीछे ... लिया है। वहाँ हम सवा तीन साल रहे। जंगल में ऊँचा मकान है थोड़ा। टेकरी पर। वहाँ रहते थे, तब वह और गिरधरभाई एक वोरा थे, नहीं? उन्होंने उन दोनों ने दो महीने एक साथ रसोई की थी। दो महीने के २४ रुपये खर्चा। एक-एक का ६ रुपये। ९२ के वर्ष की बात है।

मुमुक्षु : दोनों के १२ रुपये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो को १२। यहाँ तो आपको १ रुपया, २ रुपया की तरकारी चाहिए। शाक कहते हैं? वह तरकारी। एक यहाँ चाहिए, यहाँ चाहिए... करने को। एक यहाँ रखे। ... तो ठीक रहे।

मुमुक्षु : पैसे की कमी होती है...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पैसे की बढ़ गयी। परन्तु यह संयोग दुःख कितना बढ़ गया? पराधीन, स्वप्न में भी सुख नहीं।

मुमुक्षु : मोटर मिले, एयरोप्लेन...

पूज्य गुरुदेवश्री : अब धूल में मोटर मिली। मोटर ऊपर चढ़ गयी या मोटर में बैठा है, क्या पता है? उसको निभाने का भाव तृष्णा का इतना अन्दर जलता है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ परपदार्थ के ओर की तृष्णा का भाव है, वही दुःख है और वह लक्ष्मीवन्त

ऐसे देखे कोई। उसका है न? प्लेन को चलानेवाले। ३-३, ४-४, ५-५ हजार का वेतन। हम तो बहुत बार गये थे न! एक बार बड़ा था। एक बार तो सारा ... देखे कलकत्ता से खण्डेरगिरी। तीन हजार का एक दिन का लिया था सारा। सारा विमान पूरा-पूरा। २८ व्यक्ति थे। एक पूरा विमान लिया। तो सुबह गये तो शाम को... खण्डेरगिरी है न? वहाँ गये थे। यात्रा करने को। तो उसका काम करनेवाले कहे महाराज! आप देखो तो सही थोड़ा। देखे, परन्तु क्या कहे। धूल है, हमें तो कुछ दिखता नहीं। पाँच-पाँच हजार का वेतन है उसका, हों! सिक्ख होता है। सरदार होता है सरदार। धूल में भी नहीं। माँस खाता हो, मछली खाता हो। आहाहा! मछली आदि न खाये, परन्तु तृष्णा पर की बड़ी है, और उस तृष्णा में मजा आता है, वही मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है, अज्ञानी है, पागल है। वह पागल के पास लक्ष्मी बहुत देखकर धर्मी को वांछा नहीं होती। आहाहा! यह इतना! अरे! धूल है इतना क्या है? पुण्य के ढ़ेर, विष्टा के ढ़ेर हैं।

लिखा है न हमारे? सोगानी। सोगानी हुए। निहालभाई। कलकत्ता में। अजमेर के। सुना है या नहीं (नाम)? है या नहीं तुम्हारे पास वह द्रव्यदृष्टिप्रकाश। तीसरा (भाग) भी तुमको दिया है। द्रव्यदृष्टिप्रकाश। बहुत सूक्ष्म। आहाहा! दिया था तुमको, नहीं? यहाँ है फोटो उनका। बहुत आत्मार्थी। बहुत लाखोंपति... बहुत लाखोंपति... बड़ी दुकान है वहाँ। कपड़े की बड़ी दुकान है। परन्तु अन्तर में आत्मज्ञान यहाँ हुआ। यहाँ आये थे। बहुत वाँचन। श्रवण बहुत मनन। बाबा के पास, योगी के पास गये। बहुत भटके। हमारा आत्मधर्म देखा। ओहोहो! यह चीज़ मिली। यह मैं खोजता हूँ, वह यहाँ है। यहाँ आये। एक रात्रि में आत्मज्ञान हो गया। बड़े लक्ष्मीवन्त, बड़ा कपड़ा का व्यापार, धन्धा बहुत लक्ष्मी है। नहीं हो सकता है, ऐसा नहीं। हेमचन्दजी! यह बात तो चार-पाँच लोग समझ सके। परन्तु चार-पाँच में स्वयं आये तो? क्या कहा? चार-पाँच लोगों में स्वयं आ जाये तो। नम्बर लगाओ उसमें। ऐई! आहाहा!

वह लिखते हैं। कितने पन्ने पर है? ऐई! चेतनजी! पुण्य विष्टा का ढ़ेर है। खबर नहीं? कहीं सब याद रहता है। इस ओर है कुछ। विष्टा का ढ़ेर है ऐसा लिखा है। खबर नहीं? ऐई! कान्तिभाई! आपने तो बहुत वाँचन किया है। इस ओर है कुछ। पुण्य विष्टा का ढ़ेर है ऐसा। सब कुछ याद रहता है? इस ओर है।

मुमुक्षु : १५६।

पूज्य गुरुदेवश्री : १५६। प्रश्न ? ... १५६ किसने कहा ? भाई जवाहरलालजी ! है देखो यह ! १५६। 'अधिक पुण्य वह विष्टा का ढ़ेर है।' नेमिचन्दजी ! 'अधिक पुण्य...' ऐसा ६४५ पर है। ६४५... चर्चा हुई थी तो लोगों ने... ऐसा ऐसा है... 'अधिक पुण्य वह विष्टा का बड़ा ढेर है।' विष्टा का ढ़ेर है। समझ में आया ? धर्मी को तो अपनी सम्पत्ति भासती है। उस सम्पत्ति के आगे सारा पुण्य का ढ़ेर देखे तो विष्टा दिखती है। आहाहा ! कहो, सेठ ! ऐसा कभी सुनने में आया नहीं कभी।

मुमुक्षु : कौन सुनाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ पैसेवाले हो करोड़पति। उसको मक्खन लगाये। आप इतना दान करो, पुण्य करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। धूल में भी नहीं। सुन तो सही। भवभ्रमण है। यहाँ तो भगवान चिदानन्द प्रभु शुभ-अशुभराग से भिन्न है, ऐसी अन्तर्दृष्टि हुए बिना उसका कल्याण का एक अंश नहीं शुरु होगा। समझ में आया ? लाख करे सेवा, जगत की भक्ति, पूजा भगवान की। आहाहा !

कहते हैं कि **मिथ्यादृष्टियों के भोगों की प्राप्ति देखकर...** होते हैं मूढ़ जीव। पैसे अरबोंपति। अरबोंपति। ओहोहो ! उसमें क्या है ? वह भी गुजर गये। वह अम्बाजी को मानते थे वह। जैन थे स्थानकवासी। अभी गुजर गये। शान्तिलाल खुशाल, मुम्बई में, गोवावाले। तो अम्बाजी... वैसे जैन स्थानकवासी थे, परन्तु अम्बाजी है न बाह्य में देवी है न ? उसको मानते थे। दृष्टि ऐसी थी। आहाहा ! तो ऐसे उसके पास दो अरब चालीस करोड़। धूल में है क्या आत्मा में ? वह तो दु:खी मरकर चार गति में भटकेगा। देह छूट गया जाओ। जाओ भटकने को। आहाहा ! धर्मी को ऐसी मिथ्यादृष्टि की सम्पदा देखकर वांछा होती नहीं। समझ में आया ? मेरी आनन्द लक्ष्मी और सम्पदा पड़ी है पूर्णानन्द प्रभु, मैं उसमें एकाग्र होकर वृद्धि करूँ। आहाहा ! कहो, चिमनभाई ! ऐसी बात है यहाँ तो। ऐडन में वहाँ तो सब पैसे के ढ़ेर दिखते हैं कि ओहोहो !

मिथ्यादृष्टियों के भोगों की प्राप्ति देखकर उन्हें अपने मन में भला जानना अथवा जो इन्द्रियों को न रुचे... अब एक बात। भला जानना, वह भी वांछा है। और

एक लक्षण बताया। **जो इन्द्रियों को न रुचे, ऐसे विषयों में उद्वेग होना...** क्या कहते हैं ? इन्द्रियों के विषय में बिच्छू काटे, अग्नि लगे, प्रतिकूल (लगे) न रुचे, सभी का अर्थ यह है कि उसको अनुकूल की इच्छा है। अनुकूल की इच्छा है। उद्वेग होता है, वह अनुकूल की इच्छा है। आहाहा! सेठ! पाँच इन्द्रियों की प्रतिकूलता, निन्दा, सामने चलना, आँख में प्रतिकूल कोई चीज़ देखना। भूत-व्यन्तर ऐसा। और स्पर्श में इन्द्रिय का स्पर्श होना, स्त्री, कोमल मक्खन। क्या कहते हैं उसे ? मखमल। मखमल शरबती। मलमल। शरबती मलमल होता है। कपड़ा होता है न, कपड़ा मलमल ? ऐसा कोमल भोगते हैं। समझ में आया ? तो कहते हैं कि उसमें जब प्रतिकूलता हो तो ठीक न लगे तो उसके समझना कि अनुकूलता ठीक लगती है। समझ में आया? आहाहा! यह उसका लक्षण है। जितना प्रतिकूलता में अरुचि—द्वेष होता है, इतनी ही अनुकूलता में उसको राग है। वह माप है उसका यह। समझ में आया ? पाँच इन्द्रिय। आहाहा!

एक स्त्री पाटला पर बैठी थी। पाटला समझते हो ? और रसोई करती थी। ब्राह्मण के। एक कपड़ा उसने पहना था। पतला कपड़ा। वह नीचे एक बिच्छू। नीचे काटा। अब करे क्या ? एक तो पतला कपड़ा, बिच्छू का जहर। हाय... हाय... बताये कैसे ? एक तो स्त्री। आहाहा! पीड़ा... पीड़ा... उसका अर्थ ऐसा है कि जितनी पीड़ा प्रतिकूल लगती है, इतनी बाह्य की सामग्री अनुकूल की उसे भावना है। समझ में आया ? आहाहा! कठिन बात! नारणभाई की स्त्री एक बार पूछती थी। कहा था न! लाठी। लाठी चौमासा था न। (संवत्) ८५। लोच करते थे। लोच करते हैं न साधु ? कि कैसा लगता है ? कैसा लगता है ? धर्मशाला में। लाठी। भोजनशाला है न! अभी तो नयी बनायी है इन लोगों ने पैसा देकर। हम गये थे। वहाँ जाकर कहा, कैसा लगता है। जितना शरीर में खाने-पीने का राग है, इतना यहाँ द्वेष होता है। खाने-पीने पर जितना प्रेम है, इतना दुःख लगता है। जितनी अनुकूलता में इच्छा, इतनी प्रतिकूलता में द्वेष। और जितनी प्रतिकूलता में द्वेष उतना अनुकूलता में राग। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं कि **इन्द्रियों को न रचे, ऐसे विषयों में उद्वेग होना—यह भोगभिलाष का चिह्न है।** आहाहा! यह अनुकूल भोगने का भाव का यह लक्षण है। समझ में आया ? यह सब वांछा की बात चलती है, हों! **यह भोगभिलाष का चिह्न हैं।** यह सभी चिह्न हैं।

कौन से ? कि पूर्व के भोगों की वांछा, भोगों की मुख्य क्रिया में शरीर आदि की वांछा, कर्म, कर्मफल की वांछा, **मिथ्यादृष्टियों के भोगों की प्राप्ति देखकर उन्हें अपने मन में भला जानना अथवा जो इन्द्रियों को न रुचे, ऐसे विषयों में उद्वेग होना—यह भोगभिलाष के चिह्न हैं।** यह मिथ्यादृष्टि को ऐसा होता है। आहाहा! अज्ञानी को ऐसा होता है। धर्मी को तो इच्छा इस प्रकार की रुचि नहीं। समझ में आया ? आहाहा! इसका नाम धर्म आत्मा की रुचि हो और पर की ऐसी वांछा रुचि का नाश हो, तब उसको सम्यग्दर्शन का लक्षण कहने में आता है। आहाहा!

यह बहुत अच्छा डाला यहाँ। **इन्द्रियों को न रुचे ऐसे विषयों में उद्वेग होना...** यह पंचाध्यायी में डाला है। पंचाध्यायी। राजमल (जी ने)। पंचाध्यायी में। जितनी यह देह की अनुकूलता-प्रतिकूलता हो देह में, उष्णता, बिछू का काटना, क्षुधा, ऐसे तृषा। बड़ा दाह अग्नि की ज्वाला लग जाये, और उसमें उद्वेग हो, उतना यह शरीर की अनुकूलता भोग प्रति प्रेम है। दोनों राग-द्वेष का लक्षण है। आहाहा! समझ में आया ? धर्मी जीव को भोग की अभिलाषा है ही नहीं। क्योंकि इन्द्रियों की प्रतिकूलता उसको उद्वेग करती ही नहीं। आहाहा! जो प्रतिकूलता उद्वेग करे तो अनुकूलता की वांछा हो। आहाहा! थोड़ा भी दुःख हो। १०० डिग्री का बुखार। १०१, २, ३, ४ और ५ जो आ जाये। पाँच डिग्री। आहाहा! दिमाग घूम जाये।

हमारे भाई थे मूलजीभाई। पैसेवाले। पैसेवाले थे। जरा ९९-१०० हो जाये। ऐई! ...भाई! एक बार गये थे। दीक्षा के लिये गये थे वहाँ। ९९।५ कितना होगा। तो ऐसे... ऐसे... क्या है ? उसमें क्या ? इतना हुआ उसमें क्यों चिल्लाते हो ? परन्तु उसका अर्थ ? फिर तो हो गया। फिर तो उसे रुचि, कषाय मन्द था। आखिर में तो हड्डी का वेदन था। गृहस्थ थे बहुत लाखोंपति। लोग कहे बुलाओ डॉक्टर को। यह कहे बुलाओ लालचन्दभाई को। एक लालचन्दभाई है। राजकोट। मुम्बई व्याख्यान करते हैं। लालभाई। बुलाओ लालभाई को। लालभाई। भाई! यह तो देह की वेदना है। आत्मा तो उसको जाननेवाला है। तो कहते हैं... मृत्यु की तैयारी। देह छूटने की तैयारी। बहुत लाखोंपति। देह को रोग है, यह आत्मा जाने ? या आत्मा आत्मा को जाने ? रोग पर लक्ष्य रखना ? आहाहा! बुखार में ऐसे थरथराता था, उसने मृत्यु के समय ऐसा बोला। समझ में आया ?

लालचन्दभाई... आये? कैसा है? भाई! शरीर का धर्म जीवपद में जानने में आता है। आता है न भाई श्रीमद् में। कि इसमें रोग आये वह तो ज्ञान आत्मा उसको जानते हैं कि उसमें है। जाने। यह कहते हैं कि क्या उसको जाने आत्मा? या आत्मा आत्मा को जाने? आहाहा! देह छूट गया। आहाहा! बहुत अभ्यास था, वाँचन भी बहुत था। आहाहा!

सोगानी भी लिखते हैं। मूल में है न एक। धर्मी को शरीर में रोम-रोम में सुई अग्नि करके तपा दे। उसकी दृष्टि द्रव्य पर है, आनन्द पर है। ऐसा है। ऐई! कान्तिभाई! यहाँ दो जगह पर है। सब कुछ याद रहता है क्या? दो जगह पर है कुछ। ऐई! जवाहरलालजी! नहीं, यह लोग वाँचन करनेवाले हैं। सूक्ष्म है। साधारण का काम का नहीं। थोड़ा अभ्यास विशेष हो तो। तुमको तो दिया है तीसरा भाग। समझ में आया? ओहोहो! शरीर में प्रतिकूलता हो, वह भी धर्मी जीव को तो जब इच्छा भी अनुकूलता की नहीं तो प्रतिकूलता में उसको द्वेष भी नहीं। थोड़ा आसक्ति का भाव अस्थिर आ जाये, वह गौण बात है। रुचिपूर्वक यह अभिलाषा है नहीं। आहाहा! धर्म चीज़ बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

यह भोगाभिलाष मिथ्यात्वकर्म के उदय से होता है... अनुकूल भोग की वांछना, यह तो मिथ्या अभिप्राय जिसका है... दवा कराते हैं न, देखो न! दवा करते हैं तो शहद खाते हैं, अण्डा खाता है। शहद खाये। शहद कहते हैं न? मधु। बड़ा पाप। बड़ा पाप। एक बिन्दु में। शहद के एक बिन्दु में सात गाँव के मनुष्य मारे, इतना पाप है। दवा में शहद लेते हैं लोग। बड़ा पाप, महा पाप। समझ में आया? अण्डा लेते हैं। अभी तो कितने सेठ कहते हैं कि अण्डा तो वनस्पति है। अण्डा-अण्डा।

मुमुक्षु : मुर्गी का।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुर्गी का अण्डा बहुत होता है। आहाहा! मछली। मछली का तेल आता है न। क्या कहते हैं? कोडलिवर। सुना है न सब बात तो। मछली का तेल ले। महापाप। महा मिथ्यात्व का बड़ा पाप। आहाहा! नरक और निगोद के स्थान में जानेवाले का लक्षण है यह। आहाहा! समझ में आया? जिसको धर्म की रुचि और धर्म का भान हुआ, उसको ऐसा भाव होता ही नहीं। शहद नहीं, माँस नहीं, मछली नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भोगाभिलाष... अपने आनन्द के अनुभव सिवाय—अलावा दूसरी चीज़ का अनुभव करना भोग, रागादि द्वेष का। यह **मिथ्यात्व कर्म के उदय से होता है...** अर्थात् मिथ्यात्व अभिप्राय में ऐसा होता है। विपरीत है। तत्त्व की खबर नहीं उसको, ऐसा अभिप्राय होता है। **और जिसके यह न हो, वह निःकांक्षित अंगयुक्त सम्यग्दृष्टि होता है।** आहाहा! ऐसी वांछा का अभाव, वह ऐसे निःकांक्ष-कांक्षा से रहित ऐसे अंगयुक्त सम्यग्दृष्टि होता है। लो। आहाहा! अभी तो क्या धर्म की व्याख्या, सम्यग्दृष्टि की क्या व्याख्या, क्या स्वरूप है? उसकी खबर नहीं और यह कहे कि... आहाहा! जिन्दगी व्यर्थ, पाप में निकाली सारी। भविष्य काल बिगाड़ करके वर्तमान भोगते हैं। आहाहा! भविष्य में कहाँ जाना है, उसकी यहाँ प्रस्तावना। प्रस्ताना लेते हैं। प्रस्ताना समझते हों? ... दिन कुदिन तो कि भाई हमारे चौथा दिन जाना है। कल का दिन बराबर ठीक नहीं तो आज प्रस्ताना रखो वहाँ। है न। ... ऐसे भविष्य में जहाँ जाना है, उसकी प्रस्ताना पाप करते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहे समझो आत्मा क्या है? आत्मा की दृष्टि करना। आहाहा! उसकी प्रस्तावना मोक्ष के लिये है।

मुमुक्षु : यहाँ चले, संसार में न चले...

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार में ... पाप में क्या चले? वह तो पापी का समाज भूला हुआ है। बार-बार सागर में आओ। आहाहा! यह सागर तो यह आत्मा है अन्दर। अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति से लबालब भरा है। अरे! कुछ खबर नहीं जिसको। आहाहा! समझ में आया? एक अरब (का) चरु निकलता हो, यह चरु खोजकर अरब रुपये के हीरे निकले, माणेक तो प्रसन्न हो जाता है। चरु निकलता है न? चरु क्या? लोहा का बड़ा होता है न। हीरा, माणेक भरा हो। ऐसे खोद के निकाले। ओहोहो! जमीन में खोदकर निकालते हैं न! श्वेताम्बर में नहीं? वस्तुपाल, तेजपाल। वस्तुपाल, तेजपाल। आबू में (मन्दिर) बनाया। तीन करोड़ का तो एक आलिया बनाया है। उसकी स्त्री। साढ़े तीन करोड़ का क्या कहते हैं? आलिया। ऐसी कारीगरी। ऐसी कारीगरी।

वह एक बार यात्रा करने को निकलते थे बाहर। तो भाई! यह पैसा इतने अपने पास है। तो उसको पहले गाड़ते हैं। दाटे समझे न। जमीन खोदकर गाड़ दो। वह जहाँ खोदने को जाये तो चरु निकला। चरु निकला। स्त्री कहती है, क्या करते हो? तुम्हारे तो कदम-कदम पर लक्ष्मी है, गाड़ते क्यों हो? इसलिए कहती है। उपयोग करो तुम। जहाँ आपके कदम पड़ते हैं, वहाँ पुण्यशाली इतना हो न। पूर्व के पुण्य हो। वर्तमान धर्म-बर्म नहीं। वह कोई धर्म नहीं। वह तो पुण्य का फल। यात्रा आदि। पुण्य का फल यात्रा आदि का भाव भी पुण्य। धर्म नहीं कुछ। समझ में आया? परन्तु स्त्री ने ऐसा कहा। तो उस स्त्री को कहा कि तुझे लक्ष्मी का उपयोग करना हो तो कहा। आबू में साढ़े तीन करोड़ का बनाया है। क्या कहलाये? आरिया देखा है। सब गये थे। हिन्दू के सब तीर्थस्थान देखे हैं। पीतल की प्रतिमा है। आहाहा! धूल में कुछ है नहीं। भगवान! तेरी लक्ष्मी तो तेरे पास है। गड़ी है अन्दर। ऐसी लक्ष्मी के सन्मुख होकर जिसको प्रथम सम्यग्दर्शन की सम्पदा प्रगट होती है, उसको ऐसे भोग की अभिलाषा छूटती है। इन्द्र का इन्द्रासन भी सड़ी हुई बिल्ली की तरह। मींदड़ी को क्या कहते हैं? बिल्ली मर जाये तो बदबू आती है, सर्प मर जाये गन्ध मारे, कुत्ता मर जाये तो गन्ध मारे। कुत्ता होता है न। मरे तो गन्ध। ऐसे समकित दृष्टि को... आहाहा! अपनी चैतन्य की ऋद्धि का भान है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें। हाँ वह।

मुमुक्षु : ४७४।

पूज्य गुरुदेवश्री : मृत्यु कब आनेवाली है, वह तो निश्चित नहीं, और आनेवाला है, वह तो निश्चय ही है। इसलिए हर क्षण तैयार ही रहना। शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाये। रोम-रोम धगधगती सुई लगा दी जाये। फिर भी अपने ध्रुव तत्त्व में इसका प्रवेश भी कहाँ है? और ४८१। दूसरा ४८१ वहाँ लिखा है। ४८१। 'हर क्षण मृत्यु के लिये तो तैयार ही रहना चाहिए।' आखिर के दो... 'कभी भी हो और कैसी भी वेदना हो सातवीं नरक जैसी वेदना हो फिर भी क्या?' बहुत जोर है न! समझ में आया? गृहस्थी को भी होता है। ऐसा नहीं कि ऐसा किन्हीं को ही होता है। आत्मभान था, बड़े गृहस्थ थे।

उसमें है न फोटो है। उसमें है या नहीं? बैठते थे ध्यान में। पाँच-पाँच घण्टे तक ध्यान में रहते थे। छोटी उम्र में गुजर गये। ५३ वर्ष की उम्र। ५३ वर्ष की उम्र।

कहते हैं, यह भोग की अभिलाषा धर्मी को होती नहीं। उसको आनन्द का अभिलाष है, वहाँ भोग की अभिलाषा कहाँ है? आसक्ति हो। छियानवे हजार स्त्री हो समकिती। तीर्थंकर है न? फिर भी वह आसक्ति के राग में प्रेम नहीं। जैसे कड़वी दवा लेते हैं बुखार में। बुखार आता है न? कड़बी दवा कहते हैं न? कुनैन लेते हैं, वह नीम का क्या कहते हैं? गवो समझते हैं? नीम होता है न नीम? नीम की गणो होती है, कड़वी बहुत।

मुमुक्षु : गिलोय।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत कड़वी होती है। तो बुखार में लेते हैं कड़वी दवा, तो उसको रस है? ऐसे धर्मी जीव को ऐसा भोग हो परन्तु रस नहीं। समझ में आया? आहाहा! कड़वी दवा पीनी पड़ती है उसको। ऐसे धर्मी की दृष्टि आत्मा के ऊपर है, फिर भी रागादि हो तो ऐसा भोगने में आता है, परन्तु कड़वी दवा पीते हैं, ऐसा लगता है उसको। समझ में आया? अज्ञानी को मिठास होती है। बड़ा सुख आनन्द है, पैसे, लक्ष्मी, स्त्री का भोग, विषय, स्त्री को पति का भोग। सब अज्ञानी मूढ़ जीवों को मजा दिखती है, तो बड़ा पाप है। आहाहा! समझ में आया?

वह सम्यग्दृष्टि यद्यपि शुभक्रिया-व्रतादिक आचरण करता है... है न? धर्मीजीव को व्रतादि का भाव शुभ होता है। व्रत, भक्ति, पूजा, भाव होता है। अशुभ से बचने को सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा भाव होता है। **उसका फल शुभकर्मबंध है,...** देखो! व्रत, भक्ति... है न? **व्रतादिक...** व्रत, भक्ति, पूजा आदि **आचरण करता है...** सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव होता है। और **उसका फल शुभकर्मबंध है, किन्तु उसकी वह वांछा नहीं करता।** आहाहा! व्रत का भाव आया, उसका राग आया; प्रेम नहीं, रस नहीं, रुचि नहीं। परन्तु ऐसा आये बिना रहते नहीं। और उसका फल शुभकर्म बँधते हैं। उसकी भी वांछा धर्मी को होती नहीं।

व्रतादिक को स्वरूप का साधक जानकर... साधक अर्थात् निमित्त। व्रत, भक्ति, आदि का शुभभाव। अन्तर्दृष्टि में आत्मा का साधकपना उत्पन्न हुआ हो, उसमें व्यवहार

साधक कहने में आता है। **उनका आचरण करता है, कर्म के फल की वांछा नहीं करता – ऐसा निःकांक्षित अंग है।** लो। आहाहा! समझ में आया? व्रतादिक स्वरूप साधक में निमित्त है न, निमित्त? व्यवहारसाधक हों, वह। निश्चय साधक तो अपना स्वरूप की अन्तर्दृष्टि करके साधक करता है, वह। राग की मन्दता है सम्यग्दर्शनसहित, तो व्यवहार साधक कहने में आता है। ऐसे फल की वांछा न करे, वह निःकांक्षित अंग है लो। वह दूसरा अंग कहा।

अब तीसरा अंग है निर्विचिकित्सा। सम्यग्दृष्टि धर्मी को निर्विचिकित्सा होती है। उसका अर्थ क्या? कि **अपने में अपने गुण की महत्ता की बुद्धि से अपने को श्रेष्ठ मानकर पर में हीनता की बुद्धि हो, उसे विचिकित्सा कहते हैं;...** ऐसी विचिकित्सा धर्मी को होती नहीं। क्या कहा, समझ में आया? अपने में गुण की महत्ता की बुद्धि से अपने को श्रेष्ठ मानना और पर में हीनता, पर की हीनता देखना, उसको विचिकित्सा कहते हैं। **वह जिसके न हो, सो निर्विचिकित्सा अंगयुक्त सम्यग्दृष्टि होता है।** यह जीव ही है। उसमें धर्म न हो तो भी उसके प्रति बैर नहीं करते हैं, दुर्गंछा नहीं करते हैं। आहाहा! दुर्गंछा का अर्थ विचिकित्सा। दुर्गंछा नहीं करना, उसका नाम निर्विचिकित्सा।

अपने से हीन प्राणी को देखकर उसको दीन है, हीन है और हम अधिक है, ऐसा धर्मी को नहीं। समझ में आया? समभाव रखते हैं कि हो। पूर्व के कर्म के उदय से ऐसी भी चीज़ हो। यह तो कर्म की सब जंजाल है। दुःखी हो, दीन हो, तो हीन जानकर तिरस्कार करना, ऐसा समकिती को होता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १, गुरुवार, दिनांक २७-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-११

यह अष्टपाहुड़ नाम का सिद्धान्त है। कुन्दकुन्दाचार्य ने यह बनाया है। सम्यग्दर्शन की प्रधानता से वह दर्शन की प्रधानता से पहला अधिकार है। दर्शन तो पहले यह कहा कि जिसको आत्मा का अनुभव, आनन्द की दशा की प्रतीति हो तो आत्मा का अन्तर्मुख स्वसंवेदन ज्ञान का ज्ञान से वेदन होना और आत्मा के ज्ञानस्वभाव में आनन्द में लीनता, रमणता, जमावट हो जाना, ऐसा दर्शन-ज्ञान-चारित्र और बाह्य नग्नमुद्रा, उसको जैनदर्शन कहते हैं। समझ में आया? मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो तीन चीज़ है, उन तीनों को प्राप्त किया जिसने और बाह्य में जिसकी नग्नमुद्रा हो जाये और अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत का विकल्प व्यवहार से बाह्य में हो। उसे जैनदर्शन कहो, या धर्म की मूर्ति कहो, धर्म आनन्दस्वरूप जिसको बहुत प्रगट हुआ है। ऐसे आत्मा को जैनदर्शन अथवा धर्म की मूर्ति कहते हैं। उसमें सम्यग्दर्शन कैसा है, उसकी व्याख्या चलती है।

सम्यग्दर्शन जो धर्म की प्रथम सीढ़ी। पहली शुरुआत। तो यह आत्मा। अब दोपहर को चलता है। कल तो बहुत चला था। आत्मा नित्यानन्द प्रभु मूल अपनी पूर्ण आनन्द और शान्ति से भरी लक्ष्मी है आत्मा। यह आत्मा का अन्तर्मुख होकर... यह आत्मा द्रव्य से शुद्ध है, वस्तु से शुद्ध है। ऐसा वर्तमान पर्याय में भान होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! उसके बिना जन्म का अन्त कभी आता नहीं। शास्त्र का ज्ञान हो, व्रत, नियम, तपस्या क्रिया आदि हो, सब सम्यग्दर्शन के बिना निरर्थक है। समझ में आया? चाहे तो दान करो, दया पालो, व्रत करो, पूजा करो, भक्ति करो, सब संसार में भटकने की चीज़ है। समझ में आया?

तो आत्मा अन्दर पूर्ण आनन्दस्वरूप के सन्मुख होकर अन्तर में प्रतीति और उसकी अनुभूति ज्ञान का वेदन होना, वह सम्यग्दर्शन की अनुभूति बाह्य लक्षण है। समझ में आया? तो यह सम्यग्दृष्टि जीव को शंका होती नहीं, वह बात चलती है। सर्वज्ञ ने कहे हुए पदार्थ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने कहे, उसमें उसकी शंका नहीं। निःशंक, अपनी चीज़ में वह निःशंक है। और वांछा नहीं। धर्मी जिसको आत्मा का आनन्द की प्रतीति और भान हुआ उसको आत्मा के अलावा दूसरे चीज़ की भोग की वांछा नहीं।

आहाहा! क्योंकि अपने में आनन्द दिखा है तो सारा इन्द्र के इन्द्रासन हो, उसके भोग की रुचि नहीं। आसक्ति हो जाये, वह दूसरी चीज़ है, परन्तु रुचि नहीं। यह भोग ठीक है... भोग में तो दु:ख है, प्रभु! आहाहा! तो ऐसी दु:ख की रुचि सम्यग्दृष्टि को कैसे होगी? आहाहा! तो कांक्षा नहीं।

अब तीसरा अधिकार निर्विचिकित्सा चलता है। उसको बाह्यपदार्थ की हीनता देखकर, अपनी अधिकता देखकर दूसरे का तिरस्कार करना, ऐसा भाव होता नहीं। समझ में आया? आया न वह? **अपने में अपने गुण की महत्ता की बुद्धि से...** पहली पंक्ति है, दसवें पन्ने पर। **अपने को श्रेष्ठ मानकर पर में हीनता की बुद्धि हो, उसे विचिकित्सा कहते हैं,...** द्वेष हुआ उसको। तो पुण्य हीन हो, असाता के उदय से बहुत रोग हो, निर्धन हो, गरीब हो तो उसका तिरस्कार नहीं होना चाहिए। मैं कितना इज्जतवाला हूँ, मैं तो बड़ा चक्रवर्ती हूँ, राजा हूँ, सुन्दर शरीर है। ऐसा धर्मी को होता नहीं। समझ में आया? वह कहा न?

वह जिसके न हो, सो निर्विचिकित्सा अंगयुक्त सम्यग्दृष्टि होता है। उसके चिह्न ऐसे हैं कि यदि कोई पुरुष पाप के उदय से दु:खी हो,... बहुत दु:खी हो, निर्धन हो, बांझ हो, कुँवारा हो। वांढा समझते हो? पुत्र न हो। वांढा हो (अर्थात्) लग्न किया न हो, स्त्री मिली न हो, पुत्र भी न हो, पैसे भी न हो। आहाहा! दु:खी हो। **असाता के उदय से ग्लानियुक्त शरीर हो...** शरीर में रोग कोढ़ आदि हो गया हो। **तो उसमें ग्लानिबुद्धि नहीं करना।** आहाहा! वह तो कर्म के उदय से ऐसी विविधता प्राणी को होती है। **ग्लानिबुद्धि नहीं करना।** जुगुप्सा नहीं करना, दुर्गंछा नहीं करना। आहाहा! समभाव रखकर जानना। मैं अधिक हूँ और यह हीन है, ऐसा सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। और कभी ऐसा किसी को न हो तो वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

अन्तर में जिसकी दृष्टि... समझ में आया? मेरी चीज़ ही स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है। मेरा कोई ईश्वरादि कर्ता नहीं। मेरे परिणाम का मैं कर्ता हूँ, मेरी चीज़ अनादि स्वयंसिद्ध वस्तु है, और वह आनन्द और ज्ञान से भरा पदार्थ है, ऐसी जिसको अन्तर में सम्यक् बुद्धि हुई हो, उसको ऐसा नहीं होता, इतनी बात चलती है। बाह्य से कदाचित् ऐसा न हो और अन्दर सम्यग्दर्शन का भान नहीं आत्मा का। तो वैराग्य से दिखे, परन्तु श्रद्धा

नहीं कि मेरा ईश्वर कर्ता है, मैं ईश्वर से हुआ हूँ, मैं ईश्वर की भक्ति करूँ तो ईश्वर प्रसन्न हो जाये, यह सब मिथ्यादृष्टि में ऐसा कदाचित हो ग्लानि न करे, तो यह कोई चीज़ नहीं। सेठ!

ऐसी बुद्धि नहीं करता कि मैं सम्पदावान हूँ, सुन्दर शरीरवान हूँ,... ओहोहो! यह तो मिट्टी का पिण्ड है धूल। उसकी सुन्दरता तो जड़ की है, आत्मा की सुन्दरता तो अन्दर में है। आहाहा! आत्मा आनन्द और शान्ति से भरा है, ऐसी जिसकी सुन्दरता का अन्तर में भान हुआ, वह बाह्य की सुन्दरता की उसको प्रीति और अधिकता दिखती नहीं। मेरे से अधिक हो गया लक्ष्मी आदि, शरीरादि है, वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। आहाहा!

यह दीन, रंक,... है। मेरी बराबरी नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। मैं बड़ा होशियार हूँ। और मेरी छाप दुनिया में बड़ी है। यह पामर प्राणी मेरी बराबरी कर सकते नहीं, ऐसा नहीं होता। वह भी भगवान आत्मा है। आहाहा! बाह्य संयोग में ऐसा होता है। अरे! सम्यग्दृष्टि हो और ऐसा बाह्य दीन हो, रंक हो, शरीर में रोग हो और आत्मज्ञानी हो अन्दर में। समझ में आया? तो बाहर की चीज़ से अधिकता मानना और बाहर की विशेष चीज़ से अधिकता मानना और बाह्य हीन चीज़ से दीनता मानना, वह मूढ़ का लक्षण है। यह धर्मी का लक्षण नहीं।

कहते हैं कि अरे! **उल्टा ऐसा विचार करता है कि प्राणियों के कर्मोदय से अनेक विचित्र अवस्थायें होती हैं,...** आहाहा! पूर्व के प्रारब्ध के कारण शरीर, लक्ष्मी, आबरू, कीर्ति की अनेक विचित्रता, हीनता, अधिकता का संयोग हो, उससे कोई विशेषता नहीं। **जब मेरे ऐसे कर्म का उदय आवे, तब मैं भी ऐसा ही हो जाऊँ...** धर्मी-सम्यग्दृष्टि हो, फिर भी पूर्व के अघातिकर्म के कारण से निर्धन हो जाये, लक्ष्मी रहे नहीं, पुत्र मर जाये। ओहोहो! तो क्या? यह बाह्य की चीज़ से क्या है? यही कहते हैं **मैं भी ऐसा ही हो जाऊँ—ऐसे विचार से निर्विचिकित्सा अंग होता है।** परपदार्थ में हीनता की ग्लानि और हीनता में अनादर, ऐसा होता नहीं।

अब अमूढ़ चौथा बोल है। धर्मी जीव सम्यग्दर्शन जिसको हुआ, वह मूढ़ नहीं होता। **अतत्त्व में तत्त्वपने का श्रद्धान वह मूढ़दृष्टि है।** तत्त्व नहीं है, उसमें तत्त्व मानना। अपना ईश्वर कर्ता है, ईश्वर की मैं प्रार्थना करूँ तो मुझे कुछ देगा, वह अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि

मूढ़जीव की है। उसको धर्म नहीं और धर्म की दृष्टि भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? **अतत्त्व में तत्त्वपने का श्रद्धान, वह मूढ़दृष्टि है। ऐसी मूढ़दृष्टि जिसके न हो, सो अमूढ़दृष्टि है।** विशेष कहते हैं। **मिथ्यादृष्टियों द्वारा मिथ्या हेतु...** अज्ञानी यह मिथ्या युक्ति तर्क से **मिथ्या दृष्टान्त से साधित पदार्थ हैं, वह सम्यग्दृष्टि को प्रीति उत्पन्न नहीं कराते हैं...** अज्ञानी ने कुतर्क से पदार्थ की सिद्धि की हो कि सृष्टि का कोई कर्ता होता है ईश्वरादि। समझ में आया? ऐसी कुयुक्ति से ऐसे पदार्थ की सिद्धि अज्ञानी करते हैं, उसमें धर्मी को प्रीतिबुद्धि नहीं होती उसको। कर्म नहीं, उसकी उल्टी बुद्धि है। और कर्म मुझे नुकसान करवाते हैं। ऐसी बुद्धि भी उल्टी बुद्धि है। समझ में आया? तत्त्व सूक्ष्म है, भगवान! आहाहा! अरे! उसने कभी अनन्त काल में...

मुमुक्षु : शुभभाव में धर्म मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी मिथ्यादृष्टि है। शुभभाव में धर्म माने दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, करुणा, सेवा पामरता, वह धर्म मानते, वह अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि मूढ़ जीव है। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा अरिहन्तदेव ने जो तत्त्व कहा, उससे विरुद्ध जो मानते हैं, उसकी बुद्धि रखना, वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि को ऐसे अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि में प्रीति उपजती नहीं। सेठ! आपको तो बहुत जाना पड़े सभी जगह। सुना है न? कुछ बाबा के पास ले गये थे। आगे कोई था। अन्य धर्मी। अन्य धर्म में ले गये थे। आगे सेठ की इज्जत बड़ी तो बैठे वहाँ। क्योंकि ... सुना ऐसी कोई बात करता था।

मुमुक्षु : एक बार ऐसा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ भले एक बार परन्तु ... यहाँ तो किसी ने बात कही हो। एक बार तो एक बार परन्तु किसी ने बात कहे न! आप यहाँ के परिचयवाले हैं तो कहे, सेठ तो अभी ऐसा भी करते हैं। आहाहा! समझ में आया? पैसेवाले लोग, इज्जतवाले लोगों को सबसे पहले बैठाये। क्योंकि वह दो-पाँच हजार रुपये दे अथवा बैठे तो अपनी इज्जत बढ़ जाये। देखो! ऐसे जैन भी हमारे पास हैं।

यहाँ कहते हैं कि अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि धर्मीजीव की होती है। कोई ऐसा पाखण्ड धर्म चला है जगत में उसके प्रति धर्मी की प्रीति, रुचि, प्रेम होता नहीं। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त दिया। आहाहा! **तथा लौकिक रूढ़ी अनेक प्रकार की है।** आहाहा! कोई

ऐसे श्राद्ध करो, पिताजी का ऐसा करो। नदी का पानी लो, गाय के पूँछ की पूजा करो, पीपल की पूजा करो। समझ में आया? ऐसी लोक रूढ़ी चलती है न बहुत। आहार करते समय थोड़ा अग्नि में होम दो। थोड़ा करके पीछे जीमना। यह सब लोकरूढ़ी मूढ़ जीव की है।

मुमुक्षु : भगवान की मानता करे तो बेटा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी मूढ़ जीव है। धूल में भी बेटा नहीं होता। मुझे बेटा होगा तो मैं छत्र चढ़ाऊँगा, मन्दिर बनवाऊँगा। मूढ़ जीव है सब। आहाहा!

मुमुक्षु : उसकी कामना पूरी हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कामना पूरी किसकी? कामना वह बाहर की जड़ की? वह पुण्य बिना होती है? या पर से होती है? सेठ! देव से होती है दैव से? आहाहा! वीतराग भगवान वह तो है। मैं उसको मानूँ तो मुझे बेटा हो जाये। मेरी इज्जत जाती है तो मेरी इज्जत न जाये तो मैं उसको पाँच-पचास हजार चढ़ाऊँगा, यह सब भ्रम अज्ञानी का है। धर्मचन्दजी! यहाँ तो यह बात है, भगवान! आहाहा! अरेरे! ऐसा जन्म मनुष्य देह का चला जाता है। एक-एक समय जाता है, मृत्यु के समीप में जाता है। उसने जो ऐसे आत्मा की दृष्टि और ऐसा स्वरूप भगवान ने कहा है, ऐसी जो श्रद्धा नहीं करेगा, वह मरकर कहाँ जायेगा? आहाहा! क्या कहते हैं यह? ... तुम्हारा नाम है? यह पवन होती है न, चलती है। वंटोळिया। बबुला। हमारे वंटोळिया कहते हैं। बबुला चलता है न उसमें तिनका उड़ा हो तो कहाँ जाकर पड़ेगा? आहाहा! ऐसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जिसकी श्रद्धा मिथ्या है, वह बबुला होकर चौरासी के अवतार में कहाँ जायेगा? आहाहा! समझ में आया? अरे! मैं कहाँ हूँ? कैसे हूँ? कौन हूँ? उसकी जिसको खबर नहीं। उसको इस अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि होती है। आहाहा!

लौकिक रूढ़ि अनेक प्रकार की हैं,... अभी तो। आहाहा! जैन में भी चली न देखो न! महावीरजी। महावीरजी। वहाँ ऐसा चले अपने बेटा हो या कुछ हो। वहाँ भूत पद्मपुरा। वह धूने तो ऐसा मानते हैं। सब भ्रमणा अज्ञानी की।

मुमुक्षु : केसरियाजी।

पूज्य गुरुदेवश्री : केसरियाजी केसर चढ़ाते हैं। यह केसरियाजी है न! जो लड़का हो तो लड़के के प्रमाण से केसर चढ़ाऊँगा। सेर, सवा सेर का लड़का हो, छोटा इतना जन्मे तो इतना केसर चढ़ावे वहाँ। हम गये थे न एक बार वहाँ। केसर... केसर... केसर...

मुमुक्षु : अब तो मान्यता भी करेगा तो नहीं चढ़ा सकता। अब तो अस्सी रुपये तोला जो होती है तो उतनी नहीं चढ़ा सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं चढ़ा सकता है? पैसेवाले बहुत चढ़ाते हैं। उसमें भ्रम है। उसमें क्या है? एक बार हम वहाँ गये थे न। दर्शन को। कितना केसर लगाया था प्रतिमा को। ऐसी प्रतिमा को वन्दन नहीं करेंगे। तो पण्डित थे न बेचारे ऐसा कहे महाराज आये है। महाराज! हम निकाल देंगे, बाद में आप आओ। भगवान वीतरागमूर्ति को यह क्या लप? ऐसा केसर चढ़ाया था चारों ओर। अब श्वेताम्बर हो गये। पहले पण्डया था अन्यमति। उसको आधीन था। हम गये तब। अभी श्वेताम्बर हो गया। ऐसा हो गया। ओहो! दुनिया का भ्रम। बारह महीने में एक बार दर्शन करूँगा तो मेरी आमदनी है ऐसी ही रहेगी। ऐसी मान्यता सब भ्रमणा अज्ञानी की है। मूढ़ जीव की भ्रमणा है। समझ में आया? लौकिक की बहुत बात चलती है।

लौकिक रूढ़ि अनेक प्रकार की हैं; वह निःसार हैं,... उसमें कुछ सार है नहीं। **निःसार पुरुषों द्वारा ही उसका आचरण होता है,...** मूढ़ पुरुषों द्वारा सार का भान नहीं उसके द्वारा उसका आचरण होता है। यह शत्रुंजय में नहाना। ऐसा आता है न? एकबार नहाये तो वहाँ कल्याण हो जाये। सम्मेदशिखर की एक बार यात्रा कर जाये तो जन्म-मरण मिट जाये। सब भ्रमणा है।

मुमुक्षु : आपकी मानता करे तो ठीक हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी करते हैं, सभी लोग। हमने बहुत कहा है। बाहर में पहले से आबरू बड़ी है न! तो बहुत मानता करते हैं एकान्त में। यहाँ आये, तब पूछे तो मालूम होता है कि क्या है। ७५ के वर्ष से चलता है। ५४ वर्ष हुए। चलते हैं। पुण्य भी है और ऐसी वह सब है बाहर में धर्म की दृष्टि, प्ररूपणा, तो लोग सब पहले से मानते हैं। बहुत मानते हैं। ...लड़का को ठीक हो जाये तो महाराज के पास जाकर

भोजन कराये संघ का। ऐसा होता है अन्दर एकान्त। यहाँ तो कहते हैं कि भाई! हमारे से कुछ नहीं होता।

मुमुक्षु : आपके पास जो (जादू की) लकड़ी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लकड़ी है। बात सत्य है। इस लकड़ी में कुछ है। ऐसा करते हैं तो उसके वश हो जाता है। ठीक यह तो हाथ में पसीना न हो, पसीना शास्त्र को न छुए इसलिए हाथ में रखते हैं। पहले सूखड़ की थी। वह तो चोरी हो गयी। सूखड़ नहीं? सूखड़। सूखड़ नहीं होता भाई चन्दन? चन्दन। चन्दन की। मुम्बई में बहुत मिलती है। चीनी लोग बहुत बेचते हैं। चन्दन की लकड़ी। वह रखते थे।

मुमुक्षु : उसने ...

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर यह आयी। एक डॉक्टर चन्दुभाई है न! डॉक्टर उसने बनायी। देखो भगवान का ऐसा... दो घर की बनायी। एक यहाँ रहती है, एक वहाँ। चन्दुभाई आते हैं डॉक्टर। राजकोट के बड़े डॉक्टर हैं। बड़ा मुमुक्षु है। पढ़ते हैं वहाँ। वाँचन करते हैं। वह लाये थे। चलो भाई। उसमें है कुछ ऐसा लोग कहते हैं, मानते हैं। वह भी मूढ़ है। अमरेली में भाई हुआ था न, कहा नहीं? बाबरावाले। बाबरावाले वकील। नरभेराम वकील थे। अमरेली गये थे। करोड़पति था। व्याख्यान में आये थे न! रामजी हंसराज। कामाणी। चार-पाँच करोड़ रुपये है न। ... और उसका नरभेरामभाई! यह हेमकुंवरबहेन है न उसका नरभेरामभाई है। उसके पास ३०-४० लाख है। और छोटा भाई गिरधरभाई। उसके पास ... तो तीनों भाई आये थे वहाँ। व्याख्यान में। वहाँ अमरेली। अमरेलीवाले थे वकील। तो वकील वहाँ केस में आया था। तो जज को कहे, आज मैं नहीं आ सकूँगा। वकील ने कहा। क्यों? कि हमारे महाराज आज आये हैं, यहाँ व्याख्यान करने को। तो जज कहे कौन से महाराज? जिसके ऊपर लकड़ी फिरती है पैसा हो जाता है वह? फिर उसने कहा। वकील थे बाबरावाले। नरभेरामभाई नहीं? कहते हैं, ऐसा सभी महाराज के लिये, परन्तु महाराज स्वयं कहते नहीं।

मुमुक्षु : नटुभाई के पिता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नटुभाई के पिता। हाँ नटुभाई वकील है अभी। पालीताणा

वकील है बड़े। नटुभाई आते हैं। उसके पिताश्री। जज कहे क्यों ? ... नहीं आज मैं नहीं आऊँगा। महाराज आये हैं हमारे व्याख्यान सुनने जाना है। कौन महाराज ? वह लकड़ी फिरती है और पैसे मिल जाते हैं वह ? कहते हैं महाराज के लिये। रात्रि को प्रश्न हुआ। अन्यमति कपोल रहते हैं कपोल। वहाँ है कपोल की जाति। तो उसके आदमी ने प्रश्न किया कि महाराज ऐसी बात चलती है न आपके लिये ? मैंने कहा, चलती है भाई! हम नहीं कहते। वह तो उसका पुण्य हो उसके हिसाब से मिले। समाज में आया ? यह भ्रमणा जगत की है। देव-गुरु-शास्त्र को माने तो मेरा रोग मिट जाये, मेरा यह हो जाये—यह सब मूढ़ दृष्टि है। आत्मा निरोग हो जाये, राग से रहित ऐसी दृष्टि करने से निरोगता उत्पन्न होती है। शरीर में रोग हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध क्या है ? यह तो जड़ है। आहाहा! समझ में आया ?

यह निःसार पुरुषों द्वारा ही उसका आचरण होता है, जो अनिष्ट फल देनेवाली है... भगवान को मानो तो ऐसा होगा, तीर्थंकर की पूजा करूँ तो मेरे बेटा होगा, इज्जत रहेगी—यह सब भ्रम अज्ञानी की है। **जिनका बुरा फल है तथा उनका कुछ हेतु नहीं है...** आहाहा! **कुछ अर्थ नहीं है; जो कुछ लोकरूढ़ि चल पड़ती है, उसे लोग अपना लेते हैं...** यह महावीरजी को क्या कहते हैं ? पद्म ? पद्मपुरा। गये थे। सब देखा है। सब जगह गये थे।

मुमुक्षु : जयपुर गये थे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जयपुर से गये थे। दो बार गये थे। तो पूरे हिन्दुस्तान में तीर्थ है लगभग देखा है बड़ा सब। दिगम्बर अपने हों। श्वेताम्बर नहीं। सब आ गये। ९-९ हजार मील गये तीन बार। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **जो कुछ लोकरूढ़ि चल पड़ती है, उसे लोग अपना लेते हैं और फिर उसे छोड़ना कठिन हो जाता है...** आहाहा! **इत्यादि लोकरूढ़ि है।** ऐसी लोकरूढ़ि की मूढ़ता धर्मी को होती नहीं। जिसने आत्मा आनन्द का नाथ चिदानन्द बादशाह देखा है, जिसमें प्रतीति में आयी, उसको यह मूढ़ता कैसे होगी ? आहाहा! वह तो अज्ञानी की मूढ़ता ऐसी होती है, वह बताते हैं।

दूसरा। **अदेव में देवबुद्धि...** जो देव नहीं, ईश्वरादि कुछ करता है, वह देव है ही

नहीं। समझ में आया? तो उसमें देवबुद्धि। सृष्टि का कर्ता है कोई आत्मा। सृष्टि के कर्ता बिना कैसे बने? ऐसा मूढ़ जीव मानते हैं। मिथ्यादृष्टि पापी प्राणी तत्त्व नहीं, देव नहीं उसको देव मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? **अदेव में देवबुद्धि, अधर्म में धर्मबुद्धि...** शुभादि पुण्य है, वह अधर्म है। उसमें धर्मबुद्धि। **अगुरु में गुरुबुद्धि...** गुरु जो नहीं है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है, मिथ्यादर्शन-ज्ञान आदि है और गुरु का वेश धारण किया बाबा, जोगी। अरे! जैन में। यह **अगुरु में गुरुबुद्धि इत्यादि देवादिक मूढ़ता है,...** वह मूढ़ है, मूढ़। पापी प्राणी है, उसको मूढ़ता ऐसी होती है। आहाहा! चाहे तो फिर बड़ा बादशाह हो, पाँच-पाँच लाख की एक दिन की आमदनी हो, मूढ़ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पाँच लाख ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में हैं? पाँच लाख कहाँ है? आँक बहुत है। पाँच लाख में क्या? यह अरबपति कहते हैं। देखो, यह रोग हुआ। हार्टफेल हो गया। चले गये। गोवा शान्तिलाल खुशाल। सात-आठ दिन हुआ मुम्बई में। चले गये। कौन रखे धूल? वह अम्बाजी को मानते थे। जैन स्थानकवासी थे। माने अम्बाजी को। अम्बाजी है न वह देवी? उसको मानते थे। मूढ़ है। लक्ष्मीवाला हो गया तो क्या हो गया? अम्बाजी को मानते हैं अम्बाजी। तो हमारे पैसे हुआ। ... ...क्यों नहीं होता था? हमारी दुकान में ऐसा था। हमारी बुआ का लड़का था कुँवरजी भागीदार। उसके पीर हैं हैदरशाह। पालीताणा। हैदरशाह का मन्दिर है। हैदरशाह को माने। उन लोगों के कुटुम्बवाले मानते थे। हैदरशाह। तो वह कुँवरजीभाई की दो दुकान थी। एक दुकान में लेकर आये। मेरी दुकान में नहीं रखना। तो उसमें लिखते हैं हैदरशाह हाजरा-हुजूर। चोपड़े लिखते हैं न? तो उसमें लिखते हैदरशाह हजारा हुजूर। फकीर था कोई। फिर हमारे भाई थे न खुशालभाई बड़ा भागीदार। अपने ऐसा न हो। बड़ा भाई था न हमारा? अपने ऐसा न हो। निकाल दिया चोपड़े में से। हम जैन है और यह क्या? हैदरशाह फकीर था। आहाहा! कोई ऐसा बनाया होगा कुछ। वह फकीर आया होगा उसके घर पर। उमराला है न जन्म गाँव हमारा। वहाँ आया होगा तो भोजन लाओ। भोजन तो है नहीं। तो उसने कुछ... कहते हैं। घर पर भोजन है जाओ तुम। तो किसी स्थान से पीरसना आया था। पीरसना समझते हैं? परोसना।

मुमुक्षु : खाने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... दो लड्डू आये थे। कुछ दो-चार लड्डू। पीरसना समझे? किसी के घर से खाने को नहीं आये तो उसके घर पर लड्डू आदि दे आये। तो किसी का पीरसना आया था उस समय भाई! ऐसा वह कहते हैं। उसने वहाँ ऐसा कहा। वह कहे, मेरे पास अभी कुछ नहीं जाओ। वहाँ लड्डू आते हैं। ओहोहो! यह तो सत्य है। चमत्कारी लगते हैं। वह भोले मूढ़ जीव।

मुमुक्षु : सांईबाबा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सांईबाबा तुम्हारे चलते हैं। यहाँ ... में नहीं चलता है? आहाहा! धूल में ही नहीं। भ्रम का पार नहीं। ऐसा दूसरा चलता है लोहाने का जलाराम। जलाराम। बहुत मानते हैं लोग। यह जलाराम। लोहाने के हैं न! अफ्रीका में बहुत लोहाने मानते हैं। भ्रमणा है। जलाराम। अल्लाह की जगह जलाराम ऐसा कहते हैं। यह सभी बड़े-बड़े करोड़पति पाँच-पाँच... उसका लड़का अच्छा है। तो बड़ा लड़का उसको ही मानता है सांईबाबा को। तो सांईबाबा की बात करते थे। पाँच-छह बच्चे... सबको बात करते थे, अब मैं छूट जाता हूँ। ऐसे ... मैं तो सांईबाबा के पास जाऊँगा, उसके पास रहूँगा। ऐसा बोलते-बोलते देह छूट गया। मर गया।

मुमुक्षु : ... सांईबाबा ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सांईबाबा बोला। मूर्ख यह है न! कि मैंने ले लिया। परन्तु पहले से कहना था कि यह... यह मेरे पास आ गया है। मेरे पास आ गया। यह मूढ़ जैसे बनिये। बात सत्य माने। मेरे पास आ गया है। परन्तु पहले से कहना था कि इस दिन मेरे पास आयेगा। ऐसे मूढ़ जीव। ऐई! सेठ! बड़ा करोड़पति है। चार-पाँच करोड़ रुपये। ... धूल में से? विष्टा में हाथ डाले तो क्या है? यह विष्टा है। वहाँ रत्न आता है, उसमें से? ऐसा कहे कि कहीं पर हाथ डाले तो कुछ भी सच्चा मिल जायेगा ऐसे। ऐसा दृष्टान्त है सिद्धान्त में।

कहते हैं न संजीवनी एक औषधि होती है। संजीवनी नाम की वनस्पति होती है। तो एक साधु ने ऐसा कहा कि भाई देखो। एक बैल हो गया था मनुष्य। तो उसको

संजीवनी खिलाओ तो मनुष्य हो जायेगा। तो संजीवनी की खबर नहीं, क्या करना? जो वन में वनस्पति है सब बाहर उसमें सब लो। उसमें से कुछ निकल जायेगी। परन्तु उसमें जहर की निकले तो मर जायेगा वह। यह दृष्टान्त आया है। शास्त्र में सब है। आहाहा! संजीवनी न मिले तो उसके साथ सब वेला, वेला समझे न? टुकड़े करके खिलाओ तो उसमें कुछ संजीवनी होगी तो ठीक। परन्तु उसमें जहर होगा तो मर जायेगा। आहाहा! संजीवनी किसको कहे? ... खबर बिना संजीवनी कहाँ से तू लायेगा? यह दृष्टान्त आता है। श्वेताम्बर में आता है। सब में मानना, उसमें से कोई सच्चा निकल जायेगा। धूल में भी नहीं निकलेगा। आहाहा! मूढ़ जीव के यह सभी लक्षण हैं। आहाहा!

कहते हैं, **सदोष देव को देव मानना...** है न? अदेव में देव मानना, अधर्म में धर्मबुद्धि, अगुरु में गुरुबुद्धि इत्यादि देवादिक मूढ़ता है, वह कल्याणकारी नहीं। आत्मा को नुकसान करनेवाला है। **सदोष देव को देव मानना तथा उनके निमित्त हिंसादि द्वारा अधर्म को धर्म मानना...** आहाहा! सदोष देव है। यह गणेश आता है न? गणेश नहीं गणेश? लड्डू चढ़ाये शंकर को। शंकर का पुत्र। आता है न, बोलते हैं।

मुमुक्षु : शंकर के पुत्र गणेश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ गणेश है। प्रथम पहले समरिये ऐसा आता है। गौरी पुत्र गणेश। भूल जाते हैं। 'प्रथम पहेला समरीये गौरीपुत्र गणेश' हाथी का मुँह लगा दिया। चेहरा पूरा। इन्सान को ऐसा हो? ऐसी मूढ़ता और गणेश को रखे। गणेशाय नमः पुस्तक में लिखे पहले। गणेशाय नमः बीच में डाले। गणेशाय नमः मूढ है। गणेश तो, गणधर, वह गणेश है।

मुमुक्षु : ऐसे ही लिखा जाता है कि श्री गणधर गणेशाय नमः

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। गणधर अर्थात् सन्त मुनि वीतरागी सन्त, नग्नमुनि, दिगम्बर आत्मध्यानी, ज्ञानी, आनन्द में रमनेवाले। उसका गण का ईश्वर, वह गणधर तीर्थंकर का वजीर, वह गणेश है। यह गणेश तो झूठे गणेश है। परन्तु लोगों की मूढ़ता का पार नहीं। आहाहा! लड्डू चढ़ाये। यह गणेश चौथ नहीं करते?

मुमुक्षु : महावीर... चौथ

पूज्य गुरुदेवश्री : ... चौथ गणेश करते हैं वह नहीं। हमारे तो बैशाख शुक्ल चौथ करते हैं। गणेश चौथ बैसाख की। भाद्र शुक्ल करते हैं, वह मुम्बई में करते हैं मराठी लोग। वह खबर है। दस दिन करते हैं। गणेश बनाते हैं। मराठी लोग है न! महाराष्ट्रवाले। दस दिन। चौदस के दिन समुद्र में डाल दे उसमें। अनन्त चतुष्टी। यह तो गणेश अपने बैशाख शुक्ल ४ होता है। बैशाख शुक्ल ४ को लड्डू बनाते हैं। चूरमा के लड्डू बनाते हैं। गणेश हो...

मुमुक्षु : ... हो उसको खिलाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ खिलाते हैं। आहाहा! भ्रम... भ्रम... भ्रम... जगत की मूढ़ता के पाप का पार न होता। आहाहा!

मुमुक्षु : कहीं से भी लाभ लेना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ धूल में भी मिलता नहीं। लाभ तो आत्मा में मिलता है। बाहर में तो कर्म का उदय हो इस प्रकार चीज़ आती है। उसमें क्या है? कोई इन्द्र देता है? आहाहा!

मुमुक्षु : सामान्य देव-देवी हो तो पैसे दे जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसका पुण्य हो तो दे जाते हैं। अपने है न! है या नहीं आपका सेठ का? क्या नाम उसका? प्राणभाई। यह रतिभाई का है न नौकर एक प्राणभाई। उसकी बहू को एक देवी आकर पैसे दे जाती है। उसका पुण्य का उदय हो तो दे जाये। कहते थे। कितने रुपये इकट्ठे हुए हैं। वह दे जाती है, मैं बैंक में रख देता हूँ। वरना फिर ले जाये। प्राणभाई कहते थे।

मुमुक्षु : ...उपदेश जरूरत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आपने तो मकान करवाया है यहाँ।

मुमुक्षु : हमारे पास तो आ जाता है। बाकी ओर सब लोगों को?

पूज्य गुरुदेवश्री : ओरों का क्या काम है? यहाँ तो अपना काम है। और को समझे... आहाहा! वह प्राणभाई कहते थे, हं। एकबार तो कहे जाओ यह देवी आती है। जाओ गद्दे में पैसे हैं। दो सौ रुपया है। निकले। एकबार ऐसा कहा, देखो, उसमें

इक्यावन रुपये हैं ले लो। देर लगी तो उठ गये। फिर ले गई। देर लगी समझे न? नहीं लिये वहाँ ले गया। दैवी हो। प्रेम रह गया हो तो आये। उसमें क्या हुआ धूल में? कुटुम्ब में ऐसा मर गया हो तो ऐसा उसको प्रेम हो तो कोई आ जाये। दिखाई नहीं दे। अदृश्य रहे और बोले। यहाँ है देखो। जाओ गद्दे के नीचे। तलाई समझते हों? गद्दे में गद्दे में...

मुमुक्षु : पथारी के नीचे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ पथारी के नीचे। देखो उसमें है देखो! कुछ कहते थे, उसके पति। यह तो कहते थे कि लो हम आपको मानते नहीं। ऐसा भी कहे। आहाहा! फिर भी उसको प्रेम है तो आ जाये। १७ हजार ऐसा कुछ कहा था। १७ हजार रुपये आये हैं। बैंक में रखे हैं। उसमें क्या हुआ? वह तो दे। उसमें आत्मा को क्या? समझ में आया? पूर्व का पुण्य का उदय इतना हो तो ऐसी सामग्री निमित्त कोई आये और दे जाये। उसमें है क्या? करोड़-लाखों रुपये मिले। समुद्र के नीचे। समुद्र में है न! लक्ष्मी बहुत पड़ी है समुद्र में। आगबोट आदि बहुत टूटी है न! बिजली की। एक बिजली की आगबोट। आगबोट समझते हैं? बिजली आगबोट पहली... थी एकबार... बहुत समय पहले।

मुमुक्षु : जामनगर से कच्छ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जामनगर से कच्छ जाती थी। मुसलमानों की।

मुमुक्षु : हाजी कासम।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'कासम तारी विजणी रे भर दरिये वेरण थई।' उस कासम ने पहली आगबोट निकाली। बिजली जैसी। 'कासम तारी विजणी रे भर दरिये...' समुद्र के बीच में पानी आया। उछला पानी। अन्दर तो कितने शादी किये हुए ताजे दूल्हे जाते थे। शादी करके। सब मर गये। कासम था मुसलमान। उसने आगबोट की पहली बिजली जैसी। एकदम पानी में चले। वह डूब गयी। मर गया। गायन है। 'कासम तारी विजणी रे भर दरिये वेरण थई।' एक-दूसरे बेचारे मरनेवाले है। अरर! यह पानी उछलता है। अन्दर आता है। क्या करे? आगबोट का चलानेवाले मुख्य मनुष्य था। परमेश्वर परमेश्वर करो। भगवान का शरण लो। अभी बचने का नहीं। हाय... हाय..!

मुमुक्षु : उसका नाम बिजली था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कासम। आगबोट का नाम बिजली। उसके स्वामी का नाम कासम। मुसलमान था। यह तो (संवत्) १९५६ पहले हुई। ५६ पहले हुई। ५६ में जाते थे। हमें मालूम है। ५६ में हजारी दस वर्ष की उम्र थी। ५६ के वर्ष दस वर्ष की उम्र। तो जाते थे, हम सुनते थे।

मुमुक्षु : ...हुआ वहाँ से आये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ से जाते थे कुछ। जामनगर से कच्छ जाते थे। बारात थी अन्दर। शादी करके जाते थे। स्वाहा।

मुमुक्षु : समुद्र में जाये तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी ऐसा उछलने लगा। अन्दर चला गया। वह तो होता है।

मुमुक्षु : ... एक मूर्ति...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

मुमुक्षु : पहली यात्रा में मर गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिति पूरी हुई हो तो रक्षा कौन कर सकता है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि देव को मानना **सदोष देव को देव मानना तथा उनके निमित्त हिंसादि द्वारा अधर्म को धर्म मानना...** आहाहा! देव को चढ़ाते हैं न बलि आदि कुछ? बकरा चढ़ाये। आहाहा! मुर्गा। कुकडा समझते हो? मुर्गा। मुर्गा चढ़ाये। आहाहा! लापसी चढ़ाये। यह खोडियार खोडियार है न! आज रविवार है। बहुत लोग आते हैं। भावनगर दरबार के...

मुमुक्षु : हमारे देव थे कुलदेवी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुलदेवी खोडियार है। हमारे खोडियार है, वहाँ उमराला में। बाहर है। देवी। आहाहा! मूढ़ के लक्षण का पार न मिले। स्त्रियाँ मानती हैं। बच्चे कुछ ऐसा हो तो वहाँ लापसी चढ़ाये। सवा माणे की। माणा नहीं समझते? आटा भरने का। अनाज भरने का। माणा होता है न माणा? पवाली कहते हैं। एक माणे की आटे की लापसी चढ़ाऊँगा। यह सब हमारे घर पर था। छोटी उम्र में वहाँ लापसी हुई थी। बहुत

छोटी उम्र में। याद है बराबर। आठ-नौ वर्ष की उम्र होगी। तब मानते होंगे हमारे माताजी कुछ। तब यह क्या धर्म की तो खबर नहीं। परन्तु याद है खोडियार है। वहाँ कुँए के पास लापसी करके हम खाते थे। साधु को लापसी... आहाहा! धर्म की खबर नहीं।

मुमुक्षु : बूट माता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बूट माता। बूट। आहाहा! वह यहाँ... है न ८६ वर्ष। दो हजार लोग आये। जैन लोग आये। अरे! क्या करते हो तुम? बूट माता। हमारे है न लड़के करोड़पति हो गये। लालपुर के। लालपुर के नहीं क्या कहते हैं? मीठाभाई। लालपुर के मीठाभाई थे। उसके एक लड़के का मस्तिष्क अस्थिर हो गया था। वह मानने आये थे। अरे! कहा जैन होकर यह क्या करते हो? यह धूल भी नहीं। अभी तो पैसेवाले बहुत हो गये हैं। मीठाभाई है लालपुरवाले। अफ्रीका में है। कहीं पर है। बहुत पैसे हो गये। बहुत पैसे। पहले गरीब थे। पाँच-दस हजार थे। अब करोड़ों रुपये। यह तो पूर्व के पुण्य हैं। उसमें धूल में भी कुछ नहीं। आहाहा! यह मीठाभाई बेटे को लेकर... मैं था चातुर्मास में (संवत्) ८२ में बढवाण। बूट... आये थे। उसके लोग बूट को माननेवाले आये कुछ। मानने आये उसको पूछे। क्यों आये हो? वह लोग अमुक भाई यहाँ आओ। देखो! देवी। हम वहाँ से बढ़वाण। ८२ का चातुर्मास। चातुर्मास था हमारा। ४७ वर्ष हुए। ४ और ७। ऐसी मूढ़ता। अरे! यह जैन होकर आप! बाड़े के जैन होकर भी आपको भान न मिले। बूटदेवी माने। उसमें से रोग मिटे। लड़का मर गया।

मुमुक्षु : महावीरजी... बच्चे का मुंडन कराये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मुंडन कराये, ऐसा करे। आहाहा! जैन में भ्रम का पार न मिले। यह भ्रम मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। उसको धर्म की बुद्धि है नहीं। आहाहा!

तथा मिथ्या आचारवान... है न? मिथ्या आचार जिसको उल्टी श्रद्धा, उल्टा ज्ञान, उल्टा आचरण... **शल्यवान...** मिथ्या शल्यसहित। **परिग्रहवान,...** लक्ष्मीवाला। पैसा आदि। **सम्यक्त्वव्रतरहित...** समकिती भी नहीं और व्रत भी नहीं। **गुरु मानना इत्यादि मूढ़ दृष्टि के चिह्न हैं।** समझ में आया? जिसको सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। चारित्र की खबर नहीं और जिसको बाहर की लक्ष्मी आदि हो, साधन रखते हैं और मिथ्याशल्यसहित

हो, उसको महात्मा मानना, गुरु मानना, मिथ्यादृष्टि है। वह अज्ञानी है। महापाप करता है, ऐसी मान्यतावाला। ऐसा कहते हैं।

अब देव-गुरु-धर्म कैसे होते हैं, उनका स्वरूप जानना चाहिए, सो कहते हैं। रागादि दोष और ज्ञानावरणादिक कर्म ही आवरण हैं... क्या कहते हैं कि राग और द्वेष, पुण्य और पाप भाव और कर्म जड़, वह निमित्त। वह आवरण। **यह दोनों जिसके नहीं है, वह देव है।** वीतराग सर्वज्ञदेव को राग भी नहीं और कर्म भी नहीं। उसको देव कहने में आता है। आहाहा! जिसको तीन काल का ज्ञान नहीं और रागादिसहित है, कर्मसहित है, उसको देव मानना, मूढ़ता है। आहाहा! समझ में आया?

उसके केवलज्ञान, केवलदर्शन,... भगवान को तो केवलज्ञान होता है। देव को तो एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक का ज्ञान होता है। उसको देव कहने में आता है। केवलदर्शन होता है। **अनन्त सुख...** होता है परमात्मा को। अनन्त बल। **ऐसे अनन्त चतुष्टय होते हैं।**

मुमुक्षु : केवलज्ञान पहले और केवलदर्शन बाद में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब झूठ है। श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं। ज्ञान के बाद दर्शन होता है। दर्शन के बाद ज्ञान। यह सब झूठ है। खबर नहीं... स्थिति। श्वेताम्बर में ऐसी बढ़ी भूल है। समझ में आया? दिगम्बर में जन्मे हैं, उसको खबर नहीं, यह सब ऐसे जैन हैं। आहाहा! जन्मे तो क्या हुआ?

कहते हैं कि देव तो उसको कहिये कि जिसको राग नहीं, द्वेष नहीं, वासना नहीं और कर्म नहीं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द—ऐसी जिसको प्राप्ति, उसको देव कहने में आता है। अनन्त चतुष्टय। समझ में आया? स्वामी नारायण देखो न! सवामी नारायणदेव भगवान कहलाते हैं। माण की घोड़ी पर बैठकर आये। माण की घोड़ी। क्या कहते हैं। माण की? माण की घोड़ी पर भगवान आये थे और यहाँ से ले गया मनुष्य को। लेने को आये घोड़ी लेकर। स्वामी नारायण में ऐसा कहे। हमारे बोटाद में ऐसा चलता है। एक रात हमारे पास आकर भगवान आये रथ लेकर। तो पूछा इस व्यक्ति का घर कहाँ? भगवान आये, उसको घर की खबर नहीं? यहाँ उतरे। बोटाद

में स्वामी नारायण बहुत है। नगरसेठ हिम्मतभाई है, सब माने। खबर है। इतनी खबर नहीं वह परमेश्वर कहाँ से हुआ? और परमेश्वर को अभी रथ लाना है? शरीर बनाकर आये परमेश्वर। मरने की तैयारी थी, उसको ले गये। कहाँ ले गया? शरीर तो यहाँ पड़ा है। आत्मा ले गया? आहाहा! अज्ञानी को मूढ़ता का पार न होता। बहुत लिखा है।... बहुत लिखा है। वह रत्नकरण्डश्रावकाचार है न! उसमें बहुत लिखा है। सुखदेव। सदासुखदास।

ऐसे अनन्त चतुष्टय होते हैं। सामान्यरूप से देव एक ही है और विशेषरूप से अरहन्त, सिद्ध... अरिहन्त वह सशरीरी केवली होता है और सिद्ध वह शरीररहित केवलज्ञानी परमात्मा अशरीरी हुआ। **ऐसे दो भेद हैं। तथा इनके नामभेद के भेद से भेद करे तो हजारों नाम हैं...** ऋषभदेव, महावीर आदि नाम आये न? एक-एक सबको नाम लगाते हैं। ऋपति गच्छति इति परमपदमिति ऋषभः। जो अपना आनन्दपद में पूर्ण प्राप्त हो, वह ऋषभ है। तो सब तीर्थंकर को ऋषभ ही कहने में आता है। महावीर। जिन्होंने अपना महा पुरुषार्थ कर अनन्त आनन्द प्रगट किया, वह महावीर। सभी तीर्थंकरों को महावीर भी कहने में आता है। ऐसा कहते हैं। गुण के अर्थ से लो तो हजारों नाम हैं। समझ में आया?

तथा गुणभेद किये जाये तो अनन्त गुण हैं। एक-एक आत्मा में अनन्त गुण हैं, तो एक-एक गुण से स्तुति। इन्द्र जब भगवान के पास आते हैं तो एक हजार आठ नाम से स्तुति करते हैं। एक हजार आठ नाम। एक-एक तीर्थंकर का। ऊपर से इन्द्र आते हैं, समकिती हैं, एकावतारी हैं, एक भव होकर मोक्ष जानेवाले हैं। शकेन्द्र। सौधर्मदेवलोक है। बत्तीस लाख विमान। उसकी पत्नी है इन्द्राणी। दोनों एक भवतारी हैं। दोनों समकिती हैं। दोनों का आखिर का मनुष्यभव होकर मोक्ष जायेंगे। वह भी भगवान के पास जब आते हैं तो एक हजार आठ नाम... बनारसीदास लेते हैं उसमें नाम। ॐ पहला बनाये। ॐ प्रणव। वह भगवान का नाम। ऐसे-ऐसे एक हजार आठ। भगवान की स्तुति। वीतराग सर्वज्ञ सूर्य प्रभु। पूर्णानन्द की प्राप्ति, देह भी जिसका परमऔदारिक। देह भी परमऔदारिक। जो इतना प्रकाश करे। उसमें आता है। शरीर का प्रकाश करे भामण्डल। भा... भा अर्थात् प्रकाश का मण्डल। भगवान अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर के शरीर की

इतनी प्रभा होती है कि सारे शरीर में भा—प्रकाश का मण्डल होता है। उसमें कोई नजर करे तो उसको तीन भव (भविष्य के) देखने में आये। सात भव देखने में आये। ओहोहो! समझ में आया? उसको देव कहते हैं। किसी को भी देव माने (वह) मूढ़ जीव है। ऐसा परमेश्वर को छोड़कर... साक्षात् त्रिलोकनाथ विराजते हैं महाविदेह में परमात्मा। महावीर परमात्मा मोक्ष में गये। वह तो अशरीरी हो गये। वह णमो सिद्धाणं में है। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वह णमो अरिहंताणं में हैं। चार कर्म शेष हैं। भगवान सिद्ध हुए, उसको आठों कर्मों का नाश हुआ है। आहाहा! जैन में जन्म हुआ परन्तु अरिहन्त किसको कहे? सिद्ध किसको कहे? पहाड़ा बोलता जाये णमो सिद्धाणं... णमो सिद्धाणं... णमो आईरियाणं... गडीया समझते हो? पहाड़ा। एकडे एक और बगडे दो और तिगडे तीन। पहाड़ा, बस पहाड़ा। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा उतारा है। एक आत्मा रहे, वह एक को एक कहो; दो, स्त्री हो तो बगड़े दो बगडा वह। लड़का हो तो त्रिगडे तीन। अब तगडेगा, कमाओ ऐसा करो। दूसरा भी अर्थ लिया है। मनुष्य को तो दो पैर होता है। परन्तु स्त्री हो तो चार पैर हुए। पशु हुआ। पशु को चार पैर होते हैं न? फिर लड़का हुआ तो छह पैर हुए। छह पैर तो भँवरे को होते हैं। और लड़के को लड़का हुआ तो आठ पैर हुए। तो मकड़ी हुआ। मकड़ी को आठ पैर होते हैं। करोळिया समझते हो? मकड़ी। मकड़ी-मकड़ी। आठ पैर होते हैं। लार बनाकर फँसता है।

मुमुक्षु : अपना जाल बनाकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ स्त्री हुई, पुत्र हुआ, बहू हुई लड़के की, अपनी ममता के जाल में घुस गया उसमें। आहाहा! हमारा बेटा है... बेटा है... ५० वर्ष बाद नहीं। क्या है परन्तु? ... आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। वह तेरे से हुआ है? वह तो अपनी चीज़ अपना आत्मा भिन्न है। वह तो उसके पुण्य के हिसाब से आया है। पुण्य पूरा हो जायेगा तो चला जायेगा। उसमें तेरा क्या है? ऐसी मान्यता, जगत की भ्रमणा... आहाहा! बड़े महान नाम धारण करे और भ्रम का पार न मिले। हम धर्म करते हैं, भगवान की पूजा भक्ति करते हैं। धूल में भी नहीं पूजा सुन न! दृष्टि तेरी भ्रमणा अज्ञान है, महापाप है,

उसमें तेरी पूजा की तुलना क्या है ? समझ में आया ? पाटणीजी ! यहाँ तो ऐसी बात है, भाई ! आहाहा !

देखो ! गुणभेद से अनन्त गुण हैं। **परमौदारिक देह में विद्यमान घातियाकर्म रहित...** आहाहा ! शरीर तो ऐसे परमौदारिक। उज्ज्वल हो जाता है। अरिहन्त का शरीर काँच जैसा उज्ज्वल हो जाता है। **परमौदारिक देह में विद्यमान...** और देह में भगवान अन्दर विद्यमान है। चैतन्यमूर्ति। आहाहा ! **घातियाकर्म रहित...** चार घाति का नाश हुआ है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। **अनन्त चतुष्टयसहित धर्म का उपदेश करनेवाले...** उसकी वाणी में ॐ ध्वनि खिरती है। भगवान अरिहन्त हो सर्वज्ञ। ऐसी वाणी उनकी नहीं होती। उसकी ॐ... पूरे शरीर में से ध्वनि उठती है। क्योंकि वीतरागभाव हुआ तो वाणी भेदवाली नहीं निकलती है। अभेदवाली निकलती है। ॐ ध्वनि। सब जीव अपने में समझ जाते हैं। समझ में आया ? यह अरिहन्त की व्याख्या करते हैं कि अरिहन्त कैसे हो। आहाहा ! णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं।

अनन्त चतुष्टयसहित धर्म का उपदेश करनेवाले ऐसे तो अरिहन्तदेव हैं तथा पुद्गलमयी देह से रहित लोक के शिखर पर विराजमान... ये सिद्ध हैं। देह छूट गया। शरीररहित केवल धर्मात्मा णमो लोए सव्व साहूणं। णमो अरिहंताणं कहा था न ? पीछे आखिर में णमो लोए सव्व साहूणं है। तो वह सब में लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं। परन्तु संक्षिप्त करके अन्तिम शब्द कहा वह पहले ले लेना। शास्त्र में तो ऐसा भी चला है, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। धवल में ऐसा चला है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। तीन काल में होनेवाले अरिहन्त को... णमो लोए सव्व सिद्धाणं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, त्रिकालवर्ती आयरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। ऐसा पूरा पाठ है। नेमिचन्दजी ! सुना है ? सुना ही नहीं। कहाँ समय है ? ॐ है ऐसा। उनको गरज है न, तो प्रार्थना करने को आये हैं। तो हमारे वहाँ आओ। आहाहा !

भगवान अरिहन्त है तो देह में। आत्मा तो है अनन्त ज्ञानादि। और देह छूट गया तो सिद्ध हुए। इन दोनों को देव कहने में आता है। उसके सिवा दूसरे देव सच्चे होते नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आसोज शुक्ल २, शुक्रवार, दिनांक २८-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-१२

यह अष्टपाहुड़ चलता है। उसमें पहले दर्शनपाहुड़ अधिकार आता है। दर्शन की परिभाषा यह कही... जरा सूक्ष्म बात है। आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वभावी प्रभु आत्मा, उसका जिसको अन्तर में आनन्द के वेदनसहित प्रतीति होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। और आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन उपरान्त अपना चैतन्य का ज्ञान, ज्ञायक का ज्ञान, ध्रुव चैतन्य प्रभु आत्मा का ज्ञान, उसको नाम दर्शन और ज्ञानसहित मोक्ष का मार्ग कहने में आता है।

तीसरा चारित्र। स्वरूप आनन्दस्वरूप का जो अन्तर में भास हुआ, उसमें लीन होना, चरना, रमना, आनन्द का भोजन करना। आहाहा! उसका नाम चारित्र है। यह दर्शन, ज्ञान और चारित्र अन्तर में जिसको प्रगट—व्यक्त हुआ हो और बाह्य में नग्न मुद्रा हो, दिगम्बर नग्न मुद्रा, उसको यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। वीतरागमार्ग यह है। वह जैनदर्शन मोक्ष का मार्ग स्वरूप है। उसमें सम्यग्दर्शन क्या, उसकी व्याख्या चलती है। और सम्यग्दर्शन में भी उसका गुण, उसका लक्षण और उसका चिह्न चलता है। अमूढ़दृष्टि आया है। निःशंक, निःकांक्ष, निर्विचिकित्सा, अमूढ़ चौथा बोल आया है। यहाँ आया है नीचे देखो। १०वाँ पन्ना है न?

जिसको अरिहन्त कहते हैं, उसको चार कर्म का नाश हुआ हो और अनन्त दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द पूर्ण प्रगट हुआ हो। वह अरिहन्त कहने में आता है। अरिहन्त की उसको श्रद्धा सम्यग्दृश्टि को सच्चे देव की श्रद्धा होती है। उस देव के सिवाय कुदेवादि की श्रद्धा धर्मी प्रथम श्रेणी का, उसको भी दूसरी श्रद्धा होती नहीं। और सिद्ध भगवान, वह तो अशरीरी हो गये। णमो सिद्धाणं। आठ कर्मरहित। सिद्धशिला के ऊपर लोक के अग्र में विराजमान अनन्त परमात्मा हैं, वह सिद्ध हैं। सिद्ध और अरिहन्त दोनों गुरु और देव में गिनने में आता है। ऐसे देव-गुरु की श्रद्धा समझकर सम्यग्दृष्टि को होती है। समझ में आया? ऐसे ही अरिहन्त-अरिहन्त करे और अरिहन्त का क्या स्वरूप है, सिद्ध का स्वरूप क्या है, उसको तो खबर नहीं, उसको तो व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं अरिहन्त परमात्मा साक्षात् वर्तमान में महाविदेह में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान। वह अरिहन्त पद में है। महावीर भगवान आदि हो गये, वह तो सिद्धपद में हो गये। वह तो शरीररहित अशरीरी हो गये। उन दोनों को अरिहन्त और सिद्ध कहते हैं। अब उसका नाम कहते हैं नीचे। **इनके अनेकों नाम हैं...** नीचे लाईन है। **अरहन्त...** भी कहते हैं। **जिन,...** भी कहते हैं। ऐसे अरिहन्त को, हों! **सिद्ध,...** भी कहते हैं, **परमात्मा,...** भी कहते हैं। **महादेव,...** भी कहते हैं। पर आत्मा ऐसे को महादेव कहते हैं। वह शंकर आदि को महादेव कहते हैं वह नहीं। जिसको दिव्यशक्ति अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानादि प्रगट हुआ हो, उसको महादेव कहते हैं। है? उसको **शंकर,...** कहते हैं। ऐसे शक्तिवान को शंकर कहते हैं। जिसको अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और पूर्ण शान्ति प्रगट हुई, उसको शंकर कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उसको **विष्णु,...** कहते हैं। क्योंकि उनका ज्ञान लोकालोक को जानता है, उस अपेक्षा से उसको व्यापक, जानने की अपेक्षा से व्यापक और विष्णु कहते हैं। **ब्रह्मा,...** उसको ब्रह्मानन्द के स्वरूप की उत्पत्ति करनेवाला अपने आत्मा को ब्रह्मा कहते हैं। वह जगत को उत्पन्न करनेवाला ब्रह्मा ऐसी कोई चीज़ है ही नहीं। समझ में आया? 'ब्रह्म चिह्ने सो ब्रह्मणा' अन्दर आनन्दस्वरूप का वेदन पूर्ण हो, ऐसे अरिहन्त को ब्रह्मा कहने में आता है।

हरि,... उसको हरि कहते हैं। क्योंकि अज्ञान और राग-द्वेष को हरकर नाश किया। ऐसा अरिहन्त परमात्मा को हरि कहने में आता है। **बुद्ध,...** बुद्ध कहते हैं न अन्य में? वह बुद्ध नहीं। जिसको अपना ज्ञान पूर्ण प्रगट हुआ केवलज्ञान, उसको बुद्ध कहते हैं। और **सर्वज्ञ,...** तीन काल—तीन लोक को अरिहन्त परमात्मा देखते हैं। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में—एक समय में तीन काल—तीन लोक भगवान अरिहन्त देखते हैं, विराजमान महाविदेह में है। और सिद्ध भी तीन काल—तीन लोक देखते हैं। लोकाग्र है। तो उसको यथार्थ श्रद्धा और ज्ञान में जानने में आता है तो निश्चय समकिती दृष्टि को ऐसी व्यवहार की श्रद्धा ऐसे देव-गुरु की होती है। समझ में आया?

वीतराग परमात्मा... लो। उसको वीतराग कहते हैं। वीत—राग। ऐसे तो वित्त अर्थात् पैसा कहने में आता है। तो पैसे के रागी को भी वितराग कहते हैं। पण्डितजी!

यह धूल है न धूल पैसा? उसको वित्त कहते हैं। वीत्त का रागी वह वितराग-पैसे के रागी। यहाँ वीत अर्थात् रहित। राग से रहित दशा जिसको हो उसका नाम वीतराग कहते हैं। दोनों वीतराग। कहा था एक व्यक्ति ने। सभा में बात हुई। यह सब प्राणी वीतराग हैं। लोग व्याकुल हो गये यह क्या है? यह वीतराग का अर्थ समझे? वित्त अर्थात् पैसे के प्रेमी, वह सब वितराग है। संसार में भटकनेवाले। चार गति में डूबनेवाला। पैसे धूल जगत की चीज़ जड़, आत्मा भगवान उससे भिन्न है, उसकी खबर नहीं और वह पैसे मेरे हैं, ऐसे लक्ष्मी का प्रेम है, जिसको अन्दर में, वह सब वितराग अर्थात् मूढ़ प्राणी पैसे के लोभी, चार गति में भटकनेवाला, उसको इस अपेक्षा से वितराग कहते हैं। नेमिचन्दजी! लो यह आप सभी को वीतराग कहते हैं।

मुमुक्षु : पैसे के बिना का।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग बिना के, पैसे बिना के और आत्मा के आनन्दवाले, उसको वीतराग कहे, और एक पैसे का प्रेमी हो, उसको वितराग कहिये। एक भटकनेवाला और एक मुक्ति होनेवाला। यह चर्चा हो गई है, हों!

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग बोलते हैं न? वित्त अर्थात् पैसे के राग। वित्त अर्थात् पैसा वहाँ है। लक्ष्मी, उसका राग। आहाहा! भगवान को तो आत्मलक्ष्मी प्रगट हुई है। अरिहन्तदेव, सिद्ध परमात्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द। उसका नाम अरिहन्त और सिद्ध कहने में आता है। ऐसे देव को देव समकिती मानते हैं। ऐसे देव के अतिरिक्त कुगुरु आदि, कुदेव को देव मानते नहीं। वह बात चलती है।

परमात्मा कहते हैं उसको। अरिहन्त को और सिद्ध को परमात्मा कहते हैं। **इत्यादि अर्थ सहित...** अर्थ सहित देखो! उसका अर्थ ऐसा है। **अनेक नाम हैं—ऐसा देव का स्वरूप जानना।** लो। देव ऐसा है दिव्यशक्ति जिसको प्रगट हुई है। स्त्री हो, कुटुम्ब हो, छद्मस्थ हो और देव कहलाये, वह देव नहीं। देव को आहार नहीं, पानी नहीं, रोग नहीं। अरिहन्त को रोग नहीं शरीर में। उसको क्षुधा, तृषा नहीं, आहार नहीं, पानी नहीं। अमृत का अन्दर जिसको अनुभव है, उसको यहाँ अरिहन्त और सिद्ध कहने में आता है।

अब गुरु का भी अर्थ। अमूढ़दृष्टि चलता है न? धर्मी उसमें मूढ़ नहीं होता। बराबर उसको भान होता है कि अरिहन्त ऐसा होता है, सिद्ध ऐसा है। **गुरु का भी अर्थ से विचार करें तो अरिहन्त देव ही गुरु हैं,...** बड़ा है न? गुरु अर्थात् बड़ा। अरिहन्त परमात्मा, (जिन्हें) चार कर्म का नाश है, चार कर्म बाकी हैं। सिद्ध को तो आठों कर्म का अभाव है। वही गुरु है वास्तव में। सर्वज्ञदेव परमगुरु। आता है, भाई! श्रीमद् में। श्रीमद् में एक लाईन आती है। एक व्यक्ति कहे तुम्हें सर्वज्ञदेव परमगुरु की माला गिननी। सर्वज्ञदेव परमगुरु। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक देखते हैं, ऐसे सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्मा अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति जिसको प्रगट हुई, वही सर्वज्ञदेव परमगुरु है। समझ में आया?

क्योंकि मोक्षमार्ग का उपदेश करनेवाला अरिहन्त ही है,... सच्चा मोक्षमार्ग का उपदेश अरिहन्त ही करते हैं। अरिहन्त को शरीर है न उनको? वाणी भी है। सिद्ध को शरीर, वाणी नहीं। वह तो अशरीरी हो गये। अरिहन्त को तो शरीर है। तो उपदेश भी करते हैं। **वे ही साक्षात् मोक्षमार्ग का प्रवर्तन कराते हैं...** ओहो! जगत के प्राणी को परमात्मा का उपदेश कि आत्मा आनन्दस्वरूप है, पूर्ण अनन्त स्वरूप की लक्ष्मीसहित है, उसकी प्रतीति अनुभव करके करो। तो तुम्हारे सम्यग्दर्शन होगा, सम्यग्दर्शन के बिना तेरी क्रिया और ज्ञान सब निरर्थक और व्यर्थ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अरिहन्त सर्वज्ञदेव ही साक्षात् मोक्ष का प्रवर्तन कराते हैं।

तथा अरिहन्त के पश्चात् छद्मस्थ ज्ञान के धारक उन्हीं का निर्ग्रन्थ दिगम्बर रूप... अब गुरु की बात लेते हैं। **अरिहन्त के पश्चात् छद्मस्थ...** छद्मस्थ अर्थात् अभी आवरणवाले हैं। **ज्ञान के धारक...** परन्तु सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन आदि धरनेवाले। **उन्हीं का निर्ग्रन्थ दिगम्बर रूप...** जैनदर्शन में नग्न दिगम्बररूप ही अनादि का है। वीतराग दर्शन में मुनिपने का नग्न दिगम्बर ही वेश है। वस्त्रादि का वेश, वह जैनदर्शन का नहीं। जैनमार्ग का नहीं। समझ में आया? दिगम्बर मुनि। आत्मध्यान में मस्त, अतीन्द्रिय आनन्द में, जंगल में बसनेवाले। मुनि तो पहले जंगल में बसते थे। समझ में आया? पीछे उसमें से श्वेताम्बर निकला तो वस्त्र-पात्र रखने लगे और उसमें स्थानकवासी निकला अभी ४००-५०० वर्ष पहले। वह सब जैनदर्शन से विरुद्ध है सब। अमरचन्दभाई!

वह जैनदर्शन ही नहीं है। ऐसी बात है, भाई! कठिन बात है जगत की।

जैनदर्शन तो दिगम्बर नग्नदशा और अन्तर में आनन्द, ज्ञान और चारित्रसहित दशा, उसको जैनदर्शन में सन्त और साधु कहने में आता है। समझ में आया? **दिगम्बर रूप धारण करनेवाले मुनि हैं, सो गुरु हैं...** आहाहा! यह गड़बड़ी हो गई जैनदर्शन में। बारह (वर्ष के) दुष्काल पीछे। भगवान पीछे पाँच सौ वर्ष बाद दुष्काल हुआ। एक के बाद एक बारह वर्ष दुष्काल। ओहोहो! यहाँ तो एक साल में दूसरा दुष्काल पड़े तो लोग चिल्लाने लगते हैं। बारह वर्ष दुष्काल। उसमें साधु दिगम्बर सन्त मुनि थे, वह तो परम्परा मार्ग सम्भालकर रह गये। और उसमें कितने साधु भ्रष्ट हुए। वस्त्र, पात्र रखने लगे और हम भी साधु हैं, ऐसा मानने लगे। वह जैनदर्शन की श्रद्धा से भ्रष्ट है। मार्ग ऐसा है। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव का यह मार्ग है। उसमें आगे-पीछे कुछ करे तो उसकी मान्यता वीतराग की नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह मुनि।

क्योंकि अरिहन्त की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकदेश शुद्धता... अरिहन्त परमात्मा को जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पूर्ण शुद्ध है। और गुरु जो मुनि निर्ग्रन्थ नग्न दिगम्बर और आत्मध्यानी, उनको एकदेश शुद्ध है। सर्वज्ञ को पूर्ण शुद्धता है परमात्मा को। और गुरु को एकदेश शुद्धता है। एकदेश शुद्धता। एकदेश समझे? अंश की। पूर्ण नहीं शुद्धता। पूर्ण शुद्धता परमेश्वर अरिहन्त को होती है। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य मुनि देखो न! दो हजार वर्ष पहले हुए। भगवान के पास गये थे। वहाँ से आकर यह समयसार बनाया है। समझ में आया? यह तो अष्टपाहुड़ है, उन्होंने बनाया है। भगवान के पास गये थे परमात्मा विराजते हैं वहाँ। आठ दिन रहे थे, वहाँ। उसके बाद यह बनाया। वह समयसार दिगम्बर मुनि निर्ग्रन्थदशा का वर्णन करनेवाला है। समझ में आया? लोगों तो ऐसे अर्थ करते हैं, अपनी कल्पना से। झूठा अर्थ है सब। समझ में आया?

वीतराग दिगम्बर धर्म। सनातन वीतरागस्वभाव, उसकी मुद्रा नग्न दिगम्बर, वही कुन्दकुन्दाचार्य (और) अनन्त तीर्थंकरों ने कहा है। समझ में आया? उससे विरुद्ध माने, उसको सम्यग्दर्शन की श्रद्धा नहीं। मिथ्यादर्शन की श्रद्धा है। नेमिचन्दजी! आहाहा! कठिन बात है, भाई!

मुमुक्षु : यथार्थ तो सब है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यथार्थ तो यह है। परन्तु सम्प्रदाय में जरा रुचे नहीं। सब साधु मानते हैं, वस्त्र-पात्र रखकर हम साधु हैं, हम साधु हैं। भगवान कहते हैं, वह साधु नहीं, मिथ्यादृष्टि हो तुम। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं देखो न? **अरिहन्त की भाँति...** आहाहा! **उनके पायी जाती है और वे ही संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण है,...** क्योंकि सच्चा सन्त उसको आत्मदर्शन-ज्ञान तो हो, उपरान्त स्वरूप की रमणता की संवर-निर्जरा होती है। समझ में आया? संवर-निर्जरा बाहर की क्रिया नहीं है। अन्तर आत्मा के अनुभव में आनन्द की लहर करना अन्दर में। आहाहा! क्या बात है! उस आनन्द की अनुभवदशा को संवर-निर्जरा कहते हैं और उसका ही पूर्ण स्वरूप, उसको मोक्ष कहते हैं। आहाहा!

संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण हैं,... कहो, ऐई! मोहनभाई! यह तुम्हारे गड़बड़ी हो गयी सब। प्रेमचन्दभाई गड़बड़ी कर गये अन्त में। आहाहा! यहाँ कितनी बार सुनते और आते। कुछ निर्णय का ठिकाना न मिले। वीतराग तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर सनातन सत्य क्या है उसकी खबर नहीं। जय नारायण सभी। मुम्बई में सुनाया था कि नहीं? खबर है। आहाहा! निश्चय से तो सर्वज्ञ परमेश्वर का पंथ भगवान पीछे छह-छह साल एकधारा चली। पीछे उसका मार्ग रहा, परन्तु यह श्वेताम्बर लोग जो मन्दिरवासी है, वह उसमें से निकले। सत्य पंथ में से। भ्रष्ट श्रद्धा होकर और उसमें से स्थानकवासी अभी निकले, उसमें से भ्रष्ट होकर। ऐई! पण्डितजी! तो वीतराग का सनातन मार्ग तो अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, चारित्रसहित दिगम्बर मुद्रा, उसमें कोई अधिक-विपरीत करे तो वह वीतरागमार्ग नहीं। समझ में आया? आहाहा! बात यह है।

कहते हैं कि **अरिहन्त की भाँति एकदेशरूप से निर्दोष हैं,...** सचचे सन्त एकदेश अर्थात् एक भाग, एक अंश **वे मुनि भी गुरु हैं, मोक्षमार्ग का उपदेश करनेवाले हैं। ऐसा मुनिपना सामान्यरूप से एक प्रकार का है...** आचार्य, उपाध्याय और साधु। अरिहन्त और सिद्ध, वह गुरु। देव और गुरु। और आचार्य, उपाध्याय, साधु—मात्र गुरु। **ऐसा सामान्यरूप से एक प्रकार का है, विशेषरूप से वही तीन प्रकार का है—आचार्य, उपाध्याय, साधु। इस प्रकार यह पदवी की विशेषता होने पर भी उनके मुनिपने की क्रिया समान ही है;...** आचार्य हो, उपाध्याय हो, साधु, सबकी मुनिपने की नग्नदशा,

और अट्ठाईस मूलगुण और सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह सभी को समान होता है। आहाहा! जादवजीभाई! लो ऐसा मार्ग है यह।

उनके मुनिपने की क्रिया समान ही है... आचार्य हो, उपाध्याय या साधु। **बाह्यलिंग भी समान है,...** बाह्य लिंग नग्नपना ही है तीनों को। आचार्य, उपाध्याय और साधु। बाह्यलिंग भी वस्त्र का टुकड़ा भी मुनि को होता नहीं, तीनों को। नेमिचन्दजी! सनातन मार्ग यह है। बाकी तो भ्रष्ट होकर पंथ निकला, वह जैनदर्शन नहीं। कठिन लगे ऐसा है। परिवर्तन किया है तो कुछ कारण होगा या नहीं? दोशी! सूक्ष्म बात है। आपका... यह नरभेरामभाई के दामाद है। नरभेरामभाई के दामाद, हरिभाई के। किसी दिन आवे। वहाँ सब... हरिभाई मूल सेठ। हेमकुंवरबहेन! यह आपके दामाद की बात करते हैं। ऐसा कभी सुनने को मिलता है। और यहाँ आये तो ऐसी लिखावट है सब। आहाहा! मार्ग तो यह है। परिवर्तन किया है २१ साल और ४ माह थे उसमें। ४५ साल हमारे पिताजी का धर्म वही था। जन्म उसमें लिया। २१ साल उसमें रहा। और अन्तर में यह चीज आई। मार्ग यह नहीं है। मार्ग यह नहीं। वीतराग का मार्ग दूसरा है। भाई था न बड़ा भाई खुशालभाई, उसने ... दीक्षा। (संवत्) १९८७ के वर्ष में। वीछिया है न वीछिया। बड़ा भाई था न दीक्षा बड़ी दी थी। ६० साल पहले दीक्षा हुई। ६० साल दीक्षा चलती है। (संवत्) १९७० में दीक्षा हुई। ६० साल हुए।

उस समय भाई ने दीक्षा बड़ी धूमधाम से दी थी। दीक्षा ली थी। उसको कहा एकान्त में बुलाकर, भाई! यह मार्ग नहीं। यह साधुपना नहीं। एकान्त में दीक्षा दे न दीक्षा। वहाँ कठोड़ा है न बाहर। कठोडा क्या है? प्रेमचन्दभाई! आपका नया उपाश्रय है न? वहाँ के सेठ थे नगरसेठ। वहाँ कठोडा पर कहा था (संवत्) १९८७ में। मैं यहाँ नहीं रहनेवाला हूँ। यह सम्प्रदाय ही झूठा है। वीतराग का मार्ग यह नहीं। तम्बोली! भाई ने ऐसा कहा, धीरे-धीरे छोड़ना। एक साथ मत छोड़ना। लोगों में खलबली मच जायेगी। (संवत्) १९८७ की बात है। मार्ग यह अनादि का है। आहाहा! पीछे तो बारह (वर्ष) दुष्काल हुआ न, उसमें श्वेताम्बर पंथ हुआ। पाल न सके न, इसलिए शास्त्र भी घर का बनाया। भगवान का शास्त्र यह है नहीं। और उसमें स्थानकवासी निकला। वह पाँच सौ वर्ष पहले। वही सब कल्पित शास्त्र जो था, वह मानकर निकला। जैनधर्म यह

नहीं। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में तो बहुत स्पष्ट कर दिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक टोडरमलजी।

यहाँ कहते हैं आचार्य उपाध्याय का **लिंग भी समान है,...** तीनों का नग्न दिगम्बर लिंग होता है। **पंच महाव्रत...** समान है। देखो! पंच महाव्रत है न उसमें? इस ओर। मनसुखभाई! वहाँ आगे है न! दूसरा पेराग्राफ। पंच महाव्रत भी सब आचार्य, उपाध्याय, साधु के समान होता है। **पंच समिति,...** समान। निर्दोष आहार लेना, ऐषणा, ईर्या, भाषा सब। **तीन गुप्ति—ऐसे तेरह प्रकार का चारित्र भी समान ही है, तप भी शक्ति अनुसार समान ही है...** तीनों तप करते हैं, इच्छा निरोध करके। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आनन्दसहित हों! मात्र सम्यग्दर्शन बिना का अपवास, बपवास वह सब लंघन है। उसमें कुछ लाभ नहीं, नुकसान है। समझ में आया? जिसको देव-गुरु-शास्त्र भी सच्चा नहीं और जिसको आत्मा आनन्दकन्द स्वरूप कैसा है, ऐसा अनुभव-प्रतीत नहीं, वह जो अपवास आदि करते हैं, वह सब लंघन है। लंघन समझते हैं न? लांघन। लांघण क्या कहते हैं? लंघन-लंघन। मर जाये भूख, उसमें आत्मा को लाभ नहीं। आत्मा अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान पूर्णानन्द सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा ऐसी अन्तर का अनुभव की दृष्टि तो है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो अनुभवसहित की तप शक्ति मुनियों को समान होती है।

साम्यभाव भी समान है,... आचार्य, उपाध्याय, साधु, तीनों को समता... समता... समता... आहाहा! **मूलगुण उत्तरगुण भी समान है,...** मूलगुण अट्ठाईस हैं। अचेल रहना, बड़ा भोजन करना, ऐसा मूलगुण आचार्य, उपाध्याय, साधु सबको समान है। **उत्तरगुण...** पेटा भेद सूक्ष्म। **परिषह उपसर्गों का सहना भी समान है,...** परिषह सहन करे, उपसर्ग सहन करे। **आहारादि की विधि समान है,...** निर्दोष आहार-पानी लेना, उसके लिये बना हुआ न ले। आचार्य, उपाध्याय, साधु। उसके लिये क्या कहते हैं? विक्रित। यह खरीद करके लावे न केले, सन्तरा, वह मुनि न ले। सच्चे दिगम्बर मुनि की बात है यह। ऐसी क्रिया आचार्य, उपाध्याय, साधु की तीनों की है। सनातन वीतरागमार्ग परमेश्वर केवली का मार्ग ऐसा अनादि से चला आया है। ऐसी श्रद्धा सम्यग्दृष्टि को होती है। उसमें मूढ़ता उसको होती नहीं, वह बात चलती है। आहाहा!

जगत के साथ मिलान करना बहुत कठिन है। समाज में रहना और समाज के

साथ मिलान न करे। मार्ग तो ऐसा है, भगवान! उसने अनन्त काल में चौरासी अवतार कर करके मर गया है। कौआ, कुत्ते, बिल्ली, कीड़े, चींटी, कंथवा अवतार अनन्त किये हैं। उसको खबर नहीं। उसको सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है... आहाहा! अनन्त काल में जैन साधु भी अनन्त बार हुआ। अरे! दिगम्बर साधु भी अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' उसमें क्या हुआ? अन्तर आत्मा राग से, पुण्य से भिन्न, ऐसा अनुभव की दृष्टि बिना आत्मा का स्वाद आया नहीं और जन्म-मरण उसके मिटे नहीं। आहाहा! जन्म-मरण, जरा और रोग चार बड़ा दुःख है। संयोग अपेक्षा से। जन्म का दुःख, मरण का दुःख, जरा का दुःख—वृद्धावस्था, रोग का दुःख। आहाहा! फिर बाहर में निर्धनता, वह तो बाद में। आहाहा! यह दुःख मिटने का रास्ता एक यह भगवान सर्वज्ञ कहते हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह एक ही मार्ग है। आहाहा!

कहते हैं कि उसको परीषह सहना, **आहारादि की विधि भी समान है,...** निर्दोष आहार-पानी आदि। वस्त्र-पात्र तो मुनि को होता नहीं। इसलिए यह प्रश्न है ही नहीं। मुनि है, उसको वस्त्र-पात्र नहीं। वस्त्र-पात्र है, वह मुनि नहीं। जैनदर्शन वीतराग के पंथ में यह है। अनादि त्रिलोकनाथ कहते हैं। महाविदेह में सीमन्धर भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह बनाया है। समझ में आया? आहाहा! **चर्या,...** यह विहार आदि। **स्थान,...** रहना। वह समान है तीनों को। आचार्य, उपाध्याय, साधु को। **आसनादि...** बैठना। **मोक्षमार्ग की साधना,...** भी समान है। आहाहा! तीनों को। **सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र भी समान हैं।** आचार्य, उपाध्याय, साधु को सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागता समान है।

ध्याता, ध्यान, ध्येयपना भी समान है,... आहाहा! तीनों को ध्याता, ध्यान करनेवाला आत्मा, ध्यान निर्विकल्प पर्याय, ध्येय आत्मा पूर्ण स्वरूप। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! उसने सच्चा पंथ कभी सुना ही नहीं। रुचि से, हों! ऐसे तो सुना है। आहाहा! **ध्याता,...** तीनों आचार्य, उपाध्याय, साधु का ध्याता आत्मा, ध्यान निर्विकल्प पर्याय, ध्येय वस्तु पूर्ण। यह भी तीनों को समान है। और **ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयपना भी समान है,...** जाननेवाला ज्ञाता, उसका जानना ज्ञान और स्व-पर सब उसका ज्ञेय वह समान है। आहाहा! छह द्रव्य आदि होता है, ऐसा कहते हैं।

चार आराधना की आराधना,... समान है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और आनन्द इच्छा निरोध दशा, वह आराधना भी तीनों को समान है। **क्रोधादिक कषायों का जीतना इत्यादि मुनियों की प्रवृत्ति है, वह समान है।** किसकी? आचार्य, उपाध्याय, साधु की। समझ में आया? जैनदर्शन में आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनों की नग्नदशा समान, सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र समान, आहार विधि समान, समिति, गुप्ति समान, सब समान होता है। मात्र पदवी के अन्तर से अन्तर है। पंचाध्यायी में बहुत लिखा है।

विशेष यह है कि जो आचार्य हैं, वे पंचाचार अन्य को ग्रहण कराते हैं... पंच आचार। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् तप, सम्यक् वीर्य—वह पाँच आचार स्वयं पालते हैं, दूसरे से पलाते हैं। **अन्य को ग्रहण कराते हैं,...** आचार है न? व्यवहार लेना है न? **अन्य को दोष लगे तो...** उसके **प्रायश्चित की विधि बतलाते हैं,...** आचार्य का काम है। दु:ख लगे तो उसको प्रायश्चित दे देश काल का। उपदेश। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। **धर्मोपदेश,...** देते हैं आचार्य। **दीक्षा...** देते हैं। और **एवं शिक्षा देते हैं...** शिक्षा देते हैं। **ऐसे आचार्य गुरु वन्दना करनेयोग्य हैं।** इस धर्मी जीव को ऐसे आचार्य वन्दन करनेयोग्य हैं। इससे विरुद्ध है, वह वन्दन करनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहो, यह तो व्यवहार है। समझ में आता है।

जो उपाध्याय हैं... णमो लोए सव्व उवज्झायाणं। णमो उवज्झायाणं। उपाध्याय कहते हैं। **वादित्व,...** वाद करने में शक्ति। **वाग्मित्व,...** वचन बोलने में उसकी शक्ति है। **कवित्व,...** कवि की शक्ति होती है। **गमकत्व...** दूसरों को रहस्य समझने की शक्ति। **इन चार विद्याओं में प्रवीण होते हैं...** जैन का उपाध्याय नग्न दिगम्बर मुनि, वन में बसनेवाले, वे यह चार विद्याओं में प्रवीण होते हैं। **उसमें शास्त्र का अभ्यास प्रधान कारण है।** उपाध्याय है न? उप अर्थात् समीप जिनको आत्मा का शास्त्र का अभ्यास हो। **जो स्वयं शास्त्र पढ़ते हैं और अन्य को पढ़ाते हैं...** यह शास्त्र, हों! सर्वज्ञ के कहे हुए। कल्पित बनाया है शास्त्र, वह शास्त्र नहीं है। समझ में आया? यह तो स्पष्ट है। सत्य यह है, निश्चय यह है, व्यवहार यह है। यह है। आहाहा! सम्प्रदायवाले को यह रुचे नहीं, कुछ दरकार भी नहीं। सत् की शोध करने में। जिसमें पड़े हैं, उसमें पड़े हैं। समाप्त। आहाहा!

जो स्वयं शास्त्र पढ़ते हैं और अन्य को पढ़ाते हैं, ऐसे उपाध्याय गुरु वन्दनयोग्य

हैं;... ऐसे उपाध्याय गुरु वन्दनयोग्य है। आहाहा! दिगम्बर शास्त्र, वह शास्त्र है। दिगम्बर शास्त्र जो सर्वज्ञ ने कहा हुआ, वह सन्त कहते हैं। उसके सिवाय अन्यमत की कल्पना से बनाया, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, अन्यमति ने वह सब शास्त्र भगवान का कहा नहीं। अपनी कल्पना से कहा हुआ है। ऐसी समकिती को श्रद्धा होती है। समझ में आया? उसमें मूढ़ नहीं है। वह कहते हैं न? अमूढ़ चलता है न? आहाहा!

मुमुक्षु : अमूढ़दृष्टि।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमूढ़दृष्टि।

उनके अन्य मुनिव्रत, मूलगुण, उत्तरगुण की क्रिया आचार्य के समान ही होती है... अट्ठाईस मूलगुण। **तथा साधु रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग की साधना करते हैं, सो साधु हैं...** अब साधु लिये। रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, अन्तर में आनन्दस्वरूप की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्षमार्ग की साधना करते हैं साधु। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु। यह आनन्द की अन्दर श्रद्धा, ज्ञान से साधना करते हैं, उसका नाम साधु। साधे इति साधु। आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द का कन्द प्रभु है। सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप ही भगवान आत्मा अन्दर है। यह आनन्द की आराधना सेवना अन्दर रमणता करते हैं। आहाहा! यह साधु। समझ में आया?

उनके दीक्षा, शिक्षा और उपदेशादि देने की प्रधानता नहीं है,... उपदेश देने की मुख्यता न हो साधु को। वह आचार्य और उपाध्याय को। अभी तो कुछ ठिकाना नहीं है। आहाहा! क्या करें? अरेरे! वीतरागमार्ग परमेश्वर... बहुत परिवर्तन हो गया। उनकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, ज्ञान का ठिकाना नहीं। चारित्र तो कहाँ से हो? कहते हैं, मुनि की **दीक्षा, शिक्षा और उपदेशादि देने की प्रधानता नहीं है,...** दीक्षा, शिक्षा की मुख्यता आचार्य को है। और वह आचार्य नग्न, दिगम्बर, वन में बसनेवाले होते हैं। नग्न दिगम्बर। वस्त्र का धागा नहीं। यह आचार्य उपदेश देने के योग्य है। आहाहा! समझ में आया?

वे तो अपने स्वरूप की साधना में तत्पर होते हैं,... भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी आनन्दमूर्ति, ऐसी दृष्टि को लेकर उसकी साधना में तत्पर है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे साधु को, सम्यग्दृष्टि ऐसे साधु को गुरु साधु मानते हैं। ऐसा कहते हैं। उसमें कुछ उलझन। मुंझवळ क्या? जरा मुंझवळ का अर्थ बराबर नहीं। हमारी भाषा गुजराती काठियावाड़ी...

मुमुक्षु : उलझन।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझन।

मुमुक्षु : उलझन तो भाववाचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाववाचक हमारी काठियावाड़ी भाषा है। मुंझवळ का वाच्य है, वह शब्द आना चाहिए। मुंझाते हैं लोग हमारे कहते हैं यहाँ। मुंझाते हैं। यह क्या है? यह क्या है? ऐसी उलझन ज्ञानी, धर्मीजीव को होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को धर्मी पहचानते हैं। कुगुरु-कुशास्त्र को भी पहचानते हैं। ऐसा मार्ग है। बहुत कठिन है। यह सब आया आज। सामने हो वह आये न!

जिनागम में जैसी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की प्रवृत्ति कही है,... है? जिनागम। वीतराग में जिनागम में जैसी निर्ग्रन्थ दिगम्बर—नग्न मुनि दिगम्बर की जैसी प्रवृत्ति कही; **वैसी सभी प्रवृत्ति उनके होती है...** जिनागम में यह प्रवृत्ति मुनि दिगम्बर की कही है। अन्तर दर्शन, अन्तर ज्ञान, अन्तर रमणता, बाह्य दिगम्बर मुद्रा। यही जैनदर्शन के आगम में यही कहा है। उसके विरुद्ध जो कहा, वह जिनागम है ही नहीं। कल्पित बनाये हुए आगम हैं। **निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की प्रवृत्ति कही है, वैसी अभी प्रवृत्ति उनके होती है—ऐसे साधु वन्दना के योग्य हैं।** लो! आहाहा!

अन्यलिंगी,... उसके सिवाय अन्य वेशी को साधु मानते हैं। वस्त्र, पात्र रखकर हम साधु हैं... ऐसा **अन्यलिंगी-वेशी...** वेश धरनेवाला। **व्रतादिक से रहित...** सम्यग्दर्शन नहीं तो व्रत भी उसको होता नहीं। **परिग्रहवान,...** परिग्रह रखते हैं। **विषयों में आसक्त गुरु नाम धारण करते हैं, वे वन्दन योग्य नहीं है।** आहाहा! कठिन मार्ग है यह।

इस पंचम काल में जिनमत में भी वेशी हुए हैं। आहाहा! पंचम काल में जिनमत में भी वेशधारी वीतराग के मार्ग के सिवा वेशधारी हुए हैं। **श्वेताम्बर...** यह मन्दिरवासी श्वेताम्बर, उसमें स्थानकवासी सब वेशी जिनमत के बाहर है। आहाहा! कठिन बात।

ऐई! मोहनभाई! यह सभी सेठ हैं। ऐई! जादवजीभाई! वह कलकत्ता के सेठ थे। स्थानकवासी के प्रमुख। मार्ग यह है भाई तीनों काल में। आहाहा! श्वेताम्बरमत वह जैनदर्शन नहीं। वह जिनागम उसका जिनागम नहीं। स्पष्ट बात है। यहाँ कहाँ गुप्त रखी है? यहाँ तो ३९ वर्ष हुए। ऐ... हेमकुंवरबहेन! यह आपके दामाद की बात यह आयी सब। यह तो लिखावट आयी। अन्दर से आया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों ने यह कहा है, भाई! अनन्त केवली अरिहन्तदेव ने यह मार्ग कहा है। मनजीभाई! यह सभी सेठिया हैं। कहो, धीरुभाई! वह नाग्नेश में।

मुमुक्षु : अन्धेरा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्धेरा आया। आहाहा! यह भी श्वेताम्बर है भगवानजीभाई। मन्दिरमार्गी। थाणे में नहीं वह पन्द्रह लाख का? क्या कहते हैं? क्या कहते हैं ... आपका? प्लास्टिक का है। कारखाना है। थाणे में नहीं? थाणे में। प्लास्टिक का कारखाना है उसका।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। उसका है। यह स्वयं... वहाँ थाणे में है न। हम गये थे। पोपटभाई के वहाँ उतरे थे हम? अपने पोपटलाल नहीं बढवाणवाले? टाईल्स के व्यापारी नहीं? टाईल्स। थाने में है न बड़ा पन्द्रह लाख रुपये का। पोपटलाल मोहनलाल बढ़वाणवाले गृहस्थ हैं न! वह करोड़पति। वोरा। पोपटलाल मोहनलाल वोरा करोड़पति है। छह लड़के हैं। थाणे में बड़ा पन्द्रह लाख का टाईल्स का है। गाँव में है। गृहस्थ है। दोनों करोड़पति है। दोनों थाणे में। हम गये थे न! वहाँ उतरे थे। आहाहा! मार्ग यह है, भगवान! निश्चय आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन करना और उसके उपरान्त व्यवहार ऐसी श्रद्धा रखना, वह जैनमार्ग है। बाकी तो चार गति में अनादि से भटकते हैं। आहाहा!

श्वेताम्बर, यापनीयसंघ... एक यापनीयसंघ हुआ। नग्न रहे, परन्तु माने श्वेताम्बर का साधु। वह विच्छेद हो गया। **गोपुच्छपिच्छसंघ...** गाय का पूँछ रखनेवाला। **नि:पिच्छसंघ, द्राविडसंघ आदि अनेक हुए हैं,...** वेश। जैनदर्शन में यह सब वेशी ऐसे हुए हैं। **यह सब वन्दनयोग्य नहीं हैं।** नवनीतभाई! ऐसा है। ऐई!

मुमुक्षु : यापनीयसंघ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यापनीयसंघ वह पहले रहते थे नग्न, परन्तु मानते थे केवली आहार, रोग—ऐसा सब मानते थे। वह संघ विच्छेद हो गया। कोई है नहीं। अभी है नहीं। अभी तो यह श्वेताम्बर-मन्दिरमार्गी, स्थानकवासी दो रहे हैं। उसमें स्थानकवासी में से तेरापंथी निकला है न वह? तुलसी... तुलसी। तुलसी है न! तुलसी आचार्य... तुलसी नहीं? तेरापंथी। यह तीन पंथ रहे हैं। बाकी सब विच्छेद हो गये हैं।

यह सब वन्दनयोग्य नहीं हैं। मूलसंघ, नग्न दिगम्बर, अट्ठाईस मूलगुणों के धारक... आहाहा! अनादि का जैनदर्शन का मूलसंघ तो नग्न दिगम्बर है, केवल नग्न दिगम्बर नहीं। अन्तर में नग्न दिगम्बर है। राग की वृत्तिरहित, स्वरूप का दृष्टि अनुभव है और बाह्य में नग्न दिगम्बर है। ऐसे नग्न दिगम्बर तो बहुत फिरते हैं। यह नहीं। आहाहा! उसके लिये कहा है **अट्ठाईस मूलगुणों के धारक,...** अवस्त्र, आवश्यक, सामायिक, चौविसंथो आदि। **दया के और शौच के उपकरण, मयूरपिच्छक,...** दया और जंगल को साफ करने के लिये एक मयूरपिच्छी (कमण्डल) रखे। मोर की पिच्छी। जैन दिगम्बर सन्त सनातन वीतरागमार्ग में मुनि को मोर पिच्छी और कमण्डल (होते हैं)। अनादि से वीतराग मार्ग ऐसा चला है। समझ में आया? देखो न कितना स्पष्ट किया है! **कमण्डल धारण करनेवाले,...** मयूरपिच्छी और कमण्डल धारण करे मुनि तो। दूसरी चीज़ मुनि को होती नहीं। ऐई! राजेन्द्र! समझ में आता है या नहीं कुछ?

मुमुक्षु : साधारण बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब सभी होशियार है। सब समझनेवाले हैं। बाहर में जरा कमाते हो न दो-पाँच-दस हजार रुपये। दो-पाँच हजार कमाने लगे, डॉक्टर होकर, होशियार होकर। हम होशियार हैं। धूल में भी नहीं। ऐई! तम्बोली! आहाहा! यह देखो न बेचारे मर गये न? ...बहिन नहीं शान्तिलाल। यहाँ गुजर गये बेचारे। छोटी उम्र। ठीक नहीं था तो आये थे। वह ४०-४१ वर्ष की। उनको खबर नहीं था ... क्योंकि वह तो स्वयं असाध्य और ... थे। उसके लिये तो आये थे। उसमें जरा से साध्य में आये तो बेटे को पूछा था कि तेरे पिता क्यों नहीं दिखते हैं? बेटे ने कहा, मेरे पिताजी गोवा गये हैं।

यहाँ तो मर गये थे। परन्तु उसको कैसे कहे ? चिल्लाने लगे। आहाहा! उसका भानेज यहाँ आता है न! भूतपभाई का बेटा है न! उसकी बहिन का बेटा है न! आये हैं। पानसणावाले नहीं ? पानसणा ? कैसा ? उसका गाँव ... वह शान्तिलाल के बहनोई ... का है। अपने यहाँ के मुमुक्षु है न! उसकी बेटी ब्रह्मचारी है, बालब्रह्मचारी है। अपने ५० में। उसकी बहिन की बेटी है। भाई! आये थे वह कहते थे सब।... खबर नहीं। मर गये, उसकी खबर नहीं। रोग में है। उसको कैसे कहे ? इस संसार में सुख माने हुए, कल्पित ... है। आहाहा!

सुख आत्मा में है और माना है पर में। मूढ़ है। आत्मा में आनन्द है। सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। उसमें आनन्द नहीं शोधकर पर में आनन्द शोधते हैं। आहाहा! कल भी डॉक्टर आये थे ... वृद्धा का। ... में वहाँ आये थे। एक बूढ़ी औरत थी। सूई खो गयी। सुई। सुई समझते हैं ? सुई। हमारे भाई काठियावाड़ी भाषा तो थोड़ी-थोड़ी आती है न! रात्रि के अन्धेरे में सुई खो गयी। अन्धेरे में देखा तो मिली नहीं। बाहर प्रकाश में देखने लगी। प्रकाश में तो थी नहीं। उसमें एक व्यक्ति निकला। क्या माँ जी! क्या ढूँढते हो ? कि सुई। कि अंधेरे में क्या ? प्रकाश में ढूँढो। उसने ऐसा कहा कि वहाँ अन्धेरे में प्रकाश करके देखो। ऐसे। उसके बदले यह प्रकाश में ढूँढ़ने लगे। परन्तु पड़ी हो वहाँ दिखे या प्रकाश में कैसे दिखे ? इसमें लेख आया था। कल आया था।

प्रकाश में देखने को कहा तो कहा, तो कहे प्रकाश में यह लो। परन्तु यह प्रकाश नहीं। जहाँ अन्धेरा है, जहाँ सुई खो गयी वहाँ प्रकाश करके देखो। दूसरा व्यक्ति आया। कहे माताजी क्या करते हो ? कि सुई खो गयी है, बेटा! तो कहे, कहाँ खो गयी ? कि अन्धेरे में। अन्धेरे में मिलती नहीं इसलिए यहाँ ढूँढ़ती हूँ। परन्तु जहाँ पड़ी हो वहाँ ढूँढ़े। कि यहाँ ढूँढ़ते हैं ? इस प्रकार आत्मा का आनन्द यहाँ है, ढूँढ़ते हैं लक्ष्मी, धूल, पैसे, इज्जत, कीर्ति में। बड़ा मूर्ख है। ऐई! तम्बोली! बाई का दृष्टान्त नहीं है, हों! (तुम्हारा है) आनन्द तो यहाँ है। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द सुख का सागर पड़ा है आत्मा में। आहाहा! वहाँ ढूँढ़ते नहीं और स्त्री में, पैसा में, धूल में, इज्जत में, वहाँ सुख है। मूढ़ है। वह बुढ़िया जैसी मूढ़ है, वैसे यह मूढ़ हैं। आहाहा! कैसे होगा ? शान्तिभाई! यह पैसे-बैसे में सुख होगा या नहीं ? झोबालिया में आप पैसेवाले कहलाते हैं। एक था वह सेठ। ... आते हैं न तुम्हारा पूनमचन्द। उसमें धन्धे खोटे। आहाहा।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में अन्दर का आनन्द है। वह बाहर में ढूँढ़ते हैं, वह बुढ़िया की सुई जैसा है। बराबर होगा? पैसे में भी सुख नहीं? करोड़ का बँगला बनाये। बगीचा यह... यह... यह, तुम्हारा निहाल... स्वीट्जरलैण्ड। पूनम का बड़ा भाई। पूनमचन्द है न वहाँ? स्त्रियाँ ... भावना करे नहीं? ... मलूकचन्दभाई। उसके भाई। उसका बड़ा भाई वहाँ है। वहाँ भी तीन-चार करोड़ हैं। स्वीट्जरलैण्ड। बँगले बड़े देखो तो बादशाही। एक बार पूछा था कि ऐसे क्यों? कि सभी को ऐसे रहना पड़ता है स्वीट्जरलैण्ड में। साधारण लोग भी इस प्रकार रहे तो ही इज्जत कहलाती है, अन्यथा इज्जत नहीं कहलाती। नहीं चन्दुभाई! पूछा था एकबार। बँगला, बाग, बगीचा। बेटा नहीं है। एक ही बेटी उसकी शादी कर दी है। आहाहा! यहाँ आये, फिर रोने लगे। अरेरे! हमें ऐसा कुछ वहाँ मिलता नहीं। छोटी उम्र में ... रहा है। रोते थे। अरेरे! यह ... हमें कुछ ... धर्म क्या चीज़ है—यह हमें सुनानेवाला कोई नहीं। सुनानेवाला कौन है, कहा। वस्तु तो यह है। आहाहा!

कहते हैं कि **यथोक्त विधि से आहार करनेवाले गुरु वन्दयोग्य हैं, क्योंकि जब तीर्थंकर देव दीक्षा लेते हैं,...** अब दृष्टान्त देते हैं। भगवान जब दीक्षा ले, **तब ऐसा ही रूप धारण करते हैं,...** तीर्थंकर भगवान जब दीक्षा लेते हैं, तब नग्न होते हैं। उनको वस्त्रादि होते ही नहीं। समझ में आया? तो ऐसा रूप सन्त का, मुनि का ऐसा रूप होता है। न पल सके तो मुनिपना मानना नहीं। यथार्थ दृष्टि—ज्ञान रखना। परन्तु नहीं है, उसमें मानना वह (मिथ्यादृष्टि) है। **अन्य वेश धारण नहीं करते...** तीर्थंकरदेव। **इसी को जिनदर्शन कहते हैं।** लो फिर से लाये। उसको जैनदर्शन कहते हैं। यह दर्शनपाहुड़ है न? घुमाकर यहाँ लाये। तीर्थंकर भगवान जब दीक्षित होते हैं, तब नग्न मुनि होते हैं। एकदम नग्न। वस्त्र उनको होता ही नहीं। ऐसे मुनिपने को जिनदर्शन कहने में आता है। उसमें वह धर्म में, ऐसा दर्शन में जिसको उलझन न हो, विपरीतता न हो, यह भी सच्चा है, यह भी सच्चा है—ऐसा भी न हो। उसका नाम अमूढ़दृष्टि समकिती का गुण कहने में आता है। विशेष धर्म की परिभाषा करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ३, शनिवार, दिनांक २९-०९-१९७३
गाथा-२, प्रवचन-१३

अष्टपाहुड़ चलता है। उसमें पहले दर्शनपाहुड़ चलता है। हिन्दी में चलता है। गुजरातीवाले हिन्दी सुने। आज हिन्दीवाले ज्यादा हैं।... समझने जैसा है। **धर्म उसे कहते हैं...** अब धर्म की व्याख्या है। **धर्म उसे कहते हैं, जो जीव को संसार के दु:खरूप नीच पद से छुड़ाकर मोक्ष के सुखरूप उच्च पद में स्थापित करे...** यह संक्षिप्त व्याख्या है। धर्म इसको कहिये कि **जीव को संसार के दु:खरूप नीच पद...** है। अज्ञान और राग-द्वेष और संसार की जितनी भावना, वह सब दु:खरूप है। संसार में मिथ्यात्वभाव-विपरीत चैतन्य के स्वरूप से विपरीत मान्यता और अज्ञान और राग-द्वेष और संसार की जितनी संकल्प-विकल्प की जंजाल। वह सब दु:ख है। यह दु:ख से... **दु:खरूप नीच पद से छुड़ाकर मोक्ष के सुखरूप उच्च पद में स्थापित करे...** ओहोहो! जो दु:ख से छुड़ाकर... सारा संसार दु:खरूप, चार गति दु:खरूप है। आत्मा का आनन्द स्वभाव, उससे विपरीत जितना भाव सब दु:खरूप और संसार है। चाहे तो पुण्य का भाव हो या चाहे तो पाप का हो—दोनों दु:खरूप हैं। उस दु:खरूप नीच पद से (छुड़ाकर) आत्मा को मोक्ष-सुखपद प्राप्त कराये उसका नाम धर्म है। समझ में आया?

नीच पद से मोक्ष के सुखरूप... पूर्णानन्द सुख वह तो आत्मा की पूर्ण सुखदशा-मोक्षदशा में ही सुख है। दूसरे कहीं सुख है नहीं। ऐसे सुखरूप उच्चपद। वह उच्चपद है। आहाहा! संसार के चार गति के भव, वह नीच पद है। समझ में आया? चाहे तो करोड़ोंपति, अरबोंपति का पद हो, परन्तु है नीच पद।

मुमुक्षु : वह तो ...रूप हम देखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दु:ख है। दु:ख है, इसलिए नीच पद है। पर के आश्रय से जो विकल्प रागादि उत्पन्न होता है, वही दु:ख, वही नीच पद है। आहाहा! दु:खरूप नीच पद है न? ऐसा लिखा है। दु:खरूप नीच पद। यह रागादिभाव चाहे तो पुण्य का हो या पाप का, यह सब दु:खरूप नीच पद है। आहाहा! समझ में आया?

उसको **उच्च पद में स्थापित करे—ऐसा धर्म...** उसका नाम धर्म। वह धर्म **मुनि-**

श्रावक के भेद से, दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक... देखो! मुनि को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, और श्रावक गृहस्थाश्रम में भी **एकदेश...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। चारित्र की अल्पता है न तो एकदेश (कहा)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो है ही है। समझ में आया? एकदेश शब्द पहला मुनि लिया है। उसमें पहला एक शब्द का प्रयोग किया है **एकदेश।** परन्तु वह श्रावक का एकदेश। श्रावक जो है गृहस्थाश्रम में जिसको आत्मा का दर्शन अनुभव हो। राग की एकता तोड़कर, स्वभाव की एकता दृष्टि जिसकी है, वह सम्यग्दृष्टि। और उसको आत्मा का ज्ञान है तो आत्मज्ञान और अंश से स्वरूप में स्थिरता है, आनन्द में, उसको एकदेश, एक भाग रत्नत्रय कहने में आता है। मुनि को पूर्ण रत्नत्रय है। है न? **सर्वदेशरूप।**

त्यागी मुनि, दिगम्बर मुनि, वनवास में रहनेवाले। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव और अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता की सर्व प्रकार की राग से निवृत्ति, वह सर्वदेश मुनि का मार्ग है। वह **निश्चय और व्यवहार द्वारा दो प्रकार से कहा है...** स्वभाव चैतन्य भगवान के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, वह निश्चय है और जितना देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से श्रद्धा, पर के लक्ष्य से ज्ञान और पंच महाव्रत या बारह व्रत का विकल्प, वह व्यवहार है। समझ में आया? ऐसे **निश्चय और व्यवहार द्वारा दो प्रकार से कहा है; उसका मूल सम्यग्दर्शन है;...** पहली उस चीज़ में मूल तो सम्यग्दर्शन है। सुबह तो कहा था। इसी को जैनदर्शन कहते हैं। वह तो मोक्षमार्ग का पूर्ण मुनिपना वह और उसमें भी पहले सम्यग्दर्शन मुख्य है। उसमें यह कहते हैं।

सम्यग्दर्शन वह पहली चीज़ है। वह अपने आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति से और अन्तर चैतन्य के अवलम्बन से सम्यक् अनुभव हो, उसका नाम यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह मोक्षमार्ग में तीनों में उसकी मुख्यता है। यदि सम्यग्दर्शन न हो, ज्ञान और व्रतादि सब चारित्र नहीं। यह तो सब मिथ्या है। तो कहते हैं, **उसका मूल सम्यग्दर्शन है; उसके बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती।** आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन, आनन्दकन्द सर्वज्ञ तीर्थंकर परमेश्वर ने जैसा आत्मा देखा और ऐसा कहा, ऐसे पूर्ण शुद्ध चैतन्य के सन्मुख दृष्टि, वह पहला सम्यग्दर्शन है। उसके बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। समझ में आया? पर से निवृत्ति ... पहले पर से एकदम भिन्न है, ऐसी अन्तर अनुभव दृष्टि हुए

बिना राग की अस्थिरता का त्याग होता नहीं। क्योंकि जिसमें रागादि चीज़ बिल्कुल नहीं। ऐसी चीज़ की दृष्टि अनुभव बिना राग की अस्थिरता का छूटना कभी नहीं होता। समझ में आया?

पहले कहे कि हम राग अस्थिरता को छोड़े। सम्यग्दर्शन न हो। कभी नहीं होता। आहाहा! उस कारण धर्म का मोक्षमार्ग का मूल अन्दर सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? **धर्म की उत्पत्ति नहीं होती।** आहाहा! समझ में आया? धर्म, वह आत्मा की शान्ति है। यह शान्ति पुण्य-पाप के राग से रहित अपना चैतन्यस्वरूप आनन्दमूर्ति प्रभु यह एकाग्र आनन्द में होना, तब उसका अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन बिना चाहे तो ज्ञान शास्त्र का करो, चाहे तो व्रत, नियम और तपादि करो, सब निरर्थक है। रण में चिल्लाने जैसी बात है। समझ में आया? वस्तु अलौकिक बात है। कल्पना से मान ले कि हमारे निर्विकल्प होता है, वह बात तो अनन्त काल से चित् भ्रम में पड़ा है।

अपनी चीज़ जो आत्मा है, यह शरीर के हिसाब से भिन्न है। और उसमें असंख्य प्रदेश हैं। और असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण हैं। ऐसा आत्मा और उसकी पर्याय जो अनन्त गुण की अवस्था होती है। यह तीन बोल है। अनन्त... अनन्त गुण का पिण्ड वह द्रव्य है वस्तु और अनन्त गुण हैं, वह शक्ति और उसकी हालत, वह पर्याय। ऐसा भगवान सर्वज्ञ ने देखा है, वह आत्मा। ऐसे आत्मा का अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा और निर्विकल्प राग बिना का ज्ञान होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दर्शन होने पर भी रागादि होते हैं। समझ में आया? राग होता है, पुण्यभाव होता है, दया, दान, भक्ति का भी भाव होता है—वह व्यवहार है। और विषय-कषाय का भाव भी, सम्यग्दृष्टि होने पर भी विषय-कषाय का परिणाम होता है, परन्तु वह चारित्र का दोष है। समझ में आया? वह दोष जब टले, तब स्वरूप में रमणता हो। तब तो नग्न मुनि हो जाते हैं। दिगम्बर मुनि जब वस्त्र का एक धागा भी नहीं रहे और अन्तर में आसक्ति छूट जाये और आत्मा के आनन्द की लहर अन्दर उग्र आ जाये। उग्र हों! उसको यहाँ मुनिपना और त्यागी कहने में आता है। नेमिचन्दभाई! आहाहा! मात्र नग्न फिरे, नागा यह नहीं।

अन्तर भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा शरीर प्रमाण से अवगाहन और एक स्वरूप से अनन्त गुणरूप होने पर भी एक स्वरूप है। ऐसी अन्तर में अनन्त काल में नहीं की, ऐसी अनुभवदृष्टि हो, उसको धर्म का मूल सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? और ज्ञानी सम्यग्दृष्टि, अनुभवी सम्यग्दृष्टि निर्विकल्प शान्ति, वह जीव चक्रवर्ती के राज में दिखे। छियानवें हजार स्त्री हो उसको। कल आया था उसमें। भरत चक्रवर्ती, नहीं? सन्मति सन्देश। सन्मति सन्देश आया है? नहीं आया। सन्मति सन्देश है न। नहीं है यहाँ। सन्मति सन्देश में सबसे आगे रखा भरत चक्रवर्ती का। सिर पर मुकुट, कपड़े, जेवरात। है वहाँ? यह सन्मति सन्देश। भरत चक्रवर्ती, छह खण्ड का राज था। छियानवें हजार स्त्रियाँ थी। आहाहा! है? दूसरे में होगा। उसमें है? उसमें होगा। वह नहीं?

अहिंसा वाणी.. अहिंसा वाणी, है उसमें। बस यह। अहिंसा वाणी। देखो, यह भरत चक्रवर्ती। जिसको चक्रवर्ती का राज था, छियानवें हजार स्त्री थी, सोलह हजार देव सेवा करते थे। छियानवे करोड़ सैनिक थे, छियानवे करोड़ गाँव थे, ४८ हजार पाटन थे, ७२ हजार नगर थे। ऐसे संसार में भी रहते हुए और संसार का राज भी चलाते राग आदि आता है। परन्तु अन्दर में राग से भिन्न दृष्टि अन्तर अनुभव हुआ हो तो राग से भिन्न दृष्टि से निर्लेप रहते हैं। ध्यान में बैठे हैं, देखो! कुछ त्यागी हो तो सम्यग्दर्शन होता है, यह कोई चीज़ नहीं। सम्यग्दर्शन कोई अपूर्व चीज़ है। समझ में आया? मेढ़क को भी होता है। आहाहा! परन्तु वह चीज़ अनन्त काल में कभी उसने प्रगट की नहीं। ऐसे मान लिया है अन्दर में अनन्त बार। समझ में आया? कि मुझे शान्ति होती है, आनन्द होता है। यह सब कल्पना है। राग की मन्दता में ऐसा भास हो, परन्तु वह चीज़ नहीं। यह चीज़ हो, वहाँ सारा विवेक प्रगट हो जाता है। 'सब आगम भेद सु उर वसे।' सर्वज्ञ के कहे हुए आगम का सिद्धान्त सदा उसके ज्ञान में सारा न्याय आ जाता है। समझ में आया?

ऐसे यह तो सिर पर मुकुट रखकर... छह खण्ड का राज, परन्तु अन्दर निर्विकल्प आनन्द की दशा उपयोग जब लागू होता है अन्दर में तो निर्विकल्प उपयोग हो जाता है। और वह निर्विकल्प उपयोग क्षणमात्र रहता है। एक घण्टा, आधा घण्टा भी निर्विकल्पदशा नहीं हरती है। ऐसी वस्तु की मर्यादा है। जिसको खबर नहीं, उसे ऐसा लगे कि दो,

चार, पाँच घण्टे, आठ घण्टे, बारह घण्टे ... वह तो भ्रम है। समझ में आया? अन्तर में निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की उपयोग में स्थिति बहुत तो एक सेकेण्ड के कुछ भाग रहती है। पीछे राग आये बिना रहे नहीं। राग तो था ही अबुद्धिपूर्वक का। फिर बुद्धिपूर्वक का राग आता है। आहाहा! तो भी अन्तर सम्यग्दर्शन में दोष है नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग समझना, यह अलौकिक बात है। एक सेकेण्ड भी उसका भान हो जाये तो सारा विवेक खुल जाये। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ जो कहते हैं, सबका विवेक उसमें खुल जाये। 'सब आगम भेद सु उर वसे।' आगम में क्या कहता है उसका अन्दर में सारा न्याय खुल जाता है। ऐसा कहते हैं।

यहाँ कहते हैं कि... ओहोहो! देखो न। **सम्यग्दर्शन के बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रकार देव-गुरु-धर्म में...** सच्चे देव, अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर, उसमें समकिती जीव की प्रतीति सच्ची होती है। समझ में आया? उसके सिवाय दूसरा देव को माने नहीं। सच्चा सम्यग्दृष्टि हो तो ही सच्चे अरिहन्त सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ, जो एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक देखते, जानते हैं, उसको ही अरिहन्तदेव मानते हैं; और गुरु। गुरु निर्ग्रन्थमुनि, वस्त्र का धाग भी नहीं जिसको। ऐसे जंगल में बसनेवाले नग्नमुनि दिगम्बर और अन्तर में आनन्द, दर्शन, ज्ञान और चारित्र की रमत, ऐसे को ही गुरु माने, दूसरे को गुरु माने नहीं। धर्मगुरु, चारित्रगुरु। समझ में आया?

और धर्म। धर्म तो आत्मा में राग की उत्पत्ति न होना और आनन्द की उत्पत्ति अहिंसा-अन्दर वीतरागदशा की उत्पत्ति होना, उसका नाम धर्म है। यह सम्यग्दृष्टि को-सच्ची सम्यग्दर्शन दशावाले को ऐसी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा होती है। **तथा लोक में यथार्थ दृष्टि हो...** है न? **तथा लोक में यथार्थ दृष्टि हो...** लौकिक बातों में तो उसकी दृष्टि यथार्थ होती है। विपरीत दृष्टि होती नहीं। **और मूढ़ता न हो, सो अमूढ़दृष्टि (अंग) है।** आहाहा! धर्म जिसको प्रगट हुआ, निर्विकल्प समाधि अर्थात् सम्यगदर्शन, उसको सच्ची विवेकदशा ऐसी हो जाती है कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के सिवा किसी को माने नहीं। समझ में आया?

प्रवचन, आता है न भाई! 'जिन प्रवचन दुर्गम्यता थाके अतिमति मान, अवलम्बन कोई सद्‌गुरु सुगम और सुखधाम।' सर्वज्ञ परमात्मा, उसका प्रवचन—आगम गम्भीर

है। बहुत गम्भीर। प्रवचन, जिन प्रवचन दुर्गम्यता। समझना महा मुश्किल है। आहाहा! दुर्गम-महापुरुषार्थ है वहाँ। साधारण लोग समझ ले, ऐसा नहीं हो सकता। दुर्गम है। ज्ञानी समागम बिना उसका पता लगता नहीं। अपनी कल्पना से मान ले, वह कोई चीज़ नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **यथार्थ दृष्टि हो और मूढ़ता न हो, (सो अमूढ़दृष्टि अंग है)।** लो! सम्यग्दृष्टि को तो देव-गुरु-शास्त्र में भी यथार्थ दृष्टि हो। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को मानते नहीं वह। स्वप्न में भी नहीं। समझ में आया? भगवान सर्वज्ञदेव ने अनन्त आत्मा कहा, अनन्त आत्मा से अनन्तगुणा परमाणु कहा—ऐसे अनन्त पदार्थ जगत में हैं, ऐसा धर्मी सम्यग्दृष्टि ऐसा ही मानते हैं। उसमें कभी-बैसी बिल्कुल मानते नहीं। तो उसका नाम सम्यग्दृष्टि और निर्विकल्प समाधि कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? वह चौथा बोल हुआ। चौथा बोल चला न? सम्यग्दृष्टि का (आठ बोल-अंग) है।

पहले निःशंक हुआ। अपने स्वरूप में (और) देव-गुरु-शास्त्र में निःशंक है (इसलिए) निर्भय है। मेरी चीज़ अखण्डानन्द प्रभु का किसी से नाश होता नहीं और पर का कोई असर अपने में होता नहीं। समझ में आया? यह निःशंक होता है। और निःकांक्ष होता है। सम्यग्दृष्टि निर्विकल्प प्रतीति, अनुभव हुआ, उसको परपदार्थ और अन्यमति की इच्छा होती नहीं। समझ में आया? सारे परपदार्थ की रुचि उड़ जाती है सब। क्योंकि अपने में आनन्द का भान है तो किसी स्त्री, विषय, आबरू, कीर्ति, पैसे, लक्ष्मी, खान, पान सबमें रुचि उड़ जाती है। किसी में सुख है नहीं। आहाहा! समझ में आया? और निर्विचिकित्सा। तीसरा बोल लिया न? निर्विचिकित्सा। अपनी पुण्य की प्रकृति के कारण अपनी पदवी ऊँची हो और पुण्य का संयोग विशेष हो और दूसरे का पुण्य का संयोग अल्प हो, हीन हो, ऐसे जीव पर भी उसकी अनादर दृष्टि नहीं होती। द्वेष नहीं होता कि यह नीच प्राणी उसको कहूँ। हो समकिती। आत्मज्ञानी हो, चाण्डाल आत्मज्ञानी हो, और बाह्य में कुछ साधन हो नहीं। समझ में आया? उसको भी धर्मी जीव नीचपने से नहीं देखते हैं। वह नीच है, मुझसे हल्का है, ऐसा नहीं देखते हैं। आहाहा!

और यह अमूढ़ चौथे बोल में। क्या हुआ? मूढ़ में कोई शब्द आया नहीं गुजराती। हिन्दी। उलझन... बहुत शब्द लिये थे। घबराहट यह शब्द नहीं... अन्दर में उलझन नहीं

अर्थात् यह ऐसा होगा या ऐसा होगा—ऐसी कोई शंका, उलझन होती नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ। आत्मा को बोध अनुभव तो सारी दुनिया के पदार्थ जैसे हैं, ऐसा भगवान कहते हैं, उसमें मूढ़ता नहीं होती। आहाहा! सूक्ष्म बात। समझ में आया? यह चार बोल हुए।

पाँचवाँ बोल। सम्यग्दृष्टि का पाँचवाँ बोल। **अपने आत्मा की शक्ति को बढ़ाना सो उपबृहण अंग है।** अपना स्वरूप ज्ञानस्वरूप और अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसकी जो अन्तर में अनुभव में प्रतीति हुई है, तो अपनी शान्ति को बढ़ाना, यह उसका गुण है। आहाहा! परन्तु यह वास्तविक शान्ति, हों! ऊपर से शान्ति दिखती है, अनादि काल से ऐसा भी हुआ है। अन्दर में साता का उदय हो तीव्र, तो उसको लगे (कि) यह आनन्द है। यह आनन्द नहीं, दु:ख है। अन्दर में सूक्ष्मरूप से आनन्द दिखे, यह आनन्द नहीं, यह तो राग का वेदन है। राग से भिन्न होने (पर भी) राग रहता है ज्ञानी को, द्वेष भी होता है ज्ञानी को। परन्तु रुचिपूर्वक का नहीं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हो, अनुभव निर्विकल्प प्रतीति की हो, फिर भी राग में लड़ाई भी करे। परन्तु वह राग आता है और द्वेष आता है, उसका वह स्वामी नहीं रहता अन्दर में। आहाहा! समझ में आया? यह अपना कार्य है और अपने में है, ऐसा सम्यग्दृष्टि मानते नहीं। ऐसी तो चौथे गुणस्थान की दशा है। और पंचम गुणस्थान जो श्रावक का कहते हैं, सच्चे श्रावक, हों! वाड़े के श्रावक, वह कोई श्रावक नहीं। ऐई! नेमिचन्दजी!

श्रावक को अन्तर में आनन्दस्वरूप निर्विकल्प आनन्द और शान्ति और विवेक प्रगट हो गया हो। श्रावक कहते हैं न? श्रवण करके विवेकपूर्वक अन्दर 'क'—राग बिना की क्रिया हो, उसका नाम श्रावक कहते हैं। तो यह श्रावक में भी अपनी शान्ति जो है, उसको बढ़ाते हैं। ऐसा उपबृहण यह समकिती का एक लक्षण। यह उपबृहण सम्यग्दृष्टि का एक चिह्न है, उपबृहण उसका एक गुण है। समझ में आया? बात सूक्ष्म है। ओहोहो!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपने पुरुषार्थ द्वारा बढ़ाना ही उपबृहण है। उस अवस्था में शुद्धि को बढ़ाना यह सम्यग्दृष्टि का एक गुण है, लक्षण है, चिह्न है, निशान है। आहाहा! समझ में आया? **उसे उपगूहन भी कहते हैं—ऐसा अर्थ जानना चाहिए कि जिनमार्ग स्वयंसिद्ध है;...** क्या कहते हैं? अन्तर जिनमार्ग तो आत्मा में वीतरागभावरूप प्रगटदशा,

वह जिनमार्ग है। जिनमार्ग कोई बाहर नहीं रहता। शुभ-अशुभराग, शरीर, वाणी से भी पृथक् आत्मा होकर अपनी आत्मा वीतरागस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति। वीतरागस्वरूप आत्मा। आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वह जिनमार्ग है। जिनमार्ग कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु का यह स्वभाव है।

यहाँ कहते हैं, यह तो स्वयंसिद्ध अपने से है। **उसमें बालक के तथा असमर्थ जन से आश्रय से...** कोई बालकबुद्धिवाला प्राणी होता है, वह असमर्थ पाणी है। उससे **जो न्यूनता हो, उसे अपनी बुद्धि से गुप्त कर दूर ही करे,...** कोई ऐसा दोष समकिती, ज्ञानी ... राग का दोष आ जाये। तो धर्मी समकिती उस दोष को गुप्त कर देते हैं। बाहर प्रसिद्धि करे नहीं। आहाहा! कठिन काम, भाई! समझ में आया? किसी कर्म के संयोग में रागादि हुआ। समकिती को, हों! ज्ञानी को भी। वह धर्मी जीव उस दोष को गुप्त करते हैं। अन्यथा ... हो जाये दूसरा। ऐसा करके गुप्त करते हैं। आहाहा! कितनी गम्भीरता! समझ में आया? मूल चीज़ है, हों! साधारण मूल चीज़ में तकलीफ हो दृष्टि आदि करते... श्रद्धा करे। समझ में आया? परन्तु वस्तु की दृष्टिपूर्वक हुई कोई रागादि का दोष ऐसा लग जाये, धर्मी उसको प्रसिद्धि में नहीं लाते। गुप्त रखते हैं। **वह उपगूहन अंग है।** लो। वह पाँचवाँ बोल हुआ। सम्यग्दर्शन, उसमें यह आठ गुण प्रगट साथ में है ही। सूर्य उगे तो उसके किरण में प्रकाश ही बाहर आता है। वैसे सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य आत्मा में जब प्रकाश होता है तो ऐसे गुणों का किरण तो साथ में होता ही है। आहाहा!

अब **स्थितिकरण। जो धर्म से च्युत होता हो, उसे दृढ़ करना...** आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप वीतरागस्वरूप प्रभु है। उसकी प्रतीति और स्थिरता में से कोई च्युत होता हो तो अपने भी स्थिर करना अपने को और पर को भी स्थिर करना पर में ऐसे। दो बात लेंगे। है न? **उसे दृढ़ करना सो स्थितिकरण अंग है।** अब उसकी दो परिभाषा। **स्वयं कर्मोदय के वश होकर कदाचित् श्रद्धान से तथा क्रिया-आचार से च्युत होता हो...** कोई प्राणी। और **अपने को...** है? **अपने को पुरुषार्थपूर्वक पुनः श्रद्धान में दृढ़ करे;...** श्रद्धान में कुछ परिवर्तन हो जाये ऐसे प्रसंग से तो फिर दृढ़ करे। मैं तो सर्वज्ञ परमात्मा जैसे हैं, वैसा मैं तो आत्मा हूँ। उसमें कुछ फर्क नहीं। आहाहा! वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञ एक समय में तीन काल—तीन लोक जिसने देखा, ऐसे अरिहन्त

भगवान पूर्ण परमात्मदशा उसने जो मार्ग कहा, उसमें जरा भी फर्क नहीं। ऐसी अपने में शंका हो जाये तो श्रद्धा दृढ़ करे और अस्थिरता हो तो उससे बचाकर (अधिक) स्थिरता करे। आहाहा! समझ में आया?

पुनः श्रद्धान में दृढ़ करे; उसी प्रकार अन्य कोई धर्मात्मा धर्म से च्युत होता हो... आहाहा! अनेक प्रकार है। आत्मा का भान हुआ हो पीछे भी थोड़ा फेरफार हो जाये, तो उसको स्थिर करे। भाई! मार्ग यह नहीं। मार्ग तो अन्तर में सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मशक्ति स्वरूप ऐसे भगवान का अनुभव, उसके सिवा धर्म है नहीं। ऐसा अनुभव करो। अन्दर जाओ। अन्तर में आनन्द है। उस आनन्द के धाम में रहो, ऐसा स्थिर करे। समझ में आया? आहाहा!

उपदेशादिक द्वारा... है न? **धर्म से च्युत होता हो तो उसे उपदेशादिक द्वारा...** आदि शब्द है न? बाहर में दुःख हो, ऐसा हो तो कोई मदद करे और उसको स्थिर करे। भाई! मार्ग तो अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा, वीतरागस्वरूपी ही है आत्मा। उसमें क्या शंका करते हो? पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानसम्पन्न प्रभु आत्मा है। ऐसी प्रतीति से कोई दब जाता हो तो स्थिर करना। अपने को स्थिर करना और पर को भी स्थिर करना। आहाहा! पर को स्थिर करना व्यवहार और अपने को स्थिर करना, वह निश्चय। **धर्म में स्थापित करे, वह स्थितिकरण अंग है।** लो!

अब सातवाँ बोल। **वात्सल्य...** है न? सम्यग्दर्शन जिसको हुआ हो। निर्विकल्प शान्ति, समाधि और आनन्द का अंश। अंश। मुनि को बहुत होता है। साधु को (प्रचुर) होता है। दिगम्बर सन्त हों! जैन साधु। उसको तो आनन्द की बहुत बढ़वारी होती है। प्रचुर स्वसंवेदन होता है। आत्मा का बहुत आनन्द आता है। परन्तु उसको आनन्द तो एक सेकेण्ड के थोड़ा भाग में रहता है। यह तो अन्तर की स्थिति दशा है। एक सेकेण्ड के भाग में रहती है समाधि। सम्यग्दर्शन हो उसको, हों! दूसरे को तो खबर पड़ती नहीं कि क्या चीज़ हुई और क्या है? अज्ञान भाव है।

तो कहते हैं **अरिहन्त,...** सर्वज्ञ परमेश्वर के प्रति सम्यग्दृष्टि जीव को प्रीति होती है। कुटुम्ब के प्रति प्रीति नहीं, ऐसी प्रीति अरिहन्त परमात्मा के प्रति होती है। क्योंकि अरिहन्त वही दिव्य शक्तिवान परमात्मा हैं। वर्तमान में यहाँ नहीं। वर्तमान में भगवान

विराजते हैं महाविदेह में। सर्वज्ञ एक समय में तीन काल—तीन लोक जानते—देखते हैं और समवसरण में विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में हैं सीमन्धर परमात्मा। श्री सीमन्धर तीर्थंकरदेव। महावीर भगवान हुए, वह तो मोक्ष पधार गये, अशरीरी हुए। और अरिहन्तपद में विराजते हैं। वाणी है। समवसरण में ध्वनि निकलती है। इन्द्र आदि आते हैं। ऐसा अरिहन्त पद की उसको तो प्रीति होती है। समझ में आया? राग उत्पन्न होता है तो उसमें (अरिहन्त में) प्रीति होती है। सम्यग्दृष्टि का लक्षण है यह। ऐसे अरिहन्त के प्रति प्रीति नहीं वह सम्यग्दृष्टि नहीं। आहाहा!

ऐसे **सिद्ध,...** सिद्ध भगवान अशरीरी हुए। पहले पद णमो अरिहंताणं। वह अरिहन्त पद। देह होने पर भी सर्वज्ञपद, वह अरिहन्त पद। देहरहित हो जाये, वह अशरीरी सिद्धपद। सिद्ध के प्रति भी सम्यग्दृष्टि को प्रीति होती है। ओहो! धन्य जिनकी पूर्णदशा प्रगट हुई। समझ में आया? यह सिद्ध परमात्मा। णमो लोए... आता है न, णमो सिद्धाणं? मूल तो णमो लोए सव्व सिद्धाणं है। आहाहा! धर्मी जीव की सिद्ध के प्रति प्रत्येक परमात्मा अशरीरी प्रति प्रीति वात्सल्य होता है। जैसे गाय को अपने बछड़े के प्रति—बच्चे के प्रति (वात्सल्य) होता है, वैसे धर्मी जीव सच्चा, उसको सिद्ध के प्रति प्रेम होता है। आहाहा! तो उसको अरिहन्त और सिद्ध कैसे हैं, कहाँ है, उसकी खबर होती है। तो उनके प्रति उसको प्रेम है। आहाहा! समझ में आया?

उनके बिम्ब... अरिहंत और सिद्ध की प्रतिमा हो, मन्दिर हो, तो सम्यग्दृष्टि जीव को उसके प्रति प्रेम होता है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा उनका प्रतिबिम्ब-मूर्ति और सिद्ध परमात्मा की मूर्ति आती है न वह? करते हैं न? आहाहा! यह अनादि की स्थिति है। जिसको धर्म प्रगट हुआ हो, उसको ऐसे धर्मी जीव अथवा धर्मी की स्थापना उसके प्रति उसको प्रेम है। विरोध न करे। समझ में आया? प्रतिमा और प्रतिमा का दर्शन है शुभभाव, धर्म नहीं। है पुण्यभाव, परन्तु वह भाव आये बिना रहते नहीं। कठिन बातें, भाई! समझ में आया? जिसको आत्मा का भान हुआ, ज्ञान हुआ, उसको तो जितने आत्मज्ञानी प्राणी और आत्मज्ञान में निक्षेपरूप भाव सब ऊपर उसको प्रेम है। आहाहा! राग है वह। परन्तु वह राग का प्रेम वहाँ गया। आहाहा! समझ में आया? निश्चय देव तो आत्मा अपना है। उसका भान हुआ तो व्यवहार देव के प्रति उसको प्रेम

होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे जिनबिम्ब। बिम्ब लिया है, देखो! जैसे वीतराग थे, सर्वज्ञ परमात्मा, ऐसी मूर्ति होती है। उस मूर्ति में कुछ जेवरात, क्या कहते हैं? जेवर, कपड़े, केसर लगाना, फूल लगाना, यह मूर्ति को नहीं होता। बात बहुत कठिन है, भाई! समझ में आया? जिनबिम्ब।

चैत्यालय... मन्दिर। जिसमें भगवान अरिहन्त परमात्मा त्रिलोकनाथ उसकी निक्षेप से स्थापना की हो, वह चैत्यालय, उसके प्रति प्रेम होता है। समझ में आया? शुभराग हो। यह शुभराग आये बिना रहे नहीं। है वह पुण्यबन्ध का कारण हों! कठिन बात है। यह तो परपदार्थ है। अपने से अरिहन्त भिन्न हैं, सिद्ध भिन्न हैं, बिम्ब भिन्न है, चैत्यालय भिन्न है। भिन्न, परन्तु अपनी निर्विकल्प दृष्टि हुई है। वह निर्विकल्प हमेशा तो रह सकता नहीं। दृष्टि और ज्ञान की लब्धि हमेशा रहती है। उपयोग हमेशा अन्दर में नहीं रहता। तो उसकी बाहर में पंच परमेष्ठी के प्रति प्रीति होती है। है विकल्प, है राग, परन्तु उस भूमिका में ऐसा आये बिना रहे नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! इससे उसको धर्म नहीं होता।

अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा और उसकी प्रतिमा और मन्दिर उससे धर्म नहीं होता। आहाहा! धर्म तो अपने आनन्दस्वरूप के आश्रय से होता है। परन्तु ऐसे धर्मी निश्चयवन्त को ऐसा व्यवहार शुभभाव आये बिना रहता नहीं। ऐसा व्यवहार है। ऐसा जो न आवे तो उसको आत्मा की दृष्टि नहीं। तो वह भ्रम है अन्दर में। समझ में आया? देखो, उसको समकिती माने, ऐसा कहते हैं।

चतुर्विध संघ... सच्चे सन्त, दिगम्बर मुनि होते हैं। वनवासी होता है। अभी तो है नहीं कोई। दिखने में तो आता नहीं। समझ में आया? सच्चे सन्त दिगम्बर होते हैं, वनवास में रहते हैं और अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसकी रमणता में तल्लीन है। साधु के प्रति सम्यग्दृष्टि को प्रेम होता है। विरोध होता है, द्वेष होता है—ऐसा नहीं है। ओहो! धन्य भाग्य! जिसने आत्मा के अन्दर प्रचुर स्वसंवेदन को निकालकर आत्मा को मोक्ष के नजदीक कर दिया है। समझ में आया? जिसको अल्प काल में मुक्ति होने की योग्यता है, ऐसा साधु के प्रति धर्मी जीव को, समकिती को प्रेम होता है। यह वात्सल्य होता है। समझ में आया? अपने पुत्र के प्रति प्रेम नहीं, ऐसा प्रेम उसके प्रति

होता है। यह तो सभी पाप के कारण हैं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, यह तो पाप के कारण हैं। और यह तो शुभभाव का कारण है। समझ में आया?

यह साधु, आर्यिका होते हैं। चतुर्विध संघ में स्त्री होती है, परन्तु एक ही कपड़ा रखे और पंच महाव्रत व्यवहार उस प्रकार का पालते हो। मुनिसंघ में रहते हो। उसको आर्यिका कहते हैं। वह पंचम गुणस्थान में होता है। मुनि छठवें गुणस्थान में होते हैं। समकिती चौथे गुणस्थान में होते हैं अभी। श्रावक सच्चे पंचम (गुणस्थान) में होता है, सच्चे मुनि छठवे (गुणस्थान) में होते हैं, आर्यिका पाँचवें (गुणस्थान) में होती है। आहाहा! और श्रावक... धर्मी जीव जिसको सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो और जिसको बारह व्रत आदि का विकल्प हो, ऐसे श्रावक के प्रति समकिती को प्रेम होता है। समझ में आया? द्वेष नहीं होता। लो, यह कौन निकले मुझसे (अधिक)? यह तो भगवान आत्मा है। किसी क्षण में पलट जाये उसमें क्या है? समझ में आया? अन्तर चीज़ तो पड़ी है वस्तुरूप से, द्रव्यरूप से, ध्रुवरूप से, उस ओर का अन्तर नजर करने से आनन्द का अनुभव हो तो उसको विवेक आ जाता है। और यह विवेक न हो तो अन्दर में आत्मा की दृष्टि सच्ची नहीं। भ्रम है सब। श्रावक, श्राविका ऐसा लेना वहाँ।

और शास्त्र में दासत्व हो... उसमें दास रहते हैं। आहाहा! अरिहन्त का दास होता है, सब धर्मी जीव। सिद्ध का दास होता है, बिम्ब का दास होता है प्रतिमा का, चैत्यालय का और चतुर्विध संघ का दासत्व होता है। **जैसे स्वामी का भृत्य दास होता है...** स्वामी का नौकर दास होता है। भृत्य अर्थात् सेवक। ऐसा पद अथवा चतुर्विध संघ अथवा प्रतिमा और चैत्यालय। सम्यग्दृष्टि जो सच्चे हों तो उसके प्रति वात्सल्य होता है।

मुमुक्षु : नौ देव है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ देव हैं। पाँच परमेष्ठी हैं, जिनवाणी है, जिनधर्म है, जिनबिम्ब है, जिनालय है। नौ देव गिनने में आये हैं। आहाहा! फिर भी आत्मा की शान्ति उससे नहीं होती। गजब बात है। आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो अपने वस्तु के आश्रय से होता है। परन्तु ऐसा आश्रय हुआ उसको, जिस आत्मा के आश्रय से दशा प्रगट हुई कि स्थापना हो, तो राग आता है (क्योंकि) उनके प्रति प्रेम होता है इतना। समझ में आया? आहाहा! भारी व्यवहार और निश्चय। ... व्यवहार और निश्चय...

मुमुक्षु : स्पष्टता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। आता है। जब तक पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ न हो, तब तक ऐसा परमेश्वरपद ऊपर प्रेम आये बिना रहे नहीं। है तो राग, है पुण्यबन्ध का कारण। राजेन्द्र! यह सब कुछ समझने जैसा है, हों! ऐसे के ऐसे जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! उसको समझे बिना एक भी पल जाये... आहाहा! मनुष्य देह का एक समय का पल, एक समय... आहाहा!

मुमुक्षु : चक्रवर्ती के राज से भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : राज चक्रवर्ती धूल क्या है। उससे भी एक पल यह... आहाहा! जिसमें आत्मा का कल्याण प्रगट हो, ऐसी मनुष्यदेह की कीमत है। अपने आश्रय से हों! मनुष्यदेह से नहीं। आहाहा! अरे! निरर्थक काल गँवा देते हैं लोग। बहुत मुश्किल से मिला है यह। आहाहा! और है कितना काल? देह छूट जायेगा तो समाप्त। जाओ ... श्रद्धा, ज्ञान में जाओ। चार गति में भटकते हैं। ऐसे अनन्त भव किये हैं। जिसको आत्मा के प्रति प्रेम और अनुभव हुआ, उसको ऐसे परमात्मा चतुर्विध संघ के प्रति प्रेम होता है। दासत्व होता है। दास हूँ। दास हूँ। आहाहा! लघुनन्दन।

जैसे स्वामी का भृत्य दास होता है, तद्नुसार यह वात्सल्य अंग है। आहाहा! बछड़ा होता है न गाय का? गाय को बछड़े के ऊपर बहुत प्रेम है। बछड़ा... कुछ दे सकते नहीं। गाय को बछड़ा होता है तो कुछ ला सकता है? ... आता है? बछड़े पर प्रेम बहुत आता है। ऐसे सच्चे साधु, सच्चा श्रावक, सच्चा समकिती, सच्चा चतुर्विध, सच्चा चैत्यालय, उसके प्रति धर्मी को प्रेम का विकल्प होता है। दास है वह। आहाहा! **धर्म के स्थान पर उपसर्गादि आयें...** पंचाध्यायी में आता है। धर्म के स्थानक में कोई बाहर से प्रतिकूल आये, म्लेच्छ, मुसलमान आदि विरोध करे तो **उन्हें अपनी शक्ति अनुसार दूर करे...** आहाहा!

मुमुक्षु : पर का तो कुछ कर सकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव करते हैं न! करे क्या? भाव में ऐसा विकल्प आता हो, ऐसा कहते हैं। ऐसा न हो। उसकी स्त्री को कोई पकड़ ले तो बचाता है या नहीं? भाव।

न बचे उससे। क्यों? उसके लड़के को मारते हो, कुत्ता काट ले तो पकड़ लेता है या नहीं? ऐसा विकल्प है या नहीं? धर्मी को भी होता है ऐसा। उसमें क्या है? आसक्ति होती है। रुचि नहीं, उसमें सुखबुद्धि—हितबुद्धि नहीं। कठिन काम। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि धर्म के स्थान में मन्दिर, प्रतिमा के ऊपर उपसर्ग आ जाये तो उसको बचाये। अपने शक्ति अनुसार उसको बचाने का भाव है। क्रिया होनी हो सो हो। व्यवहार बताना है उसमें क्रिया... यह तो बचावे ऐसा ही कहने में ही आता है। भाषा कैसी हो? व्यवहार कैसा? आहाहा! बहुत कठिन। **अपनी शक्ति को न छिपाये—यह सब धर्म में अति प्रीति हो, तब होता है।** आहाहा! यह सातवाँ वात्सल्य।

आठवाँ प्रभावना। **धर्म का उद्योत करना, सो प्रभावना अंग है। रत्नत्रय द्वारा अपने आत्मा का उद्योत करना...** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आत्मा में है, उससे आत्मा की प्र—भावना करना। आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, यह रत्नत्रय दर्शन-ज्ञान-चारित्र को बढ़ाये, उद्योत करे, शोभावे और बाहर में **दान, तप, पूजा-विधान द्वारा एवं विद्या, अतिशय...** इत्यादि। दान दे, इच्छा निरोधरूपी तप करे, भगवान की पूजा करे, विधान द्वारा, ऐसे विद्या द्वारा, कोई विद्या प्रगट हुई हो उसके द्वारा। **अतिशय-चमत्कारादि द्वारा...** विशेष कोई अतिशय-चमत्कार आदि हो। **जिनधर्म का उद्योत करना...** वीतराग धर्म का प्रकाश बाहर लाना, **वह प्रभावना अंग है।** वह सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव होता है। शुभराग। (पूर्ण) वीतराग सर्वज्ञ जबतक न हो, तबतक। तो उसको निश्चय और व्यवहार दोनों आठ अंगों का वर्णन किया, उसमें दोनों ही होता है। उसको सम्यग्दृष्टि जानने में आता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ४, रविवार, दिनांक ३०-०९-१९७३
गाथा-२, ३, प्रवचन-१४

पाहुड़ का अर्थ क्या? भेंट अथवा प्राभृत अर्थात् सार। उसमें यह चलता है दर्शन प्राभृत। उसकी दूसरी गाथा। पृष्ठ-१३वाँ चलता है। विशेष आयेगा अन्दर। सम्यग्दर्शन का लक्षण क्या, वह बात चली। पहले तो सम्यग्दर्शन आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप उसके सन्मुख होकर अनुभव आत्मा का होकर प्रतीति होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन में आठ गुण होते हैं। उसका चिह्न कहो, लक्षण कहो, गुण कहो। वह आठ गुण की व्याख्या हो गयी। सूक्ष्म बात है आज। यहाँ तो सूक्ष्म ही चलती है परन्तु आज तो...

निश्चय से तो जैनदर्शन उसको कहते हैं कि जिसको अन्तर आत्मा में स्वसन्मुख का अनुभवरूप दृष्टि हुई हो और अपने आत्मा का ज्ञान हुआ हो स्वसंवेदन, उपरान्त चारित्र—स्वरूप में रमणता की लीनता, वह चारित्र। ऐसी तो जिसकी अन्तरदशा हो। समझ में आया? कौन है? शान्तिभाई! आओ शान्तिभाई यहाँ। देर से आये हैं। समझ में आया? पहले तो दर्शन '**मग्गं**' ऐसा पाठ आया था पहली गाथा में। समझ में आया? आया था न पहले?

मुमुक्षु : 'दंसणं मूलो'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'दंसणमग्गं' 'दंसणं मूलो' दूसरी गाथा है। पहली गाथा में ऐसा आया था कि दर्शन का मार्ग। ऐसा आया था। और दूसरे में आया '**दंसणं मूलो**' उसका अर्थ यह है कि जिसको भगवान आत्मा शुद्ध अखण्डानन्दस्वरूप की अन्तर में वर्तमान ज्ञान की पर्याय से उसको अनुभव करके जो अन्दर में प्रतीति होती है, निर्विकल्प आनन्द के साथ प्रतीति होती है, वह सम्यग्दर्शन। बाद में आत्मा का ज्ञान होता है वेदन, वह ज्ञान। और उसमें लीनता होती है, वीतरागता। यहाँ तो मुनि की बात चलती है। वह मुनि उसको कहते हैं अथवा उसको जैनदर्शन कहते हैं, ऐसी बात चलती है।

जिसको अन्तर दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणमन हुआ हो और बाह्य में नग्नमुद्रा हो। नग्न मुद्रा और अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रतादि का विकल्प हो तो उसको जिनदर्शन कहते हैं। समझ में आया? वह आयेगा अन्दर अर्थ में। जरा सूक्ष्म बात है आज।

जैनदर्शन भगवान का मार्ग तीर्थंकर का, केवली का, वह अन्तर में आत्मा में मोक्षमार्ग तीनों प्रगट हुए हो, दर्शन-ज्ञान और चारित्र। बाह्य में नग्नदशा दिगम्बर हो गयी हो। आहाहा! और वे वन में बसते हों। और अन्दर में, बाह्य में ... नग्न की अपेक्षा से अन्दर और स्वभाव की अपेक्षा से बाह्य पंच महाव्रत का विकल्प और एक बार आहारादि का भाव, ऐसा विकल्प होता है, उसको धर्ममूर्ति कहते हैं। यह जैनदर्शन कहे उसको। सूक्ष्म बात है न! समझ में आया? ऐसे जैनदर्शन से जो भ्रष्ट हो, वह वंदनयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ।

और ऐसी जैनदर्शन की वस्तु... जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। वह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा। प्रत्येक आत्मा वीतरागमूर्ति है। तो यह वीतरागमूर्ति की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, उसे जैनदर्शन कहो, वीतरागदर्शन कहो, वीतराग का मार्ग कहो, मोक्षमार्ग कहो, धर्म की मूर्ति कहो, धर्म का स्वरूप कहो। आहाहा! समझ में आया? और ऐसी श्रद्धा जिसको हो कि मोक्ष का मार्ग तो यह है। नग्न दिगम्बर दशा जिसकी होती है। वस्त्र भी हो तो वह जैनदर्शन नहीं। ऐसा कहते हैं हिम्मतभाई! सूक्ष्म बात है। आहाहा!

मोक्ष के मार्ग की तीन की एकता—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। तीनों की एकता अन्दर हुई हो, बाह्य में नग्न मुद्रा हो, उसको यहाँ वास्तुदर्शन, धर्ममूर्ति, जैनदर्शन कहने में आता है। ऐसी श्रद्धासहित कि मार्ग तो यह मोक्ष का मार्ग है और जैनदर्शन यह है। ऐसी श्रद्धासहित जिसको आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ हो, वह तीनों में—दर्शन, ज्ञान, चारित्र में सम्यग्दर्शन मूल है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान भी सच्चा होता नहीं, चारित्र भी होता नहीं, उसको ध्यान भी होता नहीं। कुछ नहीं होता, सब निष्फल है। आहाहा! उसके आठ गुण का वर्णन किया।

इस प्रकार यह सम्यक्त्व के आठ अंग हैं;... है? तेरहवें पृष्ठ पर है। निःशंक, निःकांक्ष, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना—ऐसे आठ बोल चले हैं। आठ अभ्यन्तर आठ और बाह्य आठ। आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत। **जिसके यह प्रगट हों, उसके सम्यक्त्व है—ऐसा जानना चाहिए।** समझ में आया? जिसे, जैन परमेश्वर ने जो मार्ग आत्मा का कहा, ऐसा प्रगट श्रद्धान में हुआ हो,

निःशंकता उत्पन्न हुई हो जानकर और अपने आनन्द के भाव के अतिरिक्त परपदार्थ के भोग की जिसको रुचि नहीं, कांक्षा नहीं। और प्रतिकूल अपने से हीन प्राणी दिखे, उनमें हीनता देखे तो उसको तिरस्कार नहीं, द्वेष नहीं।

और देव-गुरु-शास्त्र की जिसमें मूढ़ता नहीं। देव किसको कहे, गुरु किसको कहे, सिद्धान्त किसको कहे, धर्म किसको कहे, सम्यग्दृष्टि को उसका अमूढ़पना है। उन सबकी पहिचान यथार्थ है। पहिचान न हो और सम्यग्दर्शन हो, (ऐसा) कभी तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? और अपना श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति जो प्रगट हुई हो, उसमें वृद्धि करे, आगे वृद्धि करे, वह उसका उपगूहनगुण है। अथवा दोष अपने में हो तो (प्रायश्चित्त) करके आगे बढ़े, और दूसरा धर्मात्मा कोई हो कोई दोष आदि सूक्ष्म साधारण लग गया हो तो प्रसिद्ध न करे, गुप्त रखे। समझ में आया?

और स्थितिकरण। अपने आत्मा में स्थिर करे, श्रद्धा से गिरते हो, स्थिरता से गिरते हो तो स्थिर करे। दूसरा कोई धर्म से गिरता हो तो स्थिर करे। और वात्सल्य। सम्यग्दृष्टि को धर्मात्मा सच्चा हो, उसके प्रति वात्सल्य और प्रेम होता है। गाय को जैसे अपने बछड़े में प्रेम होता है, वैसे धर्मात्मा को धर्मात्मा के प्रति प्रेम होता है। द्वेष नहीं होता है कि यह क्या बढ़ गया? यह क्यों ऐसा हो गया? समझ में आया? और प्रभावना। अपने स्वरूप की प्र-विशेष प्रभावना अर्थात् एकाग्रता करते हैं और बाह्य में जैनदर्शन में वीतरागमार्ग किस प्रकार शोभे, ऐसे दान, पूजा, भक्ति, रथयात्रा, यात्रा आदि निकालकर बाह्य में धर्म प्रभावना करे, वह समकिती के आठ गुण हैं। समझ में आया? यह समकित को ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न :- यदि यह सम्यक्त्व के चिह्न मिथ्यादृष्टि के भी दिखाई दें... क्या कहते हैं जरा? कि जिसको अन्तर अनुभूति सम्यग्दर्शन न हो और ऐसे अज्ञानी को भी ऐसा तो बाह्य में निःशंक या निःकांक्षित होता है जैन में। समझ में आया? आहाहा! **सम्यक्त्व के चिह्न मिथ्यादृष्टि के भी दिखाई दें तो सम्यक्-मिथ्यात्व का विभाग कैसे होगा?** कहते हैं कि जिसको अन्तर आत्म अनुभूति नहीं, उसके पास ऐसा निःशंक आदि आठ अंग तो देखने में आता है और सम्यग्दृष्टि को भी देखने में आता है। विभाग कैसे करना? आहाहा! समझ में आया?

समाधान :- जैसे चिह्न सम्यक्त्वी के होते हैं, वैसे मिथ्यात्वी के तो कदापि नहीं होते,... भले ऊपर से कहे, माने, बाहर से बतावे, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि को जैसा होता है, वैसा अज्ञानी को तो होता नहीं। आहाहा! **तथापि अपरीक्षक को समान दिखाई दें...** जिसको परीक्षा करने की शक्ति नहीं, ऐसे अज्ञानी को दोनों समान देखने में आते हैं। सम्यग्दृष्टि का लक्षण और मिथ्यादृष्टि का बाह्य भाव दोनों एक समान देखने में आता है। आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत। कितना दूसरी गाथा में कितने दिन से चलती है लो। कितना तो स्पष्ट किया है। आहाहा!

वैसे मिथ्यात्वी को कदापि नहीं होते, तथापि अपरीक्षक को समान दिखाई दें तो परीक्षा करके भेद जाना जा सकता है। परीक्षा में अपना स्वानुभव प्रधान है। क्या कहते हैं? आत्मा जो वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड है। भगवान आत्मा अनन्त शक्ति और अनन्त गुण का पिण्ड है। ऐसी जिसको अन्तर अनुभूति हुई तो यह अनुभूति द्वारा अपने को पहिचानता है और उसके द्वारा दूसरे को भी पहिचान लेता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! **परीक्षा में अपना स्वानुभव प्रधान है। सर्वज्ञ के आगम में जैसा आत्मा का अनुभव होना कहा है,...** सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिसने एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल—तीन लोक भगवान ने देखा, जाना, उसको आगम में जैसा लक्षण बताया है, ऐसे परीक्षा करना। आहाहा! है?

आगम में जैसा आत्मा का अनुभव होना कहा है, वैसा स्वयं को हो तो उसके होने से अपनी वचन-काय की प्रवृत्ति भी तद्नुसार होती है,... क्या कहते हैं? कि भगवान ने कहा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने (कहा) कि आत्मा... इस जगत में छह द्रव्य में हैं, छह द्रव्य हैं। और आत्मा और परमाणु (संख्या से) अनन्त द्रव्य हैं, अनन्त पदार्थ हैं। ऐसा सर्वज्ञ के आगम में कहा है। उसमें से एक-एक आत्मा परिपूर्ण परमात्मस्वरूप है, स्वभाव से। ऐसा **तद्नुसार होती है, उस प्रवृत्ति के अनुसार अन्य...** अपनी प्रवृत्ति देखे अनुभव की। वैसे **वचन-काय की प्रवृत्ति भी...** समझ में आया? **अपनी वचन-काय की प्रवृत्ति...** सम्यग्दर्शन में वाणी की प्रवृत्ति भी, सम्यक् श्रद्धा जैसी हो, सम्यग्ज्ञान जैसा हो, ऐसी उसकी वाणी की प्रवृत्ति होती है। सम्यग्दृष्टि की प्रवृत्ति जैसा अनुभव है ऐसा वाणी में आता है। अपना आत्मा, पर का आत्मा, विकार क्या, स्वभाव क्या? ऐसी वचन

की प्रवृत्ति जो है, उसमें अपनी भी परीक्षा हो, दूसरे की भी वचन की प्रवृत्ति कैसी है, उसको जान ले। समझ में आया? आहाहा!

अपनी वचन-काय की... काया की भी उस प्रकार भगवान की भक्ति आदि में चेष्टा आदि देख लेना। है? **वैसा स्वयं को हो तो उसके होने से अपनी वचन-काय की प्रवृत्ति भी तद्नुसार होती है,...** तद्नुसार अर्थात् सम्यग्दर्शन में अनुभूति के अनुसार वाणी की प्रवृत्ति होती है। काया की भी ऐसी प्रवृत्ति होती है। सम्यग्दृष्टि कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को नहीं मानते। सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र को ही मानते हैं, धर्मी अनुभूतिवाला। ऐसे परीक्षा करना। अपनी भी परीक्षा, ऐसी पर की भी परीक्षा करना। आहाहा! ज्ञान न मिले वह परीक्षा क्या करे? अपनी क्या करे और पर की क्या करे? आहाहा! समझ में आया? ऐसे सम्यग्ज्ञान बिना अनन्त बार मन्दकषाय की प्रवृत्ति की, साधुपना लिया और अनन्त बार आत्मा का ध्यान समझे बिना किया। वह तो अनन्त बार हुआ है। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

उस प्रवृत्ति के अनुसार अन्य की भी वचन-काय की प्रवृत्ति पहिचानी जाती है... दूसरा भी बोले प्ररूपणा, भाषा, उसमें तो ख्याल आ जाये कि इसे तत्त्व की खबर है नहीं, अनुभूति है नहीं। श्रद्धा सच्ची है नहीं। ऐसी काया और वचन की प्रवृत्ति से जानने में आता है। **इस प्रकार परीक्षा करने से विभाग होते हैं...** सत्य और असत्य समकिती का लक्षण और मिथ्यादृष्टि का बाह्य लक्षण, उसकी पहिचान करे तो भिन्न परीक्षा हो जाती है। कठिन बात है। **यह व्यवहार मार्ग है, इसलिए व्यवहारी छद्मस्थ जीवों के अपने ज्ञान के अनुसार प्रवृत्ति है;...** व्यवहार का अर्थ यह है, हों! वह नीचे अर्थ करेंगे। **यथार्थ सर्वज्ञदेव जानते हैं।**

व्यवहारी को सर्वज्ञदेव ने व्यवहार का ही आश्रय बतलाया है। उसका क्या अर्थ? नीचे है। **स्वानुभूति ज्ञानगुण की पर्याय है,...** मुद्दे की रकम यह है कि आत्मा का अनुभव हो, वह ज्ञान की पर्याय है, ज्ञान की अवस्था है। **ज्ञान के द्वारा समकित का निर्णय करना...** यह ज्ञान की पर्याय द्वारा समकित की पर्याय का निश्चय करना 'उसका नाम व्यवहारी को व्यवहार का आश्रय समझना।' समझ में आया? व्यवहार दूसरा व्यवहार नहीं। यह राग और निमित्त बाह्य यह नहीं। अपने आत्मा में जब सम्यग्दर्शन

होता है तो उसके साथ अनुभूति होती है। ज्ञान की पर्याय में स्व का वेदन होता है। सूक्ष्म बात है। यह अनुभूति ज्ञान की पर्याय, अवस्था है। धर्म, यह अवस्था है। धर्म कोई गुण-द्रव्य नहीं। गुण-द्रव्य तो त्रिकाल है। अभी पर्याय कौन, गुण-द्रव्य कौन, खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? वहाँ सुनाई देता है?

आत्मा... अहो! अनन्त-अनन्त काल से दुःखी, चौरासी लाख योनि में परिभ्रमण करके भवसागर में गहराई में दुःखी है। गहरे-गहरे अर्थात् बाह्य में दुःखी न दिखाई न दे, परन्तु अन्दर में आकुलता, मिथ्यात्व, राग-द्वेष में महादुःखी है। शान्तिभाई! यह पैसे-बैसेवाले सुखी नहीं ऐसा कहते हैं। अन्दर कषाय अग्नि में जल गये हैं। संकल्प, विकल्प, शुभ और अशुभभाव, मिथ्या अभिप्राय वह महाकषाय है, कषाय अग्नि की भट्ठी में जलते हैं अनादि से। आहाहा! उससे बाहर निकलने का किनारा यह है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ उसने जो यह आत्मा कहा, यह आत्मा तो शुद्ध चैतन्य अखण्ड है। उसकी पर्याय में विकार हो वह विकार अपनी चीज़ नहीं। यह तो संयोगजनित विकारी भाव है। हिम्मतभाई! सूक्ष्म बात है बहुत। यह अधिकार हमारे। आहाहा!

विकारभाव होने पर भी वस्तु है, वह तो त्रिकाल आनन्दकन्द निर्मल है। इसकी अनुभूति करना, श्रद्धा-ज्ञान करना, वही जन्म-मरण का नाश करने की पद्धति और उपाय है। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह भाव कोई जन्म-मरण का नाश करने का उपाय नहीं। वह तो पुण्यबन्ध है, मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध हो तो चार गति में दुःखी होकर भटकते हैं। आहाहा! उसने अपनी दया अनन्त काल में कभी की नहीं। दूसरे की दया करने निकल गये। अपना आत्मा अनन्त आनन्द अनन्त ज्ञान समुद्र स्वभाव, ऐसा उसका जीवन है, ऐसी उसकी सत्ता है, ऐसा उसका पूर्ण आनन्द आदि स्वभाव है। यह है, ऐसी अन्तर्दृष्टि किये बिना उसने आत्मा की हिंसा ही की है। ऐसा मैं नहीं। मैं तो रागवाला, पुण्य करनेवाला हूँ, पाप करनेवाला हूँ। एक समय की पर्याय है न अंश प्रगट, इतना हूँ। तो सारा जीवन को जीविया, वहोरविया कर दिया। तेरा जीवन नित्यानन्द प्रभु उसका अनादर करके एक अंश और राग को अपना माना, उसका नाम भगवान हिंसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

बाहर की चीज़ से अधिकपना माना। कोई शरीर सुन्दर, लक्ष्मी बहुत आती हो। अढळक समझे? काठियावाड़ी भाषा है। बहुत आती हो करोड़ों-अरबों। बेशुमार। और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सुन्दर हो, और शरीर सुन्दर हो तो यह शरीर मेरा अच्छा है। दुनियों को मैं दिखाऊँ कि मैं अच्छा हूँ। मूढ़ है। ओहोहो! मिथ्यादृष्टि ने अपने स्वभाव से परवस्तु को अधिक मानी। समझ में आया? यह आत्मा की हिंसा की उसने। आहाहा! यह हिंसा टालने का उपाय, मेरी चीज़ तो सहजानन्द की मूर्ति शुद्ध आनन्दघन प्रभु है, आहाहा! ऐसा पर्याय में स्व का अनुभव होकर... पर्याय में स्व का अनुभव होकर प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं कि अनुभूति जो ज्ञान की पर्याय है। पर्याय समझे? अवस्था। अनुभव जो होता है, वह ज्ञान की दशा है, और वह ज्ञान की दशा सम्यग्दर्शन के साथ होती है। तो उस ज्ञानदशा द्वारा समकित को परखना, वह व्यवहार हुआ। एक गुण की पर्याय से दूसरा गुण की पर्याय का निर्णय करना, वह व्यवहार है। यह व्यवहार भगवान ने कहा है। आहाहा! यह व्यवहार। आहाहा! समझ में आया? कहो, शशीभाई! आहाहा! है न नीचे?

व्यवहार का आश्रय समझना, किन्तु भेदरूप व्यवहार के आश्रय से वीतराग अंशरूप धर्म होगा, ऐसा अर्थ कहीं पर नहीं समझना। व्यवहार अर्थात् राग की मन्दता, उसका शरण बताया है, भगवान ने व्यवहार मार्ग का यह शरण बताया है, ऐसा है नहीं। आहाहा! राग की मन्दता व्रत, संयम, तप, ऐसा भाव हो तो यह व्यवहार है। उसका शरण बताया है भगवान ने, ऐसा नहीं है यहाँ। यहाँ तो अनुभूति ज्ञान की हुई, उसमें आनन्द का स्वाद आया। यह पर्याय द्वारा आनन्द को परखना और उस पर्याय द्वारा समकित को परखना, उसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! प्राणी चौरासी के अवतार में गहरे-गहरे में भटकते हैं। आहाहा! कहीं शरण नहीं। शरण अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं वह भी व्यवहार है। वह कोई शरण देते हैं, ऐसा नहीं। परन्तु केवली पण्णंतो धम्मो शरणं। भगवान ने कहा कि आत्मा आनन्दस्वरूपी की श्रद्धा ज्ञान कर, स्थिरता कर, वह धर्म है। यह धर्म शरण है। और वह धर्म शरण के लिये आत्मा शरण है। आहाहा! अरे! मेरी चीज़ में यह चीज़ है। वह तो मैं ऐसा ही हूँ। दूसरी

चीज़ है कि नहीं उसके साथ में मुझे सम्बन्ध नहीं। क्योंकि दूसरी चीज़ तो मेरी अपेक्षा से है ही नहीं। उसकी अपेक्षा से हो। मेरी अपेक्षा से अभाव है। यह अभाव की चीज़ के साथ सम्बन्ध क्या?

अपने भाव में उसका तो कोई सहारा अभाव की चीज में मिलता नहीं। राग की मन्दता वह भी आत्मा में है नहीं। त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से राग भी झूठा है। राग, राग की अपेक्षा से सत्य है, परन्तु त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से असत् झूठा है। आहाहा! समझ में आया? मैं ही एक शुद्ध चैतन्यघन ज्ञायकमूर्ति मैं ही हूँ। ऐसी अन्तर में दृष्टि जम जाना और उसके साथ अनुभूति होना, यह अनुभूति, अनन्त गुण हैं आत्मा में उसके एक ज्ञानगुण की पर्याय है। यह पर्याय द्वारा समकित की पर्याय और आनन्द है, उसका जानना निर्णय करना, यह व्यवहार है। आहाहा! कठिन है। समझ में आया? भाषा तो सादी आती है। हिन्दी भी ऐसी कोई कड़क नहीं। गुजराती में थोड़ा... यह दिल्लीवाले आये है न तो थोड़ी माँग की है। फिर गुजराती होगी।

अब कहते हैं, **यह अन्तरंग सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व है, वही सम्यग्दर्शन है,...** अनन्त आत्मा है, ऐसी मान्यता उसकी व्यवहार है। निश्चय में तो मैं ही आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध हूँ। ऐसी अनुभवपूर्वक में प्रतीति, उसका नाम अन्तरंग सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व है, वही सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? **'दंसणं मूलो धम्मो'** उसकी यह व्याख्या चलती है, पहले पद की। तो यहाँ कहते हैं कि यह अन्तरंग सम्यग्दर्शन वह **सम्यक्त्व है, वही सम्यग्दर्शन है, बाह्यदर्शन, व्रत, समिति,...** होती है। मुनिपना लेना है जैनदर्शन तो। आहाहा! जो चारित्रवन्त होता है, जिसको व्रत होता है पंच महाव्रत, जिसको समिति होती है। देखभाल कर चलना, उसके लिये भोजन बनाया हो तो न लेना। समझ में आया? चार हाथ प्रमाण नजर करके चलना। ऐसी समिति पाँच समिति है। पाँच व्रत है। अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। यह जैनदर्शन के पूरे रूप की व्याख्या है। समझ में आया?

उसमें अभ्यन्तर तो सम्यग्दर्शन यह कहा। और बाह्य में... अन्तर में स्वरूप में चारित्र है। बाह्य में व्रत, पाँच समिति, है न? **गुप्तिरूप...** मन, वचन को गोपना, अन्दर में शुभभाव होना, वह व्यवहारचारित्र **और तपसहित अट्ठाईस मूलगुण सहित...** तप

अर्थात् मुनिपना। दीक्षा ली हो जिसने नग्नपने की। मणिभाई! नग्न दिगम्बर होकर जो रहते हैं, वह मुनि की दीक्षा कहते हैं। यह वस्त्र-पात्रसहित की दीक्षा, वह दीक्षा नहीं है। ऐसा मार्ग है। शान्तिभाई! जैनदर्शन सनातन वीतरागमार्ग, अनादि परमेश्वर ने कहा मार्ग, यह तो अन्तर में सम्यग्दर्शन होता है और अन्तर में चारित्र होता है और बाह्य में व्रत, समिति, गुप्ति और अट्ठाईस मूलगुण का भाव होता है। आहाहा! अट्ठाईस.. तपसहित अर्थात् मिथ्यात्वरहित। चारित्रसहित अट्ठाईस मूलगुणसहित नग्न दिगम्बर मुद्रा, नग्न दिगम्बर मुद्रा उसकी मूर्ति है।

पहले शुरुआत में जो स्पष्टीकरण करें तो कठिन लगे जगत को। अब तो ३९ वर्ष हो गये यहाँ तो। समझ में आया? ऐई! जयन्तिभाई! आहाहा! देखो न गृहस्थाश्रम में कितना स्पष्टीकरण! पाठ के सम्बन्धवाला। समझ में आया? क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्य ने १४वीं गाथा में कहा। १४वीं गाथा है न! दर्शन किसको कहते हैं? १४वीं। उसको साथ लेकर सब अर्थ किया है। १४वीं है न, १४वीं?

दुविंह पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥१४॥

यह लक्ष्य में रखकर सारा अर्थ किया है। समझ में आया? क्या कहा, देखो। अर्थ है न? अर्थ उसका। **जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग...** बाह्य में वस्त्र-पात्र भी नहीं, अभ्यन्तर में राग नहीं। आहाहा! ऐसे तो दीक्षा-बीक्षा नहीं ... भाई! जैन में आये, जन्मे ... जैनदीक्षा ऐसा कहते हैं न। ... जैनपना। वह दरबार माँगते हैं न? एक दरबार है न! दरबार है। ...वार के। २५ हजार की आमदनी है। वह यहाँ बहुत आते हैं। यहाँ का प्रेम है। और पढ़ते हैं। यहाँ के शास्त्र बहुत पढ़ते हैं। बढ़वाण के पास। वह बारबार कहे मुझे दीक्षा दो, जैन की दीक्षा दो, यह छोड़ना है। मैंने कहा, कौन-सी जैनदीक्षा? जैन में आये, वह जैनदीक्षा हम कहते हैं। यह नग्नपना वह (दीक्षा) नहीं। जैनदीक्षा तो यह कहने में आती है। आहाहा! यह तो अलौकिक बातें।

कहते हैं, देखो! **दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग...** अभ्यन्तर में राग का कण नहीं और बाह्य में वस्त्र का टुकड़ा नहीं। आहा! यह दिगम्बर दर्शन, जैनदर्शन यह वीतराग का अनादि मार्ग है। आहाहा! **और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों से संयम**

हो... संयम इन्द्रियदमन और पाँच इन्द्रिय के विषय का त्याग हो। **तथा कृत, कारित, अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों, वह ज्ञान हो...** ज्ञान भी ऐसा शुद्ध हो कि करण, कराना, अनुमोदना कहीं दोष न हो। सम्यग्ज्ञान ऐसा हो। करण, करावन, अनुमोदन, मन, वचन और काया से ज्ञान की पर्याय शुद्ध हो। किसी को झूठा ज्ञान हो, उसको सच्चा माने तो वह ज्ञान शुद्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह शास्त्रज्ञान की बात चलती है। शास्त्रज्ञान की बात करते हैं सब लोग। सम्प्रदाय में से निकलकर सब बातें करते हैं। यह ज्ञान नहीं।

मन, वचन, काया से, करण, कारण, अनुमोदन से जिसका ज्ञान शुद्ध हो। **ऐसे खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे,...** मणिभाई! मणिभाई! है उसमें? खड़े-खड़े नग्न मुनि दिगम्बर जैसे माता ने जन्मा ऐसी उसकी दशा हो जाती है। और अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आनन्द की लहर उठती है। वह दोनों साथ में हो, उसको यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। ऐसी बात वीतराग के सिवाय अन्यमत में हो सकती नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन है। **'दंसणमग्गं' 'दंसणं मूलो धम्मो'** उसकी यह अन्तिम व्याख्या चलती है कि ऐसाजो दर्शन है, वह जैन का मूल है और उस दर्शन में फिर सम्यग्दर्शन का मूल है। आहाहा! है?

... मुनिदशा। आहाहा! जिसको अनुभूति उपरान्त स्वरूप में रमणता चारित्र की, आनन्द की हो, बाह्य में पंच महाव्रत, पंच समिति, गुप्ति, एक बार आहार, खड़े-खड़े आहार। रोग हो जाये और खड़े न रह सके तो आहार न करे। ओहोहो!

मुमुक्षु : कोई पकड़ रखे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ रखे तो वह वस्तु झूठी है। बाह्य वर्तमान चलता है। उनमें ऐसा चलता है जरा बीमार हो तो खड़े रखे साधु नग्न। मार्ग नहीं। आहाहा! धर्मात्मा सन्त मुनि तो सिंह जैसा होता है। जंगल का सिंह जिसको किसी का डर नहीं। ऐसे आनन्द का अनुभव और उसके साथ चारित्र—शान्ति का अनुभव। आहाहा! मुनि किसको कहे? जैन परमेश्वर जिसको मुनि कहते हैं, वह मुनि तो ऐसे होते हैं। समझ में आया? एक बार खड़े रहकर आहार करे।

अभी ऐसा बनता है न? बहुत तृषा लगी हो तो खड़े न रह सके तो दो लोग पकड़कर... ऐसे रखे। मार्ग नहीं। यह तो दृष्टि की ही खबर नहीं, वहाँ यह बात क्या करे? अरेरे! दुःख लगे, परन्तु वस्तु तो यह है, भाई! मार्ग तो यह है। और इस मार्ग के सिवा कहीं शरण नहीं। ऐसे जैनदर्शन का तत्त्व, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित की नग्न मुद्रा। आहाहा! है?

इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। ऐसे मूर्तिवन्त को दर्शन कहने में आता है। यह लक्ष्य में रखकर उन्होंने सब अर्थ किये हैं। पहले के पण्डित बहुत दीर्घ विचारी, आगे-पीछे का मेल करके कहीं विरोध न आये। कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ दर्शन कहे और दूसरे केवल सम्यग्दर्शन की व्याख्या करे, कुछ मेल नहीं होता। समझ में आया? पीछे ऐसे दर्शनसहित में सम्यग्दर्शन पहला। परन्तु ऐसी चीज़ हो, ऐसा मार्ग है, ऐसी श्रद्धा रखकर जो स्वभाव के आश्रय से दर्शन करे, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन में मूल वह समकित है। समझ में आया कुछ? आहाहा! भावार्थ में लिखा है न वहाँ? १४वीं गाथा में।

यहाँ दर्शन अर्थात् मत है;... देखो भाषा! यह तो '**दंसणमग्गं**' था न पहला? मत वहाँ ऐसा कहा है जैनमत। **वहाँ बाह्य वेश शुद्ध दिखाई दे, वह दर्शन; वही उसके अन्तरंगभाव को बतलाता है। वहाँ बाह्य परिग्रह धन-धान्यादि और अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व-कषायादिक, वे जहाँ नहीं हों, यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो...** यथाजात जैसे माता ने जन्मा, ऐसी जिसकी दशा बाहर में और अभ्यन्तर में आनन्द और शान्ति। आहाहा! १४ में ऐसे भाव हैं। शान्तिभाई! १४ का भावार्थ। पढ़ा भी नहीं होगा कभी यह। घड़ी में से कहाँ निवृत्ति हो? पुस्तक भी नहीं होगा उसके पास। है? कहाँ से होगा? यहाँ आये ही अभी हैं। यह अष्टपाहुड़ है। यह भी खबर नहीं होगा। समयसार होगा।

मुमुक्षु : अष्टपाहुड़ है उसके पिताजी के समय का।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराना परन्तु यह छोटा सा है वह न? समझे होंगे समयसार। यह समयसार नहीं है। अष्टपाहुड़ है। यह भी खबर नहीं।

मुमुक्षु : पिताजी के समय में अष्टपाहुड़...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। मूलचन्दभाई पढ़ते थे। ... १४वीं गाथा है, उसका भावार्थ है। तीसरी लाईन है भावार्थ की।

यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो तथा इन्द्रिय-मन को वश में करना, त्रस-स्थावर जीवों की दया करना, ऐसे संयम का मन-वचन-काय द्वारा शुद्ध पालन हो और ज्ञान में विकार करना, कराना, अनुमोदन करना—ऐसे तीन कारणों से विकार न हो... उसमें ऐसा बताया है कि यह सम्यग्ज्ञान-दर्शन से भ्रष्ट होकर बात करे ज्ञानी, परन्तु वह ज्ञान झूठा है। जिसके ज्ञान में करण, करावन शुद्ध हो। आहाहा! **और निर्दोष पाणिपात्र में खड़े रहकर आहार लेना...** निर्दोष पाणिपात्र। पाणि अर्थात् हाथ। मुनिदशा वीतरागमार्ग में अनादि केवली ने कहा हुआ मार्ग। ऐई! जयन्तीभाई! यह रविवार को आया समय पर। आहाहा! ओहो!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ कहते हैं, ऐसी दशावन्त को जैनदर्शन कहा। जैनदर्शन की मूर्ति, धर्म की मूर्ति, धर्म का स्वरूप ओहोहो! बाह्य अभ्यन्तर वीतरागता भासे। समझ में आया? **इस प्रकार दर्शन की मूर्ति है, वह जिनदेव का मत है,...** वीतराग का मत यह है। आहाहा! अन्तर कठिन है। वस्त्र रखकर मुनिपना माने, वह जैनमत नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! जयन्तीभाई! आहाहा! दूसरे शास्त्र में वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना माना हो, वह शास्त्र नहीं। आहाहा! मुनि का ज्ञान कैसा होता है? करना, कराना, अनुमोदन के दोषरहित ज्ञान होता है। आहाहा! बाह्य में बहुत पढ़ा हो और ऐसे जैनदर्शन से भ्रष्ट हो और शास्त्र की बहुत बातें करें, वह ज्ञान नहीं। उस ज्ञान की अनुमोदना ज्ञानी नहीं करते। समझ में आया? कठिन बात है, भगवान! आज तो यह आया है। अनादि का यह मार्ग है।

जिनदेव का मत है, वही वन्दन-पूजनयोग्य है, अन्य पाखण्ड वेश वन्दना-पूजा योग्य नहीं है। वस्त्र-पात्रसहित को मुनि मानकर वन्दन करना जैनदर्शन में निषेध है। शशीभाई! उसमें जो बात हो वह आती है न! आहाहा! कठिन लगे। सम्प्रदाय में क्या करे? अनादि का वीतरागमार्ग तो परमात्मा ने ऐसा फरमाया है। उसकी यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य प्रसिद्धि करते हैं। भगवानजीभाई! आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। चलता

विषय। **नग्न दिगम्बर मुद्रा उसकी मूर्ति है, उसे जिनदर्शन कहते हैं।** आहाहा! सनातन बात तो यह है, प्रभु! परिवर्तन हो गया है।... भगवान के बाद ९०० वर्ष बाद बारह वर्ष दुष्काल हुआ। देखो न एक वर्ष में दुष्काल हुआ हो तो दूसरे वर्ष तो चिल्लाने लगे। पहले ... अब ... तो चिल्लाने लगे। हाय... हाय... दूसरे होगा? तब वहाँ बारिश हो गयी। उस समय बारह साल दुष्काल पूरा अकाल। आहाहा! एक साथ बारह वर्ष। उसमें से—दिगम्बर में से यह पंथ निकले श्वेताम्बर। सह न सके, सत्य में रह न सके फिर अपने शास्त्र बनाये। भगवान! मार्ग यह है। समझ में आया? सत्य की पुकार तो यह है।

इस प्रकार धर्म का मूल सम्यग्दर्शन जानकर... देखा! ऐसा जो दर्शन है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, बाह्य में नग्नपना। यह जिनदर्शन, उसकी श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! उसकी श्रद्धा अर्थात् केवल बाह्य, ऐसा नहीं। अन्तर में आत्मा आश्रित ऐसी श्रद्धापूर्वक अन्तर आत्मा आश्रित सम्यक् प्रगट हो, यह सम्यग्दर्शन तीनों में मूल है। तीनों अर्थात् दर्शन, ज्ञान और चारित्र में। बहुत इसमें तो जानना चाहिए। आहाहा! उल्टी श्रद्धा घुस गयी है न! लकड़े समझते हो? उल्टी श्रद्धा। ऐई! हिम्मतभाई! यह सब कुछ समझना पड़ेगा हों! बाड़े में कुछ धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि जैनदर्शन के ऐसे मुनि होते हैं। वह मुनि के लिये वन्दन, पूजन करनेयोग्य हैं। उसके सिवाय दूसरे को मुनि मानकर वन्दन, पूजन का निषेध है। आहाहा! **इस प्रकार धर्म का मूल सम्यग्दर्शन जानकर जो सम्यग्दर्शनरहित हैं, उनके वन्दन-पूजन का निषेध किया है—ऐसा यह उपदेश भव्यजीवों को अंगीकार करनेयोग्य है।** आहाहा! आग्रह छोड़कर जिसको जन्म-मरण का अभाव करना हो, ऐसे योग्य प्राणी को तो यह अंगीकार करना चाहिए। आहाहा!

यह दूसरी गाथा पूरी हुई। बहुत दिन से चलती है। पहली गाथा चली थी। शुरुआत तीज से हुई। भाद्र शुक्ल तीज से। भाद्र कृष्ण ३ से शुरु हुआ है। १५वाँ यह १६वाँ दिन है।...

अब कहते हैं कि अन्तरंग सम्यग्दर्शन बिना बाह्यचारित्र से निर्वाण नहीं होता—

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठसस णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति॥३॥

आहाहा! अब उसका गुजराती नहीं मिलेगा। यहाँ गुजराती है ? ऐई! पण्डितजी को कहा कि नीचे गुजराती नहीं है इसमें। बनाते हैं अभी पूरा नहीं हुआ है। अर्थ-अर्थ।

अर्थ :— जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट हैं... ऐसी जैनदर्शन की श्रद्धा, उससे जो भ्रष्ट है। वही **भ्रष्ट हैं,...** आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा जिनदर्शन कहा, ऐसे दर्शन से भ्रष्ट है, वह भ्रष्ट है। **जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, उनको निर्वाण नहीं होता;...** मुक्ति नहीं होती। आहाहा! समझ में आया ? अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग हो, बाह्य में अट्ठाईस मूलगुण हो और नग्नमुद्रा, ऐसा जैनदर्शन का वस्तु का स्वभाव निश्चय और व्यवहार उससे जो भ्रष्ट है, उसको मुक्ति नहीं होती। आहाहा! उसको मोक्ष नहीं होता।

क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि जो चारित्र से भ्रष्ट हैं,... कदाचित् अन्तर में रमणता चारित्र की न हो और पुरुषार्थ की कमी से चारित्र अन्दर में से भ्रष्ट हो। समझ में आया ? **वे तो सिद्धि को प्राप्त होते हैं,...** क्योंकि दृष्टि में ख्याल है कि मेरे में चारित्र है नहीं। **परन्तु जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, वे सिद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं,..** आहाहा! **चारित्र से भ्रष्ट हैं, वे तो सिद्धि को प्राप्त होते हैं,...** भ्रष्ट होने का अर्थ ? कि उसको ख्याल है कि मेरे में जो रमणता चारित्र की होनी चाहिए वह है नहीं। उससे में हिल जाता हूँ। समझ में आया ? श्रद्धा, ज्ञान में बराबर यथार्थ बात है। ऐसी चारित्रदशा हो, तभी मुक्ति होगी। ऐसा श्रद्धा-ज्ञान यथार्थ है और चारित्र से भ्रष्ट हो तो मुक्ति होगी।

परन्तु जो दर्शन भ्रष्ट हैं,... आहाहा! दो लिया न ? चारित्र भ्रष्ट तो सीझे... ऐसे श्रद्धा-ज्ञान में ख्याल है कि मेरे में यह दोष है, चारित्र का दोष है। आहाहा! समझ में आया ? रामचन्द्रजी जैसे महापुरुष सम्यग्दृष्टि थे, सम्यग्ज्ञानी थे। परन्तु सीताजी के प्रेम से... कहाँ है सीता ? कहाँ है ? राग था। वह चारित्र से भ्रष्ट है, परन्तु दर्शन से भ्रष्ट नहीं। समझ में आया ? और सीताजी जब स्वर्ग में गये। अभी तो देव हैं वहाँ। परन्तु स्त्री का वेश लेकर, सीता का वेश लेकर रामचन्द्रजी ध्यान में थे, डगमगाने आये। यहाँ रावण से

नहीं डिगे और स्वयं राम को डगमगाने आये। ऐसा कोई राग का भाव। आहाहा! रामचन्द्रजी ऐसे ध्यान में थे। केवल ज्ञान लेने की तैयारी थी। पुरुषोत्तम पुरुष। अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो था, चारित्र था। अन्दर में ध्यान में चढ़े। सीताजी वेश लेकर आये हैं। तो देव पुरुष। वह स्त्री का वेश लेकर आये। देखो न एक चारित्र का... आहाहा! परन्तु वह दर्शन भ्रष्ट नहीं। वह सीझेंगा। भविष्यकाल में तीर्थंकर होंगे। समझ में आया? आहाहा! गणधर। रावण तीर्थंकर और सीताजी गणधर। देखो! परिणाम की विचित्रिता!

रावण भविष्य में तीर्थंकर होगा, सीताजी गणधर होंगे। आहाहा! मोक्ष जायेगा। उस चारित्र के परिणाम में अन्तर हो उससे कुछ वास्तव में भ्रष्ट है नहीं। सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है तो सब भ्रष्ट है। आहाहा! तो उसको ज्ञान भी भ्रष्ट और चारित्र भ्रष्ट है। सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है वह ... है। समझ में आया? आहाहा! दर्शन भ्रष्ट है, वह सिद्धि को प्राप्त नहीं होता। मूल तो ऐसा जैनदर्शन है, उससे जो भ्रष्ट हो गया, उसकी मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया? मोक्ष का मार्ग उसको है नहीं।

जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं,... वहाँ लिया। वह लिया था न पहले '**दंसणमग्गं**'। था न पहली गाथा में? पहली गाथा का तीसरा पद। दर्शनमार्ग। वह दर्शनमार्ग का अर्थ उसने वहाँ किया था जैनमत। वह यहाँ कहा। **जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं,...** यह भाषा। आहाहा! उसे भ्रष्ट कहते हैं। वही भ्रष्ट है। वीतराग परमात्मा ने ऐसा दर्शन-ज्ञान-चारित्र और ऐसी बाह्य नग्नमुद्रा, अट्ठाईस मूलगुण (कहे), ऐसा जिनमत है, वह जिनमत से जो भ्रष्ट हुआ। आहाहा! समझ में आया? उन्हें भ्रष्ट कहते हैं।

और जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं,... चारित्र न पाल सके, चारित्र से निकल भी जाये। ऐसा भी शास्त्र पाठ है। चारित्र लिया हो, नग्न मुनि हुआ हो, बाद में भ्रष्ट हो जाये। गृहस्थाश्रम में आ जाये। जाने की मुझसे यह हो सका नहीं। मेरा पुरुषार्थ कम हो गया। तो दर्शन से भ्रष्ट नहीं, चारित्र से भ्रष्ट है तो मुक्ति होगी। आहाहा! ऐई! जयन्तीभाई! यह दर्शन का माहात्म्य। आहाहा! श्रेणिक राजा सम्यग्दृष्टि थे। चारित्र नहीं था, व्रत-तप नहीं थे। तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। पहली नरक में है। वहाँ से पहले तीर्थंकर होंगे। आगामी चौबीसी में तीर्थंकर परमात्मा महावीर जैसे होंगे। यह सम्यग्दर्शन का प्रताप है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ५, सोमवार, दिनांक ०१-१०-१९७३
गाथा-३, ४, प्रवचन-१५

इसकी तीसरी गाथा। उसका भावार्थ चलता है, भावार्थ। **जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं, उन्हें भ्रष्ट कहते हैं।** जिनमत अर्थात्? यह आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसका वीतरागी सम्यग्दर्शन, उसका स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान और उसका वीतरागी चारित्र-रमणता। उसे यहाँ जिनमत कहा जाता है। समझ में आया? उसकी भूमिका के प्रमाण में उसे पंच महाव्रत के विकल्प-रागादि होते हैं और नग्नपना, दिगम्बरपना होता है। उसे यहाँ जिनमत कहा जाता है। वह वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा कहते हैं।

जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं,... ऐसा जो जैनमार्ग का अभिप्राय, उससे जो भ्रष्ट है, उसे भ्रष्ट कहते हैं। **और जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं,...** श्रद्धा में यथार्थ आत्मदर्शन और जैनदर्शन की श्रद्धा यथार्थ हो, जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं, वह कोई वाड़ा नहीं। वह तो वस्तु का स्वरूप है। वह आत्मा निर्दोष निर्विकारी वीतरागी स्वरूप, वही वस्तु का स्वरूप है और उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता, यह तीनों वीतरागी पर्याय, वह भी उसकी पर्याय का वही वस्तु का स्वरूप है और उसकी भूमिका प्रमाण में उसे पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के राग, विकल्प हों, वह वीतरागमार्ग के अन्दर में कचास है, वह भी उसका एक व्यवहार स्वरूप है। और नग्नपना शरीर का वह भी उसका एक स्वरूप है। कहीं वीतरागता यहाँ हुई, इसलिए शरीर में भी दूसरा कुछ हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं। ऐसी वस्तु है, उसकी श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं। **किन्तु कदाचित् कर्म के उदय से चारित्र भ्रष्ट हुए हैं,...** स्वरूप का चारित्र न हो, स्थिरता न हो, छठवें गुणस्थान की जो भूमिका मुनि की, उसमें चारित्र जो हो, वह चारित्र न हो। समझ में आया? उस चारित्र से भ्रष्ट का अर्थ चारित्र न हो, ऐसा। अथवा चारित्र हो पहले और फिर भ्रष्ट हो गया हो, चारित्र से। परन्तु दर्शन से भ्रष्ट न हो, तो वह वास्तव में भ्रष्ट नहीं है। समझ में आया? **किन्तु कदाचित् कर्म के उदय से चारित्र भ्रष्ट हुए हैं,...** उदय से भ्रष्ट, ऐसा कहा है न इसलिए, उसके दो प्रकार। चारित्र था और उसमें से च्युत हो गया। और (पहले से) चारित्र नहीं था।

मुमुक्षु : कर्म के उदय से चारित्र नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय से, वह स्थिरता निर्बलता के कारण नहीं था। उदय से, निमित्त से बात है। अपनी निर्बलता के कारण स्वरूप की श्रद्धा, जैनदर्शन का मार्ग है, उसकी श्रद्धा होने पर भी स्वरूप में राग का त्याग-आसक्ति का (त्याग) न हो। समझ में आया? अन्दर आसक्ति हो, राग की, द्वेष की आदि, तथापि वह दर्शन से भ्रष्ट नहीं और चारित्र से भ्रष्ट हो तो उसकी मुक्ति होगी। क्योंकि उसके ख्याल में है कि यह दोष है। ज्ञानी को किसी भी दोष के ख्याल बिना दोष हो जाये, ऐसा नहीं है। ... है ... समझ में आया?

उन्हें भ्रष्ट नहीं कहते हैं,... ऐसी भाषा है न? आहाहा! मूलस्थापन तो यह करना है कि जो मार्ग सनातन जिनमत का मार्ग है अनादि का। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो वस्तु है, उसे देखा, जाना और दृष्टि करके वीतराग हुए, ऐसी वस्तु की स्थिति बतलायी। वही वस्तु का स्वरूप और मोक्ष का मार्ग। त्रिकाल वस्तु के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग, वह जिनमत; और उसकी भूमिका में पंच महाव्रतादि वह व्यवहार जैन का मत। व्यवहार कहा है या नहीं शास्त्र में? **जिनवर कहे ऐसे व्रतादि...** आता है न? अभव्य पालन करता है तथापि। जिनमत में कहे हुए व्रतादि, व्यवहार से विकल्पादि। ऐसा उसे हो। मुनि को। तो उसे जैनमत कहते हैं, उसे जैनदर्शन कहते हैं, उसे धर्म की मूर्ति कहते हैं। यह तो गुजराती चलता है, बात, हों! गये न वे हिन्दी? और है वे दूसरे जायेंगे अभी। बहुत समझे नहीं बेचारे यहाँ के गुजराती। समझ में आया?

वहाँ ऐसा कहे, **दर्शन से भ्रष्ट हैं, उन्हें निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती;...** जैनदर्शन में जो वीतरागी स्वभाव और वीतरागी मोक्षमार्ग और उसके प्रमाण में उसे राग का भाव और उसके प्रमाण में... वीतराग मुद्रा, उससे जो भ्रष्ट है एक और समकित से भ्रष्ट है। दोनों। समझ में आया? **दर्शन से भ्रष्ट हैं, उन्हें निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती;...** चाहे तो शास्त्र का ज्ञान करे और चाहे तो यह व्रतादि पालन करे, परन्तु वह तो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? और सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? और सम्यग्दर्शन में

देव-गुरु-शास्त्र कैसे होना चाहिए?—ऐसी श्रद्धा जिसे नहीं, वह तो भ्रष्ट है। आहाहा! गजब मार्ग! समझ में आया? उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं। क्योंकि मूल में ही दिक्कत आयी।

दृष्टान्त दे इसे कहीं। वृक्ष का दृष्टान्त देते हैं। वृक्ष है न, वृक्ष। झाड़ को क्या कहते हैं? वृक्ष का मूल जिसका कट गया हो तो उसके पत्ते हैं, वह तो थोड़े काल रहेंगे। परन्तु पत्ते खिर गये और मूल सुरक्षित है तो फिर वृक्ष वापस पल्लवित हो जायेगा। वापस वृक्ष फलेगा। आहाहा! इसी प्रकार जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है, वह तो सबसे भ्रष्ट हो गया। मूल से भ्रष्ट, पत्ते से भ्रष्ट, सबसे भ्रष्ट हुआ। आहाहा! आचार्य ने जगत को करुणा करके वीतरागमार्ग यह कहा है, भाई! आहाहा!

जो चारित्र से भ्रष्ट होते हैं और श्रद्धान दृढ़ रहते हैं, उनके तो शीघ्र ही पुनः चारित्र का ग्रहण होता है... वास्तविक प्रतीति, वह वास्तविक प्रतीति अर्थात् सम्यग्दर्शन की, हों! वह भी व्यवहार श्रद्धा, ऐसा नहीं। आत्मा शुद्ध चैतन्य अकेला आनन्द और ज्ञान का पिण्ड प्रभु के अन्तर्मुख होकर श्रद्धा-दर्शन हुआ है, वह भ्रष्ट नहीं है। समझ में आया? **परन्तु दर्शन-श्रद्धा से भ्रष्ट है।** वास्तविक स्वरूप की श्रद्धा से भ्रष्ट और जैनदर्शन का यह मार्ग है, उससे भ्रष्ट। समझ में आया? **उसी के फिर चारित्र का ग्रहण कठिन होता है,...** क्योंकि अभी मूल का ठिकाना नहीं, उसमें चारित्र कहाँ से आवे? आहाहा!

इसलिए निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ होती है। जिसे जैनदर्शन में और सम्यग्दर्शन में भ्रष्ट है, उसे तो निर्वाण होता नहीं। उसे निर्वाण होता ही नहीं। उसे चार गति में भटकना है। आहाहा! चौरासी के अवतार। भवभ्रमण समुद्र / सागर बड़ा है। दृष्टान्त देते हैं, देखो! **जैसे—वृक्ष की शाखा आदि कट जायें,...** झाड़ न वृक्ष? हिन्दी में वृक्ष लिया है। वृक्ष कहते हैं न? यहाँ वृक्ष लिया है। वृक्ष हो, उसकी शाखा हो। **आदि कट जायें...** शाखा, पत्ते, डाली काट डाले। **और जड़ बनी रहे तो शाखा आदि शीघ्र ही पुनः उग आयेंगे...** सब शाखायें, पत्ते आयेंगे उसे। वृक्ष फल जायेगा। आहाहा! समझ में आया? **और फल लगेंगे...** उसे फल लगेंगे।

किन्तु जड़ उखड़ जाने पर... मूल जिसका नाश हुआ। आहाहा! **शाखा आदि कैसे होंगे?** उसे शाखा आदि होंगे नहीं। रहेंगे ही नहीं। **उसी प्रकार धर्म का मूल दर्शन**

जानना। धर्म का मूल। पहले तो यह कहा था कि धर्म का मूल तो जैनदर्शन है। उसकी श्रद्धा और धर्म का मूल, उसकी श्रद्धा जो सम्यग्दर्शन, वह धर्म का मूल है। आहाहा!

अब, जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं और शास्त्रों को अनेक प्रकार से जानते हैं... देखा! जैनदर्शन से भ्रष्ट और सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट। वे शास्त्रों की बहुत जानपने की बातें तो करे। ऐसा कहते हैं मूल तो, हों! निकले वे शास्त्र की बातें करे, वे बड़े पण्डित हों। **तथापि संसार में भटकते हैं...** जिन्हें जैनदर्शन अर्थात् वस्तु स्वभाव की जिन्हें अन्दर श्रद्धा, ज्ञान की खबर नहीं और सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। अपने आप मान ले सम्यग्दर्शन, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ आत्मा अखण्ड शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड असंख्य प्रदेशी, ऐसे भानसहित जिसकी अन्तर में अनुभव की प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? उसे उतने अंश में निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

मुमुक्षु : उतने अंश में।

पूज्य गुरुदेवश्री : उतने अंश में। अभी पूर्ण चारित्र आदि स्थिरता नहीं। समाधि तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन हो, वह समाधि है। बोधि, समाधि नहीं आता? बोधि का लाभ, समाधि का लाभ। समाधि का अर्थ? तीनों की एकता की पूर्णता, वह समाधि। बोहि लाभ, आता है न? 'बोहि लाभं...' बोधि अर्थात् दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन की एकता, वह बोधि लाभ, वह समाधि लाभ। समझ में आया? आत्मा भगवान असंख्य प्रदेशी, यह सर्वज्ञ के सिवाय कहीं अन्यत्र होता नहीं। असंख्य प्रदेशी चौड़ा है और उसमें एक-एक प्रदेश में यह जो व्यापक अनन्तगुण और उन अनन्तगुण का एकरूप, वह वस्तु। उस वस्तु के अन्तर्मुख में दृष्टि होकर जो अनुभव हो, उसे यहाँ धर्म का मूल सम्यग्दर्शन और जैनदर्शन जो है, उसकी श्रद्धा का मूल यह है। समझ में आया?

भगवान के पश्चात् यह ६०० वर्ष में भाग पड़ गये न दो? मूल बात तो उसकी है। सूत्र का भी ऐसा है। सूत्र का एक अक्षर बदलकर... किया है, सब अज्ञानी हैं। सूत्रपाहुड़ में ऐसा कहा है। समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! बड़े भाग पड़े, श्वेताम्बर और दिगम्बर। श्वेताम्बर में वापस भाग स्थानकवासी। स्थानकवासी में भाग

वापस तेरापंथी, तुलसी। मार्ग कठिन, प्रभु! हों! किसी को दुःख हो, ऐसी बात का, अलग बात है। उसके अहित में पड़े हैं, उसे हित की बात कहते हैं, हों! भाई! वह मार्ग जैनदर्शन नहीं है।

वीतरागी सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा पदार्थ का स्वभाव देखा, कहा, इससे वह मार्ग सब विरुद्ध है। दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त दूसरे सभी मार्ग विरोध में हैं। दुःख लगे, खोटा नहीं लगाते। कौन सी ऐसी चीज़ है कि वह सबको ठीक लगे? मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा नहीं? अरे! ऐसी कौन सी चीज़ है कि सबको ठीक लगे? मदिरा का निषेध करते हैं, मदिरा के व्यापारियों को खराब लगता है। मेरा व्यापार नहीं चलेगा, यह सब मदिरा का, ऐसा कहे। आता है न? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में। आहाहा! ऐसा मार्ग तो जो है भगवान! वह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। दिगम्बर दर्शन अर्थात् कि वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? अनन्त वीतरागता तो आत्मा में पड़ी है। अकषायस्वभाव कहो, वीतरागता कहो, चारित्रगुण कहो। ऐसा जो भगवान 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' वहाँ दूसरा शब्द है अन्दर तो। समझ में आया?

'जिन सो ही है आत्मा...' यहाँ तो जिनमत कहना है न, इसलिए जरा यह। 'जिन सो ही है आत्मा...' आत्मा जैनस्वरूप ही है। अर्थात् पूर्ण वीतराग। वीतरागी ज्ञान, वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी शान्ति, वीतरागी प्रभुता, यह सब गुण वीतराग से भरपूर हैं। आहाहा! वीतराग अर्थात् रागरहित ये गुण सब पूरे भरपूर हैं। ऐसा ही आत्मा का स्वरूप है। यह 'जिन सो ही है आत्मा...' उससे कुछ भी विपरीत कम, अधिक और विपरीत कहे, वह कर्म है, अज्ञान है, संसार है। आहाहा! भगवानजीभाई! बहुत ऐसा परन्तु मार्ग। पूरा विरोध होता है। परन्तु प्रभु! विरोध को... वस्तु तो है वह है। मार्ग तो है वह है। अनन्त सर्वज्ञों ने पुकार करके कहा है। किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं करना, वैर नहीं, द्वेष नहीं। आत्मायें हैं। भूले हैं परन्तु वह आत्मा है। वह भूल मिटायेगा। वह आत्मा भूल तोड़ेगा। इसलिए किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष, वैर, विरोध नहीं करना। परन्तु वस्तु की स्थिति है, वह तो जानना चाहिए न? आहाहा! उकसाकर, उत्तेजित होकर

किसी का अनादर करना, द्वेष करना, वह मार्ग नहीं होता। समझ में आया? परन्तु जो वस्तु का स्वरूप है, ऐसा तो इसे ज्ञान में, श्रद्धा में और वाणी में तो वह आवे। समझ में आया? कहते हैं कि **उसी प्रकार धर्म का मूल दर्शन जानना।** आहाहा!

अब यहाँ **अब, जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं और शास्त्रों को अनेक प्रकार से जानते हैं, तथापि संसार में भटकते हैं...** मूल जैनदर्शन की श्रद्धा भ्रष्ट होकर और सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट होकर और फिर शास्त्र चाहे जितने वाँचे, पढ़े, कहे। उसमें क्या? वह तो मिथ्याज्ञान है। लाखों लोगों को समझाने की शक्ति हो, लाखों ऐसा कहे कि ओहो! बहुत सरस... बहुत सरस... परन्तु इससे कहीं सत्य वस्तु हो जायेगी? कहते हैं कि **सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं और शास्त्रों को अनेक प्रकार से जानते हैं, तथापि संसार में भटकते हैं—ऐसे ज्ञान से भी दर्शन को अधिक कहते हैं**—वह ज्ञान से दर्शन अधिक अर्थात्? भाई! ज्ञान से अधिक अर्थात्? शास्त्र का ज्ञान, दर्शनरहित से दर्शन (अधिक)। ऐसा नहीं कहा कि सम्यग्ज्ञान से सम्यग्दर्शन अधिक। यह दूसरी बात।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। उसका सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन नहीं, उससे अकेले शास्त्रज्ञान की अपेक्षा दर्शन श्रेष्ठ है, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? भाई में आता है सोगानी में यह। ऐसा कि दर्शन प्रधान या ज्ञानप्रधान कहा? प्रधान दर्शन। परन्तु ज्ञान को भी प्रधानता वहाँ दी जाती है। परन्तु ज्ञान तो ग्यारह अंग का अनन्त बार हुआ। ऐसा लिखा है। परन्तु यह ज्ञान वह नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं। समझ में आया? उसकी यहाँ चर्चा लाते हैं न? देखो! ऐसा कि यहाँ तो ज्ञान की हीनता बतायी है। वह तो यह शास्त्रज्ञान की, सम्यग्दर्शन बिना इस ज्ञान की हीनता है। दर्शनसहित का जो ज्ञान है, उसकी हीनता नहीं। क्योंकि एक तो ज्ञान में पहला आत्मा ज्ञात हो, तब उसे प्रतीति होती है। समझ में आया? यह उसमें है कहीं।

मुमुक्षु : १४३ (बोल)।

पूज्य गुरुदेवश्री : १४३। सच्ची बात है। १४३। कल हाथ नहीं आया। यह तो आना हो, तब आवे न!

प्रश्नः—त्रिकाली में प्रसरने में ज्ञान कारण है या दृष्टि कारण है? उत्तरः— मुख्य तौर से तो (ज्ञानी को) दृष्टि ही कारण है, फिर ज्ञान को भी कहते हैं; दोनों साथ में ही हैं। यह सम्यग्ज्ञान हुआ। **दृष्टि प्रसर जाती है तो ज्ञान भी हो जाता है।** दृष्टि जब आत्मा में... ज्ञान सम्यक् हुआ है। साथ ही है। **प्रश्नः—दृष्टि तो जानती नहीं! ज्ञान ही जानता है? उत्तरः—इस अपेक्षा से (स्वलक्ष्यी) ज्ञान को भी कारण कहते हैं।** यह दूसरी बात हुई बाद में। **परन्तु, यथार्थ में तो ऐसे ग्यारह अंगवाले को (परलक्ष्यी) ज्ञान हो जाता है,...** यह और दूसरा लिया।

परन्तु, यथार्थ में तो ऐसे ग्यारह अंगवाले को (परलक्ष्यी) ज्ञान हो जाता है, दृष्टि नहीं होती। यह यहाँ जो कहा जाता है, इस अपेक्षा से। मुख्य तो ज्ञान है। स्ववस्तु ज्ञान में ज्ञात हुए बिना प्रतीति किसकी? समझ में आया? १७-१८, यह लिया है न? वह यह नहीं लेना यहाँ। यहाँ तो यह जो कहते हैं, इस गाथा में कि दर्शन बिना का शास्त्र का ज्ञान, वह वास्तव में ज्ञान ही नहीं। समझ में आया? ऐई! चेतनजी! लो, इसमें यह है, हों! वापस अन्दर। पहले ज्ञान का कहा, वह सम्यक् का। और वापस कहा कि ज्ञान तो शास्त्र का अनन्त बार किया है। वह दूसरा। समझ में आया? इसमें साधारण बुद्धिवाले बेचारे को कुछ खबर नहीं पड़ती और दरकार नहीं होती। सहज-सहज थोड़ा सा समझ में आ जाये तो समझना, वरना हो गया। जाओ व्यर्थ अवतार। ऐई! आहाहा!

अरेरे! ऐसे अवतार में यदि इसने यह सम्यक्—सच्चे ज्ञान का डोरा नहीं पिरोया, वह चौरासी में कहाँ रुलेगा, अनन्त अवतार। आहाहा! है न दृष्टान्त? इसमें भी है और वहाँ भी है। जहाँ... यह ... सम्यग्ज्ञान, हों, अकेला शास्त्रज्ञान, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : अकेला ज्ञान, वह ज्ञान ही कहाँ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान नहीं। वह तो यहाँ कहा जाता है। 'जो सुई...' सुई.. सुई। '... सूत्र सहित हो' नहीं खोयेगी। और यदि सूत्र (डोरा) हो तो वह ख्याल में आवे। चिड़िया की माला में अपना डोरा है, वहाँ हो। ऐसा सम्यग्ज्ञान का डोरा... आहाहा! सम्यग्ज्ञान यथार्थ आत्मा का और पर का। वह ज्ञान अब नहीं खोयेगा। चार गति में नहीं जायेगा। परन्तु वह ज्ञान न हो और अकेली बाहर की ही बात का जानपना और बाहर

में रुका हुआ। आहाहा! वह तो चार गति में बापू! कहीं पता नहीं खायेगा, भाई! आहाहा!

आत्मज्ञान बिना यह चौरासी के अवतार... आहाहा! बड़ा भवसमुद्र—सागर। अनन्त-अनन्त निगोदादि भव। ओहोहो! अभी तो यह निगोद देखते हैं न? ओहोहो! जम गया हुआ। यहाँ जम गयी बाहर। यह बाहर... कल आया परन्तु फिर काई जम गयी है। अन्दर हरा है न अन्दर? आहाहा! ढ़ेर। एक कणी में अनन्त। प्रभु! वहाँ था तू, हों! आहाहा! इसकी खबर नहीं होती। और वहाँ आगे अनन्त बार वहीं का वहीं जन्मा और मरा। क्योंकि अनन्त जीव निकलकर असंख्य प्रत्येक में कैसे जा सकते हैं? क्या कहा यह? वे अनन्त निगोद हैं, ढ़ेर सब। वे जन्मे और मरे। वहीं के वहीं मरे, जन्मे निगोद में और निगोद में। क्योंकि उनका एक अनन्तवाँ भाग बाहर निकले तो बाहर चीज़ तो असंख्य जीव हैं दूसरे। प्रत्येक वनस्पति आदि असंख्य जीव हैं। तो वह अनन्तवाँ भाग निकले परन्तु बाहर नहीं जा सकता। आहाहा! वह आस्था तो कर तू प्रभु! देख तो सही यह। ऐसा ज्ञान उतना तो भी इतने सब ज्ञेयों को उनके लक्ष्य बिना जान सके, ऐसी अनन्त निगोद की जीव की सत्ता का स्वीकार करनेवाली ज्ञान की पर्याय है। समझ में आया?

क्योंकि ज्ञान की पर्याय का... उसका स्वभाव है। ऐसे अनन्त-अनन्त जीव की सत्ता और उससे अनन्तगुणी की सत्ता रजकण की। उस सत्ता का स्वीकार कर सके, ऐसी ही उसकी पर्याय का धर्म है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी तो ज्ञान की एक अवस्था की इतनी सामर्थ्य है। आहाहा! पर की दया पालना या नहीं पालना, वह वस्तु में नहीं है। परन्तु पर की महासत्ता इतनी है, उसका स्वीकार होना, वह तो तेरी ज्ञान की पर्याय का धर्म है। आहाहा! तेरी सत्ता का इतना स्वभाव है। ऐसी अनन्त सत्ता को नि:शंकरूप से स्वीकारे, वह भी यथार्थ पर की सत्ता का स्वीकार कब कहलाये? आहाहा! ऐसी जो अनन्त-अनन्त पर्याय का एक गुण, ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप, ऐसी महासत्ता प्रभु की। उसकी अन्तर में दृष्टि होने से जो ज्ञान होता है, वह वास्तविक ज्ञान, पर की सत्ता का ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग वस्तु ही है, बापू! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। उसमें स्थिति ऐसी सत्ता ही इतनी है। इतनी और ऐसी ही है। आहाहा! अरे! उसे अन्तर में गये बिना अपनी महासत्ता की प्रतीति, ज्ञान नहीं आवे तो उसे इस सत्ता का भी नि:सन्देह व्यवहार ज्ञान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जो पुरुष...

सम्मत्तरयणभट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव॥४॥

'तत्थेव' 'तत्थेव' वहाँ-वहाँ। आहाहा!

अर्थः—जो पुरुष सम्यक्त्वरूपी रत्न से भ्रष्ट हैं... जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं अथवा हो और भ्रष्ट हुआ है। आहाहा! जो आत्मा। पुरुष अर्थात् आत्मा **सम्यक्त्वरूपी रत्न से...** समकितरूपी रत्न। आहाहा! यह तुम्हारे हीरा और माणेक और... भगवानजीभाई! करोड़ और अरब रुपये तो धूल है। यह समकितरूपी रत्न। अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु निर्विकल्प आनन्द का रसिक ऐसा प्रभु, उसकी अन्तर में श्रद्धा, वह समकितरत्न है। जिस रत्न के मूल्य में मोक्ष मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष अर्थात् परम आनन्द दशा। मोक्ष का कोई दूसरा अर्थ नहीं है। पूर्ण आनन्द की दशा की प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति। आहाहा! मोक्ष है न? अर्थात् वास्तव में तो दुःख की नास्ति, ऐसी उसकी ध्वनि है उसमें—मोक्ष में। दुःख से मुक्त। जितना राग-द्वेष, कल्पना का महादुःख, उस दुःख से मुक्त और आनन्द की पूर्ण प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति। आहाहा! उस मुक्ति में सम्यक्रत्न कारण है। उस सम्यक्रत्न के मूल्य में मुक्ति मिलती है। समझ में आया? उस सम्यग्दर्शन से जो भ्रष्ट है।

तथा अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं,... यह लक्ष्यकर बात की है जरा, हों! जैन सम्प्रदाय में से निकले और शास्त्र की बातें तो बहुत करे...। बड़ा पण्डित। श्वेताम्बर साधु निकले जब उसमें से। तब ... बुद्धिवाले तो बहुत, क्षयोपशम तो बहुत हो, शास्त्र की बातें करे। ओहोहो! जगत की करुणा, सन्तों की करुणा से यह सब आया है, हों! कि **जो पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्न से भ्रष्ट है तथा अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं,...** अनेक प्रकार के शास्त्रों। ऐसी भाषा है न? **'बहुविहाइं सत्थाइं।'** बहुत प्रकार का, न्याय, व्याकरण, अनेक प्रकार की विभक्ति, युक्ति, प्रयुक्ति वह सब जानता हो। बहुत प्रकार के शास्त्र का उघाड़ हो।

तथापि वह आराधना से रहित होते हुए... भगवान स्वरूप चिदानन्द का आराधन

नहीं वहाँ। इसलिए आत्मा पवित्र का पिण्ड, उसकी सेवना वहाँ नहीं। आहाहा! इतना ज्ञान करने पर भी और लोक को समझावे और बातें करे। आहाहा! तथापि सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है, वह आत्मा के सेवन से तो भ्रष्ट है। बाहर से ऐसा कहे कि हम बहुतों को जैनधर्म में रखते हैं, वाडा (सम्प्रदाय) में रखते हैं, हटने नहीं देते। आहाहा! बापू! जैनधर्म ही कौन है, उसकी तो तुझे खबर नहीं और वाडा में रखना, वह जैनधर्म है? और ऐसे क्षयोपशमवाले लोगों को ऐसे रखते हैं, लाखों और करोड़ों के राजा को खड़ा रखते हैं धर्म में। उसमें क्या? ऐई! चेतनजी! वे साधु नहीं थे राजा को रखते थे न? शालिभद्र को। कुमारपाल को सब। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्षयोपशम, वह क्या वस्तु है? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्ध पूर्ण घन आनन्द ऐसा जो उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का मार्ग, उस मार्ग से भ्रष्ट हुए और शास्त्र के जानकर रह गये, वह आत्मा का आराधन नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानादि सब गुण ही अतीन्द्रिय हैं। सब गुण ही अतीन्द्रिय हैं। उन अतीन्द्रिय गुणों का आराधन जहाँ नहीं, वहाँ सब चार गति में भवभ्रमण में भटकेंगे, कहते हैं। आहाहा! कहते हैं, देखो!

आराधना से रहित होते हुए संसार में ही भ्रमण करते हैं। है न? '**भमंति तत्थेव तत्थेव**' '**तत्थेव**' अर्थात् जहाँ-जहाँ भटकते हैं अनादि काल से। निगोद और एकेन्द्रिय और दो इन्द्रिय। उसमें जायेंगे, बापू! आहाहा! अनादि के भव ऐसे अनन्त किये हैं। '**तत्थेव**' वहाँ के वहाँ मानो वापस। आहाहा! समझ में आया? जो पुरुष आराधना से रहित। पाठ है न '**आराहणा**'। आराधना का अर्थ ही स्वरूप की दृष्टि और ज्ञान की शान्ति है, वह आराधना है। किसी देव को आराधना है या किसी शास्त्र को, ऐसा कुछ नहीं है। भगवान आत्मा पूर्ण वस्तु परमात्मस्वरूप उसकी दृष्टि, ज्ञान और शान्ति, वही उसका आराधन है। उस आराधनरहित जीव है और शास्त्र की बड़ी बातें करे ग्यारह अंग की, अरे! नौ पूर्व की। आहाहा! आत्मा का ज्ञान न हो उसे, परन्तु नौ-नौ पूर्व का जानपना का विकास

हो जाता है। आहाहा! परन्तु वह सब पर्यायबुद्धि में रहे, पर्याय में रहे उसका विकास है। द्रव्य का आराधन नहीं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य एक-एक गाथा और एक-एक शब्द में... खड़ा करते हैं। समझ में आया?

संसार में ही भ्रमण करते हैं। दो बार कहकर बहुत परिभ्रमण बतलाया है। बहुत ही परिभ्रमण करते हैं, ऐसा कहते हैं। भाई! तेरा पता नहीं लगेगा। कीड़ा नहीं होगा, मनुष्य नहीं होगा ऐसे अवतार में तू जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह भूलने की...

पूज्य गुरुदेवश्री : .... अपनी चीज़ जो अखण्डानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द आत्मा सत् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का सागर है। उसकी जिसे सेवना नहीं, उसने यह ग्यारह अंग का ज्ञान किया, वह सब अज्ञान की सेवना है, कहते हैं। तो उस अज्ञान की सेवना से तो जहाँ है, वहाँ जायेगा। अनन्त काल में... आहाहा! क्या यह डर बतलाया होगा? यह तो उसका फल है, वह बताया है। भाई! तू कहाँ है? तुझे तेरी खबर नहीं होती। तेरी तुझे आराधना नहीं होती। और दूसरे शास्त्र के जानपने से तू जगत को प्रसन्न करे। आता है श्रीमद् में? जगत को भला दिखलाने के लिये अनन्त बार... आता है। बतलाने के लिये, इस जगत को। इस ओर पटिया है। उससे तू प्रसन्न हुआ और तुझसे वे प्रसन्न हुए। आहाहा! है न यह?

यह पत्र है। '**अनन्त बार प्रयत्न किया...**' पत्र है, ४० (वाँ)। **उससे भला हुआ नहीं। क्योंकि परिभ्रमण और परिभ्रमण के हेतु अभी प्रत्यक्ष रहे हैं।** २०-२२ के अन्दर का है। २० और २१। **एक बार यदि आत्मा का भला हो वैसा व्यतीत किया जायेगा तो अनन्त भव का बदला चुक जायेगा।** आहाहा! **ऐसा मैं लघुत्वभाव से समझा हूँ। वैसा करने में ही मेरी प्रवृत्ति है।** आहाहा! **यह महाबन्धन से रहित होने में जो-जो साधन पदार्थ श्रेष्ठ लगें, वही ग्रहण करना, यही मान्यता है। तो फिर इसके लिये जगत की अनुकूलता—प्रतिकूलता क्या देखना?** पूरा बड़ा पत्र है। जगत को भला दिखलाने के लिये। जगत प्रसन्न हो कि यह कुछ है, धर्मी, हों! उसमें तेरा क्या भला हुआ? और जगत प्रसन्न हो और उससे तू प्रसन्न हो। आहाहा! तूने भगवान को रिझाया नहीं।

चिदानन्द प्रभु आत्मा को रिझाया नहीं, वहाँ अभी तू तेरी प्रसन्नता कहाँ मानता है? आहाहा! समझ में आया? देखो न, आचार्य कहते हैं, '**आराहणाविरहिया**' '**विरहिया**' विराहिया नहीं '**विरहिया**' रहित। '**भमंति तत्थेव तत्थेव**' आहाहा!

भावार्थः—जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं... जिनमत की... देखो आया। जिनमत की श्रद्धा, यह कहना है। दर्शन था न पहले? '**दंसणमग्गं**' वहाँ जिनमत (अर्थ) किया है। वहाँ से यह शब्द चला आता है। जिनमत अर्थात् वीतराग परमात्मा ने मोक्षमार्ग कहा निश्चय और व्यवहार और निमित्त। ऐसे मत की श्रद्धा से भ्रष्ट है और शब्दभान जानता हो, न्याय जानता हो। **छन्द, अलंकार आदि अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं...** उसमें क्या हुआ? आहाहा! जगत को रिझाने, प्रसन्न करने अनेक व्याकरण पढ़ा, शब्दशास्त्र पढ़ा। आहाहा!

शब्द, न्याय... भाई—सोगनी तो कहते हैं न एक जगह। न्याय आदि में तो बहुत कठिन पड़ता है। हमारे अनुभव क्षयोपशम बहुत... आवश्यक नहीं, ऐसा कहते हैं। एक जगह कहा है। किस जगह है? ऐई! यह सब... बैठे हैं न! कहीं है। ऐसा कि हमें क्षयोपशम ज्ञान की... क्योंकि न्यायादि करने में तो बहुत ... पड़े। अनुभव आनन्द का अनुभव हुआ, आनन्द सुख को कहना, वह तो हमारे मार्ग में है, कहते हैं। सार-सार रखा है। लोगों को जरा ऐसा लगे। समझ में आया? यह कहीं है, इस ओर पृष्ठ पर। यह तुम्हारे अभ्यास नहीं? चेतनजी को। कहाँ गये जवाहरलालजी? जवाहरलाल! तुम्हारे है न वांचन। सेठ भी ... है यह। खबर नहीं।

जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं... और बड़ा पण्डित हो गया हो शब्द में। आहाहा! शब्द और व्याकरण और। ऐई! पण्डितजी! यह संस्कृत के पण्डित हैं। संस्कृत के प्रोफेसर हैं, हों! नरम व्यक्ति है। धूल में भी है नहीं, उसमें क्या है? बाहर की पण्डिताई में आत्मा कहाँ आया है? आहाहा! **शब्द,...** शास्त्र **न्याय,...** के पढ़े हुए। **छन्द,...** छन्द-छन्द। समझे न? यशतिलक है और सब बनावे। **अलंकार,...** अलंकार। उसका यह अलंकार और इसका यह अलंकार।

मुमुक्षु : साहित्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : साहित्य हुआ। साहित्य न? वे सब **अलंकार आदि अनेक प्रकार के शास्त्र को जानते हैं, तथापि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपरूप आराधना उनके नहीं...** आराधना शब्द पड़ा है न? यह चार बोल लिये। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप। इच्छा निरोध तप, हों! यह अपवास-बपवास, यह तप नहीं। अमृत के सागर को अन्दर में उछालकर जिसे इच्छा की उत्पत्ति नहीं होती, ऐसी दशा को तप कहते हैं। बाकी अमृत के सागर को उछाले बिना अकेले अपवास आदि करे, वह तो लंघण में जाता है। आहाहा! राग मन्द करे तो पुण्य बाँधे। परन्तु दृष्टि जहाँ बदली नहीं, वहाँ उसे क्या लाभ हो? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उन सब शास्त्रों को जाने महा पण्डिताई। ओहोहो! व्याकरण और यह और वह। पानी के पूर की भाँति शब्दशास्त्र। एक शब्द पड़ा, वहाँ उसकी विभक्ति, यह और यह और धातु यह, उसकी धातु यह। समझ में आया? वे सब **सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपरूप आराधना उनके नहीं होती; इसलिए कुमरण से चतुर्गतिरूप संसार में ही भ्रमण करते हैं...** आहाहा! यह मरते हुए राग की एकता में कुचलकर मर जायेगा। यह बाहर के ज्ञान के अभिमान में कुमरण (होगा)—कुचल जायेगा। आहाहा! जीवती ज्योति प्रभु चैतन्य को वह नहीं स्मरण कर सकेगा। समझ में आया?

ओहोहो! एक व्यक्ति का देखा था ७६ में। संघवी थे ध्रांगध्रा के। ध्रांगध्रा, ध्रांगध्रा। मीठालाल संघवी थे। नया उपाश्रय है न... बाजार में। चेतन संघवी नहीं? उनकी गली, उनकी खिड़की। उस खिड़की में पहला घर उनका। हम वहाँ गये थे ७६ में। उसे कोई पीड़ा उठी। खाट में तो न डाला जा सके। क्योंकि खाट से गिरे। परन्तु नीचे रजाई में डाला। परन्तु रह न सके। ऐसे नीचे जाये, ऐसे जाये, नीचे उतरे। ७६ की बात है। पीड़ा... पीड़ा... ...प्राणी की भाँति ऐसे घूमे। रजाई पड़ी रहे नीचे। नीचे जाये, ऐसे जाये... ऐसे जाये... इतनी पीड़ा... क्योंकि जहाँ राग और देह की एकता अन्दर में पड़ी है, आहाहा! भिन्नता का भान किया नहीं, वहाँ एकता में कुचल गया है वह। समझ में आया?

कहते हैं, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र-सम्यक्तप की आराधना जिसे

नहीं और इतने शास्त्र के व्याकरण, शब्द, धातु और विभक्ति और कर्ता-कर्म, षट्कारक वह सब पढ़कर बातें करता हो। आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा पूर्णानन्द का स्वरूप, एक-एक गुण से पूर्ण ऐसे अनन्त गुण का एकरूप, उसकी जिसे सेवना नहीं। बादशाह महाप्रभु। तीन काल-तीन लोक को तो एक पर्याय में समाहित करके जाननेवाला, इतना बड़ा प्रभु है। आहाहा! एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक की अनन्त केवलियों को ग्रास कर डाले (जान ले)। ऐसी तो जिसकी एक पर्याय। आहाहा! ऐसी अनन्त पर्यायें और अनन्त गुणों का स्वामी प्रभु। उसकी जिसे आराधना, सेवना, सन्मुखता नहीं, वह तो कुमरण से मरेगा। आहाहा!

इसलिए कुमरण से चतुर्गतिरूप संसार में ही भ्रमण करते हैं... संसार में ही भ्रमण करते हैं... आहाहा! समझ में आया? **मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते;...** उन्हें मोक्ष नहीं होता। आहाहा! दु:ख से मुक्त होना, वह नहीं होता। दु:ख की दशा में भटका करेंगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह चार गति में दु:ख में, दु:ख में, दु:ख के समुद्र में... आहाहा! उसे सुख का सागर मोक्षदशा में प्रगट नहीं होगा। समझ में आया? अरे! किसका अभिमान करना? हमारे शरीर अच्छा है, हमारे पैसे ठीक हैं। आहाहा! कण्ठजाल हमारी बहुत है, हम वक्ता हैं, लाखों को रिझाते हैं। बापू! यह रिझाये, परन्तु तू न रिझा, तब तक दु:ख से मुक्त नहीं होगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जैनमत से भ्रष्ट हुए हैं। यह शास्त्र के पठन में बहुत चतुर विचिक्षण, होशियार हों, परन्तु उसे आराधना नहीं है। वह तो कुमरण में मरेगा। आहाहा! यह आकुलता की तड़पाहट करके मरेगा। भगवान आत्मा शान्ति का सागर, उसकी ओर तो उसकी नजर नहीं। दुनिया के पठन में जिसकी नजर पड़ी रही। आहाहा! ओहोहो! गजब बात की है न! ऐसे जा तो मुक्ति और ऐसे जा तो संसार है। चाहे जितने शास्त्र का जानपना किया हो। चाहे तो व्यवहार श्रद्धा भी की हो। आहाहा! यह कहते हैं न, भव-भव में—भव भव में कथनमात्र व्यवहाररत्नत्रय, ऐसा भी अनन्त बार किया। नियमसार में आता है न? आहाहा! दिगम्बर सन्तों की कथनी! इसका वाच्य बताती है। समझ में आया?

भगवान परमात्मा स्वयं ऐसा परमस्वरूप, उसकी जहाँ अन्तर्दृष्टि नहीं, उसका

ज्ञान नहीं, उसकी सेवना नहीं और यह सब पठन, व्रत, नियम की क्रिया बहुत हो, मरकर कुमरण करेगा। आहाहा! जिसकी दशा में आत्मा शान्त आनन्द (स्वरूप) समीप में नहीं। और जिसकी दशा में राग और अज्ञान समीप में है। भाई! वहाँ वहाँ जायेगा। आहाहा! अरे! ऐसा अवसर आया। उस समय में नहीं पिरोया। बिजली के झपकारे में मोती पिरो ले तो पिरो ले। बिजली का झपकारा आया, उसमें मोती पिरोया तो पिरोया। चला जायेगा। आहाहा! और ऐसा मनुष्य का अवतार बिजली के झपकारे जैसा आया है। समझ में आया?

उसमें यह **मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते; इसलिए सम्यक्त्वरहित ज्ञान को आराधना नाम नहीं देते।** देखो, पाठ में है। स्वस्वरूप की श्रद्धा और जैनदर्शन की श्रद्धा जहाँ नहीं, ऐसे ज्ञान की आराधना, **ज्ञान को आराधना नाम नहीं देते।** ऐसा कहते हैं। उसने ज्ञान तो किया इतना? परन्तु वह ज्ञान ही नहीं। अकेला शास्त्र का ज्ञान करके दुनिया को बताया, समझाया, लोग प्रसन्न हुए, लोग कहे गजब आता है! ओहोहो! धुने। उसमें क्या हुआ? प्रभु! तू नहीं जगा तब तक उसे इन सबमें थोथा है। आहाहा! समझ में आया? जागती ज्योति को जगाया नहीं, वहाँ सब अन्धकार है। समझ में आया? आहाहा! पाताल कुँआ, उसमें पानी निकालने की बातें करते हैं। पाताल में से पानी लाओ। ज्ञान अन्तर में से लाओ, ऐसा कहते हैं। बाहर के पढ़े, वे तुझे कहीं तारेंगे नहीं। आहाहा! **सम्यक्त्वरहित ज्ञान को आराधना नाम नहीं देते।** आहाहा! यह दो गाथायें हुईं। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ६, मंगलवार, दिनांक ०२-१०-१९७३
गाथा-५, ६, ७, प्रवचन-१६

यह अष्टपाहुड़। पाँचवीं गाथा। **अब कहते हैं जो तप भी करते हैं और सम्यक्त्वरहित होते हैं, उन्हें स्वरूप का लाभ नहीं होता।**

सम्मत्तविरहिया णं सुठ्ठू वि उग्गं तवं चरंता णं।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥५ ॥

पहले में ऐसा कहा था दूसरी में '**दंसणमूलो धम्मो**' दर्शन से भ्रष्ट है, वह सब प्रकार से भ्रष्ट है। बाद में कहा कि समकित से भ्रष्ट है, और शास्त्र बहुत जानता हो तो भी वह भ्रष्ट है। अब यहाँ कहते हैं कि **जो पुरुष सम्यक्त्व से रहित हैं,...** आत्मा की परिपूर्ण शक्ति का स्वरूप, शरीरव्यापी असंख्य प्रदेशी ऐसे आत्मा का अभेद स्वरूप... पर्याय में भेद है, अशुद्धता है। और उसका (आत्मा का) लक्ष्य करके ज्ञान करके जो अभेद पर दृष्टि जाती है, यह उसे सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन जिसे नहीं है...

वे सुष्ठु अर्थात् भलीभाँति उग्र तप का आचरण करते हैं,... अपवास महीने-महीने के करे, छह-छह महीने के अपवास। तप शब्द है न? उग्र तप। उसमें विनय, वैयावृत्य, भगवान आदि देव-गुरु-शास्त्र आदि... उग्र करे। **आचरण करते हैं, तथापि वे बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जो अपना स्वरूप है, उसका लाभ प्राप्त नहीं करते;...** बोधि शब्द से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आत्मस्वरूप, उसका उसे लाभ नहीं होता। समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, वैसा आत्मा जिसने अन्तर दृष्टि से जाना, अनुभव किया, उस अनुभव के बिना जितनी कुछ तप की क्रिया, ध्यान की क्रिया, योग की क्रिया, व्रत की क्रिया, पूजा की क्रिया, यात्रा की क्रिया ऐसी क्रिया करने से उसे आत्मा का स्वरूप ऐसा बोधि—आत्मा का दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ऐसा जो स्वरूप उसे प्राप्त नहीं होता। समझ में आया?

यदि हजार कोटि वर्ष तक तप करते रहें,... मुनिपना पालन करे, दिगम्बर मुनि हों, अट्ठाईस मूलगुण बराबर पाले और तपस्या में भी उग्र वीर्य प्रस्फुरित करे। ऐसा हजार करोड़ वर्ष तक करे, **तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती।** स्वरूप तो जो है,

उसकी अन्तर में दृष्टि अनुभव बिना ऐसे क्रियाकाण्ड से भी वह आत्मा प्राप्त नहीं होता। शास्त्र ज्ञान हो तो भी खोटा है, कहते हैं। सम्यग्दर्शन बिना, ऐसा कहा न पहले? **'बहुविहाइं सत्थाइं'** बहुत शास्त्र पढ़ा हो, परन्तु आत्मा वस्तु क्या है, उसकी दृष्टि और अनुभव नहीं तो वह सब शास्त्र उसे निरर्थक है। और यहाँ तप लिया। पहले दर्शन लिया था, ज्ञान लिया था, चारित्र और यहाँ तप।

कहते हैं, **हजार कोटि वर्ष तक तप करते रहें,...** हजार, करोड़। इतना तप करे तो भी **स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती।** स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। वस्तु अखण्ड अभेद चिदानन्दस्वरूप... पर्याय उसे होने पर भी वर्तमान दशा मलिन होने पर भी, दुःख की दशा होने पर भी, त्रिकाल में जहाँ दृष्टि दे, वहाँ दुःख और पर्याय का वहाँ भान नहीं। अभेद में भेद नहीं, ऐसा कहना है। ऐसी अन्तर अनुभव दृष्टि हुए बिना जो कोई शास्त्र और तप करे, वह सब निरर्थक है। सार्थक है चार गति भटकने में। स्वरूप की प्राप्ति के लिये निरर्थक है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, वास्तव में है। पर्याय है वास्तव में। पर्याय से भेद है। परन्तु उस भेद की दृष्टि छोड़कर अभेद दृष्टि करना, अभेद में भी भेद तो है अन्दर, गुणादि अनन्त। परन्तु अभेद देखने से भेद दिखाई नहीं देता, ऐसी बात है। समझ में आया? एक समय में आत्मा पूर्ण अभेद, उसकी दृष्टि भी... अभेद में गुण अनन्त गुण हैं, परन्तु अभेद पर दृष्टि होने से भेद नहीं दिखता और भेद दिखे तो अभेद दृष्टि नहीं रहती। ऐसी बात है। ऐसी उसकी पर्याय होने पर भी, है अस्ति, तथापि दृष्टि अभेद के ऊपर जाने से वह पर्याय उसमें है ही नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है। पर्याय है सही, परन्तु अन्दर में नहीं। अन्दर में नहीं तो पर्याय नहीं, ऐसा मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि है। उसे सम्यग्दर्शन नहीं है। समझ में आया? और पर्याय के ऊपर और भेद के ऊपर दृष्टि रहे अकेली, वह मिथ्यादृष्टि है। बात तो यह है।

वैसे तो अनन्त बार 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' दिगम्बर जैन का साधु। जैन के शास्त्र पढ़ा, जैन ने कहे हुए व्रत, तपादि किये व्यवहार से, परन्तु वह

आत्मदर्शन वस्तु जो है, उसे स्पर्शा नहीं, दृष्टि में लिया नहीं उस चीज़ को। आहाहा! इसके बिना सब अवतार व्यर्थ गया। कहते हैं, **यहाँ गाथा में दो स्थानों पर 'ण' शब्द है,...** है न? **'सम्मत्तविरहिया णं'** और **'चरंता णं'** वहाँ 'ण' शब्द है। **वह प्राकृत में अव्यय है, उसका अर्थ वाक्य का अलंकार है।** वाक्य में अलंकार। वाक्य को सुधारने के लिये शब्द है। इसका कोई अर्थ नहीं है, ऐसा।

भावार्थः—सम्यक्त्व के बिना हजार कोटि वर्ष तप करने पर भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति... उसमें स्वरूप कहा। यहाँ मोक्षमार्ग। यह तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों उसका स्वरूप है। मोक्षमार्ग का स्वरूप यह आत्मा अखण्ड प्रभु, उसकी अभेद दृष्टि, ज्ञान और चारित्र—रमणता हों। तीनों की एकता कहनी है न? वह मुनि को ही होती है। नग्नमुनि, दिगम्बर हो, उन्हें होती है। इसके अतिरिक्त किसी को तीन एकता नहीं होती। दर्शन-ज्ञान होते हैं, परन्तु चारित्र तो मुनिपने के अतिरिक्त नहीं हो सकता। और इन तीन की प्राप्ति आत्मा के भान बिना नहीं हो सकती। समझ में आया?

मोक्षमार्ग की प्राप्ति। अन्दर में ऐसा लिखा है। मूल पाठ बोधि है। **'बोहिलाहं ण लहंति'** अर्थ में कहा कि स्वरूप की प्राप्ति नहीं करता। भावार्थ में कहा है कि मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती। **'बोहिलाहं'** 'आरोग्य बोहिलाभं' ऐसा आता है न लोग्गस में। बोधि लाभ अर्थात् आत्मा जैसा स्वरूप से परमात्मा अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त जिसके गुण हैं, शक्ति-स्वभाव। रजो, तमो गुण, वह नहीं, हों! वह तो विकार है। रजो गुण, तमो गुण, सात्त्विक गुण, वह सब तो विकार है। वह नहीं। यह तो अन्दर में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त-अनन्त संख्या से शक्तियाँ अर्थात् गुण हैं। ऐसा अनन्तगुण का जो एकरूप, उसकी पर्याय और अनन्त गुण होने पर भी अन्तर्दृष्टि अभेद पर न जाये, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना लाख वर्ष, करोड़ वर्ष अपवास करे, देव-गुरु-शास्त्र का विनय करे, ध्यान करे। अन्दर शून्यरूप हो जाये। कुछ भासित न हो, इसलिए विकल्प से शून्य दिखाई दे उसे। हो नहीं। समझ में आया?

और उसमें कदाचित् साता का उदय ऐसा तीव्र हो अन्दर, तो आनन्द जैसा दिखाई दे, वह आनन्द नहीं होता। बहुत सूक्ष्म बात है। साता के वेदना रस का रस ऐसा मीठा होता है। शुक्ललेश्या होती है न, उसे वह अज्ञानी अनुभव मानता है। वह अनुभव

है नहीं। अनुभव में तो आत्मा, अनन्त गुणा, उसकी पर्याय, उसका सब विवेक आया हो। समझ में आया? परवस्तु... जब ऐसा कहना है कि अत्यन्त दु:ख से विमुक्त हो। इस ध्वनि में कितना सिद्ध हो गया? कि उसकी पर्याय में अनन्त दु:ख है। पर्याय... पर्याय में, हों! तो उससे रहित हो। तो इसका अर्थ यह कि वह पर्याय पलट सकती है। तथा द्रव्य और गुण कायम रहते हैं। और वह दु:ख स्व के लक्ष्य से नहीं होता। संयोग के जनित उत्पन्न हुआ दु:ख है, तो संयोगी चीज़ दूसरी चीज़ है, जगत में अस्ति, यह भी सिद्ध हो गया। संयोगी चीज़ है, दु:ख है, पलटती दशा है, नहीं पलटा हुआ द्रव्य और गुण स्वभाव है। इतना उसे अन्दर में निर्णय में न आवे, तब तक सब व्यर्थ है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि दु:ख से मुक्त हो, ऐसा कहते ही उसकी दशा में दु:ख है। त्रिकाल में दु:ख नहीं। और उसकी दशा में दु:ख है तो आत्मा के आनन्द के आश्रय से दु:ख नाश हो सकता है। तो वह दु:ख है, वह क्षणिक अवस्था है। वह कहीं त्रिकाली चीज़ नहीं, परन्तु है अवश्य। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार अन्दर में पर्याय को जानने पर भी अनन्त गुण वस्तुस्वभाव में अस्तिरूप से होने पर भी और दु:ख का निमित्तपना संयोगी कर्म आदि होने पर भी, उन सबका अस्तित्व ज्ञान ने स्वीकार किया है, परन्तु दृष्टि सबको उल्लंघकर वस्तुस्वरूप की ओर जाये, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। जयन्तीभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! चौरासी के अवतार में इसने ऐसे अभिमान में ऐसे बहुत अवतार व्यतीत किये हैं। धर्म पाया हूँ, समझा हूँ, ऐसा भी इसे अनन्त बार हो गया। समझा नहीं। समझ में आया?

यह कहते हैं कि ऐसी तपस्यायें अर्थात् कि अन्दर अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, खड़े-खड़े—खड़ा रहे दो-दो महीने, अपवास करे छह-छह महीने के, परित्याग कुछ... विनय, वैयावृत्य, विनय करे देव-गुरु-शास्त्र का। उससे क्या? वह तो विकल्प है। ऐसी उग्र तपस्या के प्रकार सेवन करने पर भी अन्तर वस्तु जो अभेद अखण्डानन्द प्रभु, उसका स्पर्श और दृष्टि न करे तो वह सब निरर्थक है। आहाहा! उसमें यह आता है न प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, सज्झाय। सज्झाय शास्त्र की करे। ध्यान करे। ऐसा आता है न? ध्यान अपनी कल्पना से शून्य जैसा दिखाई दे अन्दर। कुछ दिखता नहीं परन्तु शून्य है। वह वास्तविक ध्यान नहीं। समझ में आया? यह बाहर में

आता है, हों! वह सज्झाय। ऐसी क्रियायें अनन्त बार करे तो भी... आहाहा! उसके द्वारा स्वरूप की प्राप्ति नहीं है।

वह करोड़ वर्ष तक करे। लो देखा! **यहाँ हजार कोटि कहने का तात्पर्य उतने ही वर्ष नहीं समझना, किन्तु काल का बहुतपना बतलाया है।** बहुत काल बतलाया है। मनुष्य का आयुष्य थोड़ा है न, इस अपेक्षा से। अभी। **तप मनुष्य पर्याय में ही होता है,...** मुनिपना, उपवास, त्याग, तप अर्थात् यहाँ मुनिपना लेना। बहुत ही तपस्यायें करे, बहुत ही चारित्र क्रियाकाण्ड में। जंगल में रहे, नग्न रहे। ऐसा करने पर भी... अन्य के बाबा तो जंगल में रहकर कन्दमूल खाये। एक रुपया भार खाये तो पन्द्रह दिन तक खाना न पड़े। परन्तु वह सब मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यादृष्टि है। ऐसे अनन्त बार नग्नपना, साधुपना (लिया)। जैन का साधु तो वह कन्दमूल खाये नहीं। एकेन्द्रिय का आहारादि हो। वह निर्दोष उसके लिये बनाया हुआ न ले। इतना मुनिपना उग्र तपस्या करे। तपस्या अर्थात् मुनिपना। परन्तु आत्मा के अन्तर दर्शन बिना, वह सब निरर्थक वृथा है।

यहाँ कहते हैं कि अकेला पर्याय बिना कैसे? कि **तप मनुष्य पर्याय में ही होता है, और मनुष्यकाल भी थोड़ा है, इसलिए तप के तात्पर्य से वह वर्ष भी बहुत हैं। तप के तात्पर्य से वह वर्ष भी बहुत कम कहे हैं।** ऐसा कहे। हजार, करोड़, तो बहुत कहा मनुष्य की अपेक्षा। मनुष्य में तपस्या होती है न दीक्षा, मुनिपना। उसकी अपेक्षा से बहुत वर्ष कहे हजार, करोड़ वर्ष ऐसा। ऐसे तो करोड़पूर्व अनन्त बार हुआ। आठ वर्ष में संसार गृहस्थपना छोड़ा, वनवास रहा, जंगल में रहा, नग्न रहा। आठ वर्ष की उम्र अर्थात् करोड़पूर्व... एक करोड़ (पल्य) में ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष जाये। ऐसा एक पूर्व, ऐसे करोड़पूर्व। उसे तत्त्व की खबर बिना वस्तु... ऐसा अनन्त काल, अनन्त बार ऐसा हुआ है। परन्तु अन्तर आत्मा का भजन, भक्ति हुई नहीं। जो वास्तविक आत्मा अखण्ड परमानन्द प्रभु, उसका भजन अर्थात् अन्दर लीनता और एकाग्रता आत्मा में हुई नहीं, इससे सब निरर्थक है। लो!

ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र, तप को निष्फल कहा है। अब सम्यक्त्व सहित सभी प्रवृत्ति सफल है... आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा कहा, ऐसा आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन हो तो उसे फिर जो कुछ व्रतादि

के शुभभाव हो, और उसका पुण्यबन्ध है, वह व्यवहार से भी मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। समझ में आया? परन्तु वह निश्चय अन्दर का होवे तो। तो उसका सफल है। **ऐसा कहते हैं:—**

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण॥६॥

आहाहा! **अर्थ:—जो पुरुष...** आत्मा। सम्यक्त्व—आत्मा की पूर्णता की अन्दर प्रतीति, उसका ज्ञान, उसका देखना, बल अर्थात् पुरुषार्थ करना। **वीर्य से वर्धमान हैं...** पुरुषार्थ से अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धि को बढ़ाना **तथा कलिकलुषपाप...** आहाहा! इस कलिकाल में स्वस्वरूप से भ्रष्ट होकर पंथ निकले, वह कलिकाल की वासना है, कहते हैं। समझ में आया? **कलिकलुषपाप अर्थात् इस पंचम काल के मलिन पाप से रहित हैं,...** इसका अर्थ कि ऐसे पंचम काल में वीतरागमार्ग स्वरूप जो था, उससे भ्रष्ट होकर अनेक पंथ निकले हैं। उसकी वासनारहित हो, वह वासना कलिकाल के श्रद्धा से भ्रष्ट हुए की वासना से रहित हो, वह पापरहित है। आहाहा! गजब!

कलिकलुषपाप अर्थात् इस पंचम काल के मलिन पाप... आहाहा! कोई एक ही आत्मा माना हो सर्वव्यापक, वह भी महापाप। उसकी वासना घुस गयी। महामलिन मिथ्यात्व का पाप। सर्वव्यापक एक ही आत्मा... कोई छोटा इतना ही आत्मा माना, किसी ने ईश्वरकर्ता माना जीव का। कर्ता बिना वस्तु कहाँ से हो? वे सब पंचम काल के कलुषपाप हैं। आहाहा! समझ में आया? कलि अर्थात् कलि में से पंचम काल लिया। कलुषपाप। आहाहा! ऐसे ऐकान्तिक माननेवाले मिथ्यादृष्टि वासनारूपी पाप नहीं लगने दिया। आहाहा! उस वासना में फँसा नहीं। वह **पाप से रहित हैं, वे सभी अल्पकाल में वरज्ञानी अर्थात् केवलज्ञानी होते हैं।** आहाहा! आत्मा के स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति इत्यादि और ऐसे पाप से जिसकी वासना मलिन नहीं, वह अल्प काल में केवल(ज्ञान) लेगा। समझ में आया? आहाहा!

कितने पंथ देखो न, जैन में भी कितने पंथ, अन्य में भी पंथ जैन के अतिरिक्त। जैन में भी कितने पंथ। आहाहा! उन सबका कलिकाल का पाप कलुषित पाप है वह

सब। आहाहा! ऐसे पाप की वासना से रहित है। '**वरणाणी होंति**' है न पाठ ? वह वर अर्थात् केवलज्ञानी होगा। वह अल्पकाल में केवलज्ञान एकाध-दो भव में होगा। आहाहा! '**अचिरेण**' है न ? '**अचिरेण**' अर्थात् अल्पकाल। अल्पकाल में वह केवलज्ञानी होनेवाला है, परमात्मा होनेवाला है। आहाहा! '**सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियव**' देखा! बल और वीर्य दोनों अलग रखे। सबमें। वीर्य से सबमें वर्धमान। '**जे सव्वे कलिकलुसपावरहिया**' आहाहा! पंचम काल के पाप ऐसे मिथ्यादृष्टि जगे हैं। उनका जिसे असर-वासनारहित है और परमात्मा ने कहे हुए मार्ग की वासना में बसे हैं। वह अल्प काल में केवल(ज्ञानी) होंगे। '**वरणाणी**' प्रधान ज्ञानी होंगे। प्रधान अर्थात् केवलज्ञान उत्कृष्ट ऐसा। आहाहा! वे (अज्ञानी) निगोद और नरक में जायेंगे, मिथ्यात्व के सेवन करनेवाले उसके फलरूप से तो नरक और निगोद अनन्त है।

भावार्थ :- इस पंचम काल में जड़-वक्र जीवों के निमित्त से... देखो! स्पष्टीकरण किया है। पाठ में है सही न! '**कलिकलुस**' पंचम काल यह है, उसमें जड़ और वक्र जीव निकले हैं। **निमित्त से यथार्थ मार्ग अपभ्रंश हुआ है।** सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ आत्ममार्ग, जैनमार्ग कहो, आत्ममार्ग कहो, यह उसमें से अपभ्रंश हुए। **यथार्थ मार्ग अपभ्रंश हुआ है।** उसमें लिखा है या नहीं ? रात्रि नहीं कहा था ? सुजानमल प्रायः यह सब एकता... एकता करने लगे, परन्तु किसकी एकता ? सुजानमल सोनी है न! आहाहा! किसी के साथ विरोध नहीं, वैर नहीं। प्रेम सब... तत्त्वेषु मैत्री। परन्तु वस्तु की स्थिति हो, ऐसा दूसरा किस प्रकार हो ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे विपरीत मान्यता का कष्ट हो और, उसके कारण दूसरे को दुःख लगे। क्या हो ? यथार्थ कहा नहीं जा सकता तब तो। और यथार्थ कहते हैं, इसलिए वैर और विरोध होता है, ऐसा कुछ नहीं है। भाई ने कहा नहीं ? मोक्षमार्गप्रकाशक में आया था।... हम वैर-विरोध करें तो न ? हम तो यथार्थ मार्ग कहते हैं। आता है अन्दर।

मुमुक्षु : पहले भाग में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न! बहुत डाला है, हों! याद आते-आते कहाँ का

कहाँ आ जाता है। यह वाँचते हुए ख्याल आ गया हो न अटककर।... है। ऐसा होवे तब तो वैर-विरोध लगेगा। परन्तु हम विरोध करें तो न? हमारे कहाँ करना है? हम तो सत्य बात है, उसे प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! भगवान है—परमात्मा है। वह भी भूल को जानेगा, फिर वैर करने की क्या आवश्यकता? परन्तु इससे सत्य को छिपाना, सत्य को प्रसिद्ध न करना, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? अभी तो सब यह चला है न? एकता करो, समन्वय करो, हिन्दू और मुसलमान सब समान। जैन और अजैन सब समान।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : रामजीभाई यही कहते हैं न।... लो। लो वहाँ जाये वह फकीर के उसमें। अरे! बापू! यह सब बातें करना है। सत्य क्या है? उसे शोधना नहीं और असत्य को छोड़ना नहीं। इसलिए फिर सबका खिंचड़ा करके सबको समान रखना। इस बात का मेल रहे। आहाहा! इन पैसेवालों को समान करते हैं। लोग क्या कहलाये? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : साम्यवाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : साम्यवाद। साम्यवाद। साम्यवाद भाई कहे। सब समान, परन्तु समान किस प्रकार हो? एक को रोग आता हो, पैसे थोड़े,... पड़े अधिक।

मुमुक्षु : परन्तु त्रिकाल अपेक्षा से...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो बाहर से करना चाहते हैं न! बाहर से किसी प्रकार से न रहे। एक को रोग ऐसा लागू पड़ा हो बेचारे को, पैसे थोड़े और रोज का खर्च हो। निर्धन हो जायेगा। तथा एक को पैसे बहुत हो, और रोग कुछ न आवे, निरोगता रहते। ...उसे किस प्रकार तुम सबको समान रखोगे? शरीर की दशा ही समान नहीं। परिणाम समान नहीं, उसके फल समान कहाँ से आवे? आहाहा! समान फल तो यहाँ आवे। दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्रगट करे, जैसा अपने को हो, वैसा दूसरे को हो। वहाँ समता साम्यवाद इकट्ठा लागू पड़ता है। आहाहा! ....

मुमुक्षु : ... सच्चा साम्यवाद

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे की बातें। परन्तु उसे रहे किस प्रकार? इतनी क्षुधा

अधिक हो अधिक खुराक खाये, पैसा घट जाये। एक को थोड़ी खुराक, पैसा अधिक। किस प्रकार इसमें? शरीर की स्थिति से देखो तो भी समान नहीं होगा। किसी को लड़के दो-पाँच हों उनके प्रमाण में... खर्च हो, उसके प्रमाण में... वह सब किस प्रकार? एक-एक ... पति-पत्नी दो हों। अब उनका समान आना, उनका समान किस प्रकार रहे? यह वस्तु ही खोटी है। अन्दर में समता समान रहे। सब भगवान आत्मा को प्राप्त करो, वीतराग होओ, यह साम्यभाव है। आहाहा!

यह कहते हैं, **उसकी वासना से जो जीव रहित हुए वे...** आहाहा! **यथार्थ जिनमार्ग के श्रद्धानरूप सम्यक्त्वसहित ज्ञान-दर्शन के अपने पराक्रम-बल को न छिपाकर...** यह यथार्थ जिनमार्ग वीतराग सर्वज्ञ ने आत्मा का मार्ग कहा, उसका श्रद्धानरूप समकित सहित। समकित सहित। **ज्ञान-दर्शन के अपने पराक्रम-बल को न छिपाकर...** अपना पुरुषार्थ ढँके बिना। आहाहा! अपने पुरुषार्थ को दर्शन-ज्ञान-चारित्र में प्रयोग करके और पुरुषार्थ का गोपन न करके, **अपने वीर्य अर्थात् शक्ति से वर्धमान होते हुए...** शक्ति से, अपनी शक्ति प्रमाण निर्मलता में श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति में **वर्धमान होते हुए प्रवर्तते हैं,...** आहाहा! धर्मी को तो संवेग होता है। इसलिए मोक्ष के मार्ग में उत्साह होता है और उसके फल में उत्साह होता है। बन्धमार्ग में ज्ञानी को उत्साह नहीं होता। होता है अशुद्ध परिणाम, बन्ध पड़ता है, परन्तु उसमें उत्साह नहीं है। निर्बलता के कारण वे हो जाते हैं। पर के कारण नहीं, हों! आहाहा!

वीर्य की निर्बलता से ऐसे विकारभाव चारित्र के हों, परन्तु उसका उत्साह वहाँ नहीं है। उत्साह तो स्वभाव—सन्मुख होकर, स्वभाव की पर्याय बढ़ाना, ऐसा उत्साह है। आहाहा! समझ में आया? यह आया था आठ गुण में। स्थिर करे। अपने को भी कुछ अस्थिरता होती हो तो स्थिर करे। श्रद्धा में तो ठीक, परन्तु अस्थिरता में तो इस प्रकार से परिणाम बहुत हो जाते हों, उसमें स्थिर करे। यह नहीं हो। यह स्थिति ऐसी! मनुष्य स्थिति पूरी होने को आयी और तुझे इस आराधना में क्यों यह दखल करते होंगे? समझ में आया? ऐसी आराधना की स्थिति में कोई दखलरूप न हो तो उसे छोड़ दे। आहाहा! मरण—देह छूटने का काल नजदीक है। उसमें ऐसे स्वरूप के आराधन में विरुद्धता हो तो उसे छोड़कर स्थिर हो। आहाहा! समझ में आया? देखो यह मार्ग!

बल और फिर वीर्य, दो लिये हैं न? बल में दर्शन-ज्ञान-चारित्र में सबमें वीर्य स्फुरित किया, वर्धमान हो। सब में वृद्धि करे। आहाहा! सन्तों के वाक्य शब्द के बाण हैं। आहाहा! भाई! तेरा दर्शन, ज्ञान, शान्ति और तप और बल, उसमें वृद्धि होना चाहिए। ऐसे पंचम काल की वासना तुझे नहीं स्पर्शी और तुझे आत्मा का दर्शन और ज्ञान है तो उसके गुणों की पर्याय की वृद्धि करना चाहिए। आहाहा! जिससे देह के अन्त में आराधक होकर देह छूटे, वह अल्प काल में बोधि को पायेगा। रात्रि में कहा था न! अल्प काल में वह चारित्र को भी प्राप्त करेगा। आहाहा! समझ में आया?

बल को न छिपाकर तथा अपने वीर्य अर्थात् शक्ति से वर्धमान होते हुए प्रवर्तते हैं, वे अल्प काल में ही केवलज्ञानी होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। आहाहा! अपनी दशा भी साथ में वर्णन करते हैं न! ...में वृद्धि करते-करते पंचम काल में हम हैं, केवलज्ञान अभी नहीं। समझ में आया? आहाहा! जरा चारित्र की उग्रता केवलज्ञान के लिये चाहिए, वह चारित्र ऐसा नहीं है। यही कहते हैं। आहाहा! उसे वर्धमान करते-करते आराधक हो कि जिससे तुझे तीन की भविष्य में पूर्ण प्राप्ति होकर केवलज्ञान होगा। यहाँ तो अन्दर की बातें हैं, भाई! आहाहा!

अब अन्दर में रस जमा है, उसे अधिक जमा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर से उदास... उदास... हो जा। तब लेना है केवलज्ञान, बापू! तुझे तो मोक्ष जाना है न! अर्थात् कि मोक्षरूप परिणमना है न? आहाहा! प्रत्येक गुण में वीर्य द्वारा वृद्धि कर। तब कहे, इसमें क्रमबद्ध कहाँ आया वापस? यही क्रमबद्ध आया, भगवान! यह वीर्य की वृद्धि की और बढ़े, वह उसके क्रम में यह आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! अरेरे! तेरे मरण में बापू! तेरी माँ और तेरी बहू रोयी हैं, उनके (आँसुओं के) बिन्दुओं के मेरुओं के ढेर हों। आहाहा! तुझे क्या करना? तेरे मरण के काल में तेरी सुविधा का अभाव, उसे देखकर तेरी माँ और तेरी पत्नी रोये, उनके आँसू समुद्र, स्वयंभूरमण समुद्र भर जायें इतने अनन्त आँसू गिरे हैं भाई! तुझे खबर नहीं। अब प्रसन्न होकर आत्मा में आ न अब! आहाहा! और उसकी वृद्धि करके पूर्णता को प्राप्त हो न, प्रभु! ऐसा कहते हैं। अपनी बात डालकर दूसरे को भी ऐसा करना, ऐसा होता है, बताते हैं। आहाहा! मार्ग तो यह, दूसरा क्या होगा? यहाँ कुछ पुण्य बाँधेगा तो स्वर्ग मिलेगा, यह मिलेगा,

यह बात कहाँ है ? यहाँ तो अपूर्णता है, उसे पूर्णता करना, ऐसी बात है। भले उसे खबर है कि अभी वह अपूर्ण है। पुण्य होगा तो स्वर्ग में जाया जायेगा। परन्तु हमारे बढ़ाने की तो यह दशा है। आहाहा! पुण्य बढ़ाना है, बड़े स्वर्ग में जाना है, वहाँ से मरकर बड़े राजकुल में अवतरित होना है—यह भावना ज्ञानी को नहीं है। आहाहा! आ जाये बीच में वह। समझ में आया ?

यहाँ तो '**सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण**' बस, आहाहा! शुभभाव बढ़ाना, ऐसा नहीं इसमें। शुद्धता बढ़ाना, भाई! पुण्य / शुभभाव विशेष तो अपराध है। अपराध को बढ़ाना है तुझे ? आहाहा! निरपराधी दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा को वर्धमान कर, प्रभु! आहाहा! तू कहाँ का जानेवाला ? तू तो सिद्ध का पड़ोसी सिद्ध में जानेवाला। अब नरक और निगोद तुझे नहीं होता। आहाहा! ऐसा जिसे आत्मदर्शन और श्रद्धा-ज्ञान हुआ, उसकी अब तू वृद्धि कर। चारित्र न हो तो चारित्र (कर) और चारित्र हो तो निर्बलता हो, उसकी (बल की—चारित्र की) वृद्धि कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : दो शब्द आये तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र के नहीं आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्शन, ज्ञान, चारित्र और बल सबमें वीर्य स्फुरित किया है। सबमें शक्ति स्फुरित करता है। बल में भी शक्ति विशेष स्फुरित करता है। सबमें वर्धमान करे, ऐसा। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य, बल उसमें वृद्धि कर ऐसी बात है। आहाहा! हीन न रहने दे, ऐसा कहते हैं। सब शक्तियों को बढ़ा पर्याय में। आहाहा! यह तो भाई! जिसे अन्तर में लगी है, उसे लगे ऐसी है। आहाहा! श्रीमद् कुछ कहते हैं न, नहीं ? 'जिसे लगी, उसे लगी...' ...पुकार आती है। ....वेदना ऐसी आती है। श्रीमद् में भी बहुत ... तो ऐसे... स्पष्ट दो नहीं हुए, इसलिए बड़ी गड़बड़ उठायी। ...ऐसे खिर गये। आहाहा!

यथार्थ जिनमार्ग के श्रद्धानरूप सम्यक्त्वसहित ज्ञान-दर्शन के अपने पराक्रम-बल को न छिपाकर तथा अपने वीर्य शक्ति से वर्धमान होते हुए प्रवर्तते हैं,... आहाहा! वर्तमान प्रवर्तित दशा को वर्धमान करता है, ऐसा कहते हैं। कमी तो नहीं, परन्तु उसमें इतना है, इसमें भी नहीं।

मुमुक्षु : इससे आगे जा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे बढ़। बढ़, भाई! ऐसा तेरा काल है न, नाथ! आहाहा! तुझे तो मोक्ष में तुझे जाना है न? अर्थात् कि पूर्णदशा को प्राप्त करना है न, ऐसा। जाना है अर्थात् क्या कूदना है वहाँ? तुझे पूर्णदशा में जाना है न? तो अब ऐसी दशा को बढ़ा। भगवानजीभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! क्या शब्द में भाव है न वापस! भगवान आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य का भाव यह है। आहाहा! तुझे दर्शन और ज्ञान हुआ, चारित्र हुआ। मुनि है न स्वयं? अब तू उसमें से वृद्धि कर। पंचम काल, कलिकाल के पाप मिथ्यात्व के। अकेला मिथ्यात्व... मिथ्यात्व विस्मृत है चारों ओर। उसमें असर होने नहीं दिया, वासना में से हट गया। अब तो इसमें बढ़ा। समझ में आया? **मोक्ष प्राप्त करते हैं।** देखो!

• • •

अब कहते हैं कि सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह आत्मा को कर्मरज नहीं लगने देता... आहाहा!

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं बन्धुच्चिय णासए तस्स॥७॥

... **अर्थः—जिस पुरुष के हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरन्तर प्रवर्तमान है,...** आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा स्वयं, उसके जिसे दर्शन हुए हैं, उसकी जिसे प्रतीति हुई है, जिसे परमात्मा स्वयं स्वरूप से स्वयं है, उसकी भेंट हुई है श्रद्धा में। ऐसे समकिती पुरुष... समकितरूपी जल का प्रवाह, वह प्रवाह जहाँ पानी का हो, वहाँ रज नहीं रह सकती। आहाहा! वह **निरन्तर प्रवर्तमान है,...** सम्यग्दर्शन की परिणति का प्रवाह निरन्तर है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन का काम दर्शन करता है। निरन्तर उसकी परिणति वर्तती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उसके कर्मरूपी रज-धूल का आवरण नहीं लगता... उसे कर्मरूपी रज नहीं लगती। समझ में आया? **पूर्व काल में जो कर्मबन्ध हुआ हो, वह भी नाश को प्राप्त होता है। 'बद्धमपि नश्यति तस्य'** नये रजकण नहीं आते, पुराने रजकण उदय आकर खिर जाते हैं। क्योंकि भगवान आत्मा में आत्मा का वास है। आहाहा! फिर उसका कोई ऐसा अर्थ ले लेवे कि समकित का अकेला प्रवाह है, वहाँ बिल्कुल कर्म आता ही नहीं—यह यहाँ अपेक्षा नहीं है। और उसे कोई बन्ध ही नहीं, ऐसा ले लेवे तो यहाँ यह

अपेक्षा नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शनसहित ज्ञान और शान्ति साथ में वर्तते हैं। ऐसा समकित का प्रवाह बहता है। ज्ञान और शान्ति का। उसे कर्मरज नहीं लगती। और पूर्व की हो, वह खिर जाती है। आहाहा! समझ में आया? अथवा उस सम्यग्दर्शन का प्रवाह जितना है, उसके कारण से जो मिथ्यात्व आदि के भाव थे, वे भाव उसे नहीं हैं। उसका कर्म उसे नहीं लगता और पूर्व का कोई पड़ा हो तो उसे उदय आकर खिर जाता है, मिथ्यात्व आदि का उदय, अनन्तानुबन्धी का उदय। आहाहा! ऐसी धर्मकथा कैसी यह! ऐई! हिम्मतभाई! ... ऐसी कैसी! दया पालना, व्रत पालना, पूजा करना, दान करना, भक्ति करना। आहाहा! बापू! किसे कहना भाई!

श्रीमद् कहते हैं न, हे भगवान! आपने कही हुई दया मैं समझा नहीं, ऐसा कहा है, भाई! हों! देखा नहीं, ऐसा नहीं है। है? क्षमापना में है। पहिचाना नहीं। इस शब्द का वजन है। देखा नहीं अलग, परन्तु पहिचाना नहीं। आप किसे दया कहते हो?

मुमुक्षु : दया, शान्ति, क्षमा और पवित्रता मैंने पहिचानी नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह पहिचाना नहीं, ऐसा कहा है। श्रीमद् तो, इस काल में ऐसा पुरुष दूसरा कोई नहीं था। ऐसा उन्होंने रामबाण मारा है। परन्तु यह बाहर का जरा वह रह गया था, उसे लोग समझ नहीं सके। ऐसा प्रसंग नहीं रहा स्पष्ट करने का। यहाँ तो भाई बहुत स्पष्ट करने की बात है। थोड़ी भी बात... पर की वासना पोसाये ऐसा नहीं अन्दर।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे समकितरूपी जल का प्रवाह निरन्तर प्रवर्तता है। आहाहा! धारावाही सम्यग्दर्शन बहता है, ऐसा कहते हैं। उसे **कर्मरूपी रज-धूल का आवरण नहीं लगता तथा पूर्व काल में जो कर्मबन्ध हुआ हो, वह भी नाश को प्राप्त होता है।** यह क्या सिद्ध किया? कि सम्यग्दर्शन—आत्मा का अनुभव होने पर भी, अभी पूर्व के कर्म पड़े हैं। समझ में आया? कर्म है ही नहीं, हटकर पूर्ण शुद्ध हो गया, ऐसा नहीं है, अभी इसे खबर नहीं। जो ऐसा मानता है कि समकित हुआ तो हो गया, अब पूर्ण अपने कुछ है नहीं। अपने को राग भी नहीं और द्वेष भी नहीं—यह तो मिथ्यात्वभाव है।

यहाँ तो समकित जितनी जो दशा निर्मल हुई और उसके कारण जो नये आवरण आते थे मिथ्यात्व के कारण, वह रज उसे नहीं है। और उस प्रकार के पूर्व का बन्धन हो उसे मिथ्यात्व—अनन्तानुबन्धी का, वह खिर जाता है। समझ में आया? भाषा तो ऐसी ही आवे न! आती है न! समकित का ध्यान करता है। गाथा नहीं आती? आता है न, आठों कर्मों का नाश करता है। परन्तु उसका अर्थ यह समकित अर्थात् पूरा स्वभाव पूर्ण। आहाहा! है, गाथा आती है। मिथ्यात्व की दोनों गाथा आती हैं। मिथ्यात्व का ध्यान करते हुए अनन्त संसार में भटकने का है। आठ कर्म का नाश हो जाता है। ओहोहो! दिगम्बर सन्तों की वाणी अन्दर में चोट मारती है।

यह यहाँ कहते हैं कि ऐसा जो स्वरूप शुद्ध पूर्ण प्रभु, उसका जिसे भान हुआ, सम्यक् हुआ, उसे भी अभी पूर्व के कर्म बाकी पड़े हैं अभी। केवलज्ञान हुआ नहीं और यह क्या हुआ? संसार में चौथे गुणस्थान में... अरे! मुनि हो सच्चे। उन्हें अभी कर्म पड़ा है न पूरा? अज्ञानभाव से बँधा हुआ कहीं खिर नहीं गया। आहाहा! अब यह वापस स्वीकार करना कि पूर्व में बाँधा हुआ कर्म जो है, वह नये आवरण में आता नहीं। धर्म की पर्याय के कारण। पूर्व के वे खिर जाते हैं, इसलिए उसे लेप नहीं लगता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थः—सम्यक्त्वसहित पुरुष को (निरन्तर ज्ञानचेतना के स्वामित्वरूप परिणमन है, इसलिए)... पुराने में है यह? नहीं होगा। पुराना है पुराना। **रागादिक भावों का स्वामित्वपना नहीं होता,...** बस इतना। यह कोष्ठक में डाला है। **सम्यक्त्वसहित पुरुष को (निरन्तर ज्ञानचेतना के स्वामित्वरूप परिणमन है, इसलिए)...** इसका अर्थ यह कि आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसका ही धर्मी को स्वामित्व है। धर्मी को राग होने पर भी उसका स्वामित्व नहीं। स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से। समझ में आया? स्वामित्व नहीं, इसलिए उसे वह बन्धन नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। बन्ध करता नहीं, ऐसा कहकर, बन्ध का नाश करता है।

कर्म के उदय से रागादिक भावों का स्वामित्वपना नहीं होता,... कर्म के निमित्त से ... दृष्टि स्वभाव पर होने से कर्म के निमित्त से राग-द्वेषादि होते हैं समकित दृष्टि को, धर्मी जीव को। उसे **स्वामित्व नहीं होता,...** राग का स्वामित्व अर्थात् अपने में उसे

खतौनी नहीं करता, ऐसा। राग को स्वभाव में नहीं मिलाता। समझ में आया? **इसलिए कषायों की तीव्र कलुषता से रहित परिणाम उज्ज्वल होते हैं;...** कषायों की मलिनतारहित परिणाम उज्ज्वल होते हैं। **उसे जल की उपमा है।** लो!

जैसे—जहाँ निरन्तर जल का प्रवाह बहता है, वहाँ बालू-रेत-रज नहीं लगती;... बालू-रेत। **वैसे ही सम्यक्त्वी जीव कर्म के उदय को भोगता हुआ भी कर्म से लिप्त नहीं होता...** इस प्रकार का बन्धन हो मिथ्यात्व आदि का। बाकी भोगता है, उसका जो राग है, उतना तो बन्धन है। इस अपेक्षा से। दर्शन की अपेक्षा से। ज्ञानी के भोग निर्जरा का हेतु, इसकी टीका की, लो। एक ओर लोग कहे कि ज्ञानी को भोग, निर्जरा हेतु होते हैं और एक ओर शुभभाव बन्ध का कारण है? कौन कहता है? सुन! टीका की है। ज्ञानी को भोग निर्जरा का हेतु है? वह तो दृष्टि की अपेक्षा से बात की है।

दृष्टि के स्वभाव का जोर है, इतना उसे ऐसी जाति का बन्धन नहीं, इसलिए अबन्ध कहा गया है। उसका भोग बन्ध न हो तो फिर उसे भोग छोड़ने का रहा नहीं। अधिक... अरे रे! यह हमारे होनहार में डाला है। होनहार में कहकर यह लोग ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु कहते हैं। गजब भाई! जीव को शल्य यह है। आहाहा!

जैसे—जहाँ निरन्तर जल का प्रवाह बहता है,... वहाँ नहीं। ऐसे **भोगता हुआ भी कर्म से लिप्त नहीं होता तथा बाह्य व्यवहार की अपेक्षा से ऐसा भी तात्पर्य जानना चाहिए कि जिसके हृदय में निरन्तर समकितरूपी जल का प्रवाह बहता है, वह सम्यक्त्वी पुरुष इस कलिकाल सम्बन्धी वासना कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु...** यह समकिती जीव, वर्तमान में कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र बहुत हैं, उन्हें यह नमस्कार—वन्दन करता नहीं। पंचम काल में। कुदेव, परन्तु जिसे देव-गुरु की खबर नहीं, देव—सर्वज्ञ कैसे होते हैं? कुशास्त्र, जो शास्त्र कल्पित बातें करे, वे सब कुशास्त्र और कुगुरु। उन्हें नमस्कार—वन्दन आदि धर्मी जीव नहीं करता। यह कलिकलुष के पाप की रज नहीं लगने देता।

अतिचाररूप रज भी नहीं लगाता तथा उसके मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियों का आगामी बन्ध भी नहीं होता। देखा! मिथ्यात्वसम्बन्धी। उस सम्बन्धी का बन्ध उसे नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ७, बुधवार, दिनांक ०३-१०-१९७३
गाथा-८, प्रवचन-१७

यह अष्टपाहुड़। इसमें दर्शनपाहुड़ पहला। **अब कहते हैं कि जो दर्शनभ्रष्ट हैं...** उपोद्घात है न ऊपर? **ज्ञानचारित्र से भ्रष्ट हैं, वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही, परन्तु दूसरों को भी भ्रष्ट करते हैं, यह अनर्थ है...** पहली तो यह बात है, यह जैन अष्टपाहुड़ में, दर्शनपाहुड़। अर्थात् तो आत्मा सम्यग्दर्शनसहित आत्मा शुद्ध अखण्ड अभेद, उसकी अनुभूतिसहित प्रतीति और उसका स्वरूप का चारित्र आचरण अर्थात् दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन और भूमिका के योग्य उसे अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, अचेल आदि, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प राग और नग्नपना, यह तीन होकर जैनदर्शन कहलाता है। भगवान का अभिप्राय यह है। यह सम्यग्दर्शन आत्मा का और उसका ज्ञान, उसका चारित्र और उसके साथ अट्ठाईस मूलगुण व्यवहार से जो वीतराग ने कहे, ऐसा उसे विकल्प होता है और शरीर की नग्नदशा (होती है), उसे जैनदर्शन कहते हैं। सोमचन्दभाई!

मुमुक्षु : उसे ... जीव को?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जीव, उस जीव की दशा को, वह जीव उसकी दशा और राग तथा नग्नपना। उसे जैनदर्शन कहते हैं। उसे जैनमत कहते हैं। मणिभाई!

जिसे मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों जिसे प्रगट हुए हैं और जिसे अट्ठाईस मूलगुण का, पाँच महाव्रतादि का विकल्प है, उस भूमिका के योग्य और नग्नमुद्रा, वह धर्म की मूर्ति है और वह जैनदर्शन है और वह जैन का मत है। मूलजीभाई!

मुमुक्षु : मत अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिप्राय। वीतराग का अभिप्राय यह तीन वस्तु होकर जैनदर्शन है। समझ में आया? क्योंकि मूल तो ऐसा जो स्वरूप अनादि का था, उसमें से दुष्काल में भ्रष्ट हुए, उनके सामने यह बात है। बाबूभाई! आहाहा!

जिसे आत्मा अखण्ड पूर्णानन्द प्रभु, जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसा आत्मा। अन्यमति ने कहा वह आत्मा वैसा नहीं। ऐसा जो आत्मा अन्दर में स्वसन्मुख में होकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की दशा और वह आत्मा ऐसा, उसका ज्ञान और उस आत्मा में

रमणता की वीतराग चारित्रदशा, वह जैनदर्शन अथवा वह निश्चयमोक्षमार्ग अथवा वह जिनमत, उसे जैनमत कहते हैं। उसके साथ व्यवहार, उसे अट्ठाईस मूलगुणादि हों, ऐसा भी व्यवहार होता है और जिसकी नग्नदशा हो। अभ्यन्तर त्याग, बाह्य त्याग और अशुभ का त्याग और नग्नदशा, उसे यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। मणिभाई! अकेले समकित को नहीं, यहाँ तो जैनदर्शन अर्थात् यह। उसकी श्रद्धा से जो भ्रष्ट हुए, ऐसा जो मार्ग अनादि का सनातन सत्य, उससे भ्रष्ट हुए और वस्त्रादि रखकर मुनिपना मनवाने लगे, वे दर्शन से भ्रष्ट, ज्ञान से भ्रष्ट, चारित्र से भ्रष्ट, सबसे भ्रष्ट, लो! नवनीतभाई! ऐसा है। यह जरा कठिन लगे लोगों को।

यह कहते हैं।

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति॥८॥

अर्थः—जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं... इसमें दो अर्थ। ऐसा जो जैनमत अनादि का मोक्ष का मार्ग तथा व्यवहार और निमित्त ऐसा हो, ऐसे मार्ग से जो भ्रष्ट हुए और अन्दर के स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, उससे जो भ्रष्ट है, वह भ्रष्ट है। समझ में आया? **तथा ज्ञान-चारित्र में भी भ्रष्ट हैं, वे पुरुष भ्रष्टों में भी विशेष भ्रष्ट हैं।** अर्थ में थोड़ा लेंगे कि जो ऐसा जैनदर्शन है, उससे तो भ्रष्ट श्रद्धा में हुए, परन्तु अपने माने हुए शास्त्र प्रमाण भी ज्ञान और चारित्र नहीं उनका माना हुआ। भाई! अर्थ में यह लिखा है। अर्थ में है न?

सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र तो दूर ही रहा, जो अपने मत की श्रद्धा, ज्ञान,... सामान्य बात है न, इसलिए इसमें से निकाला है। उनके मत प्रमाण जो चारित्र उनका कहलाता है, उससे भी जो भ्रष्ट है। ठिकाना नहीं था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उससे पहले श्वेताम्बर मत निकल गया था। उसके सामने यह बात है।

मुमुक्षु : उसकी स्पष्टता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी स्पष्टता है। वह वीतराग का मार्ग सनातन मोक्ष का मार्ग अनादि, जैनदर्शन अनादि कहो, या दिगम्बर दर्शन कहो या मोक्षमार्ग कहो, निश्चय और

व्यवहार तथा निमित्तपना नग्न का कहो, यह जैनदर्शन की रीति है। सोमचन्दभाई! इसे जैनदर्शन कहा है। अकेले समकितसहित को नहीं।

मुमुक्षु : दर्शन, गुण...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों से। अन्तर में भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित वीतरागता प्रगट हुई है और बाह्य में उसके अट्ठाईस मूलगुण और नग्नदशा ऐसा जिसका आचरण व्यवहार से है। ऐसा सनातन जैनदर्शन अर्थात् कि वस्तु का दर्शन अर्थात् कि पदार्थ की मर्यादा की दशा यह थी। उसमें से जो भ्रष्ट हुए और अपनी कल्पना से पंथ चलाया, वे जैनदर्शन से भ्रष्ट हैं। आहाहा! लोगों को कठिन (लगे)। सबकी एकता रखो। परन्तु एकता किस प्रकार करना?

मुमुक्षु : अन्यमति कहाँ, जैनों में से भी भ्रष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जैन में से भ्रष्ट है। अन्य की तो बात भी कहाँ है यहाँ तो? आहाहा! यह तो सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ जो सन्त का, मोक्ष का मार्ग, उसमें रहा हुआ व्यवहार का विकल्प और उसमें अजीव की नग्नदशा का निमित्त, वह ऐसा जैनदर्शन होता है। वह धर्म की मूर्ति, वह धर्म की मूर्ति, वह जैनदर्शन की मूर्ति। आहाहा! वह जैनदर्शन की ऐसी प्रणालिका अनादि की थी, उसमें से जो भ्रष्ट होकर अपनी कल्पना से वस्त्र, पात्रसहित साधुपना माना, मनाया। अपनी मान्यता से आत्मा के श्रद्धा बिना व्यवहार श्रद्धा को सम्यक्त्व मनाया, व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र को। वे सब सत्यधर्म से भ्रष्ट हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग अनादि का है।

यह यहाँ कहते हैं, जो ऐसे जैनदर्शन और सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है, वह तो ज्ञान और चारित्र से भी भ्रष्ट है। क्योंकि यह शास्त्र की बातें। ऊपर बात आ गयी है। शास्त्र की बातें पढ़े हुए हों, बात तो करे, नौ तत्त्व ऐसे हैं और वैसे हैं। परन्तु वह ज्ञान उसका सच्चा जैनदर्शन का स्वरूप यह था। उसमें से भ्रष्ट हुए उनका सब ज्ञान भी खोटा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सब ज्ञान खोटा?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब खोटा। एक-एक का।

मुमुक्षु : ग्यारह अंग और नौ पूर्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह अंग और नौ पूर्व का पठन खोटा।

मुमुक्षु : यह तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उस समय था कहाँ? उस समय था कहाँ? यह तो गृहीत मिथ्यात्व की बात है। उसके पास तो था ही कहाँ तब कुन्दकुन्दाचार्य के समय? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य से सौ वर्ष पहले इस मत में दो भेद पड़ गये थे। सनातन जैनदर्शन, सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने प्रवाहरूप से जो कहा था, उस मार्ग से वहाँ बारह वर्ष के दुष्काल में भ्रष्ट हुए। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य पुकारते हैं। भाई! ऐसा मार्ग तो वीतराग का है और उसे हम जैनदर्शन कहते हैं, उसे हम धर्म की मूर्ति कहते हैं। आहाहा! अकेली नग्नदशा और अट्ठाईस मूलगुण, ऐसा नहीं। तथा अकेला निश्चय और ऐसा व्यवहार न हो, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! उसे यहाँ जैनदर्शन... यह दर्शनपाहुड़ वह है। दर्शनपाहुड़ अर्थात् कि यह दर्शन। फिर उसके अन्तर्भेद में सम्यग्दर्शन, उसके अन्तर्भेद में आता है। ऐसा जैनदर्शन है। अनादि का सनातन वस्तु का स्वरूप, ऐसी जिसे श्रद्धासहित स्व का आश्रय लेकर जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है, वह सम्यग्दृष्टि है। भले उसे ज्ञान विशेष न हो, चारित्र न हो, तो भी वह दर्शन से भ्रष्ट नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। जैन दिगम्बर में जन्मे, उन्हें भी खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो सनातन अनन्त केवली महाविदेह में या यहाँ भरत, ऐरावत में अनन्त केवली ऐसा जो जैनदर्शन का, जैनमत का... पहली गाथा में यह था न! '**दंसणमग्गं**' पहली गाथा में। दर्शन का मार्ग। दर्शन का मार्ग यह है। समकित मार्ग, ऐसा नहीं यहाँ। पहली गाथा में। है पहली गाथा, देखो! पहली गाथा है न! '**दंसणमग्गं**' है न? ओहोहो! '**दंसणमग्गं वोच्छामि**' तीसरा पद है। यह दर्शनमार्ग की बात है। अकेले समकित की नहीं। दर्शन के मार्ग को कहूँगा। जैनदर्शन का अभिप्राय और मत जो है, वह हम कहेंगे। समझ में आया? दूसरी में यह लिया '**दंसणमूलो धम्मो**' धर्म का मूल दर्शन है। ऐसा दर्शन निश्चय और व्यवहारवाला, वह धर्म का मूल है। ऐसी जिसे श्रद्धा हो और वह श्रद्धा होने पर भी विशेष ज्ञान न हो, चारित्र न हो तो भी वह दर्शन दृष्टि है, सम्यग्दृष्टि है।

वह धर्म के पंथ में है। समझ में आया? तो ऐसे धर्म से बाह्य से भी जो भ्रष्ट हुए और ऐसे मत को न स्वीकार कर अपने मत की बातें चलायीं, वे सब जैनदर्शन से विरुद्ध हैं। सोमचन्दभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, देखो! **कई तो दर्शनसहित हैं।** है? दूसरी लाईन। सम्यग्दर्शनसहित है। ऐसा जैनमत है, ऐसी श्रद्धा है। और आत्मा के आश्रय से दर्शन हुआ है। ऐसे दर्शनसहित है। **कितन्तु ज्ञान-चारित्र उनके नहीं है...** विशेष ज्ञान ऐसे समझाने की शक्ति, ऐसा नहीं हो। क्षयोपशम ज्ञान विशेष न हो, परन्तु वह सम्यग्दर्शनसहित है। ऐसा जो जैनमत अनादि का, उसे मानता है और उसका ज्ञान रखकर स्व का आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन हुआ है, वह जीव भले दर्शनसहित हो और ज्ञानरहित हो। ज्ञानरहित का अर्थ? विशेष ज्ञान न हो और चारित्र भी न हो, तो भी वह दर्शनसहित तो है। बाबूभाई! उसे ऐसा कहा है। पूरी शैली अलग।

ऐसे तो दर्शनपाहुड़ अर्थात् समकित पाहुड़, सूत्रपाहुड़ अर्थात् ज्ञानपाहुड़ और चारित्र, ऐसा ले। परन्तु उनका—कुन्दकुन्दाचार्य का हृदय यह है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जो धर्म के स्तम्भ तीसरे नम्बर पर आये। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। वे स्वयं फरमाते हैं। ओहो! ऐसा जो जैन का अभिप्राय और मत था कि चैतन्य भगवान के आश्रय से दर्शन, उसके आश्रय से ज्ञान और उसके आश्रय की लीनता और यहाँ पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ नहीं, इसलिए साधक जीव को... रमणीकभाई! यह अट्ठाईस मूलगुण कर्मचेतना है। उनका प्रश्न था सवेरे।

ज्ञानचेतना है और जितना राग है, उतनी कर्मचेतना है। और जितना राग है, उतना कर्मफलचेतना दु:ख का वेदन भी है। सवेरे का प्रश्न था भाई का। ऐसा कि ज्ञानचेतना और कर्मचेतना दृष्टि की प्रधानता कथन जहाँ हो, वहाँ कर्म और कर्मफलचेतना धर्मी को नहीं होती, वह स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से कथन है और उसके ज्ञान की पर्याय देखने से, पर्यायनय से देखने पर मुनि को छठवें गुणस्थान में भी पंच महाव्रत के विकल्प हैं, उतनी कर्मचेतना है। और उसे दु:ख वेदता है, इसलिए वह कर्मफलचेतना है। आहाहा! उस कर्मचेतना और कर्मफलचेतना के भी दो प्रकार। एक तो आनन्दमूर्ति परमात्मा स्वयं है, उसका जो शुद्ध उपयोग हुआ, वह शुद्ध कर्मचेतना। और वह शुद्ध

कर्मचेतना है। शुद्ध परिणाम हुए न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतराग परिणति हुई, वह शुद्ध कर्मचेतना, शुद्ध कर्मचेतना। वीतरागी परिणामरूपी कार्य, उसमें चेता है। और उस समय आनन्द का वेदन है, उतना शुद्ध कर्मफलचेतना है। मणिभाई!

मुमुक्षु : कार्य रीति से कर्मचेतना...

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य-कर्म है न, उतना राग है न! कार्य है न और वह भी कार्य है न शुद्ध? यह तो वीतरागमार्ग, बापू! यह कहीं साधारण की बात नहीं है, यह। दिगम्बर दर्शन, वह कोई कल्पित नहीं, वह कोई पक्ष नहीं। वस्तु की स्थिति यह है। समझ में आया? वस्तु की जाति ही ऐसी है। उसे यहाँ दिगम्बर दर्शन कहते हैं। उसे यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। समझ में आया? क्या आया यह?

—कि यह आत्मा अपनी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का परिणमन जो है, वह परिणमन का कार्य है। कार्य है, इसलिए उसे शुद्ध कर्मचेतना कहा जाता है और उस कर्मचेतना के काल में उसे शुद्ध के आनन्द का वेदन है। इससे उस शुद्ध कार्यचेतना का फल शुद्ध आनन्द का वेदन भी उसे है। वह कर्मफलचेतनावन्त है। अब उस समय जो पंच महाव्रतादि के परिणाम हो, या समकिती को नीचे रागादि तीव्रादि हो तो वह उसे कर्मचेतना अशुद्ध है और जितना अशुद्ध है, उतना उसे वेदन है, दुःख है।

मुमुक्षु : शुभ आया इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव, वह अशुद्धचेतना है और उसका फल दुःख है। समझ में आया? जितना शुभभाव है, उतनी अशुद्धचेतना है। अशुद्धचेतना कर्मचेतना। और उतना उसे दुःख का वेदन है।

मुमुक्षु : ...वेदन साथ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों साथ में ही है। ज्ञान दोनों जानता है। दर्शन की मुख्यता से कथन हो, तब तो स्वभाव का साधन है, ऐसा बताते हैं। तब उसे कर्म और कर्मफलचेतना नहीं, ऐसा बताते हैं। परन्तु वापस ज्ञाननय से, पर्यायनय से बतावे, तब जितने अंश में राग और जितने अंश में राग का फल दुःख उसमें है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का बहुत सूक्ष्म। लोगों को हाथ आया नहीं। बाहर में भटका भटक... आहाहा! शान्तिभाई!

यह तो वह तुम्हारा प्रश्न है, उसके ऊपर से सब चलता है। वह कपिल कोटड़िया के साथ में चर्चा हुई होगी इनको। ऐसा कि ज्ञानचेतना न हो, तब तो विकल्प है, वह सब कर्मचेतना हो समकित को। खोटी बात है। धर्मी को ज्ञानचेतना उपयोगरूप हो, न हो, अलग बात है। परन्तु ज्ञान का अन्दर वेदन है, ऐसी ज्ञानचेतना तो निरन्तर होती है। आहाहा! धर्मी युद्ध में खड़ा हो या विषय की वासना के काल में खड़ा हो, तथापि उसे ज्ञानचेतना तो निरन्तर है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, झूठी बात है। खोटी बात है। यहाँ कहाँ खबर है? निर्विकल्पदशा के समय तो उपयोगरूपी ज्ञानचेतना है और सविकल्प आया, तब लब्धरूप ज्ञानचेतना है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो सत्य जैसा केवली को कहना था, उसे जगत को प्रसिद्धि किया है। दुनिया को जँचे, न जँचे, स्वतन्त्र चीज़ है। आहाहा! अरे! ऐसे मनुष्य काल में, भव में ऐसी बात इसे सुलटी नहीं बैठे तो बापू कहाँ बैठायेगा? कहाँ जायेगा? किस काल में? भाई! आहाहा!

एक डिब्बे में कल देखा, भाई! एक कण रह गया होगा पेड़ा का, एक कण अन्दर। पहले का कुछ। उसमें दो-तीन कीड़े पड़ गये। ओहोहो!

मुमुक्षु : अन्दर कौने में पड़ा रहा हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौने में पड़ा रहा होगा। कौने में। उसमें पतले कीड़े। अब ऊपर सब थे वह यह गोलियाँ कहलाती है न? पिपरमेन्ट की। गोलियाँ नहीं आती पिपरमेन्ट की? इतनी-इतनी नहीं सफेद। वह सौ-डेढ़ सौ गोलियाँ पड़ी होगी ऊपर। वह ऐसे बाहर निकाली वहाँ कौने में एक पतला इतना कीड़ा। पतला डोरे जैसा, ऐसे दो-तीन देखे। ओहोहो! ऊपर डिब्बा बन्द। मुझे लगा यह किस योनि में जीव उत्पन्न हुआ! आहाहा! इसे श्वास लेने का क्या स्थान? किस प्रकार यह है? मैंने कहा। ऊपर डिब्बा इतना। यह आता है न। यह डिब्बा। यहाँ रखे थे न डिब्बे, देखो न! रखे थे। वहाँ दो-तीन पड़े हैं। उसमें उन लड़कों के लिये दे जाते हैं न। अन्दर साफ नहीं हुआ, कौने

में पड़ा रहा। उसमें इतने पतले-पतले डोरे जैसे लाल कीड़े और सूक्ष्म दो। आहाहा! कहाँ से आये? आत्मा वहाँ आया। और इतने कीड़ों में भी वह पूर्णानन्द प्रभु वस्तु स्वभाव से तो पूर्ण है, हों! ओहोहो! उसकी पर्याय में इतनी हीनता! कि कहीं कौने में इतना टुकड़ा रह गया होगा, उसके ऊपर दूसरी चीज़ आ गयी वहाँ उपजे। आहाहा! देखो न यह कुदरती, कौन ईश्वर कौन करे और कहाँ है यह? आहाहा! ऐसा जहाँ लिया, वहाँ अन्दर हिलने लगी। भाई से कहा नहीं? सुमति से कहा न? दूसरे ने कहा। कीड़े हैं, कहते हैं। ओहोहो! भगवान! कहाँ तेरी अवस्था! किस जगह उपजा यह? ऊपर इतना बोझा। उसे दबाव नहीं होगा ऐसा। वह बेचारा इतना-इतना हो और उसके बीच में पोल रह गयी हो, वहाँ आगे इतना कौने में। आहाहा! किसका इसमें अभिमान करना और किसका? आहाहा! ऐसी दशाओं में अनन्त बार गया भगवान! ऐसी स्थिति में अनन्त बार गया। और मिथ्यात्व का फल यह है। यह सब मिथ्यात्व का फल है।

वह यहाँ परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान! जो कोई दर्शन से भ्रष्ट है, वह तो ज्ञान और चारित्र दोनों से भ्रष्ट है। परन्तु कोई दर्शन से भ्रष्ट नहीं। समकितसहित है और जैनदर्शन का यह स्वरूप है, ऐसा मोक्षमार्ग, उसे वह मानता है। भले उसे ज्ञान और चारित्र विशेष न हो, तो वह दर्शनभ्रष्ट नहीं है। वह मार्ग में है। आहाहा! नवरंगभाई! 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री वीतराग।' तीन लोक के नाथ के मुख से ऐसा निकला, भाई! आहाहा! अरे! इसे खबर भी नहीं होती कि वीतराग का मार्ग क्या है? खबर बिना उसकी श्रद्धा कहाँ से आयेगी? समझ में आया? आहाहा! ...देखो! तीन लोक का नाथ अन्दर परमात्मस्वरूप शक्ति। क्षेत्र भले छोटा हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। उसका अन्तर भाव अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का सत्त्व है। उस जीव का उस सत् का वह सत्त्व है पूर्ण। आहाहा! उसकी पर्याय में इतनी हीनता कि ऐसे कीड़े जैसी उत्पत्ति में—योनि में कहाँ जाकर उत्पन्न हुआ यह? आहाहा! यह उपजना चौरासी का अनन्त बार मिथ्यात्व के कारण हुआ है। शास्त्र का ज्ञान भी किया। व्रत और नियम, ऐसे पालन किये कि चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे। उससे क्या हुआ? वह कहीं मूल चीज़ नहीं है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। पहले तो यह कहा कि दर्शन से भ्रष्ट है, वह तो ज्ञान और चारित्र तीनों से भ्रष्ट है। अब **कई तो दर्शन सहित हैं...** ऐसा जैनदर्शन का मार्ग है, ऐसी उसे श्रद्धा है। और तदुपरान्त स्व के आश्रय से समकित प्रगट हुआ है। समझ में आया? आहाहा! **किन्तु ज्ञान-चारित्र उनके नहीं है...** ज्ञान ऐसा विशेष न हो कि सबको समझा सके, या विस्तार कर सके, ऐसा न हो। अन्तर आत्मा का दर्शन हुआ है। आहाहा! और चारित्र न हो। अभी चारित्र वीतरागता जो चाहिए छठवें (गुणस्थान) की मुनि को, वैसी दशा न हो। स्वरूपाचरण हो। समझ में आया?

तथा कई अन्तरंग दर्शन से भ्रष्ट हैं... कितने ही तो अन्दर श्रद्धा से भ्रष्ट है। ऐसा जैनमत है और ऐसा सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय से होता है, उससे भ्रष्ट है। **तथापि ज्ञान-चारित्र का भलीभाँति पालन करते हैं...** शास्त्र का ज्ञान और व्रतादि के नियम बराबर पालते हों। समझ में आया? आहाहा! यह दर्शन की महिमा तो देखो! यह दर्शन न हो, भ्रष्ट हुआ हो। जैनमत में रहे हुए भी भ्रष्ट हुए हों अन्दर। वे ज्ञान-चारित्र पालते हों, व्रत और नियम तथा शास्त्र का ज्ञान, तो भी वे भ्रष्ट ही हैं। **और जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों से भ्रष्ट हैं,...** दर्शन से भ्रष्ट, ज्ञान से भ्रष्ट, चारित्र से भ्रष्ट। आहाहा! **वे तो अत्यन्त भ्रष्ट हैं;...** गजब बात भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे लिये क्या करना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहिचान करके श्रद्धा करना, यह तुम्हारे लिये (करनेयोग्य है)।

मुमुक्षु : ऐसी श्रद्धा करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रद्धा नहीं। अन्तर की श्रद्धा। यह क्या कहा? कहा नहीं? **अन्तरंग दर्शन से भ्रष्ट हैं...** ऐसा कहा न? आहाहा! उलझन की बात नहीं है यह। यह तो ऐसा मार्ग है। पूर्णानन्द प्रभु की पर्याय में ऐसा होता है। अशुद्धता अशुद्ध राग, अशुद्ध वेदन, वह तो ज्ञानी को भी होता है, परन्तु ज्ञानी को आत्मा के भानसहित ज्ञानचेतना में ऐसा होता है, अज्ञानी को अकेली राग और विकार, राग के दु:ख का फल का वेदन है। अकेला राग का कार्य और राग का वेदन अज्ञानी को है। केवलज्ञानी को अकेला ज्ञान

और आनन्द का वेदन है, अशुद्धता का कार्य और अशुद्धता का वेदन केवली को नहीं। एक थोड़ा अशुद्ध है, वह अलग बात है। ज्ञान तो जानता है। अभी केवली को भी अशुद्धता थोड़ी योग कम्पन्न की रही है, उसे ज्ञान जानता है। दूसरे की बात। यह तो केवली है इतना। दूसरे को इतनी अशुद्धता है। आहाहा! और चौदहवें गुणस्थान में भी अभी अशुद्धता का अंश है, इसलिए उसे असिद्ध कहा है। असिद्ध। संसारी कहा। आहाहा! इतना अंश है न अशुद्ध? यहाँ तो त्रिकाल सर्वज्ञ से कहा हुआ मार्ग है। एक समय-समय के पहलू की नाड़ी पकड़ी है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें कहाँ हैं सुनने को? ऐसा मार्ग भगवान का। भगवान का अर्थात् कि तेरा। तेरा मार्ग ही यह है। आहाहा!

वे तो अत्यन्त भ्रष्ट हैं; वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही, परन्तु शेष अर्थात् अपने अतिरिक्त अन्य जनों को भी नष्ट / भ्रष्ट करते हैं। ऐसी प्ररूपणा करके, श्रद्धा से, दूसरे जीवों को भ्रष्ट करे। भ्रष्ट तो उसके कारण से वह होता है न? व्यवहार से कहा जाता है न? आहाहा! अपना वेश खोटा, नग्नपना न हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान न हो। और यह भी एक मार्ग है। पंचम काल में उग्र नहीं हो सकता तो यह भी एक मार्ग है, ऐसा करके स्वयं भ्रष्ट और दूसरे को भ्रष्ट करे। आहाहा! **जनों को भी नष्ट करते हैं।** बड़ी विद्वतता सीखे हों, शास्त्र तो पढ़े हों। क्षयोपशम हो। ऐसा भी मार्ग है, यह भी मार्ग है। यह शुभराग, वह भी शुद्धता का कारण है। क्षयोपशमज्ञान, वह क्षायिक का कारण है, उससे क्षायिक होता है, ऐसा कहते हैं। श्वेताम्बर ऐसा कहते हैं। शुभभाव आदि क्षयोपशमभाव है, उससे क्षायिक होता है। अरेरे! समझ में आया? यह जैन दिगम्बर में ऐसा मानते हैं, वहाँ प्रश्न क्या है? आहाहा!

जो राग पृथक् है, दोष है, उससे निर्दोषता होगी, यह जैनदर्शन नहीं। होता अवश्य है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक सन्तों को, धर्मी को, ज्ञानी को भी भक्ति का भाव, पूजा का भाव, दया का भाव, ऐसा व्रत का भाव अवश्य होता है।

मुमुक्षु : परम्परा कारण कहा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा कारण, वह तो उसे अशुभ टला है और इसे टालेगा, वह कारण नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग है। सम्यग्दृष्टि को शुभभाव में अशुभ टला है

और अब शुभ को टालकर शुद्ध में जायेगा, इसलिए परम्परा कहा। अकेले मिथ्यादृष्टि को शुभ परम्परा कहाँ था? वह तो वहाँ ही पड़ा है। आहाहा! वीतरागमार्ग परमेश्वर जिनेन्द्रदेव के भाव समझना बहुत कठिन है। बहुत पुरुषार्थ है वहाँ। वह कोई साधारण बात नहीं है। बाहर के पैसे-बैसे करोड़ों और लाखों पूर्व के पुण्य के कारण दिखाई दे, वहाँ कोई चतुराई काम नहीं करती, ऐसा होगा मणिभाई, नहीं? बाहर पैसे में चतुराई काम करे?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ धूल भी करे नहीं। इसे वहाँ ससुराल का मिला, वहाँ कहाँ होशियार थी?

मुमुक्षु : लोगों में तो चतुराई की छाप पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग तो गहल-पागल। चतुर कहलाये सोमचन्दभाई और यह... के स्वामी लो। ऐसा कहता था कल कोई। जैसे वह कौन बामण वाले। चन्दुभाई। ऐसा कोई कल कहता था। यह नहीं बामण वाले। चन्दुभाई नहीं? नरम व्यक्ति। ऐसी सोमचन्दभाई की छाप ऐसी है। पूरी जाम्बूडी। सब देखने आवे। ... कोई कहता था। वह कहीं महत्ता भी नहीं और वह कुछ अधिकता भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह साधन हो तो यहाँ आया जाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी साधन नहीं। आया जाये, क्या आया जाये वह? साधन तो अन्तर के स्वभाव की पर्याय शुद्ध प्रगट हो, वह साधन है। आहाहा! उसकी श्रद्धा में तो निश्चित करे। आहाह! पहले बीज तो बोबे ऐसे। आहाहा!

मुमुक्षु : उस बीज का वृक्ष कितने वर्ष में उगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ...तो उसकी दृष्टि के प्रमाण में। उसकी दृष्टि की कैसा कहाँ सन्मुखता का जोर कितना है? परन्तु वह तो बीज बोया, वह तो फलेगा ही, यहाँ तो यह कहते हैं। यहाँ तो एक ही बात है। आहाहा! वह कोई वर्ष-बर्ष अधिक न निकले। यह तो फलेगा ही वह। जिसे चैतन्य शुद्ध आनन्द की जहाँ रुचि हुई, फले बिना रहेगा ही नहीं। उसे अनुभव होगा, केवलज्ञान लेगा। अल्प काल में लेगा ही वह। आहाहा! समझ

में आया ? परन्तु उसकी अपनी साक्षी आनी चाहिए न ! समझ में आया ? ओहो ! ऐसा निर्मल प्रभु का मार्ग, उसे लोगों ने यह क्रिया करूँ और यह क्रिया करूँ, और उससे होगा (ऐसा मानकर) वीतरागमार्ग को भ्रष्ट कर दिया है। यद्यपि वह मार्ग है, वह मार्ग है। उसे कहीं कलंक लगता नहीं। परन्तु माननेवालों ने कलंक स्वयं को लगाया है। आहाहा !

भावार्थ :- यहाँ सामान्य वचन है,... सामान्य वचन अर्थात् समझे न ? दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट। **इसलिए ऐसा भी आशय सूचित करता है कि सत्यार्थ श्रद्धान...** सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान, सच्चा **चारित्र तो दूर ही रहा,...** सच्चा सम्यग्दर्शन, सच्चा सम्यग्ज्ञान, सच्चा चारित्र, वह तो एक ओर रहो। **जो अपने मत की श्रद्धा, ज्ञान, आचरण से भ्रष्ट हैं,...** परन्तु उसने माना हुआ भाव है, उसके चारित्र के वर्तन का उसमें जो कथन है, उससे भ्रष्ट हो गया। बहुत पोल चलती थी तब उसमें भी। द्रव्यानुयोग का ज्ञान हो तो अध:कर्मी दोष लगे नहीं। यह क्या करे ?

मुमुक्षु : वे तो मूल जानते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, परन्तु वह वस्तु है। ऐसा भ्रष्ट कहाँ से लाये ? इसीलिए ये कहते हैं। उन्होंने माने हुए जैनदर्शन से आगे निकल गये। भ्रष्ट हुए। उन्होंने माने हुए प्रमाणज्ञान और चारित्र का ठिकाना नहीं। ऐसे भी थे न तब। ऐसा है। भाई ने नहीं लिखा ? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। पाँचवें अध्याय में कि उनके कहे हुए साधन प्रमाण उनका वर्तन कहाँ है ? यह आता है, भाई ! पाँचवें अध्ययन में आता है। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी दोनों को जहाँ लिया है। उनके माने हुए के प्रमाण उनके व्रत को कहाँ है ? वह यह बात कहना चाहते हैं। समझ में आया ? ऐसा जैनदर्शन वीतरागमार्ग, दिगम्बरमार्ग से तो भ्रष्ट हुए, परन्तु उसमें कहे हुए उनके प्रमाण में व्रत से भ्रष्ट हैं। उसका भी कहाँ ठिकाना है ? आहाहा ! उनके लिये बनाया हुआ आहार ले, अध:कर्मी ले, उद्देशिक ले और उन्हें...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान धूल में भी... ज्ञान समकिती को द्रव्यानुयोग का ज्ञान नहीं ? मुनि हो उसे तत्त्वज्ञान नहीं ? ज्ञान बिना तत्त्वज्ञान बिना का कौन जीव होगा चौथे,

पाँचवें, छठवें में। उसे नहीं चलता। उसके लिये चौका करके कण भी बनाया हो, बिल्कुल मार्ग नहीं है। वह जैनदर्शन नहीं है। ऐई! ऊधमभाई!

मुमुक्षु : श्रावक जैसे मुनि होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा हो? नहीं। नहीं... नहीं... नहीं... श्रावक तो अपनी श्रद्धा दृष्टि आदि को रख सकता है। यह कहा है वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में। वह यही प्रश्न है। परन्तु श्रावक तो हो सकता है। चारित्र न हो, व्रत न हो, अष्ट मूलगुण हो और समिति हो तो श्रावक हो सकता है। आहाहा! मुनिपना ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : वह चौथे में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है नहीं, वह तो उसमें लिखा था न, मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। टोडरमलजी ने सबकी नाड़ी पकड़ी है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत जोरदार काम किया है। ओहोहो! इतना हुआ हो तब तो भी उसमें मूल रकम सब आ गयी है। सबकी नाड़ी पकड़ी है। तेरी नाड़ी मन्द चलती है। आहाहा! दिगम्बर सनातन सत्य में आये हुए और संस्कारी जीव...

जो सत्य श्रद्धा वीतराग का मार्ग सर्वज्ञ का... जो आत्मा का वह मार्ग है, वह सर्वज्ञ का मार्ग है। आहाहा! ऐसे मार्ग से तो भ्रष्ट हुए, परन्तु उनके अपने माने हुए शास्त्र और उसके आधार से भ्रष्ट हैं वे। उनके व्रत के पालन के कहाँ ठिकाना है? ऐसा कहते हैं। ऐई! चेतनजी! आहाहा! किसी के लिये नहीं, बापू! हों! किसी का पक्ष का विरोध करके निन्दा करना, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वरूप यह है। समझ में आया? मार्ग ही ऐसा है, वहाँ दूसरा क्या हो?

मुमुक्षु : थोड़ी छूट दी जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूट-बूट नहीं दी जाती।

मुमुक्षु : पंचम काल है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल अर्थात् क्या? हलुवा में आटे के बदले धूल डाली

किसी ने ? पंचम काल है। घी के बदले पेशाब डाला किसी ने ? गुड़ के बदले कीचड़ डाला किसी ने ? पाँचवें काल का हलुवा है वह। आहाहा! मिठास में अन्तर हो, चौथे काल के हलुवे में, परन्तु वस्तु में अन्तर नहीं होता। मार्ग ऐसा है। आहाहा!

कहा नहीं था ? एक व्यक्ति ने पूछा था कि यह उद्देशिक आहार का यदि स्पष्टीकरण हो न तो बहुत अच्छा हो। ऐसा स्पष्टीकरण पूछा। उद्देशिक आहार ऐसा श्रावक... कहने का अर्थ ऐसा कि श्रावक करे उसमें कुछ... कुछ कहने का नहीं कोई ऐसा, उसे दोष नहीं लगे, ऐसा हो तो संगठन बहुत हो। मैंने कहा—अभी परमात्मा का विरह पड़ा और उनके पीछे ऐसा किया, बापू! यह शोभा नहीं देता भाई! श्रावक, श्रावक क्षुल्लक के लिये, साधु के लिये बनाते हैं न यह चौका ? ऐसा कि उसमें कोई ऐसा हो तो बहुत अच्छा पहला। कहा, वह दोष उसे नहीं लगता। क्योंकि वह तो गृहस्थ करता है न ? बिल्कुल खोटी बात, बापू! आहाहा! द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी नहीं, बापू! द्रव्यलिंगी साधु तो नहीं, परन्तु द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी नहीं। पूछनेवाले क्षुल्लक थे। सुनते थे। किसी के लिये कुछ व्यक्ति के लिये नहीं लिखा जाता। वस्तु की स्थिति यह है। भगवान के विरह में, केवली परमात्मा के विरह में उसे बदल डालना, दूसरा रूप देना, ऐसा नहीं होता भाई! समझ में आया ? चारित्र न पले तो चारित्र नहीं है, ऐसा मानना। परन्तु चारित्र न पले और चारित्र है, ऐसा मानना ? आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो यह कहते हैं कि **सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र तो दूर ही रहा, जो अपने मत की श्रद्धा, ज्ञान, आचरण से भी भ्रष्ट हैं, वे तो निरर्गल स्वेच्छाचारी हैं।** देखो! अपने को चाहे जिस प्रकार से चलता है, ऐसा कहते हैं। बहुत ऐसा चलता है, हों! **वे स्वयं भ्रष्ट हैं, उसी प्रकार अन्य लोगों को उपदेशादिक द्वारा भ्रष्ट करते हैं...** आचरण भी ऐसा लगे बाहर का, ओहो! त्यागी हुए, हजारों रानियाँ छोड़ी, यह छोड़ा और उपदेश में यह आवे, उसके द्वारा दूसरे को भ्रष्ट कर डाले। अब यह बड़े करोड़पति थे, अरबोंपति थे, वे साधु हुए हैं वे... उसमें हुए हैं। श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का ठिकाना नहीं। क्या छोड़ा उसने ? आहाहा! पहले मिथ्यात्व छोड़ना चाहिए, वह तो छोड़ा नहीं। उसकी तो उसे खबर भी नहीं कि मिथ्यात्व छूटे तो क्या होता है ? आहाहा! और राग छूटे तो चारित्र की आनन्ददशा कैसी आती है ? ऐसी तो खबर नहीं। समझ में आया ?

वह अपने बाह्य आचरण और उपदेश द्वारा, स्वयं तो भ्रष्ट है परन्तु दूसरे को भ्रष्ट करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : गृहीत मिथ्यात्व...

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहीत मिथ्यात्व ही है वह।

मुमुक्षु : ऐसा कि सच्चे देव और सच्चे गुरु को, सच्चे ... को मानता है न? ... उसमें क्या बाधा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मानता ही नहीं उन्हें। वे तो सच्चे हैं, उससे विपरीत होकर निकले, उसमें कहा हुआ भी वे मानते और वे आचरण करते नहीं, ऐसा कहते हैं। सच्चे देव तो अरिहन्त त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें आहार नहीं होता, पानी नहीं होता, रोग नहीं होता। वहाँ तो रोग सिद्ध किया है। क्षुधा, आहार, पानी सिद्ध किया है केवली को। ऐसा स्वरूप होता है देव का?

मुमुक्षु : णमोकार मन्त्र तो दोनों का एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : णमोकार मन्त्र समान। वह तो शब्द में समान, उसमें क्या हुआ? भाव में बड़ा पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। बौद्ध में आता नहीं भाई? यह तो रामजीभाई बहुत बार कहते हैं। ज्ञान और समाधि।

मुमुक्षु : शब्द भी आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द भी आवे तो भी क्या है? हो। भाव में अन्तर। शब्द आवे उसमें क्या हुआ? आहाहा! यह तो णमो अरिहंताणं। जिसने कर्मरूपी शत्रु को जीता और जिसे जैनपना केवलज्ञान प्रगट हुआ है, जिसका शरीर परमौदारिक हो गया, जिन्हें नख में रोग की गन्ध भी न हो, उन्हें आहार, पानी और औषध कभी नहीं होते। उन्हें आहार, पानी और औषध सिद्ध करना और आहार सिद्ध करना, व्यवहार की श्रद्धा का ठिकाना नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं होता। वेदनीय कर्म को जला-जलाकर, बदल-

बदलकर यहाँ आये हैं। असाता को टालते... टालते... टालते... कितनी धारावाही करते-करते यहाँ आये हैं। ऐसी असाता उन्हें होती नहीं। भाई! मार्ग तो यह है। परीषह कहा है न उन्होंने? कि परीषह तो एक उदय है, इतनी अपेक्षा से कहा है। शरीर में रोग हो और आहार लेने जाये, औषध आकर खाये, यह बिल्कुल केवली का स्वरूप जानते नहीं।

मुमुक्षु : औदारिक शरीर कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : औदारिक शरीर, वह तो कहते नहीं। परमौदारिक कहते नहीं। उन लोगों में परमौदारिक नहीं। औदारिक है। है न सब? यह सब लिखा है अन्दर। सुन न! भगवान तीर्थंकर...

मुमुक्षु : आधा अंग....

पूज्य गुरुदेवश्री : आधा होता नहीं कुछ। वह है न, खबर है न। एक बार कहा था। कहा था एक बार। अरे..! बापू! यह मार्ग अलग, बापू! तेरा तर्क काम न आवे वहाँ। वस्तु का स्वभाव हो, वहाँ तर्क क्या काम आवे? आहाहा! परमौदारिक शरीर। तीर्थंकर तो जन्मे तब से उन्हें आहार होता है, दिशा (नीहार) नहीं होता। दिशा (नीहार) नहीं होती। आहाहा! तीर्थंकर किसे कहते हैं? जिनका जन्म से आहार हो, दिशा पानीमात्र न हो। महापवित्रता लेकर आये और पुण्य प्रकृति को लेकर आये।

मुमुक्षु : उनके शरीर में गन्दापना....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! होता है। आहाहा! तीन ज्ञान लेकर, क्षायिक समकित लेकर आये हैं और परमौदारिक शरीर तो पहले से माता के गर्भ से है। बापू! यह तो वस्तु की मर्यादा है। यहाँ कोई पक्ष की बात है, यह नहीं। अब दिगम्बर ऐसा कहते हैं और हम ऐसा कहते हैं—ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उनके शास्त्र में ...

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा हो तो सब कल्पित लिखा है। कल्पित बनाया है। क्या हो? भगवान के नाम से चढ़ाये। लोग शंका कर नहीं सके। शंका करे तो भगवान में शंका की कहलाये। अरे! परन्तु... आहाहा! बाँधकर मारा जगत को।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर सर्वत्र है। हमारा मार्ग तो ऐसा है अनादि का। उससे तो

भ्रष्ट हुए परन्तु उनमें कहे हुए के उनके चारित्र और व्रत का भी ठिकाना नहीं। वह तो स्वयं को भ्रष्ट किया है, दूसरे जीवों को अपना दिखाव पुण्यादि का अधिक हो, उपदेशादि... भ्रष्ट करते हैं। आहाहा! अरे! कहाँ भाई! कल एक कीड़ा देखा न भाई, ऐसा हुआ। आहाहा! अरेरे! कहाँ कौने में? एक टुकड़ा इतना सा होगा। साफ नहीं हुआ होगा। कौने में कीड़े पड़े उसमें से। आहाहा! कहाँ उसकी उत्पत्ति स्थान! कहाँ से आया?

मुमुक्षु : वह तो रुपये में... आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो वही कहते हैं, परन्तु वह कुछ अन्दर हो, उसमें आता है। कचरा रह गया। ... नहीं होता। काट-बाट हो न जरा थोड़ा तो उत्पत्ति स्थान होता है। यह तो नजरों से कल देखा। आहाहा! डिब्बे को कौने में नीचे हो न जरा। कण पड़ा रह गया होगा साफ करते-करते। आहाहा! अरेरे! ऐसे अवतार! ऐसे जन्म और ऐसे भव! बापू! उससे उभरने का मार्ग तो यह है। समझ में आया? कुछ शरीर ठीक मिला, पैसे ठीक मिले तो हम कुछ आगे बढ़े, ऐसा मानते हैं, वे आत्मा को हीन करते हैं। बाहर की अधिकता से आत्मा अधिक हुआ, ऐसा माननेवाले, आत्मा को हीन मार डालते हैं। आहाहा!

शरीर सुन्दर, वाणी, कण्ठ सुन्दर, कुटुम्ब सुन्दर, स्त्री सुन्दर, पैसा सुन्दर, महल, मकान सुन्दर। उससे क्या? वह तो जड़ की पर चीज़ है, भगवान! उससे मैं कुछ बढ़ा हूँ और ठीक हूँ, आत्मा को घात डालता है। उससे भिन्न भगवान आत्मा आनन्द का कन्द वह अधिक है। आहाहा! ऐसा अधिकपना न मानकर, बाहर की चीज़ों से अधिकपना माने, वह भ्रम में पड़ा है। आहाहा! अरे! इसके अवतार की बातें वीतराग कहे। इसने दुःख को भोगा है। आहाहा! वह तू मर जाने से तेरी माँ को रुदन आया। उस रोने में आँसू समुद्र भराये। स्वयंभूरमण समुद्र अनन्त भराये भगवान! ऐसी तेरी मृत्यु के पीछे रुदन हुए हैं। भाई! तू ऐसे अवतार में जन्मा और मरा है। आहाहा! यह जन्म-मरण के दुःख टालने का तो यह एक ही उपाय है। सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग और सर्वज्ञ ने कहा हुआ सम्यग्दर्शन... आहाहा! पूरी दुनिया के चतुरपन को समझाना आवे, न आवे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा है। **उनकी प्रवृत्ति देखकर लोग स्वयमेव भ्रष्ट होते हैं,...** ऐसा भी एक त्याग है। इस पंचम काल में ऐसा भी चारित्र होता है।

मुमुक्षु : करके तो देखो!

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना है अब? आहाहा! ऐसी क्रियायें तो अनेक वर्षों में ऐसी की थी कि लोग सुनते हुए काँपते थे। ऐसी क्रियायें थीं बाहर की। आहार लेने जायें वहाँ पानी की बूँद को हाथ छू जाये। निर्दोष आहार। बड़े गृहस्थ लोग। रायचन्द गाँधी। ५०-५० हजार की आमदनी तब, हों! आमदनी बड़ी, बड़ा व्यापार। क्या कहलाता है वह... का धन्धा। ... के आड़तिया थे। घर में आड़तिया पड़े ही हों और बड़ा व्यापार और चूरमा के लड्डू बनाकर पड़े ही हो मण-अधमण... परन्तु भिक्षा के लिये जायें, बहिन! इसमें गुठली है। गोटलुं समझते हो? गोटली समझे? गोटली गोटली नहीं? आम की गुठली। अधमण रस, मण रस पड़ा हो। आहार दे खड़े होकर। बहिन! इसमें गुठली है? गुठली नहीं? गुठली नहीं। तो वह ऐसा कहे कि महाराज! खबर नहीं। छूना नहीं। खबर न हो तो छूना नहीं। रस नहीं लेंगे। आहाहा! ऐसे वर्षों के वर्षों किये हैं, हों! उस समय तो माना था न! आहाहा!

इसलिए तीव्र कषायी निषिद्ध हैं;... इसलिए अज्ञानी का कषाय तीव्र और यह व्रत... विशेष रहूँ। **उनकी संगति करना भी उचित नहीं।** ऐसों का परिचय करना नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ९, शुक्रवार, दिनांक ०५-१०-१९७३
गाथा-९, १०, ११ प्रवचन-१८

यह अष्टपाहुड़। इसकी गाथा ९वीं चलती है। ८ पूरी हुई। **अब कहते हैं कि ऐसे भ्रष्ट पुरुष स्वयं भ्रष्ट हैं, वे धर्मात्मा पुरुषों को दोष लगाकर भ्रष्ट बतलाते हैं...**

जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोगगुणधारी।
तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिंति॥९॥

मूल सनातन वीतराग का धर्म, उसका मुनिपना, बाह्य नग्नदशा, अन्तर में तीन कषाय के अभाव की दशा और अट्ठाईस मूलगुण थे, वह जैनदर्शन था। अनादि का सर्वज्ञ का कहा हुआ यह मार्ग था कहा हुआ। उसमें फेरफार हो गया, उसकी अन्दर बात करते हैं। जो कोई धर्मात्मा है, वीतराग के मार्ग प्रमाण, उनसे भ्रष्ट हुए वे, ऐसे धर्मात्मा के दोष बताते हैं, यह बात कुन्दकुन्दाचार्य करते हैं, भाई!

अर्थ :- जो पुरुष धर्मशील अर्थात् अपने स्वरूपरूप धर्म को साधने का जिसका स्वभाव है... कैसे हैं धर्म पुरुष? कि **अपने स्वरूपरूप धर्म...** ज्ञान और आनन्द और शान्ति, ऐसा जो अपना आत्मधर्म, उसे साधने का जिसका स्वभाव है। राग को साधे कि उसे यहाँ कहा नहीं। पश्चात् व्यवहार हो, वह बतलायेंगे। यह वस्तु आनन्द और ज्ञान की मूर्ति आत्मा को साधने का जिसका स्वभाव है। दिगम्बर धर्म, मुनिधर्म, जैनधर्म, वास्तविक धर्म, वीतराग का कहा हुआ मार्ग यह (है)। अनादि से यह मार्ग था और तब भी भगवान कुन्दकुन्दाचार्य थे। (इसलिए) सम्प्रदाय में से पृथक् पड़ गये, उनकी निन्दा, दोष निकालते हैं। अपना अभिमान पोषण करने के लिये। उनकी बात जरा करते हैं।

धर्म को साधने का जिसका स्वभाव है... एक बात। **तथा संयम अर्थात् इन्द्रिय-मन का निग्रह...** पाँच इन्द्रिय और मन का निग्रह, अणीन्द्रिय आत्मा भगवान में रमणता, वह संयम। **और षट्काय के जीवों की रक्षा,...** छह काय के जीव भगवान ने कहे हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीव हैं। छह प्रकार के। एकेन्द्रिय अनन्त हैं। दूसरे असंख्य हैं, उन सब जीवों की दया पालने का जिसका भाव है अर्थात् कि जिसे नहीं मारने का भाव है। वह छह काय के जीव हैं। जगत में मनुष्य एक ही पंचेन्द्रिय

है, वह एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं। अनन्त आत्मायें हैं। उसमें भी उसकी मर्यादा किसी की एकेन्द्रिय जीवरूप से, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति। ऐसे जीव भगवान ने—सर्वज्ञ ने देखे हैं। उनकी इसे प्रतीति और श्रद्धा होती है। इसलिए उनकी दया पालता है। मुनि छह काय के रक्षक हैं। आहाहा! एक पानी के बूँद में भी असंख्य जीव हैं। उन्हें वह नहीं घातते। एक हरितकाय का टुकड़ा हो, उसमें असंख्य जीव इस पीपल आदि में हैं। उन्हें भी वह नहीं घातते। छूते नहीं। गति–गमन करने में भी नीचे एकेन्द्रियादि दीव हों, उन्हें स्पर्शे नहीं, ऐसा तो उनकी दया का भाव होता है। छह काय की दया होती है, ऐसा कहते हैं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त वे जीव किसी ने देखे नहीं। समझ में आया? तीन बोल हुए।

तप अर्थात् बाह्याभ्यन्तर भेद की अपेक्षा से बारह प्रकार के तप,... जिसे बाह्य अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप इत्यादि, अभ्यन्तर प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य इत्यादि। ऐसा जिसे तप होता है। मुनि है न? नग्न मुनि जंगल में बसनेवाले होते हैं। वे मुनि, वे चारित्रवन्त, वे संयमी। गृहस्थाश्रम में हो तो उसे संयम और ऐसा चारित्र होता नहीं। समझ में आया? चाहे जैसा क्षायिक समकिती जीव हो, तथापि गृहस्थाश्रम में ऐसा संयम और छह काय की दया, वह नहीं होता। पूरा विश्वदर्शन, जैनदर्शन अर्थात् विश्वदर्शन। उसमें यह चीज़ है, उसकी उसे छह काय की दया का भाव होता है।

तप होता है। **नियम...** होता है। **आवश्यकादि नित्यकर्म,...** सामायिक, समता, चोविसंथो, अनन्त तीर्थंकरों का ... का वन्दन, स्तुति, गुरु की स्तुति ... आदि। प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग आदि प्रतिदिन का कर्तव्य, नग्नमुनि मोक्ष का मार्ग पूरा वहाँ है। उन्हें यह आवश्यक क्रिया होती है। **योग अर्थात् समाधि...** होती है। छठवें गुणस्थान में विराजमान मुनि को आत्मा के आनन्द की शान्ति, वास्तविक शान्ति बहुत प्रगट हुई होती है। कृत्रिम शान्ति जैसा दिखे अनादि से अज्ञान में, वह शान्ति नहीं। अनन्त आत्मा आनन्द का सागर। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के सागर में से आनन्द जिसकी दशा में उछलता है, उसे यहाँ समाधि कहा जाता है। आहाहा!

ध्यान... उसे आत्मा के स्वभाव का ध्यान होता है। असंख्य प्रदेशी प्रभु आत्मा,

अनन्त गुण का धाम, उसका जिसे ध्यान होता है। चौथे, पाँचवें में होता है थोड़ा, मुनि को विशेष होता है। यहाँ मुनि की व्याख्या है न ? दिगम्बर सन्त जो मोक्षमार्गी। जो वीतराग के मार्ग में राजमार्गरूप से पंथ चलता था उत्सर्ग। उसमें ये सन्त थे। इसलिए ऐसे सन्तों को देखकर, दर्शन से भ्रष्ट हुए (वे) दोष निकालें (तो) समता रखना। भ्रष्ट हुए, उनका भ्रष्टपना बतावे दूसरे को। समझ में आया ? **ध्यान तथा वर्षाकाल आदि कालयोग,...** लो! योग की व्याख्या करते हैं। वर्षाकाल। चार महीने—चौमासा एक स्थान में रहे जंगल में, वृक्ष के नीचे। या कोई ऐसे खाली मकान में, बाहर जंगल में पड़े हों खाली, उसमें स्थित रहें। ऐसे वर्षाकाल में चार महीने एकान्त वर्षाकाल में व्यतीत करे। आहाहा!

गुण अर्थात् मूलगुण,... अट्ठाईस। पाँच महाव्रत, छह आवश्यक, खड़े-खड़े आहार, अदन्तधोवन, लोंच, ऐसे अट्ठाईस गुण होते हैं। हैं वे सब विकल्प। ऐसा जिसे पालन होता है। आहाहा! ऐसा धर्म और मुनिमार्ग ऐसा होता है। वह पालन नहीं कर सके, इसलिए भ्रष्ट होकर दूसरा मनवाया, उसकी यहाँ बात करते हैं। समझ में आया ? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य महावीतरागी सन्त हैं, आनन्दकन्द में झूलते हुए छठवें-सातवें गुणस्थान में। एक दिन में हजारों बार प्रमत्त-अप्रमत्त दशायें जिन्हें आती हैं। वे कहते हैं कि ऐसे सन्तों की जो कोई दोष और निन्दा करता है, इस काल में ऐसा हो पड़ा है। क्या करे ? स्वयं भ्रष्ट हुए, विशेष नग्नरूप से रह नहीं सके। फिर ऐसा बना। शास्त्र नये बनाये, कल्पित बातें उनमें रखी। और फिर सच्चे सन्त का विरोध किया। दो हजार वर्ष पहले से ऐसा का ऐसा चला आ रहा है।

उत्तर गुण... पाँच समिति, गुप्ति बाहर के अथवा अनन्त प्रकार के... में निर्मानता ऐसे गुण **इनका धारण करनेवाला है, उसे कई मतभ्रष्ट...** लो, यह आया यहाँ। जैनधर्म का दिगम्बर मार्ग अनादि का सन्तों का यह था और यह है। महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान भगवान केवली विराजते हैं, वहाँ यह मार्ग है। हजारों सन्त दिगम्बर मुनि आनन्दकन्द में झूलते। ऐसा मार्ग अनादि का, उसमें से जो भ्रष्ट हुए। **दोषों का आरोपण करके कहते हैं कि यह भ्रष्ट है,...** ऐसे मतभ्रष्ट हुए, मत में रहे हुए की निन्दा करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह भ्रष्ट है, दोषयुक्त है, वे पापात्मा जीव स्वयं भ्रष्ट हैं, इसलिए अपने अभिमान की पुष्टि के लिये अन्य धर्मात्मा पुरुषों को भ्रष्टपना देते हैं। आहाहा! जीव ने किया है

न ऐसा। मनुष्यपना मिला, जैन के सम्प्रदाय में आये। वहाँ भी वापस अभिमान पोषण किया। आहाहा! अनन्त काल में जिसे निगोद में से निकलकर मनुष्य होना मुश्किल, उसमें यहाँ तक आये, उसमें वापस यह दशा। आहाहा! जिसके भव के अभाव के काल में मुनिपना हुआ, ऐसे मुनियों को अपने धर्म से भ्रष्ट होकर उन्हें भी दोष कहे हैं।

इसलिए अपने अभिमान की पुष्टि के लिये... हम साधु हैं, हम ऐसे हैं, मेरा मार्ग ऐसा है। यह सब भ्रष्ट नग्न साधु, ऐसा करके कहे। क्या हो जगत की उस प्रकार की योग्यता, क्या हो? आहाहा! दो हजार वर्ष पहले यह बातें हैं, लो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उससे पहले श्वेताम्बर पन्थ जैन में से निकल गया था। आहाहा! उस सम्बन्धी की यह बात है। परन्तु जगत को यह मार्ग बैठना कठिन है। अनेक प्रकार जगत के भ्रम के नाम के, अनेक प्रकार के पंथ और मार्ग, आहाहा! सबसे यह सर्वज्ञ का मार्ग पूरा अलग है। आहाहा! सर्वज्ञस्वरूप ही प्रभु है। उसमें से प्रगट किया जिसने सर्वज्ञपना, उन्होंने जो तीन काल-तीन लोक हस्तामल की भाँति देखे। जैसे आँवला हो वैसे देखे। वह बराबर न दिखाई दे उसे तो प्रत्यक्ष देखते हैं। आहाहा! ऐसा जो भगवान ने कहा हुआ, मुनि का धर्म और सन्तों की धर्म की क्रिया अन्तर और बाह्य, उसे पालन नहीं कर सके, वे भ्रष्ट हुए। वे पालनेवालों को निन्दा और दु:ख लगता है। उसमें... अब कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं, लो!

भावार्थ :- पापियों का ऐसा ही स्वभाव होता है... आहाहा! वह धर्मशील है न? मिथ्यादृष्टि की श्रद्धा जहाँ मिथ्यात्व है, उसमें ऐसा जिसका स्वभाव होता है। सत्य को छूने दे नहीं, सत्य को स्पर्शने न दे, सत्य की वाणी आवे कान में तो ऐ... **उसी प्रकार धर्मात्मा में दोष बतलाकर स्वयं पापी है, और धर्मात्मा को दोष बतलाकर अपने समान बनाना चाहते हैं। अपने समान बनाना चाहते हैं। ऐसे पापियों की संगति नहीं करना चाहिए।** आहाहा!

अब कहते हैं कि जो दर्शन भ्रष्ट है, वह मूल भ्रष्ट है, उसको फल की प्राप्ति नहीं होती....

जह मुलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणभट्ठा ण सिज्झंति॥१०॥

आहाहा! **अर्थ :- जिस प्रकार वृक्ष का मूल विनष्ट होने पर...** वृक्ष का मूल जहाँ नाश हुआ, **उसके परिवार अर्थात् स्कन्ध, शाखा, पत्र, पुष्प, फल की वृद्धि नहीं होती,...** मूल ही नहीं। मूलो नास्ति कुतो शाखा। आता है न! जिसका मूल ही नहीं, उसे स्कन्ध, वृक्ष, पत्र, फल और फूल होते ही नहीं। **उसी प्रकार जो जिनदर्शन से भ्रष्ट हैं...** आहाहा! जैनदर्शन अर्थात् दिगम्बरदर्शन। मुनिपने का भाव अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, अन्तर के आनन्द की उग्र लहर जिसे प्रगट हुई होती है और व्यवहार को उसे पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के भाव प्रगट हुए होते हैं व्यवहार से। छह आवश्यक होते हैं, खड़े-खड़े आहार होता है। ऐसा जो जैनदर्शन, ऐसा जो आत्मदर्शन, ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, उससे भ्रष्ट हुए।

बाह्य में तो नग्न-दिगम्बर यथाजातरूप निर्ग्रन्थ लिंग,... है न? अनादि सनातन नग्न दिगम्बर और अन्तर में आनन्द और शान्ति, स्वच्छता और पवित्रता का पुकार था। समता के रस में झूलते थे। आहाहा! घड़ीक में छठवाँ गुणस्थान, घड़ीक में सातवाँ। क्षण में छठवाँ, क्षण में सातवाँ। क्योंकि निर्विकल्प तो एक सेकेण्ड के अन्दर रह सके। मुनि, हों! नीचे तो बहुत नीचे गुणस्थान में तो बहुत थोड़ा। आहाहा! चौथे में गुणस्थाश्रम में समकिती हो और पाँचवें में हो, वह तो बहुत थोड़ा। निर्विकल्प की दशा तो एक सेकेण्ड के अन्दर के भाग में होती है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। नहीं खबर उसे, ऐसा होता है कि यह मानो घण्टे-घण्टे दो-दो घण्टे समाधि रहती है। इसलिए उसे वस्तु की खबर नहीं, श्रद्धा की खबर नहीं, आत्मा की खबर नहीं। समझ में आया? यह तो जो नग्न मुनि होते हैं। अन्तर में आत्मदर्शन अनुभव उपरान्त जिन्हें चारित्र की, आनन्द की लहर जिन्हें आयी है। ऐसे मुनियों को भी निर्विकल्पदशा तो एक सेकेण्ड के अन्दर आती है। सातवाँ आवे तब। आहाहा! समझ में आया? ऐसी ही वस्तु की स्थिति है। ऐसा जो भाव...

बाह्य में तो नग्न-दिगम्बर यथाजातरूप निर्ग्रन्थ लिंग,... जैसा माता से जन्मा ऐसी वैराग्य की मूर्ति, जिसे उपशम रस का ढाला ढल गया है। आहाहा! जिसके शरीर में उपशम अकषाय रस दिखता है बाहर। स्थिर होकर शान्त बिम्ब अन्दर पड़ा है न अन्दर में। चारित्रवन्त है न! आहाहा! ऐसे धर्मात्मा का शरीर भी शान्त... शान्त... शरीर

उसका। माता ने जैसा जन्म दिया, वैसा जिसका सरल, सीधा, नग्न शरीर होता है। आहाहा! उसे चारित्रवन्त और उसे मोक्षमार्गी कहते हैं। पूर्ण मोक्षमार्ग। नीचे मोक्षमार्ग है। इन तीन की एकता का मोक्षमार्ग। आहाहा! क्या कहा?

मुमुक्षु : धर्म मूल।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म मूल। ओहोहो! अकेला भगवान आत्मा आनन्द ज्ञान और शान्ति का स्वभाव, उसे पर्याय में वर्तमान अवस्था में—पर्याय में प्रगट हुआ। वस्तु में तो है अनादि का। परन्तु जिसकी वैभवदशा वर्तमान पर्याय में प्रगट हुई। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे ही सच्चा वैभव...

पूज्य गुरुदेवश्री : वही वैभव है न! इस धूल में क्या है? अरबोंपति। आहाहा! धूलधाणी... आज भाई ने नहीं कहा? नवनीतभाई ने ... नहीं? विष्णु? यह तुमने कहा न! ... वहाँ दूध पिया था, नहीं? धारवार। घड़ीक में लो ऐसा। मोटर में जाते थे तो मोटरवाले ने पूछा, किस ओर? ऐसा देखे तो गर्दन ढल गयी, मर गया मोटर में। यह अपने यहाँ आ गये। सात-आठ दिन रह गये। हमने वहाँ दूध पिया था उनके घर में। ...उस क्षण में देह की स्थिति पूरी हो वहाँ लो। अभी जाते हैं ऐसे मोटर में। वह ड्राईवर पूछे ऐसा देखकर कि साहब किस ओर? ऐसे देखा वहाँ तो मर गया हुआ। ... आहाहा! ऐसा नाशवान मृतक कलेवर है यह। मुर्दा-मुर्दा। अमृत का सागर परमात्मा मृतक कलेवर में अनादि से मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! उसकी शोभा से शोभा, उसे खिलाना, पिलाना, भोग देना और... आहाहा! आता है न? (समयसार) ९६ गाथा में। यह मृतक कलेवर। मुर्दा, यह तो शरीर जड़। इसकी क्रिया भी जड़ की जड़ से होती है, आत्मा से नहीं। आत्मा कारण और शरीर चले, वह कार्य, (ऐसा) तीन काल में नहीं। मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है। क्योंकि वे दोनों भिन्न चीज़ें हैं। उन्हें भिन्न चीज़ कुछ नहीं कर सकती। आहाहा! यह खबर नहीं होती और धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं होता)।

मृतक कलेवर में अमृत का सागर स्वभाव का समुद्र प्रभु है। उसे छोड़कर मृतक कलेवर की सम्हाल में पड़ा है, उसे योगफल में क्या हाथ आवे? मुर्दा मरते समय मूर्च्छा में मर जाये। असाध्य हो गया मूर्च्छा से। जाओ एकेन्द्रिय, कीड़े में। आहाहा! ऐसा जो धर्म था वीतराग का, उससे जो भ्रष्ट हुए। यहाँ तो कहते हैं कि यथाजात निर्ग्रन्थ लिंग था।

मूलगुण का धारण... अट्ठाईस मूलगुण। जिनवर, तीर्थंकरों ने कहे हुए विकल्प अट्ठाईस प्रकार के, हों! उन्हें होते हैं। जब तक वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर न हो, वहाँ ऐसे उसके अट्ठाईस मूलगुण अहिंसा, सत्य, अचौर्य, छह आवश्यक, खड़े-खड़े आहार, ... इत्यादि अट्ठाईस मूलगुण हैं। ऐसी वस्तुस्थिति! और **मयूर पिच्छिका (मोर के पंखों की पिच्छी)...** मुनि मोरपिच्छी रखते थे। ... यह रजोवरण और यह सब वस्तुयें कृत्रिम घुस गयीं। उसे मुनिपना नहीं, वहाँ कृत्रिम अर्थात् क्या कहना अब ? आहाहा! एक मोरपिच्छी और कमण्डल।

पिच्छिका तथा कमण्डल धारण करना, यथाविधि दोष टालकर खड़े-खड़े शुद्ध आहार लेना... उनके लिये नहीं बनाया हुआ आहार, गृहस्थ ने स्वयं के लिये बनाया हुआ हो। भिक्षा के लिये जाये, हाथ में खड़े-खड़े ले लेवे। यह मार्ग है। मुनि का मोक्ष का मार्ग जैनदर्शन का यह है। कहो, सुजानमलजी! ऐसा पालन न कर सके, इससे उसका बचाव नहीं करना कि भाई! ऐसा भी अभी मार्ग है। आहाहा! **खड़े-खड़े शुद्ध आहार...** देखा! शुद्ध आहार। निर्दोष पानी और आहार खड़े-खड़े आहार ले। वैराग्य की मूर्ति शान्त मुद्रा ऐसी जो मुनि की दशा होती है।

इत्यादि बाह्य शुद्ध वेश धारण करते हैं... इत्यादि बाह्य शुद्ध वेश। सब कहा न ? दोष टालना, यह सब। **तथा अन्तरंग में जीवादि छह द्रव्य,...** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह द्रव्य कहे हैं। छह वस्तु। उसमें एक आत्मा, एक परमाणु, एक काल, आकाश, धर्मास्ति और अधर्मास्ति, ऐसे छह द्रव्य भगवान ने अनादि देखे हैं। उन छह द्रव्य की उसे श्रद्धा होती है। आहाहा! अनन्त-अनन्त आत्मायें होती हैं, इससे अनन्त-अनन्तगुणे रजकण, धूल, मिट्टी होती है। उसकी इसे श्रद्धा होती है। उसका इसे ज्ञान होता है। समझ में आया ?

छह द्रव्य, नव पदार्थ,... जीव, अजीव पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। तथा जीव और अजीव दो द्रव्य और सात पर्यायें होती हैं। उनकी मुनियों को, धर्मात्मा को श्रद्धा और ज्ञान होता है। आहाहा! यहाँ तो खबर नहीं होती कुछ और हमारे सम्यग्दर्शन है। अभिमान है। आहाहा! समझ में आया ? **नव पदार्थ, सात तत्त्वों,...** सात में वह पुण्य और पाप दोनों आस्रव में डाल दिये। उन **सात तत्त्वों का (यथार्थ) श्रद्धान...** होता है। बराबर सर्वज्ञ ने परमेश्वर ने केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ ने ज्ञान में जैसा

जाना और कहा, वैसी उसे श्रद्धा होती है। कम, अधिक, विपरीत श्रद्धा नहीं होती। आहाहा!

एवं भेदविज्ञान से... और राग तथा शरीर से, राग का विकल्प और शरीर और कर्म आदि चीज़ है सब। उससे भेद करके **भेदविज्ञान से आत्मस्वरूप का अनुभवन...** भेदविज्ञान कब कहलाता है? कि दूसरी चीज़ है। शरीर है, कर्म है, राग है, पुण्य-पाप के भाव हैं। वे हैं, उनसे आत्मा भिन्न। ऐसा भेदविज्ञान का आत्म-अनुभव। **आत्मस्वरूप का अनुभवन—ऐसे दर्शन मत से बाह्य हैं,...** ऐसे दर्शनमत से जो बाह्य हैं। भाषा देखो! आहाहा! पहला जो '**दंसणमग्गं**' कहा था। वह शरीर, यह दूसरी।

ऐसा जो दर्शन और मत और धर्म की मूर्ति, ऐसे मार्ग से जो बाह्य हैं, **वे मूल विनष्ट हैं...** मूल में भ्रष्ट हो गये हैं। ऐसा जो जैनदर्शन अर्थात्... जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु जिन सो ही है आत्मा और रागादि विकल्प, शरीरादि अजीव, पुण्य, पाप और आस्रव से भगवान आत्मा भिन्न, वह जैन का स्वरूप ही है। ऐसे स्वरूप के भानसहित में ऐसे तत्त्व की उसे श्रद्धा होती है। ऐसे से जो भ्रष्ट हुए, वे मूल में भ्रष्ट हो गये हैं। भगवानजीभाई! ऐसी बात है। यह श्रीमद् में ऐसा स्पष्टीकरण वे लोग नहीं कर सके। क्योंकि वहाँ तो सब गड़बड़ इकट्ठी हुई है। मार्ग ऐसा है, बापू! समझ में आया? यहाँ तो स्पष्ट बात है। आहाहा! किसी के विरोध के लिये बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। उसमें दूसरा क्या हो?

मत से बाह्य हैं, वे मूलविनष्ट हैं,... पाठ है न? '**मूलम्मि विणट्ठे**' पहला पद है। '**मूलम्मि विणट्ठे**' '**तह जिणदंसणभट्ठा**' उसके साथ मिलाया है। मूल जिसका नास्ति है, उसे शाखादि होती नहीं। इसी प्रकार ऐसा जो वीतरागमार्ग जैनदर्शन का धर्म मूर्ति का, उससे जो भ्रष्ट हुए, उसकी श्रद्धा से, मूल में नाश है। आहाहा! ऐई! जादवजीभाई! ऐसा है यह। तुम्हारा लड़का यह कहता है, हों! हाँ करता है।

मुमुक्षु : लड़का ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का ही नहीं, कहते हैं भाई। यह उसके बापू भी सुनने बैठे। ... है न, क्या कहा? दिलीप... दिलीप। इनके पुत्र का पुत्र। बैठता है... कोई संस्कार लेकर आया है पूर्व भव में से। हमारे वजुभाई तो ऐसा कहते हैं कि अपने में से मरकर आया होगा। कहीं अपने में से मरकर आया लगता है, कहे वह। ऐसा! चौदह वर्ष की

उम्र में ऐसा! मार्ग यह है। यह कहीं से मार्ग दूसरा मार्ग हो सकता ही नहीं। ऐसा है।... पाठशाला पढ़ाता है वहाँ कलकत्ता में। पाठशाला पढ़ाता है। वह तो गृहस्थ व्यक्ति है। पाठशाला अर्थात् मुफ्त। लड़के इकट्ठे होकर... बहुत लाखोंपति है। उनके पुत्र का पुत्र इसलिए तो पैसा... मुनीम थे। पाठशाला पैसे लेकर नहीं। लड़कों को पढ़ाता है। यह मार्ग है, सुनो। बड़े भी बैठते हैं, ऐसा कोई कहता था। कितने ही बड़े भी सुनने बैठ जाते हैं।

मुमुक्षु : स्वयं को रुचि हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस प्रकार का अव्यक्तरूप से भाव हो न कि मार्ग तो यह है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहा नहीं? '**मूलम्मि विणट्ठे**' ऐसा यहाँ तो '**तह जिणदंसणभट्ठा**' यह '**मूलम्मि विणट्ठे**' इसके साथ मिलाया न गाथा में? '**जह मूलम्मि विणट्ठे**' पहला पद। पश्चात् '**तह जिणदंसणभट्ठा**' यह '**मूलम्मि विणट्ठे**' ऐसा। समझ में आया? यह वाडा बाँधकर मार डाला लोगों को। परसों आया था एक। वह है न घीया नहीं तुम्हारे यहाँ? चन्दुभाई के अपने मोहनभाई नहीं कराचीवाले? उनके चन्दुभाई। तुम हो न वहाँ राजकोट। ...में है न?

मुमुक्षु : राजकोट में घीवाले रूप से....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वे घीवाले। यह तो मैंने कहा लड़का ... चन्दुभाई का साला हूँ। मोहनभाई का रिश्तेदार। कहा घीया को? मैंने कहा जानते हैं। परन्तु हम श्वेताम्बर हैं, हों!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दो लड़के थे। कल आये थे। परसों। मैं चन्दुभाई का साला हूँ। मोहनभाई... मुझे तो खबर थी कि यह घीया है। मैंने कहा तुम घीया। उसने कहा श्वेताम्बर हैं। हमको खबर नहीं? कहा। वाडा की भिन्नता के लिये मार डाले।

मुमुक्षु : महाराज वापस अन्दर दिगम्बर समझ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह समझ जाये। वह कहा, चन्दुभाई के साले हो तब से तुम घीया हो और श्वेताम्बर तब से, मुझे खबर पड़ी। जवान। आहाहा! घी के व्यापारी। चौक में हैं। चौक में हैं।

मुमुक्षु : उसका नाम ही घीकांटा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सच्ची बात घीकांटा। परन्तु यह तो मेरा ऐसा कहना है कि यह बात इसमें आयी और यह बोला वह। हम श्वेताम्बर। परन्तु हम कहाँ... ऐई! मनुभाई! यह सब श्वेताम्बर हैं। यह भगवानजीभाई श्वेताम्बर हैं। थे, लो न यह तो। आहाहा! जिसे ऐसा मोक्षमार्ग और ऐसा बाह्यलिंग और अट्ठाईस मूलगुण—ऐसा जिसे रुचता नहीं, वे भ्रष्ट हो गये, कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

'**मूलविणभट्ठा ण सिज्झंति**' ऐसा है न? गाथा का कुन्दकुन्दाचार्य का। '**जह मूलम्मि विणट्ठे**' जिस वृक्ष का मूल नाश हुआ, उसे परिवार नहीं अर्थात् शाखा, फल, फूल, पत्र नहीं। इसी प्रकार जिसे ऐसे मार्ग से भ्रष्ट हुए, उनका मूल नाश हो गया, उन्हें कोई मोक्ष और सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह वाड़ा बाँधे... तुम दिगम्बर और हम श्वेताम्बर। भाई! रहने दे ऐसा। सत्य क्या है, वह ले न। आहाहा! आँख मींचकर चले जाते हैं, यह देखो न! आहाहा! अरबों रुपये। आँख बन्द हो गयी क्षण में, भाई कहता था। .... मामा को दो बजे अटैक आया और आया साथ में समाप्त हो गया। अरबों रुपये। आहाहा! क्या करे तेरा रुपया? धूल में। यह तो शरीर मिट्टी है। आहाहा! श्वास की क्रिया आत्मा कर नहीं सकता। यह श्वास की क्रिया, वह तो जड़ है। उसे आत्मा नहीं कर सकता? वह तो जड़ है। यह मार्ग! इस जगत को भ्रम पड़े, तत्त्व की खबर नहीं न! इस आत्मा से श्वास चले और आत्मा से शरीर चले, आत्मा कारण है, और देह में काम कार्य है। यह दृष्टि मिथ्यात्व और अज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! गजब गाथा! १०वीं।

यहाँ आया। **ऐसे दर्शन-मत से बाह्य हैं, वे मूलविनष्ट हैं,...** अन्त में शब्द है न बाद में? **उनके सिद्धि नहीं होती,... 'णि सिज्झंति'** ऐसे जीवों को मोक्ष नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग है। ऐई! झांझरी! तुम्हारे यहाँ विवाद बहुत है मक्शी में। मार्ग तो यह है अनादि का। दिगम्बर दर्शन, वह कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु का स्वरूप अनादि का ऐसा है। मुनिपना ऐसा ही होता है, यह भी वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! उसमें घड़कर किया है न कल्पना से, ऐसा यह नहीं। आहाहा! जैसा भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द का नाथ, उसकी पर्याय में भूल है, उसका भी ज्ञानी को भान होता है। और वह

आत्मा अरूपी है। उसे रूप नहीं होता। अज्ञानी को कुछ भासे न अन्दर लाल और सफेद और... वह सब जड़ है वह तो। आँख मींचकर फिर दिखाई दे अन्दर लाल, पीला। वह तो सब जड़ है। आत्मा कहाँ ऐसे रंगवाला है? वह तो अरूपी है। समझ में आया? आहाहा! **वे मोक्षफल को प्राप्त नहीं करते।** लो!

११। एक बार यह वाँचते थे और भाई थे नरसीभाई। मौके से वे आते व्याख्यान में, यह आता। अपने थे न नरसीभाई, नहीं? मुनीम। मुनीम थे न। वहाँ बैठते थे। बराबर उस समय यह आता था।

मुमुक्षु : वे श्वेताम्बर थे...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... फिर पर्यूषण में प्रतिक्रमण वहाँ करने जाये। ... वह सहज ऐसा मिलान खा जाता है न! सहज तब उन्हें मौका ही था आने का। और उसमें यह वाँचन होता था। वहाँ वे बैठते थे। बात लोगों को कठिन लगे। सत्य है वह...

मुमुक्षु : ऐसे संस्कार लेकर आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कार लेकर आये, वह बस। और वही पोसाया हो। उसे दूसरा कोई विचार का अवकाश ही न हो।

मुमुक्षु : उसे तो ऐसा ही हो कि अपने...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह जिन है। हम यह जिन हैं, वह लोग ऐसा कहते हैं न। जैनधर्म हमारा ही है। हम जैन हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई! नवलचन्दभाई! यहाँ कहते हैं कि वह जैन नहीं। जैन से तो भ्रष्ट हुए हैं, ऐसा कहते हैं। इसीलिए तो भाई ने—टोडरमलजी ने लिखा पाँचवें अध्याय में। जैनमत में नहीं डाला श्वेताम्बर स्थानकवासी को। अन्यमत में डाला है। यह देखो न, यह क्या कहा यह? कुन्दकुन्दाचार्य यह कहते हैं कि श्वेताम्बर और स्थानकवासी जैनदर्शन ही नहीं है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य थे, तब स्थानकवासी नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह मन्दिरमार्गी थे न। श्वेताम्बर निकल गये थे। ऐई! सुजानमलजी! वह भी श्वेताम्बर है न!

मुमुक्षु : पक्के।

पूज्य गुरुदेवश्री : पक्के। वे तो होवे तो पक्के ही हो न! उसमें क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : आपकी कृपा रह गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आत्मधर्म की चीज़ यह है। उसमें चारित्र जो है आत्मा का, वह अलौकिक दशा जिसकी, उसे तो नग्नदशा ही हो जाती है। चारित्रवन्त हो, वह तो नग्नदशा और जंगल में ही बसे। ऐसा ही मुनिपने का मार्ग अनादि का सनातन वीतरागमार्ग है। आहाहा! उससे भ्रष्ट हुए, उन्हें मुक्ति तो नहीं, मोक्ष का फल कहाँ से होगा?

अब कहते हैं कि जिनदर्शन ही मूल मोक्षमार्ग है... देखा! मिलाया है भारी! जैसे उसमें दृष्टान्त दिया था न वृक्ष का, नहीं?

जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गसस॥११॥

आहाहा! **जिस प्रकार वृक्ष के मूल से स्कन्ध होते हैं;...** वृक्ष का मूल हो तो स्कन्ध आवे। स्कन्ध होवे तो शाखा आवे। स्कन्ध समझे न वह? फिर डाली। परन्तु मूल न हो वहाँ स्कन्ध कैसा और डाली कैसी? यह तो मूल हो वहाँ **शाखा आदि परिवार बहुत गुण हैं। यहाँ गुण शब्द बहुत का वाचक है...** ऐसा कहते हैं। बहुत गुण होते हैं, ऐसा।

मुमुक्षु : बहुत गुण।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत गुण। परन्तु इन्होंने तो कहा है कि **गुण शब्द बहुत का वाचक है...** ऐसा। यह तो बहुत गुण शब्द तो पड़ा ही है। बहुत गुण तो हैं ही। ऐसा कि बहुत तो शब्द है न? ऐसा कहता हूँ। तो फिर गुणों को बहुत, ऐसा क्यों कहा?

मुमुक्षु : गुणवान हुआ न इसलिए बहू अर्थ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु गुण को बहुवाचक कहा। वह बहू शब्द तो पड़ा ही है। परन्तु गुण को...

मुमुक्षु : इसलिए बहू में बहू ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा बस, यह कहता हूँ। ऐसा इन्होंने किया है।

गुण शब्द बहुत का वाचक है; उसी प्रकार गणधर देवादिक ने... गणधरों ने... धर्म के तीर्थंकर धर्मराजा के गणधर दीवान, धर्म दीवान। आहाहा! चार ज्ञान, चौदह पूर्व के धारक, अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना करनेवाले, ऐसे सन्त–गणधर सन्त आदि ने **गणधर देवादिक ने जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।** ऐसे गणधरों ने, मुनियों ने, सच्चे सन्तों ने **जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।** ऐसा जैनदर्शन। समझ में आया? जिसे आत्मदर्शन साक्षात्कार उपरान्त ज्ञान और आनन्द का चारित्र जिसे निर्मल प्रगट हुआ है। ऐसी तीन तो वीतरागी निर्विकल्पदशा है और अट्ठाईस मूलगुण वीतराग ने—जिनेश्वर ने कहे वैसे हैं और जिनकी नग्नदशा है। आहाहा! ऐसा जैनदर्शन का मार्ग गणधरों ने कहा हुआ है। तीर्थंकरों ने कहा हुआ, उसमें से शास्त्र में गणधर–सन्तों ने रचा है। आहाहा! लो, इस शास्त्र की रचना में यह आया है, ऐसा कहते हैं। जिनकी शास्त्र की रचना में ऐसा आया हो, वस्त्र रखे, पात्र रखे और मुनिपना, वे शास्त्र गणधर के रचित नहीं हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन! अनमेल जैसा लगे। लोगों को है न! क्या हो, भाई! मार्ग ऐसा है, वहाँ क्या हो? आहाहा! कहो, बाबूभाई! ऐसा मार्ग है। जैनदर्शन ही इसे कहते हैं। आहाहा! परसों आया था न यह।

ऐसा गणधरों ने कहा हुआ। गणधर आदि सन्तों ने कथन... आहाहा! मोक्ष के स्तम्भ केवलज्ञान के पथानुगामी ऐसे सन्तों ने तो ऐसा जैनदर्शन कहा है। आहाहा! दुनिया की परवाह छोड़ दे, दुनिया क्या कहेगी? कैसे मानेगी? रहने दे। भगवान का मार्ग तो यह है। भगवानजीभाई! आहाहा! लोग उसमें से आधार देते हैं श्रीमद् में से। देखो, उसमें यह कहते हैं। जैनधर्म का आशय, श्वेताम्बर, दिगम्बर के आचार्यों का आशय आत्मा को प्राप्त कराने का है। इसमें तो इनकार करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा जो मार्ग जिसका जैनदर्शन धर्म की श्रद्धा का मूल है और तदुपरान्त पश्चात् ज्ञान और चारित्र आदि और नग्नदशा जिसकी देखे और अट्ठाईस मूलगुण वीतराग ने कहे हुए, उसके व्यवहार में ऐसे विकल्प होते हैं। मुनि को ऐसा राग होता है। आहाहा! इससे राग होता है, ऐसा बतलाया, परन्तु कोई वह धर्म है, ऐसा नहीं। उसका व्यवहार जैनदर्शन कहा, निश्चय जैनदर्शन के साथ ऐसा व्यवहार जैनदर्शन का

होता है। इसलिए वह आदरणीय है और उससे कोई विपरीत... ऐसा प्रश्न यहाँ नहीं है। आहाहा! पण्डितजी! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! अकेले नग्न घूमे, वह कहीं धर्म नहीं।

मुमुक्षु : ... मूल में अन्तर हो तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बाह्य पहले कहा, फिर ऐसा अन्तर में हो तो ऐसा बाह्य में कहलाये। परन्तु अन्तर में जहाँ जैनदर्शन की वस्तु क्या है? सम्यक् क्या? सम्यग्ज्ञान क्या? उसकी खबर भी नहीं और ... उसे यहाँ मुनिपने में गिना नहीं। इस जैनदर्शन में उसे गिनने में नहीं आया। आहाहा! बहुत मार्ग!

इस **जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।** समझ में आया? ऐसा जो जैनदर्शन... वह जैनधर्म का मूल है। उस **जैनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।** आहाहा! ऐसी जिसकी यह श्रद्धा व्यवहार ऐसा हो, ऐसी श्रद्धासहित स्व का आश्रय लेकर दर्शन हो, उसे समकित कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। ऐसा जो मार्ग है, उसकी जिसे श्रद्धा हो, अर्थात् उसका ज्ञान हो और उसका ज्ञान रखकर, फिर स्व का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हो, उसे समकिती और धर्म की शुरुआतवाला जीव कहने में आता है। आहाहा!

बहुत से तो इसमें अपने पूर्व के श्वेताम्बर ही हों, कोई स्थानकवासी, कोई मन्दिरमार्गी। नहीं? मार्ग तो यह है। उसमें से फेरफार कुछ भी हीनाधिक करे, वस्त्र का धागा रखना, उसमें क्या बाधा है? काल ऐसा निर्बल है इसलिए। वे सब भ्रष्ट हैं। आहाहा! अधिक भाग हो, उसमें तो ऐसा वाँचे तो तूफान करे। यहाँ तो जंगल है और जंगल में मार्ग यह है। बैठे उसे बैठाना।

मुमुक्षु : जंगल में मंगल और मंगल का मार्ग यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात।

भावार्थ :- यहाँ जिनदर्शन अर्थात् तीर्थंकर परमदेव ने जो दर्शन ग्रहण किया... देखो! अर्थ किया है। जिनदर्शन। जिन अर्थात् तीर्थंकर, उन्होंने जो दर्शन मुनिपना,

नग्नपना अंगीकार किया। गजब बात, भाई! जिनदर्शन। जिन अर्थात् तीर्थंकर **परमदेव ने जो दर्शन...** ऐसा। **ग्रहण किया, उसी का उपदेश दिया है... दर्शन ग्रहण किया, उसी का उपदेश दिया है, वह मूलसंघ है...** आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मूल संघ यह है। कि जिसे जिन तीर्थंकर परमदेव ने जो नग्नपना और इस मोक्षमार्ग और व्यवहार, विकल्प आदि जो है, वह अंगीकार-ग्रहण किया और ऐसा उपदेश किया। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! गजब स्पष्टीकरण किया है, हों! १४वीं गाथा में—श्लोक में आता है। ... दंसण इसे कहना। आहाहा!

वस्तु का दर्शन जो वास्तविक ज्ञान, दर्शन, चारित्र और मूल विकल्प तथा नग्न यह। तब कोई कहे कि यह विकल्प और नग्नपने को भी जैनदर्शन कहा न? परन्तु वह तो व्यवहार नहीं? उसे व्यवहार कहा। वस्तु का जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय कहा। दोनों को दो कहा। आहाहा! पूर्ण वीतराग नहीं तो दो होते ही हैं। आहाहा! समझ में आया? अभी जिसको श्रद्धा का ठिकाना नहीं, जिसके ज्ञान में यथार्थता नहीं, उसे सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! जिनदर्शन। जिनदर्शन की व्याख्या की। '**जिणदंसण मूलो**' है न? इसमें से निकाला। जिनदर्शन; जिन अर्थात् तीर्थंकर परमदेव और दर्शन अर्थात् जिन्होंने दर्शन ग्रहण किया। अर्थात् मोक्ष का मार्ग, विकल्प, नग्नपना अंगीकार किया। आहाहा! तीर्थंकरदेव, जिनके सौ इन्द्र तलिया चाटे। जिनके जन्म से माता के गर्भ में आवे तब इन्द्र आकर सेवा करते हैं। आहाहा! ऐसा जिसने मुनिपना अंगीकार किया है, तीर्थंकर परम देव ने। आहाहा!

जब से सर्वज्ञदेव, सर्वज्ञस्वभावी आत्मा अनादि से है, उसी प्रकार सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हुई सर्वज्ञ भी अनादि के हैं। आहाहा! इस प्रकार ऐसा मार्ग भी अनादि का है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञस्वभावी स्वरूप आत्मा, वस्तु अनादि-अनन्त आत्मा और सर्वज्ञ स्वभाव है, उसके जाननेवाले प्रगटरूप से भी अनादि के हैं। और उनका जो मार्ग जिसने अंगीकार किया है, वह भी अनादि का यही मार्ग है। शक्तिरूप, व्यक्तरूप और उनका मार्ग यह। आहाहा! समझ में आया? यह विशेष उसका स्वरूप कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १०, शनिवार, दिनांक ०६-१०-१९७३
गाथा-११ प्रवचन-१९

जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स॥११॥

इसका अर्थ चल गया है। फिर से। **जिस प्रकार वृक्ष के मूल से स्कन्ध होते हैं;...** वृक्ष का मूल हो तो स्कन्ध होता है। थड... थड... विशाल। मूल हो तो स्कन्ध हो। मूल न हो और स्कन्ध हो, ऐसा नहीं होता। और **जिनके शाखा आदि परिवार बहुत गुण हैं।** यह स्कन्ध, शाखा, डाली, पत्र, फूल और फल अनेक होते हैं। यह दृष्टान्त देते हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में थे। **उसी प्रकार गणधर देवादिक ने...** गणधरों ने। तीर्थंकर के वजीर। तीर्थंकर भगवान की वाणी सुनकर, गणधरदेव ने शास्त्र रचे। और फिर परम्परा से सन्त जो दिगम्बर हुए, उन्होंने वे रखे। ऐसे **गणधर देवादिक ने जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।** जैनदर्शन वह मोक्षमार्ग का मूल है। जरा सूक्ष्म बात है। सम्प्रदाय से अन्तरवाली बात है। जरा कठिन पड़े ऐसी है। परम सत्य तो यह है। सुजानमलजी!

मुमुक्षु : हमारा भाग्य कि हमको यह भूमिका मिली, यह बात हमको मिली।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी परमसत्य यह है। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ भगवान महावीर और सीमन्धर परमात्मा। ऐसी वाणी सीमन्धर भगवान की। सबका एक ही जैनदर्शन मार्ग। वह जैनदर्शन अर्थात् क्या? उसकी व्याख्या करते हैं।

उस **जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।** यहाँ जिनदर्शन अर्थात् क्या? **तीर्थंकर परमदेव...** जब भगवान जन्मे, तब तो तीन ज्ञान लेकर आये थे माता के गर्भ में। तीर्थंकरदेव। मति, श्रुत और अवधि ज्ञान तो लेकर आये हैं। पश्चात् जब दीक्षा ली, तब **तीर्थंकर परमदेव ने जो दर्शन ग्रहण किया...** मोक्षमार्ग ग्रहण किया। ऐसा कहते हैं। तीर्थंकर परमात्मा ने पश्चात् दीक्षा के समय जैनदर्शन मोक्षमार्ग ग्रहण किया। **उसी का उपदेश दिया है,...** जैसा मोक्ष का मार्ग उन्होंने अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव होकर सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान—आत्मा का और आत्मा में आनन्द और

शान्ति की रमणता, ऐसा जो जैनदर्शन का स्वरूप, वीतराग भगवान ने मुनिरूप से ग्रहण किया। ऐसा मार्ग जैनदर्शन यह है।

मुमुक्षु : भगवान ने धारण किया वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने धारण किया वह अन्दर है, वह जैनदर्शन है।

मुमुक्षु : अन्दर का और बाहर का।

पूज्य गुरुदेवश्री : (अन्दर) बाहर दोनों। सूक्ष्म बात है। आता है वह। छोटूभाई! जरा मध्यस्थ होकर सुनना, हों! यह। आये हो तो जरा। कोई सेवा-बेवा में वहाँ धूल भी नहीं, हों!

मुमुक्षु : धूल नहीं, उसमें लाभ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ है।

मुमुक्षु : लाभ का फल संसार।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार है। यह जैनदर्शन किसे कहना, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य भगवान (कहते हैं) कि जो तीर्थंकरदेव ने दीक्षित होने पर जो मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प आनन्द और उसके साथ व्यवहार में अट्ठाईस मूलगुण और नग्नदशा—यह जैनदर्शन। आहाहा! बहुत अन्तर हो गया है, इसलिए लोगों को परम्परा में ऐसी वस्तु मिली कि यह बात उसे सुनने को मिलती नहीं, इसलिए बेचारे कहाँ जाये?

कहते हैं कि जैसा जिनवरदेव ने ... केवल (ज्ञान) प्राप्त नहीं हुए थे, उसके पहले की बात है न! सम्यगदर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरण की स्थिरता के अंश लेकर आये हुए। परन्तु जब मार्ग अंगीकार किया तीनों इकट्ठा, तब स्वरूप की वीतरागदशा निर्विकल्प आनन्द की दशा, वह चारित्र। और उसके साथ अट्ठाईस मूलगुण विकल्प, वह व्यवहार। उसके साथ शरीर की नग्नदशा, वह निमित्त, बाह्य निमित्त। वह अभ्यन्तर निमित्त। आहाहा! सूक्ष्म गजब!

मुमुक्षु : बाह्य और अभ्यन्तर इसकी अपेक्षा कुछ सरल कहो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे सरल? आहाहा! अभ्यन्तर अन्तरंग तो मानो निश्चय

सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। अर्थात् कि आत्मा पूर्णानन्द प्रभु है, अखण्ड आनन्द का कन्द ज्ञान ज्योतिस्वरूप को स्पर्श कर, उसका अनुभव करके सम्यग्ज्ञान के वेदन में यह शुद्ध आत्मा, ऐसी जो प्रतीति—सम्यग्दर्शन होता है, वह सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। इसकी जगत को खबर नहीं। इस सम्यग्दर्शन बिना सब थोथा-थोथा। व्रत, तप आंबेल, ओळी और होली, यह सब। ऐई! छोटाभाई!

मुमुक्षु : उसमें कोई कार्य कुछ फल बिना का होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : फल संसार फलने का, बराबर फलने का। कहीं फल बिना का नहीं जाता। भटकने का फलवाला उसमें। आहाहा! जैनदर्शन अर्थात् मोक्ष का मार्ग और व्यवहार से अट्ठाईस मूलगुण। वह मूलगुण का जो विकल्प है, वह अभ्यन्तर निमित्त है और नग्नपना, वह बाह्य निमित्त है। आहाहा! ऐसा जैनदर्शन अनादि का तीर्थंकरों ने जो ग्रहण किया था, वैसा उन्होंने उपदेश दिया।

ग्रहण किया... यह उपदेश दिया। **वह मूलसंघ है,...** वह जैनदर्शन का मूलसंघ। मूल सम्प्रदाय अनादि का वीतराग का यह मूलमार्ग मूलसंघ है। समझ में आया? **वह अट्ठाईस मूलगुण सहित कहा है। पाँच महाव्रत,...** हो, उसे विकल्प। जिसे आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र अन्तरंग में दशा जिसे प्रगट हुई हो, उसे व्यवहार से अभ्यन्तर निमित्त में पंच महाव्रत का शुभराग होता है। वह राग है महाव्रत का। वह संवर नहीं। विकल्प वृत्ति है कि इसे न मारूँ, इसे मैं सत्य बोलूँ, यह सब आस्रव का पंच महाव्रत का भाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान को आस्रव?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को भी आस्रव है। केवली हों तब उन्हें आस्रव नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें सूक्ष्म।

कहते हैं... ठीक आ गया अर्थ इसमें। भाई! आहाहा! परिवर्तन किया है तो कारण था या नहीं? ऐसा का ऐसा कर डाला? यह कारण मार्ग का, अन्दर का मार्ग ही दूसरा है वीतराग का, भाई को कहा था। भाई ने दीक्षा दिलाई थी बड़ी धूमधाम से। ६० वर्ष की दीक्षा। बड़े भाई थे न, मैंने उनसे कहा (संवत्) ८७ में दीक्षा, हों! खुशालभाई

बड़े भाई। भाई! तुमने दीक्षा-बीक्षा दिलाई, परन्तु यह दीक्षा सच्ची नहीं है। में तो यह छोड़ देनेवाला हूँ। यह वीतराग का मार्ग नहीं है। ८७ में वींछिया में कहा था। उपाश्रय है न नया? बाहर नहीं कठोडो? कठोडा में बुलाकर कहा था। ८७ में। धूमधाम से हाथी के हौदे दीक्षा। यह मार्ग नहीं। हमको मार्ग तो दूसरा लगता है। मैं तो छोड़ देनेवाला हूँ। भाई! धीरे-धीरे छोड़ना, कहे। क्योंकि प्रतिष्ठा बहुत है। बाहर में नाम बड़ा है। धीरे-धीरे से छोड़ना हमारे... था न! चार वर्ष यहाँ आकर छोड़ा। ८७ में बात की थी। ९१ में चैत्र शुक्ल तेरस। गृहस्थ का मकान है न एक 'स्टार ऑफ इण्डिया' मार्ग यही है न प्रभु! वीतराग, जैनदर्शन का स्वरूप दूसरा ही है। मलूकचन्दभाई! उसे पंच महाव्रत हो, परन्तु अन्दर में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र वीतरागदशा ही होती है, उसे मुनिपना कहते हैं, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं, उसे जैनदर्शन कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से।

मुमुक्षु : निश्चय से नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की दशा, वह निश्चय मुनिपना। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल है प्रभु आत्मा तो। ऐसी इसे खबर कहाँ है? यह ठेठ बाहर में शोधने जाता है। मृग की नाभि में, डुंटी में कस्तूरी, परन्तु उसे कस्तूरी की कीमत नहीं। वह कस्तूरी को बाहर खोजने जाता है। इसी प्रकार मृग जैसे जीव अन्दर में—नाभि में—अन्तर पेट में आत्मा के अन्दर में अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है। आहाहा! शोधने बाहर जाता है कि यहाँ से सुख... यहाँ से सुख... यहाँ से सुख... और यह पुण्य के परिणाम करे महाव्रतादि के उसमें से मुझे सुख मिलेगा। वे सब मिथ्यादृष्टि जीव हैं। उन्हें जैन नहीं कहते। समझ में आया? आहाहा!

जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, जैन वस्तु का स्वरूप है। वीतराग मूर्ति आत्मा अन्दर है। ऐसा वीतराग पिण्ड आत्मा अन्दर है। अनादि से अन्दर है। ऐसे वीतरागी स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह वीतरागी मार्ग जैनदर्शन है। आहाहा! भारी कठिन बात!

अनन्त काल से भटकते हुए इसे सम्यग्दर्शन क्या, इसकी खबर नहीं। माने हुए कुछ व्रत और तप करे और अपने माने हुए देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हमारे है, वह समकित। मर गया अनन्त काल से ऐसा का ऐसा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, उसे **पाँच महाव्रत, पाँच समिति...** होती है। देखकर चलना, विचारकर बोलना, निर्दोष आहार-पानी, उसके लिये बनाया हुआ न ले, उसके पास तो उपकरण में तो मोरपिच्छी और कमण्डल—दो होते हैं, उन्हें लेने-रखने के लिये ध्यान-यत्न रखे। उस मुनि को तो वस्त्र-पात्र होते नहीं तीन काल में। वस्त्र-पात्र रहे और मुनि माने, जैनदर्शन में तो उसे मिथ्यादृष्टि निगोदगामी कहा है। समझ में आया? झांझरीजी! ऐसा मार्ग है प्रभु का कहा हुआ। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर ने यह कहा है। फिर उसमें स्थिर नहीं रह सके तो सब वाडा (सम्प्रदाय) नये-नये बँधे हैं। आहाहा! कठिन काम है, भाई!

पाँच समिति, छह आवश्यक.... आत्मा के स्वरूप की दृष्टि, अनुभव, ज्ञान और रमणता सहित उसे सामायिक, चौविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग ऐसा विकल्प-शुभराग होता है। परन्तु ऐसा हो, उसके सहित की बात है। जिसे निर्विकल्प आनन्द का स्वाद आया है पहला तो सम्यग्दर्शन में। समकिती चौथे गुणस्थान में हो, उसे आत्मा के निर्विकल्प के आनन्द का अनुभव होता है। स्वाद होता है स्वाद। यह क्या होगा?

मुमुक्षु : दूसरा पथ-मार्ग नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... आम तो जड़ है। आहाहा! यह माँस जड़ है हड्डियाँ। आहाहा! अन्दर में राग का रस आवे अज्ञानी को, पर की अनुकूलता देखकर राग हो, प्रतिकूलता देखकर (द्वेष); राग-द्वेष को वेदे। उसका रस, वह अज्ञानरस। उससे भिन्न आत्मा का रस, वह आनन्दरस, ज्ञानरस। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सम्यग्दर्शन, प्रथम तो आत्मा के पूर्ण आनन्द और ज्ञान के स्वाद की दशा प्रगट हो आस्वादन, उसमें सम्यग्ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान और उसमें स्वरूप की लीनता, आनन्द में रमणता, वह चारित्र। ऐसी दशा जहाँ निश्चय हो, वहाँ ऐसे पंच महाव्रतादि, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प होते हैं। वह व्यवहार। आहाहा!

पाँच इन्द्रियों को वश में करना,... परन्तु ऐसा हो उसे ऐसा विकल्प होता है, उसकी बात है। **एक बार भोजन करना,...** वहाँ आया न? **पाँच इन्द्रियों को वश में करना, स्नान नहीं करना,...** स्नान नहीं करे। जैसा माता से जन्मा, वैसा जिसका—मुनि का शरीर हो। वीतराग मुद्रा दिखाई दे। अन्तर में वीतरागदशा, बाह्य में नग्न वीतराग मुद्रा। उसे त्रिलोकनाथ ने जैनदर्शन कहा है। जिनदर्शन। यह मूलसंघ। अनादि का सनातन जैनदर्शन का यह संघ है। उसे **भूमिशयन...** होता है। नीचे सोना। **वस्त्रादि का त्याग...** है न? वस्त्र, पात्र का उसे त्याग होता है। **अर्थात् दिगम्बर मुद्रा,...** होती है। आहाहा! अनादि का जैनदर्शन तो यह है।

मुमुक्षु : यह सब भगवान को था?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब भगवान को था मुनिपने में। गजब बातें, बापू! यह कहेंगे। इस बात में निभ नहीं सके, इसलिए भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में श्वेताम्बर पंथ निकला, दिगम्बर में से। पहले मूर्तिपूजक श्वेताम्बर निकले।

मुमुक्षु : वे लोग ऐसा कहते हैं कि हमारे में से निकला।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहे। स्वतन्त्र है। उनमें से स्थानकवासी अभी ५०० वर्ष में निकले। वे श्वेताम्बर मूर्तिपूजक में से निकले और उनमें से अभी यह २०० वर्ष में यह तेरापंथी तुलसी निकले। ऐसा परम सत्य है। जगत को बैठे, न बैठे तो क्या? परमात्मा तीन लोक के नाथ ने ऐसा स्वरूप कहा है। शान्तिभाई! ... मुनि होनेवाले थे। गृहस्थ व्यक्ति है। स्त्री, पुत्र छोटे। दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। नग्नमुनि। परन्तु इन्होंने यह सब सुना, कहे अरे! यह तो दूसरे प्रकार का लगता है। अभी तो मुनिपना कैसा, यह लोगों ने सुना नहीं। आहाहा! दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। मूलचन्दभाई! गृहस्थ व्यक्ति है। दिल्ली में। माँ, बाप हैं, स्त्री है, पुत्र है, मकान हैं। पैसेवाले हैं। वे विद्यानन्दजी गये थे... उन्होंने यहाँ का साहित्य वाँचा-सुना। ज्ञानचन्दजी लाये न? ज्ञानचन्दजी। अरे! यह तो मार्ग दूसरा है! अभी तो सम्यग्दर्शन किसे कहा जाये, उसका ठिकाना नहीं होता, उसे साधुपना आया कहाँ से? आहाहा! वीतराग का मार्ग ऐसा है बापू! अलग है।

केशलोंच करना, एक बार भोजन करना,... मुनि को एक बार आहार होता है।

(दस-) ग्यारह बजे एक बार निकले एक बार आहार हाथ में। आहाहा! **खड़े-खड़े आहार लेना,...** खड़े-खड़े आहार लेना ऐसे। आहाहा! **दंतधोवन नहीं करना,...** दाँत में अँगुली भी नहीं डालते ऐसे साफ करने के लिये। ....

मुमुक्षु : मुख गन्ध मारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गन्ध नहीं। सुगन्ध आवे उसे।

मुमुक्षु : सुगन्ध निकले?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है न बनारसीदास में। तीन कषाय (का अभाव) मुनि को तो... ओहोहो! जगत परमेश्वर हुआ वह तो। णमो लोए सव्व साहूणं में मिल गये। आहाहा! गणधर चार ज्ञान के धनी, धर्म के वजीर जिन्हें नमस्कार करें। णमो लोए सव्व साहूणं। हे मुनि! तेरे चरणकमल में मेरा नमस्कार है। णमो पाँच नवकार में वे इकट्ठे सम्मिलित हो जाते हैं। जिन्हें गणधर का नमस्कार पहुँचे, वे साधु कैसे होंगे? दुनिया को खबर नहीं। समझ में आया? वीतराग ने कहा हुआ जैनदर्शन का मोक्षमार्ग सुना नहीं। वह जैनदर्शन कहो या मोक्षमार्ग कहो। निश्चय और व्यवहार। आहाहा! गजब शैली है।

यह अट्ठाईस मूलगुण हैं... लो! इन साधु को जैसे वीतराग ने जैनदर्शन अंगीकार किया, तीर्थंकर ने नग्नपना धारण किया। उन लोगों में तो ऐसा कहते हैं कि उन्हें इन्द्र ने एक वस्त्र दिया और बाहर महीने रहा।

मुमुक्षु : कन्धे पर रखने को।

पूज्य गुरुदेवश्री : कन्धे पर रखने का क्या कारण? वे सब कल्पना के शास्त्र बनाये।

मुमुक्षु : कितनी उदारता!

पूज्य गुरुदेवश्री : उदारता कैसी? ...आहाहा! महामुनि वे तो। ब्राह्मण उनका भानेज, मामा का है न। फिर आधा दिया। यह और श्वेताम्बर में आता है। उसमें नहीं आता। उसमें एक बारह महीने यहाँ वस्त्र रखा। फिर बारह महीने में गिर गया। इन्द्र ने

दिया हुआ। इस वीतराग मार्ग की यह पद्धति नहीं थी। कल्पित पद्धति बनायी थी। ऐसा है भगवान! मार्ग तो यह है, हों! इसे सम्प्रदाय की बात में यह नहीं बैठता, परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान का सम्प्रदाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : इन तीन लोक के नाथ का यह सम्प्रदाय है। चिमनभाई! पहिचानते हो तुम इनको? रामजीभाई का पुत्र है। वहाँ नहीं? ऐसो। आठ हजार मासिक वेतन है। ऐसो नहीं उस धोला से क्या कहलाता है वह? घोड़ा छाप नहीं। तेल... तेल। वह तो गया। उसमें ऑफिसर है। कहाँ मुम्बई में है? कहाँ है? ... गये थे न अपने वहाँ। आहार लेने गये थे। अभी यह... गये थे न। अवसर-अवसर पर... याद करते हैं। आहाहा! उस समय आहार करने आये थे? फिर आये थे। वही छोड़ने आये थे न। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अट्ठाईस मूलगुण **तथा छियालीस दोष टालकर...** छियालीस दोषरहित। छियालीस दोष है ... के। छियालीस दोषरहित। परन्तु ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतराग के आनन्द में रमता है, उसे ऐसा विकल्प होता है, उसमें ऐसे अट्ठाईस मूलगुण में छियालीस दोष रहित उसका आहार होता। उनके लिये बनाया हुआ वह आहार लेते नहीं, बिक्री से लेते नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ... हलवाई के यहाँ से...

पूज्य गुरुदेवश्री : हलवाई के यहाँ से... नहीं... नहीं वह नहीं लेते।

मुमुक्षु : नजदीक में हलवाई की दुकान...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह ...नन्द का शिष्य छोटा था न। छोटे लड़के को दीक्षा दी, फिर हलवाई की दुकान से... मुझे यह पेड़ा चाहिए।

मुमुक्षु : वह मन्दिर को...

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है, यह सब बात। वे साधु कहाँ थे? वह तो ... दीक्षा, वे साधु थे कहाँ? सम्यग्दृष्टि नहीं, वहाँ साधु कहाँ से आये? सम्यग्दर्शन तो जिसे ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो और उसे अट्ठाईस मूलगुण हो और जिसे नग्नदशा

हो, छियालीस दोषरहित आहार हो, ऐसे को तो अभी जैनदर्शन (कहते हैं)। उस जैनदर्शन की जिसे श्रद्धा हो, उसे आत्मा की श्रद्धा होकर समकित होता है। ऐसी सूक्ष्म बात है। आहाहा! गाथा ऐसी आ गयी है।

मुमुक्षु : ... बहुत कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु यह है अनादि की, उसमें शर्त क्या? अनादि तीर्थंकर केवली प्रभु, अनन्त तीर्थंकरों का पुकार—आवाज यह दिव्यध्वनि में आयी हुई है। समझ में आया? आहाहा!

यह आहार करना। **वह ऐषणा समिति में आ गया।** वह तो पाँच समिति में आ गया। उसके लिये आहार बनाया हुआ चौका, ऐई! झांझरीजी! यह चौका बनाकर लिया क्या? ...साधु आवे तो फिर यह सब जाये सामने। यह अभी नहीं जाते।

मुमुक्षु : पूरा परिवर्तन किया पूरे घर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वे लड़के भी अच्छे हुए न विमलचन्द और...

मुमुक्षु : ... इनका लड़का।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चौथे नम्बर का है। पाँचवें नम्बर का आया था, वह अर्हंत प्रकाश... सबको इसमें रस है।

मुमुक्षु : पूरा घर...

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा घर बदल गया है। आहाहा! ... बहुत रुचि है इन्हें तो। दो महीने रह गये न! बहुत रुचि है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। मार्ग अनादि का यह मार्ग। समझ में आया? मक्शी है न मक्शी, वहाँ मक्शी (मक्शी पार्श्वनार्थ) यात्रा का स्थल।

यहाँ कहते हैं कि निर्दोष आहार को, ऐसा वह तो समिति में-ऐषणा में रहा। **ईर्यापथ—देखकर चलना...** बराबर देखकर... रात्रि में नहीं, दिन में देखकर चलना। यह तो सवेरे जल्दी उठे, अन्धेरा हो तो घण्टे पहले चले। यह तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। आहाहा! **ईर्यासमिति में आ गया तथा दया का उपकरण मोरपुच्छ की पींछी...** ले। ओहोहो! मुनि को दया के उपकरण में मोर (पंख) की पिच्छी। अनादि का

मार्ग यह है। महाविदेह में परमात्मा विराजते हैं। सीमन्धर भगवान वहाँ सन्त का मार्ग ऐसा है। समझ में आया? महाविदेह में जैन के दिगम्बर लिंग सिवाय कोई वेश वहाँ है ही नहीं। दूसरे मन्दिर नहीं। दिगम्बर सन्त के, मुनियों के, तीर्थंकर... मत अनेक। विपरीत श्रद्धा अनेक। पश्चात् वहाँ से सातवें नरक में (भी) जानेवाले हैं। यहाँ से सातवें नरक में जानेवाले नहीं, वहाँ मोक्ष जानेवाले नहीं। वहाँ सातवें नरक में जानेवाले (भी) हैं। आहाहा! उन भगवान के मुख से निकला हुआ यह मार्ग है। सीमन्धर परमात्मा, देखो न सामायिक में नहीं लेते?

मुमुक्षु : भगवान की आज्ञा...

पूज्य गुरुदेवश्री : आज्ञा।... खबर है न भाई को। आहाहा! हमने भी वहाँ दुकान पर सब किया है, हों! समझ में आया?

दया का उपकरण मोरपुच्छ की पींछी और शौच का उपकरण कमण्डल धारण करना... पीने के लिये नहीं। जंगल (दस्त) साफ करने के लिये पानी कमण्डल में रखे। पेशाब और विष्टा साफ करने के लिये। शास्त्र का स्वाध्याय करना हो न!... **ऐसा बाह्य वेश है...** लो! **तथा अन्तरंग में जीवादिक षट्द्रव्य,...** भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं, तीर्थंकर प्रभु ने। जाति से छह, संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश। वीतराग परमात्मा ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। उनकी मुनि को श्रद्धा होती है। आहाहा! एक ही आत्मा हो और एक ही जड़ हो, ऐसी श्रद्धा, वह तो मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? आहाहा!

षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय.... काल है न, वह असंख्य अणु हैं। वे इकट्ठे नहीं होते। वे सूक्ष्म अधर्मास्ति बात है। और इसके अतिरिक्त धर्मास्ति तथा आकाश, पुद्गल और जीव—पंचास्तिकाय, उनकी उन्हें श्रद्धा होती है। **सात तत्त्व...** होते हैं। उनमें पुण्य-पाप को आस्रव में मिलाकर सात हुए। **नौ पदार्थ...** हैं। उस आस्रव में से पुण्य-पाप अलग किये तो नौ हुए। **यथोक्त जानकर...** उन्हें बराबर जाने। बराबर नौ पदार्थ, सात तत्त्व... आदि। छह द्रव्य, पंचास्तिकाय। **श्रद्धा करना,...** उनका बराबर ज्ञान करके उसे श्रद्धा होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान बिना श्रद्धा नहीं होती ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान बिना, भान बिना श्रद्धा किसकी ? चीज़ ही देखी नहीं, क्या है उसे जाने बिना...

मुमुक्षु : भगवान ने कहा वह सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सच्चा है ? जाने बिना सच्चा क्या ? सूखे गोबर को गुड़ मान ले। छाण... छाण...। गोबर। ऐसा मान ले कि यह गुड़ है। गोबर और गुड़ लो। यह गोळ और गो।... गोळ। गोळ शब्द तो उसका यह है। एक बताता है गुड़ को और एक बताता है गोळ-चक्र को। उसका जिसे ज्ञान न हो, वह गोळ का... कुछ कहा नहीं था एक बार ? क्या तुम्हारे ? कुवाडवा। स्कूल में उतरे थे। वह मच्छर का बड़ा चित्र था ऐसा। लम्बे पैर और मच्छर ऐसा। स्कूल में मास्टर ने... स्कूल में आवास था। राजकोट जाना था। पाँच कोस से आये थे। वह मच्छर था। चित्र देखा, लड़के को सिखाने के लिये उसके पैर लम्बे करके मच्छर के पैर लम्बे करके सिखावे। देखो यह... यह... ऐसा। उसमें लड़के को, एक बार गाँव में हाथी आया। मास्टर ! यह तुमने बताया था, वह यह मच्छर। ... आहाहा ! मच्छर ऐसा लम्बा करके बताया था और हाथी कैसा, इसकी खबर नहीं होती। देखो, मास्टर साहेब ! आपने मच्छर नहीं बताया था ? उसमें यह आया। अरे ! यह नहीं, हाथी नहीं। मच्छर अलग, हाथी अलग। यह तो तुमको पैर की रेखा का मच्छर की छोटी छोर छोटी हो और बीच में... में अमुक हो, इतना भिन्न करने के लिये लम्बे पैर बतलाये थे। उसे तू हाथी मान ले।

मुमुक्षु : ऐसा ही किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही माना है अनादि से। आहाहा !

जानकर श्रद्धान करना और भेदविज्ञान द्वारा... वापस तीन बोल लेंगे। यह व्यवहार श्रद्धा ऐसी होती है और भेदविज्ञान द्वारा। राग का विकल्प है, उससे भिन्न भगवान आत्मा का उसे ज्ञान और श्रद्धान, आनन्द होता है। आहाहा ! परन्तु ऐसी श्रद्धा और ऐसे भावसहितवाले की बात है, हों ! **अपने आत्मस्वरूप का चिन्तवन करना,...** भगवान आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसके स्वरूप का चिन्तवन करके

अनुभव करना। उसका अनुभव करना, वह जैनदर्शन है। आहाहा! बाहर की सेवा-बेवा, चन्दुभाई! कोई कर नहीं सकता, हों! वह व्यर्थ का अभिमान है। एक दाना भी किसी को देना। भगवान इनकार करते हैं कि वह दाना तो अजीव है। उस अजीव का जाना—आना वह अजीव के कारण से है। यह माने कि मैंने दिये, मिथ्यादृष्टि अजीव को जीव मानता है। छोटुभाई! आहाहा!

नौ तत्त्व जानना पड़ेंगे या नहीं इसे नौ? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। दो द्रव्य हैं और सात पर्यायें हैं। जीव-अजीव दो पदार्थ हैं और ... आस्रव, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा, मोक्ष। पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, ये अशुद्ध पर्यायें हैं; संवर, निर्जरा और मोक्ष ये शुद्ध पर्यायें हैं। परन्तु अभी इसे खबर नहीं होती। आहाहा! उसमें से छाँटकर फिर अकेला आत्मा आनन्द का अनुभव, उसे अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! यह तो चौथे गुणस्थान की यह स्थिति है और उसके पश्चात् यह मुनि जो हैं, उन्हें ऐसी दशा होती है। समझ में आया?

ऐसा जिनदर्शन है,... है न? **ऐसा दर्शन अर्थात् मत वह मूलसंघ का है।** मूल संघ अर्थात् अनादि का वीतरागमार्ग जो था, उसका यह अभिप्राय और यह दर्शन है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों का, परम्परा का प्रवाह का मार्ग, उसे मूलसंघ कहते हैं। समझ में आया? **ऐसा जिनदर्शन है,...** उसे जैनदर्शन कहा जाता है। आहाहा! **वह मोक्षमार्ग का मूल है;...** लो! जैनदर्शन का मूल। तीसरा पद है न! वह जैनदर्शन मोक्षमार्ग का मूल है। आहाहा! **इस मूल से मोक्षमार्ग की सर्व प्रवृत्ति सफल होती है...** आहाहा! ऐसा जो जैनदर्शन और मोक्ष का मार्ग, उसकी जो श्रद्धा करे, उसे सब सफल। उसका ज्ञान भी सच्चा, अन्दर स्थिरता भी सच्ची, व्रत भी व्यवहाररूप से उसे सच्चे होते हैं। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग भाई! सुना भी न हो इसने।

मुमुक्षु : क्या सुने? कोई सुनानेवाला न हो तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने वाले को स्वयं की गरज नहीं। सेठ भगवानदास ऐसा कहते हैं। बीड़ीवाले हैं न। ... गये न। सागरवाले हैं, बीड़ीवाले। दो लाख का मकान

बनाया है न! भगवानदास शोभालाल बीड़ीवाले ... घर में बड़े गृहस्थ बड़े। छह लाख के मकान। ऐसे-ऐसे कितने ही मकान गाँव में। बड़े पैसेवाले गृहस्थ। दो भाई यहाँ थे। अभी गये। बादशाह कहलाते हैं। बुन्देलखण्ड के बादशाह। बड़े गृहस्थ। ४०-४० तो घर में मोटरें। बीड़ी... करोड़ों... वे ऐसा कहे बारम्बार बैठे हों तो कि हम क्या करें? हमको कोई सुनानेवाले मिले नहीं थे न! सुनानेवाले मिले नहीं थे, यदि तुमको सुनने की गरज सच्ची हो तब तो मिले बिना रहे ही नहीं। जेठालालभाई! आहाहा!

अरे! आत्मा की सत् की तैयारी हो तो तीर्थंकर उपस्थित है न, यहाँ भगवान विराजते हैं। वहाँ न जन्मे? समझ में आया? आहाहा! तीन काल में तीन काल के जाननेवाले केवलियों का विरह... जगत को होता नहीं। विरह ही नहीं होता। क्योंकि ज्ञेय जो अनन्त हैं, वे जैसे अनादि हैं, वैसे उनके जाननेवाले साथ ही अनादि हैं। केवली। केवलज्ञानी परमात्मा अनादि के हैं। अभी हुए वे तो एक व्यक्तिरूप से नये, ऐसे अनादि से केवली चलते आते हैं। अनादि से जगत है और अनादि से ज्ञाता हैं। आहाहा! ऐसे वीतरागदेव का दर्शन तो यह है। इसे जैनदर्शन कहते हैं। इसे मोक्षमार्ग कहते हैं।

तथा जो इससे भ्रष्ट हुए हैं,... ऐसे मार्ग से भ्रष्ट हुए, भाई! भगवान के बाद बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। ऐसे तीन दुष्काल पड़े। यह तो उसमें भी आता है, क्या कहलाता है? यह बारोट-बारोट। भाई नहीं? ...वाले नहीं। मलुचन्द... ...वाले। वहाँ ... में है न बड़े गृहस्थ हैं। स्थानकवासी। मलूकचन्द ...छोटालाल... वे नहीं आते। ... हाँ वे। वे सब हमको मिले हुए हैं। बहुत बड़े गृहस्थ हैं। यह उनका बारोट है एक। उस बारोट के पास दो हजार का... है। बड़ा पत्र ... दो हजार वर्ष का, उसमें बारह वर्ष का दुष्काल लिखा हुआ है। उसमें लिखा हुआ है, भाई! बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। वहाँ तो उसे न हो धर्म की। ... बारह वर्ष का दुष्काल। उसमें यह श्वेताम्बर पंथ निकला। अनादि सनातन जैनदर्शन से भ्रष्ट होकर (निकला)। कठिन है, मलूकचन्दभाई आज।

अनादि वीतराग परमात्मा ऐसा कहते आये। तुझे रुचे, न रुचे, परन्तु मार्ग तो यह है। क्या हो? अरेरे! इसे मार्ग हाथ आया नहीं। इसे मार्ग की रीति सुनने को मिलती नहीं। अरे! जन्म-मरण के चक्र कब मिटेंगे? आहाहा! चौरासी के अवतार कर-

करके... आहाहा! यह बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा तब से... अनादि दिगम्बर दर्शन ऐसा मुनिपना, ऐसा व्यवहार, ऐसा नग्नपना चला आता था अनादि से। महाविदेह में यह एक ही मार्ग है। साक्षात् भगवान विराजते हैं, वहाँ ऐसा एक ही मार्ग है। यहाँ भ्रष्ट हुए हैं।

वे इस पंचम काल के दोष से... आहाहा! अरेरे! काल ऐसा आया। **जैनाभास हुए हैं,...** जैन नहीं परन्तु जैनाभास। आहाहा! गजब बात है, भाई! सुनना कठिन पड़े ऐसा है। लोगों को यह तो एक दिन तो उन्हें समझना पड़ेगा। आहाहा! ऐई! छोटाभाई! है? जैनाभास। जैन नहीं। जैन का लिबास कहलाये ऐसा। **वे श्वेताम्बर...** हुए। तब स्थानकवासी तो थे नहीं। स्थानकवासी तो अभी पाँच सौ वर्ष (पहले) निकले हैं। ... मूर्तिपूजक में से निकले हुए हैं। लोकाशाह। यह तो पहले श्वेताम्बर निकले। भगवान के बाद छह सौ वर्ष में सनातन जैनदर्शन प्रवाह का चलता हुआ मार्ग, उसमें से भ्रष्ट होकर श्वेताम्बर पंथ निकला, मूर्तिपूजक।

द्राविड,... संघ। एक संघ था द्राविड का। **यापनीय,...** संघ। वे यापनीय मुनि भी नग्न रहे, माने श्वेताम्बर शास्त्र को। ऐसा एक पंथ था। वह अब अभी नहीं है। **गोपुच्छ-पिच्छ...** वे गाय की पूँछ (पिच्छी) रखते। मोरपिच्छी नहीं। **नि:पिच्छ...** पिच्छ रहित साधु थे। ऐसे पाँच पंथ पड़ गये थे। **पाँच संघ हुए हैं; उन्होंने सूत्र सिद्धान्त अपभ्रंश किये हैं...** श्वेताम्बरों ने बहुत काल्पनिक शास्त्र बनाये सब। आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग... आदि। सनातन सत्य से विरुद्ध कथन किया। स्त्री को मोक्ष ठहराया, वस्त्रसहित को मुनिपना मनवाया। वे सब कल्पित बातें बनायी। आहाहा! अरे रे! कैसे बैठे? शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। ऐई! धीरुभाई! यह सब तुम्हारे पुराने सेठिया स्थानकवासी के। यह परिवर्तन करके बैठे, यह ४५ वर्ष से उसमें थे, कोई कारण होगा या नहीं? ४५ वर्ष बिताये हैं वहाँ। २१ वर्ष और ४ तो उसमें रहे ऐसे। २३ वर्ष संसार में। २१ वर्ष और ४ महीने स्थानकवासी साधु। वह हमारी क्रिया कड़क थी। बहुत कड़क। बहुत कड़क। ... उस समय तो माना था, वह था न! आहाहा! रायचन्द गाँधी जैसे गृहस्थ लोग अपने। बोटाद के बड़े गृहस्थ। पचास हजार आमदनी तो तब, हों! आमदनी तब। दिनशाना। दिनशा नहीं?

मुमुक्षु : हमारे ... काका होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ...कौन? बरवाळा, वे नहीं। यह तो दिनशा वह पारसी का व्यापार। वह तो ठेठ अभी आये न! दिनशा का... वह तो... हमारे अमृतलाल। उन्हें तो पहिचानते हैं। हमारे निकट ब्रह्मचर्य लिया था न, राजकोट में। आते हैं लड़के आते हैं, शान्ति। ... है न! सब पहिचाने। छोटी उम्र से। यहाँ बहुत बार आते हैं। ... हमारे साथ रहते थे जामनगर।

यह तो दिनशा एक बड़ा व्यापार रुई का बड़ा। वे आड़तिया जिसे हों, उसे तो बहुत आमदनी होती थी तब ... का धन्धा था। यहाँ एक जगजीवन भाई को था। जगजीवन पारेख थे। यह तो सब ८०, ७० वर्ष पहले की बातों की खबर है न। वहाँ आहार लेने जायें, वहाँ ५०-५० लोग जीमते हों। आम का रस हो। ... जीमने का ... २००-२०० व्यक्ति। भिक्षा लें। रायचन्द गाँधी थे। लाओ, कहा। इस रस में गुठली है? गुठली है? कहे, महाराज! खबर नहीं। छूना नहीं। ऐई! धीरुभाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गुठली जीव है एक। उसे छुओगे तो... रस हमारे नहीं लिया जाता। ऐसी सख्त क्रिया थी। परन्तु सब समझे बिना की। ऐई! आहाहा!

मुमुक्षु : सम्प्रदाय की प्रवृत्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस प्रमाण तो जो था, वह करने का। वस्त्र आठ महीने में एकबार धोयें। सर्दी, गर्मी में न धोयें। चातुर्मास आवे तब एकबार कपड़े... पानी कहीं से लाकर दे। कंसार का स्थान होता है न? कंसारा बर्तन धोकर। एक बार धोयें। कपड़े मैले। लगे क्या कहलाये? ... जैसे। चमड़ी ऐसी थी। मैले... मैले... मैले... आहाहा! वह मार्ग नहीं, बापू! वीतराग का वह मार्ग नहीं। समझ में आया? वीतराग का मार्ग अनादि केवली परमेश्वर का तो यह मार्ग है। केवली पण्णंतो धम्मो शरणं। वह यह है। कठिन पड़े ऐसा है, हों! आहाहा! पोपटभाई ने तो यह सुना नहीं था तब तो। तब माणेकचन्दजी तपसी उनके सेठ थे। खबर है न, सब खबर है न! माणेकचन्दजी तपसी थे। संथारा किया था। वहाँ चातुर्मास वहाँ ६७ में मुम्बई। माणेकचन्दजी ६७ में चातुर्मास में आये थे। उसमें ... एक संथारा किया था ... कांदावाडी... देखे हुए। माल लेने आया

हुआ न। ६७ की बात है। दीक्षा तो ७० में हुई थी। (संवत्) १९६७ कांदावाडी। अभी तो बदल डाला मकान। तब कमरा था, बरामदा था। ऐसे बैठे थे।

मुमुक्षु : पुराने मकान में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराना मकान बस। (संवत्) १९६७ की बात है। वहाँ तपसी अकेला पाट पर बैठा था। हम माल लेकर फिर फुरसत में थे। कहा चलो साधु देखें। वहाँ बैठे थे वे। ६७ की बात है। माणेकचन्दजी तपसी, उनके शिष्य तुम्हारे बापू। आहाहा! उन्हें मूर्ति की श्रद्धा थी, हों! माणेकचन्दजी को।

मुमुक्षु : पुस्तक प्रकाशित की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक प्रकाशित की थी। मुझे खबर है। पढ़ी थी। मूर्ति है, ... उत्थापित की है। वे सब वह क्या नाम था कुछ। उस पुस्तक का नाम भूल गये। इसमें नहीं। हमारे पास है। बोटाद आयी थी।

मुमुक्षु : उसमें तो दस-बारह ऊपर की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मूर्ति शास्त्र में है। बत्तीस सूत्र में मूर्ति पूजा है। इसलिए उन्हें लगा कि मूर्ति तो है। अब इसमें क्या करना हमारे? खलबलाहट हो गयी थी। मुझे सब खबर है न! वडिया में रखा था न बाद में। वडिया... वडिया। वहाँ रखा था न ... और सब। मूर्ति तो बत्तीस सूत्र में है। मूर्ति और मूर्ति की पूजा तो अनादि से चली आती है। परन्तु मूर्ति कैसी चाहिए? यह बात। वस्त्र, पात्र कुछ नहीं होते। श्वेताम्बर ने जो बनायी, वह कल्पित है। यह मूर्ति पूजा अनादि की है। यह पूजा का भाव, वह धर्म नहीं। है पुण्य, परन्तु पाप से बचने को ऐसा पुण्य आये बिना रहता नहीं। है पुण्य, धर्म नहीं। आहाहा! जैसे यह अट्ठाईस मूलगुण, वह पुण्य है, परन्तु आये बिना रहते नहीं। ऐसी बातें भारी कठिन।

कहते हैं, **उन्होंने सूत्र सिद्धान्त अपभ्रंश किये हैं।** पूरे सिद्धान्त बदल डाले श्वेताम्बरों ने। नये बनाये। वे श्वेताम्बर के बनाये हुए हैं। पश्चात् स्थानकवासी ने मान, उसमें से निकले इसलिए। मूल तो श्वेताम्बर साधु के बनाये हुए हैं। ... है न हमारे उमराला के पास। **जिन्होंने बाह्य वेश को बदलकर आचरण को बिगाड़ा है।** आहाहा!

वस्त्र, पात्र आदि, नग्नपना छोड़कर ऐसा अंगीकार किया। **जिनमत के मूलसंघ से भ्रष्ट हैं,...** जैनमत वीतराग का दर्शन अनादि का, उससे तो ये भ्रष्ट हैं। आहाहा! इसका सब विवाद तुम्हारे। झांझरीजी! वहाँ भी दो विवाद चलते हैं न? श्वेताम्बर और दिगम्बर। जहाँ हो वहाँ तीर्थ के लिए झगड़ा। अररर!... करते हैं। एक शुभभाव होता है तब, जैसे वीतराग थे, वैसी प्रतिमा होती है। प्रतिबिम्ब। उसे दूसरा वस्त्र ऊपर गहने और ऊपर पत्थर चिपटाये, फिर वेश पहनावे, वह सब कल्पित है।

मुमुक्षु : बूट पहनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बूट पहनावे, खबर है। एक बार गये थे। जूनागढ़ में। एक वीतराग मुद्रा एक शुभभाव का निमित्त है। वह वस्तु है अनादि की इतना। उसे बिगाड़ दिया। जैन श्वेताम्बर है न उन्होंने। तुम्हारे नागनेश में है? नहीं। निकल गया।... नहीं वह? एकावाला था वह? ऐ... हो गया। एकावाला नहीं था?....

जिनमत के मूलसंघ से भ्रष्ट हैं, उनको मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं है। उन्हें मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। सम्यग्दर्शन ही नहीं हो सकता। आहाहा! भारी कठिन! **मोक्षमार्ग की प्राप्ति मूलसंघ के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण ही से है...** मोक्ष सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति तो मूलसंघ दिगम्बर सनातन मार्ग की श्रद्धा, उसके ज्ञान, उसके **आचरण से ही है—ऐसा नियम जानना।** यहाँ अपने कक्षा (शिविर) पूरी हुई। वहाँ भी पूरा हुआ। कहो, चिमनभाई! ऐसा अपने कभी ऐसा सुनने का हो। आहाहा! बापू! मार्ग यह है, हों! यह पक्ष करके चाहे जो कल्पे परन्तु वीतराग केवली परमात्मा, भगवान महावीर ने यही पंथ कहा है। समझ में आया? फिर इससे भ्रष्ट होकर नये शास्त्र रचे हैं। ८४ रचे हो, ...में। ४५ मान्य रखे श्वेताम्बर मूर्ति (पूजक ने) और ३२ रखे स्थानकवासी ने। वे सब कल्पित हैं, वीतराग के शास्त्र नहीं। आहाहा! गजब बातें, भाई! कठिन बात है। सत्य श्रद्धा का श्रवण मिलना, सत्य श्रद्धा का सम्प्रदाय मिलना, वह महापुण्य चाहिए। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अनादि सनातन तीर्थंकरदेव का जिनमार्ग जैसा स्वयं ने मुनिपने में अंगीकार किया है, ऐसा माता से जन्मा वैसा रूप, अन्दर में आनन्दकन्द में झूलते थे। छठवें-सातवें में, मुनि तो अन्तर्मुहूर्त में छठवें-

सातवें में हजारों बार आते हैं। ओहोहो! और सच्चे मुनि हों, जिन्हें भगवान कहते हैं, उन मुनि को निद्रा पौन सेकेण्ड की होती है। एक सेकेण्ड के अन्दर। छठवें गुणस्थान की स्थिति इतनी है। क्या करे ... क्या? पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा। यहाँ तो चार-चार, छह-छह घण्टे ऊंघे और उन्हें मुनि कहते हैं। अरे.. भाई! अरे! झांझरीजी! विमल भाई कहते थे। वे साधु वहाँ आये नहीं थे? विद्यानन्दजी। वे कहते थे तुम आओ। तो यह कहे, नहीं। विमलभाई कहते थे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं। भाई कहते थे। ऐसा मार्ग वीतराग का है बापू! वीतराग... आहाहा! उसे पहले पहिचानना और श्रद्धा करना चाहिए। चारित्र तो बाद में कहीं रहा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ११, रविवार, दिनांक ०७-१०-१९७३
गाथा-१२, १३, प्रवचन-२०

अष्टपाहुड़। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में हुए। भगवान के पास जाकर यह शास्त्र बनाये हैं। उसमें यह दर्शनपाहुड़ पहला अधिकार है। १२वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जो यथार्थ दर्शन से भ्रष्ट हैं और दर्शन के धारकों से अपनी विनय कराना चाहते हैं, वे दुर्गति प्राप्त करते हैं...** गाथा।

मुमुक्षु : दुर्गति अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चार गति नरक और एकेन्द्रिय। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। एकेन्द्रिय में जायेगा लूला और गूँगा। एकेन्द्रिय जीव को पैर नहीं और मुख नहीं। यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव है न? छोटाभाई! आता है न इच्छामि पडिकम्मणा में? एकन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया। उसका अर्थ न आता हो। और उसमें एकेन्द्रिय में आवे पृथ्वीकाय, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव है सब। यह वनस्पति है न यह। नीम। एक पत्ता है, उसमें असंख्य जीव हैं। असंख्य जीव। ऐसे, हों! ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा एक पत्ते के टुकड़े में। आलू / बटाटा, शकरकन्द, काई के एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव। ऐसा भगवान तीर्थंकर ने देखा और ऐसा है। कहते हैं कि जो कोई दर्शन से भ्रष्ट है। आयेगा एक... यह दूसरे दर्शनवाले हैं, उनसे विनय कराना चाहते हैं तो वे एकेन्द्रिय होंगे। आहाहा!

जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं॥१२॥

अर्थ :- जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं,... आचार्य को तो यह कहना है जरा। जो जैनदर्शन है नग्न मुनिपना, उसमें अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आनन्द की दशा, उसकी नग्नमुद्रा और अट्ठाईस मूलगुण विकल्प, ऐसा जो मूलसंघ जैन का अनादि से था। आहाहा! उस मूलसंघ से जो भ्रष्ट हुए हैं। बात तो सत्य हो वह आवे, दूसरा क्या हो? है न? **जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं,... 'जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं। ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा'** आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने—तीर्थंकर

ने जो जिनपना अंगीकार किया। अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, बाह्य में नग्नपना, अन्दर में अट्ठाईस मूलगुण, उसे जैनदर्शन कहते हैं। उससे जो भ्रष्ट होकर अपना नया पंथ निकाला, वे जीव बाहर में कुछ कीर्तिवाले हों, और ऐसे धर्मात्मा (से) विनय चाहे कि ये जीव हमको विनय क्यों नहीं करते? ५०-५०, ६०-६० वर्ष की दीक्षा है न।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने आप अपनी स्वयं की कल्पना से सब। सूक्ष्म बात है न यह। मूलमार्ग की बात है यह।

अनादि वीतरागमार्ग महाविदेह में या यहाँ और भरत, ऐरावत में अनादि मार्ग तो, दिगम्बर मार्ग जो है, वह अनादि मार्ग है। जैनदर्शन का स्वरूप। अमरचन्दभाई! आहाहा! क्या हो? ऐसे जैनदर्शन से भ्रष्ट होकर वस्त्र, पात्र से मुनिपना मानकर नये शास्त्र बनाये। उनमें मुनि को वस्त्र चलते हैं, पात्र चलते हैं, ऐसे शास्त्र बनाये और ५०, ६०, ७० वर्ष की दीक्षा हो उनकी मानी हुई। वे जीव यह साधारण दूसरे मूल संघ के माननेवाले धर्मात्माओं से अपनी विनय चाहते हैं, एकेन्द्रिय होंगे। अरमचन्दभाई!

जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं... ऐसा जो जैनमार्ग अनादि परम्परा का चला आया हुआ है, उससे भ्रष्ट हो गये। **तथा अन्य जो दर्शन के धारक हैं,...** दूसरे जो कोई मूल संघ के माननेवाले, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और नग्नमुद्रा, ऐसा मानकर, (जो) समकिती जीव हैं। **उन्हें अपने पैरों पड़ते हैं,...** क्यों विनय नहीं करते? हम तुमसे बड़े हैं। ... हैं। ऐसा जो विनय चाहे, **नमस्कारादि कराते हैं,...** आहाहा! कठिन बात है। **वे परभव में लूले, मूक होते हैं...** लूला अर्थात् पैररहित एकेन्द्रिय। यह पृथ्वी, जल, अग्नि वह एकेन्द्रिय, उसे पैर नहीं है और मूक है (अर्थात्) वाणी नहीं है। एक शरीर है एकेन्द्रिय जीव को। एकेन्द्रिय है न? और एकेन्द्रिय अर्थात् यह स्पर्श इन्द्रिय एक। यह स्पर्श। जीभ नहीं, नाक नहीं, आँख नहीं, कान नहीं। चारों ही नहीं। एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौ इन्द्रिया, पंचेन्द्रिया—आता है न? आता है? किसमें? इच्छामि पडिकम्मणा में। ... लेश्या... ईरिया पाठ में। अभि... जीविया वहोरविया तस्स मिच्छामि दुक्कडम। परन्तु यह अर्थ भी कहाँ? जय भगवान।

यहाँ तो कहते हैं कि एकेन्द्रिय जीव जो है पृथ्वी। यह खान में है न खान में? पत्थर निकलते हैं न यह पत्थर? इसके एक कण में असंख्य जीव हैं। यह पानी-गोला में ऊपर से पड़े वर्षा का। एक बिन्दू में असंख्य जीव हैं। एकेन्द्रिय के जीव हैं। भगवान तीर्थंकर उसे अपकाय कहते हैं। अग्नि। एक-दो बार ऐसा करे, वहाँ वह अग्नि है, उसमें असंख्य जीव हैं। वायु। यह वायु है, उसमें असंख्य जीव हैं। वनस्पति। यह नीम, पीपल इसके एक-एक टुकड़े में असंख्य जीव हैं। और आलू, शकरकन्द, लहसुन, प्याज के एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं। वे एकेन्द्रिय कहलाते हैं। उन्हें दो इन्द्रिय अर्थात् जीभ नहीं है। यह स्पर्श शरीर होता है।

कहते हैं कि जो कोई सच्चे जैनधर्म का अनादि का मार्ग—संघ था मूलमार्ग, उसमें से भ्रष्ट होकर अपना पंथ नया निकाला और ऐसे मूल संघ के श्रद्धा करनेवाले समकिती से विनय चाहे, वे एकेन्द्रिय में जायेंगे। भारी ऐसा है। **और उनके बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ होती है।** उन्हें बोधि नहीं मिलेगी। 'बोहि लाभं' आता है न। आरोगो। लोगस्स में आता है। आरोग बोहि लाभं। बोधि का अर्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। नेमिदासभाई! आता है? लोगस्स में आता है। आरोग्य / निरोगता, आत्मा रागरहित हो जाये, उसे बोधिलाभ होता है। बोधि अर्थात् आत्मा का सम्यग्दर्शन, आत्मा का ज्ञान और आत्मा की शान्ति / चारित्र। उसे बोधि कहते हैं। आरोग्य बोहि लोभं समाहिवरं... समझ में आया? आहाहा! ऐसी बोधि मूलसंघ के माननेवाले समकित दृष्टि जीवों से, संघ के भ्रष्ट हुए विनय और बहुमान चाहे तो एकेन्द्रिय में जायेंगे। ऐसा भारी कठिन मार्ग। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है, हों! आहाहा!

भावार्थ :- जो दर्शन भ्रष्ट हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं... आहाहा! सनातन दिगम्बर मार्ग जो मुनिपने का। वह जैनदर्शन। उससे जो भ्रष्ट हुए, वे मिथ्यादृष्टि हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और स्थानकवासी, वे सब मूलसंघ में से भ्रष्ट हुए पंथ हैं। यह बात करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर आचार्य मुनि थे। भगवान के पास गये थे। परमात्मा विराजते हैं, महाविदेह में सीमन्धर भगवान अभी मौजूद हैं केवली तीर्थंकर महाविदेह में, वहाँ गये थे। आठ दिन रहकर (आये थे)। संवत् ४९। अन्दर आये वापस। यह शास्त्र बनाये। भगवान ऐसा कहते हैं। भगवानजीभाई! परन्तु भारी कठिन पड़े, हों!

यहाँ तो ऐसा मार्ग है, बापू! सच्चे देव, अरिहन्त जिन्हें आहार, पानी, क्षुधा, रोग नहीं होते, ऐसे अरिहन्त कहलाते हैं। उसे ही बिगाड़ दिया। अरिहन्त को रोग होता है, औषध लेते हैं, ऐसा सब आता है। वह सब विपरीत बातें हैं। अरिहन्त स्त्री हो। तीर्थंकर स्त्री मल्लिनाथ हो, यह सब विपरीत है। ऐसा है मनसुखभाई! क्या करे? समय पलटे तो भ्रष्ट हो गये। भ्रष्ट हो गये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई को दूसरा कहना है। समय पलटा परन्तु श्रद्धा से भ्रष्ट हो गये न? पालन न कर सके तो अलग बात है, परन्तु यह मार्ग ही दूसरा है। यह नहीं, हम कहते हैं वह मार्ग, ऐसा कहा न? शास्त्र में वस्त्र स्थापित किये, साधु को इतने वस्त्र चलते हैं, तीन पछेड़ी, इतने... और इतने पात्र—यह सब भ्रष्ट हुए, उनका कथन है। भगवानजीभाई! भाई! ऐसी बात आवे, तब तो अब क्या हो दूसरा? स्थानकवासी तो नहीं थे। वे तो अभी पाँच सौ वर्ष पहले हुए। उन्हें लक्ष्यकर यह बात है। आहाहा! समझ में आया?

दर्शन के धारक हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं;... जो कोई मूलसंघ की श्रद्धा, जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा हो, मुनिपना ऐसा हो, जैनदर्शन ऐसा हो, ऐसी जिसे अन्तर श्रद्धा हुई है। ऐसे सम्यग्दृष्टि से, ऐसे दर्शन भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि विनय चाहे। **जो मिथ्यादृष्टि होकर सम्यग्दृष्टियों से नमस्कार चाहते हैं...** क्यों हमको नमस्कार नहीं करते? क्यों हमारे चरण-वन्दन नहीं करते? हम इतने पुराने साधु हैं। तुम साधु ही नहीं न परन्तु। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु साधु को दूसरे चरण-वन्दन करे या नहीं, इसकी चिन्ता क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्ता, परन्तु उसे यह भ्रष्ट हुए हैं कि लो हम या नहीं?

मुमुक्षु : ... को आत्मा की चिन्ता या ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की चिन्ता हो तो भ्रष्ट किसलिए हो? मार्ग से पृथक् पड़े।

मुमुक्षु : तो साधु नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु कहाँ है? मिथ्यादृष्टि है, यह तो कहा। आहाहा! कठिन

काम प्रभु के मार्ग में आना। बहुत कठिन काम! आहाहा! छोटुभाई! इनके पिता और ये तो सब प्रमुख वहाँ। भाई तो पहिचाने। पोपटलाल कामदार। कामदार। माणेकचन्द... है न।

मुमुक्षु : ऐसा सुनने का नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं था, बापू! नहीं था, भाई! यह तो कहाँ का कहाँ था और आ गया है। मार्ग तो ऐसा है। किसी को दुःख लगे, उसके लिये यह बात नहीं है। मार्ग की पद्धति यह है। सत्य स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं, यह तुम्हारे वहाँ विवाद तो बहुत उठे अफ्रीका में। दस-दस लाख के मकान बनाये हैं। कहाँ? नैरोबी? मोम्बासा में बनाये। आहाहा! यहाँ तो कहे, लाख-करोड़ के बनाये हों तो भी क्या हुआ? वह कहाँ धर्म था? आहाहा! और जिसे जैनदर्शन वीतरागमार्ग आत्मा के आश्रय से जो जैनदर्शन का स्वरूप है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसा जिसे आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन जिसे प्रगट हुआ है, वह मूल संघ के धर्मात्मा और मूल संघ के माननेवाले हैं। अनादि जैन को माननेवाले हैं। उसमें से भ्रष्ट होकर यह बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा, मुनिपना पालन नहीं कर सके। सच्चे सन्त थे वे दक्षिण में चले गये। यहाँ दुष्काल पड़ा, उसमें पहले वस्त्र का टुकड़ा लिया, अर्ध फाली, अर्ध टुकड़ा पहले लिया। उसमें से यह सब लम्बा बखेड़ा कर दिया।

एक मन्दिरमार्गी साधु है, नहीं? भाई अपने आ गया है। जूनागढ़ में। है मन्दिरमार्गी, परन्तु हमारे पास आकर एक पत्रिका हमको दी थी कि अर्धफालक में से यह श्वेताम्बर पन्थ निकला, उसमें से १०८ उपकरण हो गये हैं अभी। अपने हैं न। एक पत्रिका थी कहीं। कहीं थी अवश्य। यहाँ रखी। वे मिले थे वहाँ मुझे जूनागढ़। पहले दिगम्बर में से जब श्वेताम्बर निकले पहले तब अर्धफालक नाम रखा। जरा नग्न न रह सके। लटकता टुकड़ा। उसमें से फिर सब विपरीत दृष्टि हो गयी। और इन नये शास्त्रों में... यह लिखा है बेचारे ने। मन्दिरमार्गी साधु है, हों! क्या नाम उसका?

मुमुक्षु : चम्पक

पूज्य गुरुदेवश्री : चम्पक... चम्पक। वह अपने पास कहीं है। पुस्तक में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें ? 'वर्तमान काल में विचारते श्वेताम्बर मूर्तिपूजन ... जीवन में...' ११९ जितनी संख्या। उपकरण बाहर में के। आहाहा!

मुमुक्षु : नाम भी दिये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब नाम दिये हैं।

मुमुक्षु : फिर उसका कहाँ अर्थ है, यह खबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अन्त में सब लिख दिया। कितना चले... अभी ठिकाने बिना का सब। दोनों को, हों! स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी दोनों को। हमको सब खबर नहीं ? मुम्बई जाये वे सब पोटला वस्त्र-बस्त्र लेकर यहाँ अलमारियाँ भरते हैं देश में आकर। कम्बल मिले। यह सेठिया दे सब कम्बल दे और वह दे। फिर पाँच-सात वर्ष रहे न... यह सब लिखा है उसने, हों! है मन्दिरमार्गी साधु। उन्हें गुणी गिनो या अवगुणी गिनो। सामने व्यक्ति की इच्छा की वस्तु है। स्वयं मन्दिरमार्गी साधु है। परन्तु उसे श्रद्धा यह हुई है। मार्ग तो यह लगता है। आहाहा!

इससे अधिक पोटला बाँधकर गृहस्थ को तो... वस्त्रविभाग, पात्रविभाग, ...विभाग, ...अर्धफालक वस्त्र में से। पहले अर्ध टुकड़ा था। दिगम्बर में से जब निकले, तब आधा टुकड़ा रखा था। यह लिखा है। अर्धफालक में से वक्र हुआ विकार। कहाँ जाकर अटकेगा, यह तो प्रभु जाने। उदासीन चम्पक सागर। यह हमको मिले थे वहाँ आये थे। जयपुर थे न, शाम को दर्शन करके निकले थे। क्या कहलाता है ? तलेटी में। वे गाँव में थे। खबर पड़ी कि महाराज आये हैं तो बेचारे दो कोस चलकर आये थे। थोड़ी चर्चा हुई थी। अभी गड़बड़ है उसे उसमें रहकर भी कुछ रखना। वह रहे, ऐसा नहीं, कहा। यह सब नाम दिया। ... घड़ी और यह और यह फलाना, ढींकणा, कलम और शीशपेन, इतने वस्त्र। आहाहा! अर्धफालक में से विकृत विकार। वह यहाँ अष्टपाहुड़ में आता है। अर्ध टुकड़ा रखा था।

दिगम्बर मार्ग / धर्म अनादि का है। अकेले नग्न नहीं। अन्तर के आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की वीतरागीदशा और बाह्य में नग्न और अट्ठाईस मूलगूण,

यह अनादि का जैन का मार्ग वीतराग का यह है। आहाहा! उसमें से जो भ्रष्ट हुए, वे सब श्वेताम्बर और उसमें से निकले स्थानकवासी अभी पाँच सौ वर्ष पहले और उसमें से निकले तुलसी। तेरापंथी। मूल धर्म मार्ग से तीनों भ्रष्ट हुए। ऐई! छोटुभाई! तुम तो सब सेठिया कहलाते हो वहाँ।

मुमुक्षु : ४०-४० हजार के वस्त्र देते हैं। साधुओं को... भगवान के खण्ड में से... श्रावक...

पूज्य गुरुदेवश्री : .... दे।

मुमुक्षु : ४०-४० हजार।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४० हजार!

मुमुक्षु : मुम्बई में आवे इसलिए ले जाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : ले जाये। यह सच्ची बात। ...के हैं तो भाई ऐसा कहते हैं। हमको तो खबर है न। यहाँ पाटला वे भरते हैं। है? वह ठीक परन्तु यहाँ तो वस्तु की स्थिति तो... भाई! ऐसा कि घर का खुल्ला किया जाये? ऐसा कहते हैं भाई। यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है, बापू! किसी व्यक्ति की नहीं।

मुमुक्षु : असल धर्म कब आयेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुनो तब, समझोगे तब।

मुमुक्षु : समझ लिया। महाराज का अभिप्राय क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली श्रद्धा तो करे, पहली श्रद्धा तो देखे।

मुमुक्षु : अपनी बात नहीं करते, दूसरे की बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे का क्या काम है यहाँ? पहले सम्यग्दर्शन का पक्का करे। चारित्र तो... जरा कठिन बात, बापू! अभी चारित्र कहीं हिन्दुस्तान में नहीं है। चारित्रवन्त तो कोई मुनि अभी हिन्दुस्तान में नहीं है। ऐई! देवीलालजी! मार्ग यह है, बापू! आज मानो, कल मानो, चाहे जब मानो, वीतराग त्रिलोकनाथ का यह कथन है। आहाहा! बापू! साधुपना अलौकिक चीज़ है। उसका सम्यग्दर्शन, वह चीज़ प्राप्त करना

महामुश्किल है। और सम्यग्दर्शन पाया, वह मोक्ष के मार्ग में आया है। आहाहा! समझ में आया? यह लो रविवार को यह आया। ऐई! जयन्तीभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जिनकल्पी—स्थविरकल्पी सब नग्न थे। स्थविरकल्पी नग्न थे। समयसार नाटक में आता है। दोनों नग्न। किसी को वस्त्र नहीं थे, धागा तीन काल में नहीं होता। जैन मुनि रूप से हो, उन्हें वस्त्र का धागा तीन काल में नहीं होता। और वस्त्र का धागा रखकर मुनि माने, मनावे, माननेवाले को भला जाने, वे एकेन्द्रिय निगोद में जानेवाले हैं।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का फल निगोद।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का फल निगोद है, आयेगा इसमें। आहाहा! ऐसी बात है, बापू!

मुमुक्षु : एक को वस्त्र, एक को वस्त्र नहीं उसमें ... अन्तर क्या? ... नग्न रहे तो दोनों में अन्तर क्या था?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो नाम एकलविहारी को जिनकल्पी कहा और अधिक साधु इकट्ठे रहें, उन्हें स्थविरकल्पी कहा। सब स्पष्टीकरण है इसके अन्दर। वे मात्र जिनकल्पी अकेले विचरें एकाकी... और स्थविरकल्पी दो-चार साधु विचरे, बस इतना अन्तर है। बाकी कुछ अन्तर नहीं। नग्न हों, दिगम्बर हों, अट्ठाईस मूलगुण, जंगल में रहते हों, वनवास में रहते हों। ऐसा अनादि का मार्ग है, बापू!

मुमुक्षु : यह हेतुसर पूछते होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अरे! परन्तु समझना बापू! यह तो बहुत शान्ति से बात है। धीरज से, हों! किसी व्यक्ति के लिये बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान वर्णन करते हैं। भाई! ऐसे मनुष्यपने में प्राप्त होकर वास्तविक वीतराग का मूल संघ है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान नहीं करे तो अन्त नहीं आवे। जन्म-मरण का अन्त नहीं आवे। आहाहा!

श्रीमद् ने ऐसा नहीं कहा अपूर्व अवसर में? 'एक देह हेतु संयम हेतु...' 'मात्र

देह वह संयम हेतु... ' एक देहमात्र। पहला जरा फेरफार था थोड़ा। परन्तु यहाँ तो कह दिया कि देहमात्र... देह वह संयम हेतु, हों! मुनि को तो एक देहमात्र संयम का हेतु। दूसरी कोई चीजमात्र नहीं होती। समझ में आया? और स्त्री को तो साधुपद कभी तीन काल में आता ही नहीं। सम्यग्दर्शन होता है, पाँचवाँ गुणस्थान होता है, साध्वीपद है, वह जैन वीतरागमार्ग में उसे गिना नहीं। समझ में आया? आहाहा! और जो इस प्रकार से मानता है और मनाता है... यह कहते हैं, देखो!

तीव्र मिथ्यात्व के उदय सहित हैं, वे परभव में लूले, मूक होते हैं... आहाहा! **एकेन्द्रिय होते हैं...** है न? **उनके पैर नहीं होते,...** लूला अर्थात् पैर कहाँ है एकेन्द्रिय को? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति। **वे परमार्थतः लूले-मूक हैं, इस प्रकार एकेन्द्रिय-स्थावर होकर निगोद में वास करते हैं, वहाँ अनन्त काल रहते हैं;...** ओहोहो! **उनके दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ होती है, मिथ्यात्व का फल तो निगोद ही कहा है।** भगवान ने तो। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी आदि के भाव, विषयभोग आदि के भाव तो साधारण पाप हैं। परन्तु मिथ्यात्व—सच्चे सत् से विरुद्ध, उस मिथ्यात्व का फल परमात्मा ने निगोदं गच्छई। निगोद का गिना है। जो अनन्त कहलाये, वापस दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय होना मुश्किल। उसमें... गया। आहाहा! अरे रे! ऐसा मार्ग!

मुमुक्षु : डराने के लिये लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु की स्थिति यह है। पण्डितजी! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न, वस्त्र का एक धागा रखकर किसी को (मुनि) माने, मनावे। सूत्र में है न? कितने में है? १७। सूत्रपाहुड़ है न एक? सूत्र-सूत्रपाहुड़।

मुमुक्षु : १८।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूत्रपाहुड़ की १८ गाथा। १८ है, देखो! ५३ पृष्ठ है। पृष्ठ-५३, १८ गाथा।

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण णिग्गोदम्॥१८॥

अर्थ :- मुनि यथाजातरूप है, जैसे जन्मता बालक नग्नरूप होता है, वैसे ही

नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है, वह अपने हाथ से तिल के तुषमात्र... तिल के छिलका जितना भी **कुछ ग्रहण नहीं करता है और यदि कुछ थोड़ा बहुत लेवे-ग्रहण करे तो वह मुनि ग्रहण करने से निगोद में जाता है।** नौ तत्त्व की भूल होती है। एक की भूल नहीं। परन्तु बहुत सूक्ष्म बातें। आहाहा! मार्ग यह अनादि का वीतराग है यह। उसमें से यह पंथ जैन में अलग पड़ गये। अन्य की तो बात क्या करना? अन्य में कोई है नहीं। परन्तु जैन में ऐसा विभाजन पड़ा है। आहाहा! कितने ही आकर कहते हैं। यह देखो न महाराज! हम तप करेंगे, हों! परन्तु यह क्या काम है तप का ? वह मानो हम आये हैं तो दिगम्बर नहीं हम। भाई! हम जानते हैं तेरा मुख देखकर वहाँ। सब ... यह सूत्रपाहुड़ में है १८वीं गाथा। इसका सब लम्बा अर्थ है।

मिथ्यात्व का फल निगोद ही कहा है। यहाँ अपने चलता (विषय)। **इस पंचम काल में मिथ्यामत के आचार्य बनकर...** आहाहा! दिगम्बर धर्म की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति बिना अकेले वेश श्वेताम्बर आदि लेकर जो **मिथ्यामत के आचार्य बनकर लोगों से विनयादिक पूजा चाहते हैं, उनके लिये मालूम होता है कि त्रसराशि का काल पूरा हुआ,...** आहाहा! यह त्रस-त्रस में जन्मे और दो हजार सागर रहे। त्रस अर्थात् दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नारकी, मनुष्य और देव में रहे तोदो हजार सागर रहे। यह लम्बी बातें हैं। त्रस में दो हजार सागर। स्थिति पूरी हो तो एकेन्द्रिय में जाये।

भगवान केवलज्ञानी परमात्मा ने त्रस की स्थिति, त्रस में जन्मे-मरे। त्रस-त्रस समझे न? दो इन्द्रिय से त्रस कहलाते हैं। एकेन्द्रिय त्रस नहीं। ईयळ, कीड़ी, कौवा, कुत्ता, नारकी, मनुष्य, देव। तो उसमें मरे और जन्मे, मरे और जन्मे तो दो हजार सागर। इतना है। उसकी स्थिति पूरी हो दो हजार (सागर) तो मरकर वह निगोद में जाये। आहाहा! यह कहाँ सुना होगा निगोद कितना जाये... आहाहा! भगवान ने ऐसा कहा है। शास्त्र में ऐसा है। त्रस की स्थिति इतनी। एकेन्द्रिय की स्थिति तो असंख्य पुद्गलपरावर्तन। आहाहा! बहुत कठिन सूक्ष्म बातें। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी तीर्थंकर होते हैं। ऐसे-ऐसे असंख्य पुद्गलपरावर्तन निगोद—एकेन्द्रिय में रहे। जैसे मिथ्यात्व के साधु आचार्य नाम धराकर दुनिया से मान और पूजा चाहते हैं, वे एकेन्द्रिय में जानेवाले, उनकी त्रस में रहने की स्थिति पूरी हो गयी लगती है।

मुमुक्षु : उसे मान देते होंगे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मान देनेवाले, वे सब इकट्ठे। यह बाद में आयेगा। तुम बतलाते थे न भाई को। मनसुखभाई को। यह १३वीं है। कुछ बतलाते थे तुम।

मुमुक्षु : अपने को लागू पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहते थे सही। मेरा ख्याल था।

मुमुक्षु : उन्होंने कहा अपने को लागू पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहते थे। ख्याल है मेरा। तुमने वह गाथा बतायी मेरा ख्याल है। आहाहा!

यहाँ तो निःस्पृहरूप से सत्य क्या है, यह बात है न भाई! यहाँ कोई पक्ष की बात नहीं। वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर की रज इन्द्र मस्तक पर चढ़ाते हैं। ऐसे भगवान सर्वज्ञ, उनका एक समय का जो ज्ञान, वह तीन काल—तीन लोक को जानता है। उन्होंने जो मार्ग कहा, वह मोक्ष का मार्ग तो दिगम्बर मार्ग, वह मोक्ष का मार्ग है। जैनदर्शन, वह दिगम्बर दर्शन, वह जैनदर्शन है। बाकी श्वेताम्बर और स्थानकवासी जैनदर्शन ही नहीं। मोक्षपाहुड़ में लिखा है। वे जैन ही नहीं। झांझरीजी! यहाँ तो भाई! बात हो वह आवे, दूसरा क्या हो? मोक्षमार्ग में आता है न भाई! भाई! भगवानभाई! मोक्षमार्गप्रकाशक पाँचवाँ अध्याय। पाँचवें अध्याय में लिखा है कि श्वेताम्बर और स्थानकवासी वे जैन ही नहीं। अन्यमति हैं। वह यह इसमें से। जैनदर्शन ही नहीं। आहाहा! कठिन लगे। मोहनभाई! सत्य तो यह है। आहाहा! भाग्यशाली। वरना तो पक्के श्वेताम्बर सेठिया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इन्हें तो प्रेम है। ... मकान...

यह भगवान... बापू! क्या कहें? आहाहा! यह मार्ग है, बापू! हमने परिवर्तन किया, वह कारण होगा न। नहीं तो यहाँ... गाँव में जायें तो हजारों लोग। लोगों के झुण्ड के झुण्ड आते थे। (संवत्) १९८९ के वर्ष, राजकोट का अन्तिम चातुर्मास। तीन-तीन

हजार लोग। घण्टे भर पहले मोटरों का ठाठ जमे ऐसे। पूरी भोजनशाला है न? राजकोट में नहीं बाहर? भोजनशाला कहलाती है न?

मुमुक्षु : कोठार योजना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोठार... वहाँ व्याख्यान। ८९ के वर्ष में। तीन-तीन हजार लोग। घण्टे भर पहले, डेढ़ घण्टे पहले। परन्तु मैंने कहा, यह नहीं टिकेगा अब? किसे कहा? किसी को कहा। नागरभाई थे हमारे समढियावाले। दूसरे कोई। खुशालभाई को तो कहा था न पहले से। ८७ में हमारे बड़े भाई को। ८७ में कहा था। वींछिया में। भाई! मैं यहाँ नहीं रह सकूँगा। यह दीक्षा सच्ची नहीं है, यह मार्ग सच्चा नहीं है। हमारे बड़े भाई बहुत सरल थे। बहुत मीठे और बहुत (सौम्य) व्यक्ति। (उन्होंने कहा) धीरे-धीरे छोड़ना, हों! शीघ्र नहीं छोड़ना। नहीं तो चोट लगेगी। वींछिया की बात है ८७ में। किसी को कहा था ८९ में खास बड़े व्यक्ति को। नागरभाई या वे थे। कहा, मैं इसमें नहीं रह सकूँगा, हों! यह तीन-तीन हजार लोगों को यह सब है। परन्तु मार्ग में मैं जो करता हूँ, वह दूसरी बात है। मैं सम्प्रदाय में नहीं रह सकूँगा। आहाहा! वे आये थे वापस मेरे पास। ९० में आये थे। संघ के लोग। बाहर खबर पड़ गयी न! ९० में अपने चातुर्मास था सदर में? तब सब आये थे। ...नागजी, नागजी कैसे?

मुमुक्षु : चार व्यक्ति आये थे। मुझे बराबर खबर है। पहली बार आये थे और फिर दूसरी बार उन्होंने आने का कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चार व्यक्ति आये थे बड़े सेठिया।

मुमुक्षु : हमारे... उपाश्रय में...

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्होंने सुना कि ये परिवर्तन करनेवाले हैं। इसमें रहनेवाले नहीं हैं। मेरे पास आये। चार सेठिया थे। ...लाला, नागजी, मास्टर।

मुमुक्षु : मूल बोलने में प्रेमजी मास्टर ही थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : और चिमनलाल नागजी वोरा। वे दूसरे थे। वे आये। फिर वह नीम है न उपाश्रय में दीवान... दीवान... उपाश्रय। वहाँ नीम के अन्दर वह कमरा है, वहाँ बैठे दोनों। अन्दर बरामदे में। वहाँ ऐसा पूछा मुझे। महाराज! ऐसा लगा। बात

सच्ची। मैं परिवर्तन करनेवाला हूँ। यहाँ नहीं। इस गाँव में नहीं करूँगा। इस गाँव में चातुर्मास किया है ८९ का। तीन-तीन हजार लोग और यह... परिवर्तन करके मैं इसमें रहनेवाला नहीं। चार सेठिया आये थे। लोग ... यहाँ दूसरी बात नहीं। रामजी के दो सेठ आये थे। उन्हें खबर पड़ी कि यह परिवर्तन करनेवाले हैं। रामजी हैं न मन्दिरमार्गी। उनका एक वह नहीं? कारीगर बड़ा अहमदाबाद का। दो व्यक्ति आये थे।

मुमुक्षु : चिमनलाल कारीगर?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ कारीगर था कोई। दो व्यक्ति आये एकान्त में। कोई देरी लगे नहीं। मैं अकेला बैठा (था)। महाराज! आपको परितर्वन करना है तो हमारी मोटर ले जाओ। अरे! हमारा गुप्त-गुप्त कुछ नहीं। हम तो खुल्ले ढिंढोरा पीटकर निकलेंगे। यहाँ हमारे गुप्त-गुप्त कुछ नहीं। ऐसे ऐई... बिगाड़े। यह वह कहीं जैन की पद्धति है? हमने तो कहा सेठिया आये थे, उन्हें कह दिया था, हम इसमें रहनेवाले नहीं हैं। परन्तु चातुर्मास है तब तक यहाँ नहीं कहेंगे। फिर यहाँ आकर कहा।

मार्ग तो बापू! यह है। आहाहा! कहते हैं, ऐसे पंथ के आचार्य और साधु का नाम धराकर **लोगों से विनयादिक पूजा चाहते हैं, उनके लिये मालूम होता है कि त्रसराशि का काल पूरा हुआ,...** कठिन दिन है आज। कल भी ऐसा था। परन्तु अब यह सेठिया सुने तो सही।

मुमुक्षु : यह सुनने के लिये ही रुके हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... यहाँ तो यह बात है। सुनने के लिये आये हैं। यह तो सत्य की बात है, बापू!

मुमुक्षु : खुल्ला दिल रखकर सुनते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनते हैं। लोगों को प्रेम है। बापू! मार्ग तो यह है। यह सब स्थानकवासी थे, यह रामजीभाई, यह खीमचन्दभाई यह सब ही स्थानकवासी। यह घीया करोड़पति, वह स्थानकवासी।

मुमुक्षु : चिमनभाई स्थानकवासी नहीं थे। जन्म से ही आपके पास रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ८३ में नहीं? ८३ में जन्म है। वे तो यहाँ थे न। परन्तु उनका

जन्म भी ८३ है न? तब। ८२। वे इसके कारण आये थे न वहाँ जेकुंवरबेन दर्शन कराने। जामनगर। वे ८३ में आये थे। खबर है। ८२ में जन्म। यहाँ तो बहुत वर्ष हो गये।

यहाँ तो कहते हैं, भाई! यह तो शान्ति से समझने की बात है, हों! वीतराग तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। उन्होंने और महावीर परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग अनादि का दिगम्बर सन्त का मार्ग, वह जैनदर्शन है। अकेला नग्न नहीं, हों! अकेला नग्न साधु तो अनन्त बार हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो आता है भावपाहुड़ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है। ऐसे नग्न तो अनन्त बार नग्न होकर क्रियायें कीं। वह नहीं। अन्तर आत्मदर्शन, ज्ञान और शान्ति प्रगट करे, तब उसे नग्नपने का व्यवहार कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सब आता है भावपाहुड़ में...

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न, सब एक-एक बात शास्त्र में आती है। सहज आया अब यह अन्त में। ३९ वर्ष हुए न, नहीं? रतिभाई!

यहाँ तो ग्रन्थकार आचार्य महाराज के हृदय में यह बात है कि जो दर्शन से भ्रष्ट हो, वह तो एकेन्द्रिय में जाता है। पाठ है सही न? इसलिए उन्होंने कहा, बापू! वीतरागमार्ग से विपरीत श्रद्धा करके श्वेताम्बर पंथ निकाला, उसमें से स्थानकवासी पंथ निकला, उसके आचार्य नाम धराकर शिष्यों से विनय आदि चाहते हैं। उसका फल तो बापू! उसकी त्रस की स्थिति पूरी हो गयी लगती है।

मुमुक्षु : इसका अर्थ वह एकेन्द्रिय में जायेगा, ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकेन्द्रिय में जायेगा। ऐई! शान्तिभाई! कहाँ गये धीरुभाई? यह सब नागनेश के सेठिया। ... पैसेवाले इनके पिता, पैसेवाले, हों! ८० हजार तब। पैसा (रुपये) ८० हजार कब थे तब? पैसेवाले थे। यह छोटे भाई उनसे कम से थे पैसे। ३५-४० हजार। और उनके पास ८० हजार। ... भाई है न सब खबर है, यह तो ठेठ ७१ के वर्ष से। आहाहा! यह तो सब फेरफार हुआ करता है। आवे... जावे... यह मार्ग जो मिलना। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! यह जयन्तीभाई हमारे लाठी में यह सब सेठिया

थे न वहाँ स्थानकवासी में सब प्रमुख। अमरचन्दभाई और नारणसेठ। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे तत्त्वदृष्टि से भ्रष्ट हुए हैं, वे साधु, आचार्य, उपाध्याय नाम धराकर जगत से विनय चाहते हैं, वे हमको विनय करो हम साधु हैं। उन सबके फल त्रस की स्थिति पूरी हो गयी लगती है। आहाहा! ऐई! माणेकलालजी! ऐसी बात है। आहाहा! मौके से आयी बात ऐसी यह सेठि आये तब। कल जरा ऐसी गाथा आयी। सुने तो सही! क्या हो? मनुभाई! और इसकी श्रद्धा करे तो इसे तो स्व का आश्रय हो, तब ही श्रद्धा होती है। क्योंकि मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन होकर एकता... उसकी श्रद्धा करने जाये, वहाँ तो तीन का अन्दर का आश्रय करे तब होता है। आहाहा! समझ में आया? कितने ही नये होंगे, उन्हें कठोर लगेगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी सुना न हो किसी दिन कुछ। इसे कमाने में मजदूरी में सब समय गया हो। फिर पाँच-दस लाख इकट्ठे हुए मजदूरी कर-करके। मजदूर है न सब। व्यापार के धन्धे (के) बड़े मजदूर हैं। आहाहा! फिर भले पाँच-पच्चीस लाख इकट्ठे हों और मरकर नीचे जानेवाले हैं। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा वीतरागमार्ग उज्ज्वल सन्तों ने कहा और उससे विरुद्ध माने, वह सन्तों का अनादर करता है। आहाहा! समझ में आया? और ऐसी विरुद्ध श्रद्धावालों को वन्दन करे, माने। यह बाद में गाथा में आता है। वे बोधि से भ्रष्ट हैं। आहाहा! चिमनभाई! ऐसा मार्ग है! **एकेन्द्रिय होकर निगोद में वास करेंगे—इस प्रकार जाना जाता है।**

अब, १३। छोटुभाई बताते थे वह। वह तो यहाँ से दिखता था। वह पृष्ठ दिखता था। **आगे कहते हैं कि जो दर्शन भ्रष्ट हैं, उनके लज्जादिक से भी पैरों पड़ते हैं, वे भी उन्हीं जैसे ही हैं...**

जे वि पडंति य तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं॥१३॥

अर्थ :- जो पुरुष दर्शन सहित हैं... जिसे सच्ची श्रद्धा यथार्थ मूलसंघ की मिली

है और आत्मा के आश्रय की। समझ में आया? **वे भी जो दर्शन भ्रष्ट हैं, उन्हें मिथ्यादृष्टि जानते हुए भी उनके पैरों पड़ते हैं,...** विनय करते हैं, चरण छूते हैं। आहाहा! रतिभाई! यह मौके से तुम यहाँ आये उसमें। और यह गाथा आयी। आहाहा! **उनकी लज्जा, भय, गारव से विनयादि करते हैं, उनके भी बोधि अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं है,...** ऐसे जो भ्रष्ट जैनदर्शन से सम्प्रदाय के आचार्य, साधु को कोई चरण छूते हैं। स्वयं श्रद्धावन्त है। खोटी श्रद्धावाले तो दोनों समान-समान। परन्तु सच्ची श्रद्धावाला हो और ऐसों को लज्जा से, भय से, गारव से चरण-वन्दन करे तो उसे बोधि दुर्लभ है। वह भी निगोद में जायेगा। यजमान और यह सब इकट्ठे। है न उसमें आता है।

मुमुक्षु : ज्ञानार्णव में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञानार्णव में आता है।

क्योंकि वे भी मिथ्यात्व जो कि पाप है, उसका अनुमोदन करते हैं। आहाहा! जिसकी श्रद्धा स्थानकवासी, श्वेताम्बर, मन्दिरमार्गी, वे लोग सत्य श्रद्धा से भ्रष्ट हैं। वे साधु, साधु ही नहीं। वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! गजब बातें! बहुत कठिन, बापू! एक व्यक्ति कहता था एक बार—भोगीभाई। अहमदाबाद जाओ तो ध्यान रखना, कहे। कोई जहर न दे देवे, कहे। कहा, उसमें तो जो उसकी स्थिति होगी, वैसा होगा। सत्य तो यह है। भोगीलाल ने एक बार कहा था। वहाँ वडवा में बड़ा आश्रम है। उनके पिताजी ने बनाया हुआ। भोगीभाई बहुत नरम व्यक्ति है। मार्ग तो बापू यह है, भाई! इससे विरुद्ध मान्यतावालों को कोई वन्दन करे, उनका विनय करे, वे सब उनके जैसे ही हैं। आहाहा! पण्डितजी!

मुमुक्षु : सवेरे तो ऐसा कहा लोभी गुरु लालची चेला दोनों नरक में ठेलमठेला।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। ... यह आता है। लोभी गुरु, लालची चेला...

मुमुक्षु : लोभी गुरु लालची चेला दोनों नरक में ठेलमठेला...

पूज्य गुरुदेवश्री : ठेलमठेला। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू!

कहते हैं, जो जैनदर्शन सच्चा था, उससे भ्रष्ट हो गये हैं। ऐसों को लज्जा से... यह कहेंगे लज्जा का अर्थ। '**करना, कराना, अनुमोदन करना समान कहे हैं।**' '**यहाँ लज्जा**

तो इस प्रकार है कि हम किसी की विनय नहीं करेंगे तो लोग कहेंगे यह उद्धत है,...' ऐई! ...जी!

मुमुक्षु : हमारे क्या करना?...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारे समझने का है या मुझे? आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, बापू, हों! किसी से मिले ऐसा है? आहाहा!

यहाँ लज्जा तो इस प्रकार है कि हम किसी की विनय नहीं करेंगे तो लोग कहेंगे यह उद्धत है, मानी है, इसलिए हमें तो सर्व का साधन करना है। अपने जय नारायण सर्वत्र नमस्कार करना। ऐसा माननेवाले मूढ़ जीव हैं, कहते हैं। जय नारायण अपने जय भगवान। आहाहा! ऐसा मार्ग है। केवली परमेश्वर ने (कहा हुआ)। केवली पण्णंतो धम्मो शरणं। यह केवली ने केवली का प्ररूपित धर्म है। दिगम्बर धर्म वह केवली का कहा हुआ है। दूसरों ने तो कल्पना से मारकर शास्त्र बनाये हैं। आहाहा! भगवान का नाम दिया ऊपर, इसलिए लोग शंका न कर सकें। बनाये हैं आचार्य ने। वे मिथ्यादृष्टि आचार्य ने बनाये हैं।

देखो न, यहाँ कहते हैं कि ऐसा जो माने, वस्त्र, पात्र लिखे शास्त्र में, वे सब मिथ्यादृष्टि है। ऐसा कहा या नहीं भाई? आहाहा! जिसने भगवान के मार्ग से विरुद्ध करके मुनि को वस्त्र और पात्र ठहराये, ऐसा जो मार्ग वह तो मिथ्यादृष्टि ने रचा हुआ है। आहाहा! गजब बातें, भाई! यह ४५, ३२ सूत्र मिथ्यादृष्टि ने रचे हुए है। मुनि ने तो नहीं, समकिती ने भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जादवजीभाई! अब तो आ गये न तुम यहाँ। आहाहा!

इस प्रकार लज्जा से दर्शन भ्रष्ट के भी विनयादिक करते हैं तथा भय इस प्रकार है कि यह राज्यमान्य है... बड़े साधु हों राज्यमान्य। राजा मानता हो, **और मन्त्र, विद्यादिक की सामर्थ्ययुक्त है,...** मन्त्र विद्या आती हो। आहाहा! **इसकी विनय नहीं करेंगे तो कुछ हमारे ऊपर उपद्रव करेगा;...** ऐसा मानकर विनय करे। आहाहा! वह भी निगोदगामी है, कहते हैं।

मुमुक्षु : भय की व्याख्या।

पूज्य गुरुदेवश्री : भय की व्याख्या है। आज और रुक गये फिर। कहे, हमारे सुनना है। शान्तिभाई ने कहा सवेरे। भाई यहाँ रुक गये हैं। अच्छा किया, बापू! आहाहा!

लज्जा से और भय से **कुछ हमारे ऊपर उपद्रव करेगा; इस प्रकार भय से विनय करते हैं तथा गारव तीन प्रकार का कहा है; रसगारव, ऋद्धिगारव, सात गारव। वहाँ रसगारव तो ऐसा है कि मिष्ट, इष्ट, पुष्ट भोजनादि मिलता रहे,...** मीठा, प्रेमी और पुष्ट ऐसा मावा, मेवा मिला करे। **तब उससे प्रमादी रहता है...** फिर वह चाहे जिसका विनय करे। उसे कुछ भान नहीं रहता। वे सब मूढ़ जीव हैं। आहाहा! यह रसगारव।

तथा ऋद्धिगारव ऐसा है कि कुछ तप के प्रभाव आदि से ऋद्धि की प्राप्ति हो... मिथ्यादृष्टि हो, उसे भी किसी समय ऐसा होता है। गौरव होकर उसे महान माने। हम बड़े हैं बड़े। हमारे देव आते हैं, हमारे फलाना आता है, हमारे ऐसे डालते हैं। क्या कहलाता है? वासक्षेप आता है। उड़ाते हैं न अभी बहुत? अमुक बाई के पास वासक्षेप आता है। डाले... सब गप्प-गप्प। परन्तु सच्चा हो तो... अररर!

मुमुक्षु : परन्तु सच्चा हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा हो तो उसमें क्या हुआ? वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। ऐसों को बहुमान देना, वह मिथ्यात्व का लक्षण है, कहते हैं। ऐई! जयन्तीभाई! क्या है यह? हमारे पूनमभाई भी मौके से आ गये हैं। ऐसा मार्ग है। वस्तु है, वह तो इसे जाननी चाहिए न! आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ ही रहना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

कहते हैं, ऐसी कोई तपस्या आदि हो और कुछ प्रभाव भी प्रगट हुआ हो, तथापि है तो मिथ्यादृष्टि। ऐसों का विनय नहीं करें तो अपने को नुकसान करेंगे, ऐसा करके विनय करे, वह तो मूढ़ जीव है। आहाहा! **तथा साता गारव ऐसा है कि शरीर निरोग, कुछ क्लेश का कारण न आये तो सुखीपना...** सुखिया। अपने शाताशिलिया कहते हैं न? ऐई! शाताशिलिया... खाओ, पीओ और... वह चाहे जिसका विनय करे और चाहे जो करे। वह मरकर निगोद में जायेगा। अरेरे! ऐसी बात सुनने को मिली नहीं। मुश्किल

से सुनने आये हों, वहाँ ऐसा सुने। ऐई! जयन्तीभाई! बापू! मार्ग तो तेरा ऐसा है, नाथ! अरेरे! वीतराग का मार्ग वही आत्मा का मार्ग है। आहाहा! निश्चय और व्यवहार जो वीतराग ने कहा है, वही मार्ग है। उसमें से भ्रष्ट होकर साता गारव से भी उन लोगों को वन्दन करना... आहाहा! **तब दर्शनभ्रष्ट की भी विनय करने लग जाता है।** आहाहा!

इत्यादिक गारवभाव की मस्ती से भले-बुरे का कुछ विचार नहीं करता, तब दर्शनभ्रष्ट की भी विनय करने लग जाता है। इत्यादि निमित्त से दर्शन-भ्रष्ट की विनय करे तो उसमें मिथ्यात्व का अनुमोदन आता है;... आहाहा! मिथ्याश्रद्धा का महा पाप कसाईखाना से भी बड़ा पाप है। परन्तु अब उन लोगों को मिथ्याश्रद्धा की खबर नहीं। कसाईखाने से, विपरीत श्रद्धा का महा पाप अनन्तगुणा है। और सम्यग्दर्शन का फल पूरे धर्म का वह कर्णधार है, जिससे अल्प काल में उसे मुक्ति प्राप्त हो, ऐसा सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

मिथ्यात्व का अनुमोदन आता है;... ऐसी मिथ्या श्रद्धावालों को विनय करने में मिथ्यात्व का अनुमोदन होता है। **उसे भला जाने तो आप भी उसी समान हुआ, तब उसके बोधि कैसे कही जाये?** उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहाँ से मिले? आहाहा! अरे! दुर्लभबोधि भावना, उसकी जिसे खबर और कीमत नहीं। बाह्य त्याग में बेचारे उलझ गये। स्त्री छोड़ी तो यह ब्रह्मचर्य पालते हैं, यह करते हैं यह। अब मिथ्यादृष्टि—दृष्टि झूठी है, उसका क्या? आहाहा! कोई स्त्री-पुत्र छोड़ नहीं सकता और वे छोड़कर बैठे। अच्छे हैं न, अपने से तो वे अच्छे हैं न, ऐसा कहते हैं न? ऐसा कहते हैं। सब हम भी तो यहाँ... ६० वर्ष तो यह हुए। सब खबर है न। आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने भगवान के निकट जो सुना था और अन्तर में अनुभव किया था, वह बात जगत के समक्ष भगवान प्रसिद्ध करते हैं। मार्ग यह है, बापू! वहाँ किसी के लिये, किसी व्यक्ति के लिये यह बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप, वीतरागदेव तीन लोक के नाथ का मार्ग यह है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १२, सोमवार, दिनांक ०८-१०-१९७३
गाथा-१४, प्रवचन-२१

यह अष्टपाहुड़। १४वीं गाथा। जैनदर्शन धर्म की मूर्ति किसे कहना? मूर्ति। यहाँ स्पष्टीकरण कुन्दकुन्दाचार्य स्पष्ट करते हैं कि जैनधर्म अर्थात् जैन का मत। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिकाल ज्ञानी का जो अभिप्राय, वह जैनदर्शन क्या है? उसमें कुन्दकुन्दाचार्य यह स्पष्ट बात करते हैं।

दुविंह पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥१४॥

यह अर्थ में और इन्होंने ऐसा कहा कि निर्ग्रन्थपना तेरहवें में होता है, ऐसा भाई यह अगासवाले... वह यहाँ बात नहीं। वह बात नहीं। क्यों? टीकाकार ने कहा है कि मुनि का ऐसा समकित होता है। ऐसी यह बात नहीं। मुनि का मार्ग है निश्चय, व्यवहार और निमित्त उसे यहाँ दर्शन, जैनदर्शन कहने में आता है। बात तो यह है। समझ में आया? अब और ऐसा कहा, यह टीका देखकर ऐसा कि मुनि का समकित है। यह कहते थे न शान्तिलालजी कहते थे। मुनि को निश्चय समकित होता है, ऐसा कहते थे। यह ऐसा लिखा हो न तो कहे। यह ऐसी बात ही नहीं यहाँ। समकित अर्थात् बाद में...

दर्शन, जैनदर्शन अर्थात् वीतरागी मत, वास्तविक, वह किसे कहना? पश्चात् उसकी श्रद्धा करे, उसे समकित होता है, वह तो श्रद्धा पश्चात् आत्मा के आश्रय से होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पहले यह जानना चाहिए या सीधे आत्मा को?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो सीधा किसी को जरा पूर्व के संस्कार हों.... परन्तु यह साधारण व्यक्ति को तो यह श्रद्धा पहले जाननी चाहिए।

मुमुक्षु : ... ऐसा माने कि हम साधारण हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। साधारण अर्थात् जिसे चढ़ना है शुरुआत से, उसे तो यही जानना चाहिए, मानना चाहिए। परन्तु पूर्व के संस्कार के कारण किसी को इस बात का ख्याल न हो और समकित हो जाये।

मुमुक्षु : ... बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सादि।

मुमुक्षु : ...पूर्व के संस्कार हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कार यह।

मुमुक्षु : ... होवे तो वह पूर्व के संस्कार ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कार ले वापस। वे यह। यही कहा, देखो! सादि परन्तु पूर्व के संस्कार हों और यह बात बाहर में ऐसा निर्ग्रन्थपना, उसे लक्ष्य में न हो पहले और उसे अन्तर में से आ जाये। साधारण के लिये तो यह मोक्षमार्ग है। यह सब देखा। यहाँ क्या लिखा है कहा इसमें। दो में।

मूल तो यहाँ जैनदर्शन अर्थात् आत्मा का वास्तविक वीतराग मूर्ति उसका स्वरूप है आत्मा का ध्रुव। ऐसी ही उसकी वीतरागी पर्याय सम्यग्दर्शन, ऐसा ही वीतरागी सम्यग्ज्ञान और वीतरागी चारित्र और उसकी भूमिका में पंच महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प की व्यवहार की मर्यादा ही ऐसी होती है और वह अभ्यन्तर निमित्तरूप से, अभ्यन्तर शुद्ध चैतन्य आत्मा का दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह अभ्यन्तर उपादान; और अट्ठाईस मूलगुण आदि जो है, वह अभ्यन्तर निमित्त; और बाह्य निमित्त नग्नमुनिपना। वह इस वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? वजुभाई! ऐई! देवीलालजी! यहाँ आओ ऐसे सामने। ऐसा मार्ग है।

अब यहाँ तो स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य... **'दंसणं होदि'** शब्द है। इस दर्शन की व्याख्या भाई ने बराबर की है। दर्शन लिखा है न भावार्थ में? दर्शन अर्थात् मत। वह **'दंसणमग्गं'** जो यहाँ था पहला शब्द, वहाँ जैनमत कहा है। वह बात सन्धि ले जाते हैं। वास्तविक वीतराग त्रिलोकनाथ केवली परमात्मा का कहा हुआ जो निश्चयमोक्षमार्ग, वह आत्मा के आश्रय से हुआ, क्योंकि वह आत्मा स्वयं ही वीतरागमूर्ति है। वह

वीतरागमूर्ति आत्मा, उसके आश्रय से हुई दृष्टि भी वीतरागी पर्याय है। उसके आश्रय से हुआ ज्ञान, वह वीतरागी ज्ञान और उसमें रमणता—चारित्र, वह वीतरागी चारित्र है। यह निश्चय जैनदर्शन। और उसकी भूमिका में अट्ठाईस मूलगुण आदि होते हैं। यही होता है, दूसरा नहीं होता। वह व्यवहार उपचारिक जैनदर्शन और साथ में दिगम्बरपना वह असद्भूतव्यवहारनय का निमित्तपना।

मुमुक्षु : शुभभाव में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में कहेंगे। यह तो इतना पहले। इस स्थिति में ऐसा होता है। समझ में आया? पश्चात् उन भाई ने ऐसा किया अगासवालों ने ऐसा कि निर्ग्रन्थपना तो तेरहवें में पूरा होता है। वह यहाँ बात है ही नहीं। उसे वापस वह बचाव करना है कि ... तब नहीं थे। इसलिए चौथे गुणस्थान में निर्ग्रन्थ की शुरुआत होती है, पूरा तेरहवें में होता है। वह यहाँ बात नहीं है। छठवें गुणस्थान की जो त्रिकाल निश्चय, व्यवहार और निमित्त उसे जैनदर्शन में वर्णन किया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग। वह तो अपेक्षा से कहा। मुनिपना नहीं था। ... ... वस्तुस्थिति नहीं। सम्यग्दर्शन, ज्ञानस्वरूप आचरण हो। अररर! परन्तु यह जो कहते हैं, वह दूसरी वस्तु है। यह तो बाह्य-अभ्यन्तर निर्ग्रन्थपना, वह सब व्याख्या मूल गाथा में आती है। कुन्दकुन्दाचार्य को ऐसा कहना है कि यह '**दंसणं होदि**' यहाँ '**दंसणं**' अर्थात् समकित अकेला, ऐसा नहीं है। यह सब पूरी स्थिति।

मुमुक्षु : निश्चय सहित का व्यवहार ऐसा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता है, निमित्त ऐसा होता है, निश्चय ऐसा होता है, वह धर्म की मूर्ति जिनदर्शन। जिनदर्शन की वह मूर्ति है।

मुमुक्षु : ऐसी जिसे व्यवहारश्रद्धा न हो तो सम्यग्दर्शन कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी वस्तु है ही कहाँ? वह बाद में। बराबर ऐसा जैनदर्शन है, बाह्य—अभ्यन्तर निर्ग्रन्थपना और अट्ठाईस मूलगुण जो भगवान ने कहे। चरणानुयोग में कहा है न! जिनवर ने तो यह कहा है। अट्ठाईस मूलगुण कहे हैं। कुन्दकुन्दाचार्य

(ने)। वे कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ गाथा में कहते हैं। समझ में आया? पहला जैनदर्शन अर्थात् दिगम्बर मुनि सच्चे। भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाले और उन्हें अट्ठाईस मूलगुण, नग्न (दशा), उसे जैनदर्शन कहा जाता है। जिसका दिखाव है, वह दर्शन, ऐसा। समझ में आया? भगवानजीभाई! ऐसी व्याख्या है। आहाहा!

तब वे और ऐसा कहते थे कल नन्दलालभाई। परन्तु वह तो भूल करनेवाले ने कहा पहले। उसके लिये। अब इन लोगों को कहाँ खबर है भूल की? उसे क्या बाधा? ...माननेवाले को। ऐसा। ... लेने जाये वहाँ तीन बार टकोरा मारकर पैसा दे। और यहाँ धर्म की परीक्षा बिना मानकर बैठे। वह तो अज्ञान है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। धर्म-बर्म ... ऐसा नहीं। यह तो कहे भूल तो उसने की। इसने कहाँ की है? इसने तो बराबर माना है कि यह ही है। ऐसा निकाला है। वह अज्ञान परम्परा कुल में चले आये हुए मार्ग को मानना, वह भी यथार्थ नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदाय मिला हो वाड़ा का, तो भी नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत कहा है। कुल में आये हुए धर्म को माने, उसे धर्म की परीक्षा कहाँ है? कुल उसे छोड़ देगा तो यह भी छोड़ देगा। इसे कहाँ धर्म का है? वास्तविक सर्वज्ञ परमेश्वर ने, जिन्हें तीन काल—तीन लोक का ज्ञान, ऐसे सर्वज्ञ धर्म के मूल हैं। उन्होंने देखे हुए मार्ग को कहा, वह यह मार्ग है। आहाहा!

यहाँ तेरहवें गुणस्थान की बात नहीं। भले चौथे के बाद आंशिक ले, वह अलग बात है निर्ग्रन्थपना। परन्तु उस तेरहवें की यहाँ बात है ही नहीं। क्योंकि यहाँ तो संयम पालनेवाले हैं। मन, वचन, काया में संयमसहित है, वह दशा मुनि की बात वर्णन करते हैं। वास्तव में तो यह छठवें गुणस्थान का वर्णन है। समझ में आया? यह तो भाई! वस्तु जैसी हो, वैसी आवे, दूसरा कहाँ से आवे? उसमें आत्मा का शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्ज्ञान और जिसमें स्वरूप की चारित्रदशा की रमणता अर्थात् अभ्यन्तर भी राग का त्याग और बाह्य में वस्त्रादि का त्याग और अट्ठाईस मूलगुण आदि से अशुभरागादि का त्याग। ऐसा जो नग्नपना बाह्य और अभ्यन्तर दोनों, उसे यहाँ जैनदर्शन दिखाई दे कि यह दर्शन है, उसे यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। देवीलालजी! आहाहा!

जिसे पहले वर्णन करते तो आये हैं कि मूलसंघ है मूल। उसमें यह चला आया है न! दिगम्बर संघ, वह मूलसंघ है। उसमें से यह भ्रष्ट हुए श्वेताम्बर और स्थानकवासी, वह जैदर्शन नहीं। नवनीतभाई! ऐसी खुल्ली बात है। आहाहा! मार्ग यह है। भगवान ने मोक्षमार्ग इस प्रकार से कहा है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

अर्थ :- जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो... अभ्यन्तर भी राग नहीं, बाह्य में वस्त्र नहीं। वस्त्र, पात्र, स्त्री, परिवार कुछ नहीं। ऐसी जिनकी दशा। आहाहा! मोहनभाई अन्दर नहीं आते? मोहनभाई को कैसे है? ऐई! श्रीचन्दजी! मोहनभाई को बैठने दो वहाँ। कहो, समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! यह कोई पक्ष नहीं। यह आत्मा के स्वरूप की स्थिति ही ऐसी है कि जिसे बाह्य और अभ्यन्तर दो भेद का परिग्रह का त्याग हो, उसे वस्त्र-पात्र नहीं होते, अभ्यन्तर में उसे निश्चयमोक्षमार्ग में राग नहीं होता।

और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो... देखा! मन, वचन और काया, उससे करना, (कराना), अनुमोदन आदि संयम, नौ कोटि से संयम होता है। आहाहा! समझ में आया? **तीनों योगों में संयम हो तथा कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन कारण जिसमें शुद्ध हों, वह ज्ञान हो...** यह क्यों कहा है ऐसा? कि कोई जैनदर्शन ऐसा मार्ग है, उसके अतिरिक्त के दूसरे कोई मार्ग ज्ञान के उघाड़ में विशेष हो तो उसे अनुमोदन और कराना आ जाये, वह वस्तु नहीं होती। समझ में आया? करना, कराना और अनुमोदन। नौ-नौ कोटि से जिसका ज्ञान शुद्ध हो। फिर कोई अधिक ज्ञान के क्षयोपशमवाले दूसरे प्राणी दिखाई दें और ... मारते हों ऐसे सभा में। दो-दो लाख की। उसमें कुछ भी ठीक है, ऐसा हो जाये तो वह ज्ञान शुद्ध नहीं है। समझ में आया? भगवानजीभाई! ऐसा मार्ग है!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं ऐसा... जिसका ज्ञान करना, कराना, अनुमोदन से, मन, वचन, काया से शुद्ध हो, ऐसा आचार्य का हृदय है। समझ में आया? खोटा ज्ञान, जिसका बहुत हो, उसमें उसे कुछ लगे कि मेरा यह तो ज्ञान में कुछ ठीक है। ऐसा उसे

नहीं होता। समझ में आया? मुनि हो, ज्ञान तो हो, परन्तु थोड़ा हो। और दूसरे को कोई अधिक बाह्य विकास / क्षयोपशम आदि हो, परन्तु मुनि का ज्ञान, जैनदर्शन का सन्त जो है, उसका ज्ञान मन-वचन-काया, करना-कराना-अनुमोदन शुद्ध हो। आहाहा! समझ में आया?

तथा निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे,... ऐसा आहार। निर्दोष आहार। जिसमें किया हुआ, कराया हुआ, अनुमोदना अपने को न लगे। ठीक! ऐसा आहार। **ऐसे खड़े रहकर...** खड़े-खड़े पाणिपात्र। पाणि अर्थात् हाथ। समझ में आया? **रहकर पाणिपात्र में आहार करे, इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।** ऐसी ही मूर्ति, ऐसा स्वरूप, उसे जैनदर्शन कहते हैं। आहाहा! गजब बात है। अनन्त तीर्थंकर और अनन्त केवलियों का यह मत है। समझ में आया? यह अर्थ करते हैं।

भावार्थ :- यहाँ दर्शन अर्थात् मत है;... यह शुरुआत से लाये हैं। **'दंसणमग्गं'** वहाँ से यह बात धारावाही रखी है। वरना मिलान खाये ऐसा नहीं है। जैसे उसे **'दंसणं'** कहा। उसे समकित कहा है अकेला। ऐसा छठवाँ गुणस्थान हो, ऐसी क्रिया हो, उसे समकित कहना। यह कहते हैं, इसमें लिखा है। उस साधु का—मुनि का समकित ऐसा होता है। परन्तु मुनि के समकित की व्याख्या कहाँ है? समझ में आया? शान्तिलाल कहते थे। साधु हो, चारित्रवन्त हो, उसे ही निश्चय समकित होता है। ऐसा तो तब पढ़ा हो न उन लोगों ने। आगे-पीछे कुछ नहीं होता इतना। मार्ग तो यह है। समझ में आया? श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों समान है, ऐसा यहाँ नहीं रह सकता। ऐई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जरा बराबर स्पष्ट नहीं था। मार्ग तो यह अनादि का सनातन यह है। दिगम्बर और श्वेताम्बर के आचार्यों का अभिप्राय एक था। ... यह यहाँ मिलान नहीं खाता।

यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य (माँगलिक में) तीसरे नम्बर पर जो आये। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो,। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं गाथा में ऐसा कहते हैं न, वह १४वीं गाथा आयी, देखो! १४ गुणस्थान। १४ में यह आया। यह तो

जगत के नियम प्रमाण सब गाथायें... यह किसी का किया होता है? उस अवसर पर वही गाथा वही होनेवाली होती है, वह होती है। आहाहा! समझ में आया? किसी को ऐसा लगे (कि) यह तो दिगम्बर का पक्ष खींचते हैं। यह तो वस्तु ही ऐसी है। पक्ष— दिगम्बर पक्ष नहीं। दिगम्बर तो वस्तु के स्वरूप की जाति का वर्णन है। आहाहा! क्या हो? झगड़े खड़े किये। तीर्थ के लिये झगड़े। अररर! यह लाखों का खर्चा। बहुत लेख आते हैं। अरे! किसी व्यक्ति के प्रति वैर-विरोध तो स्वप्न में नहीं होता। परन्तु मार्ग तो जो है, वह होगा, दूसरा किस प्रकार होगा? इसलिए कोई दूसरा मार्ग और यह मार्ग— दो, यह भी पंचम काल में ऐसा भी एक साधुपना होता है, काल हल्का है इसलिए (होता है, ऐसा नहीं होता)। यह कुछ कहते थे। काल बदला, समय बदला। समय बदला उससे क्या? मार्ग बदलता होगा? समझ में आया?

दर्शन अर्थात् मत है;... आहाहा! टीका करनेवाले ने हृदय खोला है। कुन्दकुन्दाचार्य का हृदय यह है। **बाह्य वेश शुद्ध दिखाई दे...** बाह्य वेश शुद्ध अर्थात् दिगम्बर। वह दिखाई दे। आहाहा! **वह दर्शन...** दर्शन की व्याख्या करते हैं न? कि दर्शन अर्थात् मत। और अर्थात् कि **वहाँ बाह्य वेश शुद्ध दिखाई दे...** ऐसा। **वह दर्शन है,...** आहाहा! **वह दर्शन...** वस्तु तो अन्दर आत्मा स्वीकार करे यहाँ से, तब चले न। ऐसे कोई ऐसा का ऐसा चले? आहाहा! समझ में आया? दर्शन अर्थात् मत। **वहाँ बाह्य वेश शुद्ध दिखाई दे वह दर्शन;...** ऐसा। दिगम्बरपना महा... अकेला दिगम्बरपना नहीं, अर्थात् अन्दर सहित का बाह्य दिखाई दे। जिसे ऐसी दशा आवे, उसे अन्दर ऐसी दशा होती ही है, ऐसा यहाँ लेना है। अज्ञानी मात्र द्रव्यलिंगी है, उसकी यहाँ बात है नहीं। जिसकी अन्तर दशा वीतरागी निर्ग्रन्थ दशा हो गयी है, उसकी दशा ऐसी ही होती है। इसी प्रकार यहाँ लिया है। यह आगे अर्थ में कहेंगे। यथाजातपना कहते आये हैं तो अकेला यथाजातपना बाहर नग्न नहीं, ऐसा कहेंगे अर्थ में। भाई!

वही उसके अन्तरंगभाव को बतलाता है। देखा! जिसकी (बाह्य) मुद्रा नग्न, माता से जन्मा (ऐसा) और शान्तरस। जिसकी इन्द्रियों में बाहर में शान्तरस ढल गया है। आहाहा! जैसे बर्फ का पिण्ड। बर्फ की क्या कहलाती है वह बड़ी? शिला-शिला। मुम्बई में बहुत शिला आवे ऐसे। २०-२० मण की शिला। निकलते हैं, तब दिखाई दे

उसमें—ट्रक में। अरे! बड़ी-बड़ी शिलायें खुल्ली पड़ी हों। ले जाते हों वहाँ। वह घन, ऐसा जिसका आत्मा अन्दर पिण्ड हो गया शान्त में। आहाहा! शान्तरस से तीन कषाय के अभाव से जिसका उपशम रस जिसे अन्दर शान्त ढल गया है। ऐसी मुद्रा में उसे दिखाई दे। आहाहा! निर्विकारीपना उपशान्तपना। आता है भजन में, नहीं? 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' वह भगवान को कहते हैं।

यहाँ भगवान कहते हैं कि जैनदर्शन ऐसा होता है। जैनदर्शन अर्थात् वस्तु का स्वभाव है, वह 'जिन सो ही आत्मा'। वह वीतराग मूर्ति प्रभु है, अकषाय शान्तरस का कन्द है। प्रभुता की शक्ति का परम परम निधान, भण्डार है। ऐसी ही शक्ति की व्यक्तता पर्याय में उस प्रकार की आयी है। ऐसी दर्शन, ज्ञान और चारित्र और उसकी जाति को योग्य व्यवहार विकल्प ऐसा ही होता है। पंच महाव्रत, अचेल शुद्ध आहार, अदन्तधोवन, यही भूमिका के योग्य वही होता है। दूसरा नहीं होता। उसे यहाँ दर्शन कहते हैं। आहाहा!

उसके अन्तरंगभाव को बतलाता है। यह बाहर है, ऐसा शान्तरस अन्तर में है, ऐसा बतलाता है। यहाँ अकेले नग्न की बात नहीं है। समझ में आया? **वहाँ बाह्य परिग्रह धन-धान्य...** मुनि को लक्ष्मी नहीं होती। यह पुस्तक के लिये लक्ष्मी इकट्ठी करे, माँगे, मँगावे, ऐसा मुनि को नहीं होता। धन नहीं होता, धान्य नहीं होता। अनाज अपने को प्रतिकूल पड़ता हो तो साथ में मैथी आदि रखे, (ऐसा नहीं होता)। **धन-धान्यादिक...** पत्र आगे बाद में लेंगे। **और अन्तरंग परिग्रह...** यह वस्त्रादि ले लेना आदि में। वस्त्र, पात्र आदि नहीं होते। अभ्यन्तर में मिथ्यात्व नहीं होता, जिसे मिथ्यात्व हो, तब तो वह निर्ग्रन्थ है ही नहीं। जिसे अन्दर में राग के कण की कर्तापने की दृष्टि खड़ी है और नग्नदशा का कार्य मेरा है, ऐसी जहाँ दृष्टि है, वहाँ तो मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? यह तो भारी सूक्ष्म मार्ग, भाई! आत्मा की बात करो तो वहाँ तक तो ठीक, फिर ऐसा जब आवे तब... परन्तु यह तो मूल वस्तु है यह।

मिथ्यात्व-कषायादिक,... जहाँ कषाय नहीं होती। आहाहा! **वे जहाँ नहीं हो, यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो...** यथाजात—जैसा माता ने जन्म दिया, वैसी जिसकी अन्तर

अभ्यन्तरसहित बाहर की मूर्ति हो। आहाहा! 'बाह्यांतर निर्ग्रन्थ'—आता है न? श्रीमद् में आता है। अपूर्व अवसर और 'देहमात्र संयम हेतु' ऐसा स्पष्ट लिया उसमें तो। वहाँ तो कोई वस्त्र और अमुक रखा नहीं। यह पहले जरा रह गया है अन्दर। मार्ग तो यह है, भाई! इसे श्रद्धा में तो पहले यह लेना पड़ेगा। ऐसा परम दिगम्बर धर्म आत्मा के मोक्षमार्गसहित ऐसी दशा, वह जैनधर्म है, ऐसा इसे पहले मानना पड़ेगा। आहाहा!

यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो तथा इन्द्रिय-मन को वश में करना,... इन्द्रिय और मन को वश रखे। कहीं परपदार्थ की चेष्टा में उत्साहित वीर्य हो, ऐसा न करे। उत्साह तो अपने स्वभाव के प्रति वर्तता है। धर्मी—मुनि को निर्ग्रन्थ मुनि को तो स्वभाव के प्रति उत्साह वर्तता है। आगे आयेगा। उत्साह और भावना और ऐसा होता है। सत्य में ऐसा उत्साह... असत्य में उत्साह हो तो मिथ्यादृष्टि है। यह गाथा भी आयेगी। **त्रस-स्थावर जीवों की दया करना,...** त्रस का तो घात नहीं करे, परन्तु हरितकाय का एक कण—दाना, गेहूँ, बाजरा या दाना, उसका भी घात नहीं करे। आहाहा! ऐसा मुनिपना, ऐसा निर्ग्रन्थ मार्ग, उसे जैनदर्शन, आत्मदर्शन, उसे धर्म की मूर्ति कहने में आता है। समझ में आया? अब तो ३९ वर्ष हुए। अब तो सब, छोटाभाई! स्पष्ट तो आना चाहिए न? आहाहा!

मुमुक्षु : पूरे जगत से बाहर निकले बिना मुनिपना कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि किसे कहते हैं? जैनदर्शन उन्हें कहते हैं। मुनि का धर्म, उसे जैनदर्शन कहते हैं। आहाहा! उसकी श्रद्धा करना, आत्मा के आश्रय से हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विचार आज हुआ। रामजीभाई ने ऐसा कहा कि यह ठीक है। नहीं तो पहले यह विचार तो हमारे भाई ने कहा न जीवराजजी कि आठ वर्ष हुए। मैंने कहा... लेना चाहिए, ऐसा। फिर तो ठीक आठ वर्ष नहीं। अभी तीन वर्ष हुए। तो भी लिया भले लिया।

मुमुक्षु : बहुत प्रयोजनभूत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! हमारे सुजानमलजी।

मुमुक्षु : १५-१५ वर्ष चले गये। भटकते-भटकते यह बात सुने बिना कहाँ से जाये ?....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है। यह वहाँ व्याख्यान वाँचे थे तो ... भाई बहुत महिमा की थी। चालीस व्याख्यान तो एक जिज्ञासा के वाँचे। एक जिज्ञासा के। ... हो। वाँचन हो तो कहते थे छगनभाई नहीं? लुहाड़िया के साथ थे वे। मैंने लिख गये हैं, कहे। वे कहते थे। जिज्ञासा के ऊपर वाँचा है। जि-ज्ञा-सा शब्द है न उसमें से कुछ निकालते थे। निवृत्त व्यक्ति है। सिर पर कोई बोझा नहीं होता। लड़का लड़के में रहा। स्त्री स्त्री में रही। हाथ से पकाते हैं? समझे नहीं। परन्तु वह तो निवृत्ति अकेले को। बहुत निवृत्ति हो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **ज्ञान में विकार करना, कराना, अनुमोदन करना - ऐसे तीन कारणों से विकार न हो...** आहाहा! कहो, संयम पाले। मन, वचन, काया द्वारा शुद्ध पालन हो। त्रस और स्थावर, छह काय के जीव और पाँच इन्द्रिय और मन, इन सबका संयम हो उसे। उस समय की व्याख्या है न यह। छह काय और पाँच इन्द्रिय, मन से खिंचकर अणीन्द्रिय की ओर झुकाव गया है। आहाहा! ऐसी जिसकी अभ्यन्तर दशा हो... वह यह वीतरागमार्ग क्या है, उसका यह वर्णन चलता है। यह तो सामने हो, तब उसका वर्णन हो, नहीं तो कहीं खींचकर लाते हैं शीघ्र? समझाया बैठे नहीं लोगों को। यह तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। जो धर्म के स्तम्भ भगवान के पास गये थे। आहाहा! यहाँ की परम्परा भी वीतराग की थी, उसे अनुभव में से... मैं था। आहाहा! वह सनातन सत्य कैसा होता है? सनातन सत्य आत्मा का अभ्यन्तर और बाह्य निर्ग्रन्थदशा दर्शन—धर्म की मूर्ति ऐसी होती है। आहाहा! समझ में आया? झांझरीजी! लो, ऐसा आया है इसमें आज। पश्चात् यह विवाद फिर जहाँ-तहाँ करते हैं। झांझरीजी में विवाद है वहाँ श्वेताम्बर और यह दिगम्बर।

मुमुक्षु : समन्वय बढ़ाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : समन्वय, लो। वहाँ समन्वय के लिये बुलाया। कि भाई! हम

तो नहीं आयेंगे। विमलभाई कहते थे। हमको बुलाया है, कहे बापूजी को। कहे, हमारा काम नहीं, भाई! आहाहा! यह विद्यानन्दजी है न? समन्वय करते हैं न? किसके साथ, बापू! समन्वय? भाई! अरे! तीन लोक के नाथ विराजते हैं, सन्त साक्षात् महाविदेह में मुनिवर—सच्चे सन्त विराजते हैं। भाई! तुझे भरत में विरह पड़ा, इसलिए उससे विरुद्ध नहीं होता। समझ में आया? लो, यह सर्वज्ञ परमात्मा और सच्चे सन्त तो सैंकड़ों, लाखों वहाँ विराजते हैं। क्षेत्र से दूर रहते हैं, उनका जो भाव है, उसका अनादर नहीं होता। समझ में आया?!

उसमें नहीं आता एक? कथा में आता है। कोई गुरु बैठे हों और ऐसा यदि होता हो तो मोक्षमार्ग में। आता है अन्तिम बोल में। निर्ग्रन्थ गुरु हो और यह अविरोध मानते हों, वह तो उसका विरोध करे, मुनियों का विरोध करे। वह है कहीं। 'शिथिलता रखने से अन्य धर्म किस प्रकार होगा? बहुत क्या कहना? सर्वथा प्रकार से कुदेव, कुगुरु का त्यागी होना योग्य है।' परन्तु ऐसा ऊपर आता है। ऐसे हो न मुनि विराजते हों और ऐसा करना हो, ऐसा। ऐसा कुछ आता है, हों! भगवान—मुनि विराजते हों, ऐसा। आहाहा! यह प्रतिकूल है यह।

'इसलिए वहाँ तो चारित्रमोह का ही उदय संभव है।' वह वन्दन करे जिसे-तिसे। 'परन्तु गुरु के बदले कुगुरु को सेवन किया, वहाँ तत्त्वश्रद्धा के कारणरूप गुरु थे, उनसे यह प्रतिकूल हुआ।' समझ में आया? बहुत सरस! मोक्षमार्गप्रकाशक भी बहुत... सादे नियमों को भी स्पष्ट किया है। ऐसा कहे, तत्त्वश्रद्धान से विरुद्ध हो, तब तो फिर यह प्रतिकूल हुआ सच्चे सन्त से। सच्चे सन्त विराजते हैं, केवली। यहाँ भी सन्त थे। अब उन्हें छोड़कर दूसरों को वन्दन करे, आदर करे। तो सच्चे का सन्त का विरोध हुआ। आहाहा! जगत को बहुत कठिन काम लगे। मार्ग तो यह है भाई, हों! आहाहा! उसे अन्तर में बराबर बैठना चाहिए। आहाहा!

मुमुक्षु : ... जगे... खड़े हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है। खड़े बहुत हो गये। मार्ग तो यह है। क्या हो? परम आनन्द की मूर्ति प्रभु। आत्मा ही परमानन्द की मूर्ति है। उसकी पर्याय में परम

आनन्द की श्रद्धा आने पर आनन्द का अंश वेदन में आता है, उसका ज्ञान होने पर वेदन में आता है अर्थात् आनन्द, पर्याय में आनन्द, यहाँ आनन्द। उस आनन्द की दशा के योग्य ही उसे विकल्प की जाति ऐसी ही होती है, वहाँ बाह्य निमित्तपना भी ऐसा ही होता है। ओहोहो! मार्ग तो यह है। इस मार्ग की इसे बराबर श्रद्धा करना चाहिए। पालन न कर सके, वह अलग बात है। चारित्र न हो, समझ में आया? परन्तु मार्ग तो यह है, ऐसा इसे अन्तर्दृष्टि से निर्णय करना चाहिए। कहो, शान्तिभाई! क्या है यह? सही की है न उसमें। गया, काल गया नहीं?

मुमुक्षु : उसकी अवधि चली गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अवधि गयी, लो। आहाहा!

निर्दोष पाणिपात्र में खड़े रहकर आहार लेना... आहाहा! ऐसे हाथ में पानी। निर्दोष आहार वापस वह भी हाथ में ले। परन्तु सदोष ले, ऐसा नहीं। उनके लिये चौका बनाया हुआ हो, पधारो... पधारो... पधारो... झांझरीजी! सवेरे से शाम तक करे उनके लिये। फिर बोले क्या? तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ... ऐसा। आहार। मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध, आहार शुद्ध। शुद्ध कहाँ से आया? (उदिष्ट) बनाया है और शुद्ध कहाँ से आया? बोलना झूठ कि आहार शुद्ध... यह शुद्ध... यह शुद्ध... मन शुद्ध, वचन और कहाँ शुद्ध थे तेरे? उनके लिये बहुत कठिन काम। वीतरागमार्ग को मात्र जानकर अनुभव करना सम्यग्दर्शन में, वही वस्तु कोई अलौकिक है। समझ में आया? आहाहा!

अरेरे! चौरासी के अवतार, नरक और निगोद कर-करके, भाई! यह दु:खी हो गया है। आहाहा! यह जरा शरीर ठीक न हो, यह मानो निरोगता मिली तो उसे कुछ... साताशीलिया (सुविधाभोगी) के कारण... आया था न, नहीं कल? गार नहीं आया था? रसगारव और सातगारव। आहाहा! उसके अभिमान में फिर गड़बड़ करे। अभी कौन पूछनेवाला है? बापू! ऐसा नहीं होता। आहाहा! रसगारव और आया था न सातागारव, नहीं? गारव। पैर छूने का। आज आया है उसमें। आहाहा! यहाँ सामने ही है, आ गया सब। मिष्ट, इष्ट और पुष्ट भोजन। मिष्ट, इष्ट, पुष्ट। पण्डित है न, इसलिए सब शब्द... आहाहा! वह आहार-पानी खाये। फिर चाहे जिसका अपने आदर करें और

चाहे जिसका... क्या है? बापू! ऐसा नहीं चलता, भाई! यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा को वन्दन करनेवाले इन्द्र, उनके मार्ग में ऐसी पोल नहीं चलती। यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इसे दर्शनशुद्धि में जरा भी गड़बड़ नहीं चलती। आहाहा! यह भी एक मार्ग है और वह भी एक मार्ग है। वह तो ऐसा कहते हैं कि तू दूसरे जीवों को मिथ्यादृष्टि कहे, वह स्वयं मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अरे भगवान! तू क्या कहता है? भाई!

मुमुक्षु : एक ओर कहे कि मिथ्यादृष्टि कहे...

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर पड़े नहीं। कुछ ठिकाने बिना की बातें। यह जैन के दिगम्बर कैसे यह मार्ग? दिगम्बर जिसे धर्म सम्प्रदायरूप से मिला, उसे कुछ इतना तो विवेक थोड़ा होगा या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वत्र काल का असर हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : काल का असर हुआ। बात सच्ची है। आहाहा! ओहोहो! काल आभास, जैनाभास, ऐसा लिखा है। काल के कारण जैनाभास यहाँ लिखा है न! ऊपर ही है।

पंचम काल के दोष से जैनाभास हुए हैं। इससे पहली गाथा है। इसी और इसी में। यह ११वीं गाथा में ही है। १९ पृष्ठ। **पंचम काल के दोष से जैनाभास हुए हैं।** १९ पृष्ठ पर है। है न। ... क्या हो ऐसी वस्तु। ... पंचम काल का निमित्त लेकर बात की है कि ऐसा काल आया। आहाहा!

मुमुक्षु : छठवीं गाथा है। कलिकाल के....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कलिकाल। '**कलिकलुसपावरहिया**' आया था न? '**कलिकलुसपावरहिया**' कलिकाल के कलुषित मिथ्या अभिप्रायवाले जीव पके। आहाहा!

कहते हैं कि **खड़े रहकर आहार लेना—इस प्रकार दर्शन की मूर्ति है,...** आहाहा! **वह जिनदेव का मत है,...** वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव का यह मत है। अरे! गजब काम किया है न! किस प्रकार से मिलाया है! वस्तुस्थिति है। **वही वन्दन, पूजनयोग्य है,...** ऐसा मार्ग सन्तों का, जिसे अभ्यन्तर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, जिसे राग के

कण की कर्तृत्वबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! और देह को नग्नरूप से मैंने किया, यह दृष्टि गयी है। और ऐसे-ऐसे... लो, इसमें कहाँ अर्थ है? १३वें की बात है इसमें। भाई! इसमें १३वें की कहाँ बात है? परन्तु उसने यह लिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : भावार्थ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावार्थ में। भाई! यह मुश्किल पड़ता है। देखो! यह स्वयं अर्थ किया है। शब्दार्थ तो बराबर किया। पश्चात्? दस प्रकार का परिग्रह और चौदह प्रकार के परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थता सम्पूर्णरूप से तेरहवें गुणस्थान में ही होती है। अब उसकी कहाँ बात है? यहाँ तो छठवें गुणस्थान के मुनिपने की अन्तरदशा, बाह्यदशा, निमित्त, उसकी बात है। यह केवली का मत है, ऐसा यहाँ कहना है। केवली की बात लक्ष्य में नहीं, वह बात नहीं की। आहाहा! तेरहवें गुणस्थान में होता है, ऐसा कहकर क्या कहना है कि केवली को निर्ग्रन्थपना होता है, इसलिए नीचे नहीं होता, ऐसा करके (उनको यह कहना है)। परन्तु मिथ्यात्वरूप अन्तरंग परिग्रह चौथे गुणस्थान में छूट जाता है, इसलिए निर्ग्रन्थता की शुरुआत चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्व प्राप्त होता है। पूर्ण वहाँ होता है ऐसा। यह अर्थ बराबर नहीं है।

मुमुक्षु : यहाँ तो मुनि की ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो मुनि की ही बात है। खड़े-खड़े आहार किसे? केवली को आहार है? केवली को आहार है? उन्हें संयम पालना है मन, वचन, काया से? त्रस—स्थावर की दया? यहाँ तो भाई! जो वस्तु हो वह होती है। आड़ी-टेढ़ी कुछ नहीं होती।

मुमुक्षु : क्षुल्लक भी नहीं इसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षुल्लक-बुल्लक इसमें कहाँ थे? आहाहा! यह तो छठवें गुणस्थान की (बात) है। सातवें की भी नहीं अभी तो। व्यवहारनय से ...दोनों बतलाना है न? इसलिए बात की है। गजब की है। बहुत ही सरस। सातवें में तो ध्यान में हों, उसे.... आहार और ऐसा होता नहीं, संयम पालना, वह तो दशा अन्दर है। यह .. से वर्णन किया है। इसका निश्चय स्वभाव की दर्शन, ज्ञान और शान्ति तथा व्यवहार के

विकल्पों की मर्यादा और नग्नपना निमित्त, एक बार आहार इत्यादि-इत्यादि, उसको यहाँ जैनदर्शन कहने में आता है। आहाहा! कठिन बात पड़े दूसरों को, हों! तो बेचारे वे सेठिया जरा शिथिल थे। दो दिन सुना। कल थे न! गृहस्थ बड़े व्यक्ति, पैसेवाले हैं, २५-५० लाख। महाराज! ऐसा बोल गये फिर अन्त में। थोड़ी अलग बात है परन्तु हमारा झुकाव यहाँ निकले तो यह रहे.... बड़े सेठिया हैं उनके प्रमुख हैं। ...सम्प्रदाय यह। उसे उसके घर की खबर नहीं। कहीं-कहीं बचाव करे। श्रीमद् ने ऐसा कहा है। ... आहाहा! बहुत वर्ष घोंटा हो, वह बात मस्तिष्क में बैठ गयी हो, उसे बदल डालना बहुत... आहाहा!

वही वन्दन-पूजनयोग्य है, अन्य पाखण्ड वेश वन्दना-पूजायोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसा दिगम्बर भाव और दिगम्बर नग्नदशा, वह जीव को वन्दन योग्य भी उससे यह दूसरे वेश लेकर बैठे, वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मनावे, वे सब वन्दनयोग्य नहीं हैं। आहाहा! यह जैन में रहे हुए दिगम्बर के प्रमुखों को भी अभी खबर नहीं। और जिसे-तिसे वन्दन करते हैं, मानते हैं हम सफल हुए हमारे अवतार। कुलिंग, कुश्रद्धा सब भ्रष्ट। अरेरे! क्या हो? भरी दोपहरी लुटते हैं।

मुमुक्षु : राजी-खुशी से लुटते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजी-खुशी से लुटते हैं। बात सच्ची है। राजी-खुशी से लुटते हैं। आहाहा! अरेरे! ऐसा मार्ग नहीं होता भाई! चारित्रदोष हो, वह चलता है। यह तो पहले कहे गये हैं। '**दंसणभट्ठा ण सिज्झंति चरियभट्ठा सिज्झंति**' चारित्र न हो और चारित्र से भ्रष्ट भी हो गया हो, परन्तु सम्यग्दर्शन है। आहाहा! तो उस चारित्र की उसे खबर है कि चारित्र ऐसा होता है और इसके बिना मुक्ति नहीं होगी, इसलिए वह भ्रष्ट नहीं है। वह आगे बढ़ जानेवाला है। आहाहा! वे तो '**दंसणभट्ठा भट्ठा**' वे तो भ्रष्ट हैं। मूल बात का बहुत अन्तर। आहाहा! कहो, मोहनभाई! यह भाग्यशाली सब आ गये, देखा न! .... मार्ग तो ऐसा है, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : आपकी कृपा...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा की योग्यता हो, तब सब होता है। आहाहा!

पूजायोग्य नहीं है। लो! इस एक गाथा में एक घण्टा हुआ। मुद्दे की रकम थी न यह! और कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ऐसा कहते हैं। '**उब्भसणे दंसणं होदि**' अब खड़े-खड़े आहार ले उसे समकित होता है, ऐसा है यहाँ? वे ऐसा कहते हैं। टीकाकार। साधु का ऐसा समकित होता है।

मुमुक्षु : दोनों साथ हो तो दो कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें कोई ... इन्होंने लिया।

'अन्तरंग-बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो, तीनों योगों में मन-वचन-काया में संयम हो, ज्ञान में करण-कारित-अनुमोदना की शुद्धि हो, खड़े होकर हाथ में भोजन लिया जाये तो वहाँ दर्शन होता है। भावार्थ—ऐसा साधु सम्यग्दर्शन की मूर्ति है।' ऐसा लिखा है। मिलान करना आया नहीं न!

मुमुक्षु : ऐसा बदल डालते हैं। ऐसा होवे वह साधु।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधु है, ऐसी बात है। वह जैनदर्शन है। ख्याल में न हो न। वस्तु यह है। स्थिति ऐसी है। अलौकिक बात! आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा तीन काल—तीन लोक जिन्होंने हस्तामलक की भाँति देखे हैं, उनका मार्ग यह है, ऐसा कहते हैं। उनका मत यह है। आहाहा! इस मत के अतिरिक्त जितने मत के वेश और मत अभिप्राय, वे सब आदरनेयोग्य नहीं, वन्दनयोग्य नहीं, पूजनीय नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग भगवान ने त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा है, लो! यह १४वीं (गाथा) पूरी हुई, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १३, मंगलवार, दिनांक ०९-१०-१९७३
गाथा-१५, १६, प्रवचन-२२

यह अष्टपाहुड़ चलता है। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि दो हजार वर्ष पहले हुए। संवत् ४९। वे भगवान के पास गये थे, सीमन्धर भगवान के पास। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया।

मुमुक्षु : सीमन्धर भगवान कहाँ हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : महाविदेह में विराजते हैं। पहले कहा महाविदेह। ... वहाँ भगवान विराजते हैं। वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। पश्चात् यह शास्त्र बनाया है।

अष्टपाहुड़ में पहला दर्शनपाहुड़ अधिकार है। १४ गाथा चली। १५वीं।

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासंय वियाणेदि॥१५॥

अर्थ :- सम्यक्त्व से तो ज्ञान सम्यक् होता है... पहली बात आत्मा का सम्यग्दर्शन करने से ज्ञान में सम्यक्ता आती है। तो सम्यग्दर्शन का अर्थ क्या? वह आगे नीचे आयेगा। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मस्वभाव, उसके सन्मुख होकर उसकी ज्ञान की पर्याय में उसको आत्मा को ज्ञेय बनाकर अनुभव होकर प्रतीति होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्य ... वह आगे आयेगा। निश्चय समकित की परिभाषा में २०वें में है। २०वें में है। '**णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं**' २०वीं गाथा। क्या कहा, समझ में आया?

निश्चय से अपना शुद्ध चैतन्य वस्तुस्वभाव परिपूर्ण स्वभाव अपने आत्मा का है। उसके सन्मुख होकर वर्तमान ज्ञान की पर्याय में वस्तु को ज्ञेय बनाकर अनुभव होकर प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। **सम्यक्त्व से तो ज्ञान सम्यक् होता है...** ऐसा सम्यग्ज्ञान से ही सम्यग्दर्शन से ही... सम्यग्ज्ञान सच्चा होता है। पहले तो ऊपर लिया न १४वीं गाथा में। वह सम्यग्दर्शन। कहा न अन्दर।

मुमुक्षु : शीर्षक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शीर्षक है। ऐसा जिनस्वरूप मुनिमार्ग जो निश्चय से है,

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और उसका व्यवहार। जैनदर्शन में सम्यग्दर्शन उसको कहते हैं कि मोक्षमार्ग जो है, आत्मा के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है और अट्ठाईस मूलगुण होता है व्यवहार से और नग्नपना शरीर का—ऐसा जो अनादि जिनदर्शन का मार्ग है, उसकी जो प्रतीति करते हैं कि यह मार्ग ऐसा है (वह) आत्मा के आश्रय से प्रतीति करता है। उसको सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ? निर्विकल्प दृष्टि उसको होती है। बाकी दूसरा कहे कि हमें निर्विकल्प दृष्टि है, भ्रम है। वस्तु नहीं, वस्तु नहीं, समझ में आया ?

तो ऐसे आत्मा नव तत्त्व पदार्थ, सात तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय की श्रद्धा, वह तो व्यवहार समकित है, शुभराग है। वह निश्चय समकित नहीं। सच्चा समकित वह नहीं। सच्चा समकित तो भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन चैतन्य आनन्द परिपूर्ण उसके सन्मुख होकर उसका ज्ञेय बनाकर अपनी पर्याय में शुद्धता का वेदन आना और उसमें प्रतीति होना कि यह आत्मा शुद्ध है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन के बिना उसका ज्ञान भी झूठा, चारित्र व्रत, नियम, सब झूठा है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी जैनदर्शन की प्रणालिका अनादि से ऐसी चली आई है। आहाहा!

तो कहते हैं कि **सम्यक्त्व...** वास्तविक जैनदर्शन। उसकी श्रद्धा अर्थात् जैनदर्शन की श्रद्धा करना, वह स्वभाव के आश्रय से होती है। देवीलालजी! आहाहा! उसमें तो विकल्प मन का संग भी छूट जाता है। और अपना चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, जैसा सर्वज्ञ परमेश्वर भगवान तीर्थंकर ने देखा ऐसा कहा, ऐसा उसकी दृष्टि में, अन्तर अनुभव में आवे, तब सम्यग्दर्शन कहने में आता है। वह धर्म का मूल तो यह है। समझ में आया ? और यह सम्यग्दर्शन से तो ज्ञान सम्यक् होता है। उसके बिना ज्ञान ग्यारह अंग पढ़े, नव पूर्व का ज्ञान पढ़े, परन्तु आत्मा के अनुभव की दृष्टि बिना यह ज्ञान सब मिथ्याज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : सब मिथ्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या। मिथ्या अर्थात् आत्मा के लाभ के लिये मिथ्या। संसार में भटकने के लिये सफल।

मुमुक्षु : चार गति के लिये सफल?

पूज्य गुरुदेवश्री : सफल है।

मुमुक्षु : ... वाह प्रभु!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया? आहाहा!

अष्टपाहुड़ है न? तो **सम्यक्त्व से तो ज्ञान सम्यक् होता है तथा सम्यग्ज्ञान से सर्व पदार्थों की उपलब्धि अर्थात् प्राप्ति...** जानना होता है। सम्यग्ज्ञान से श्रेय-अश्रेय क्या है, कल्याण का मार्ग क्या है? अकल्याण का मार्ग है? वह सम्यग्ज्ञान से जानने में आता है। **पदार्थों की उपलब्धि अर्थात् प्राप्ति जानना होता है तथा पदार्थों की उपलब्धि होने श्रेय अर्थात् कल्याण और अश्रेय अर्थात् अकल्याण इन दोनों को जाना जाता है।** मोक्षमार्ग अपना स्वरूप शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और रमणता अन्दर ऐसा कल्याण का मार्ग और रागादि बन्ध का कारण, अश्रेय का कारण, ऐसा सम्यग्ज्ञान से जानने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है।

भावार्थ :- सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहा है,... जिसको आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन, आत्मा चिदानन्दस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु ऐसा अन्तर में राग से भिन्न होकर भेदज्ञान में सम्यग्दर्शन न हुआ हो, तो उसका सब ज्ञान मिथ्याज्ञान है। सारा पठन—पढ़ना ग्यारह अंग का, नव पूर्व का सब मिथ्याज्ञान होता है। **इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान होता है...** इस कारण से। सम्यग्दर्शन अन्तर स्वरूप की प्रतीति, अनुभव के पीछे सम्यग्ज्ञान होता है। **और सम्यग्ज्ञान से जीवादि पदार्थों का स्वरूप यथार्थ जाना जाता है...** क्योंकि दर्शन में तो वस्तु की अखण्ड प्रतीति आई। परन्तु उसके साथ जो ज्ञान हुआ, वह कहते हैं, यह ज्ञान द्रव्य को जानता है, गुण को जानता है, पर्याय को जानता है, श्रेय-अश्रेय सबको जानते हैं।

मुमुक्षु : श्रेय कौन और अश्रेय कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रेय यह कल्याण मार्ग आत्मा का यह श्रेय। रागादि अश्रेय। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चयमोक्षमार्ग यह श्रेय?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय मार्ग यह श्रेय, व्यवहारमोक्षमार्ग आदि अश्रेय। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म बात है। उसने अनन्त काल से दृष्टि में यह बात ली नहीं।

सम्यग्ज्ञान से जीवादि पदार्थों का स्वरूप यथार्थ जाना जाता है... क्योंकि सम्यग्दर्शन में तो स्वरूप त्रिकाली अखण्ड आत्मा की प्रतीति आयी। परन्तु उसके ज्ञान बिना स्व, पर, राग, अकल्याण, कल्याण (आदि) विस्तार को तो ज्ञान जानता है। समझ में आया? आत्मा में आनन्द का वेदन कितना है, दु:ख का वेदन कितना है, यह सब ज्ञान जानता है।

मुमुक्षु : अकल्याण में दु:ख का वेदन नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकल्याण दु:ख का वेदन है यह। जितना रागभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा भाव होता है, परन्तु है सब दु:ख का वेदन। यह कल्याणमार्ग नहीं।

मुमुक्षु : उसका छेदन करे या वेदन करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन करते हैं। जो है उसका छेदन करे या न हो उसका छेदन करे? यह प्रश्न लाये भाई! सरदार। जो हो उसका छेदन की न हो उसका? है। ज्ञान अपना शुद्धस्वरूप पवित्र का वेदन को जानता है और साथ में दु:ख का वेदन है, उसको भी ज्ञान जानता है। वेदन न हो दु:ख का तो पूर्ण आनन्द का वेदन होना चाहिए। पूर्ण आनन्द का वेदन नहीं, वहाँ दु:ख का वेदन साथ में है। ऐसा न माने तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख और दु:ख दोनों को वेदते हैं। ज्ञानी अर्थात्? दृष्टि की अपेक्षा से सुख का वेदन अधिक कहकर मुख्य कहा, परन्तु ज्ञान की अपेक्षा से पर्याय में दु:ख है, वह गणधर भी जानते हैं। कर्ता-भोक्ता नय आया नहीं? ४७ नय। कर्ता-भोक्ता नय है। गणधर जानते हैं कि मेरी पर्याय में राग है। पंच महाव्रत का विकल्प है, वह दु:ख है, आकुलता है, अशान्ति है, वेदन है।

मुमुक्षु : वेदन न हो तो आकुलता...

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन नहीं है तो आकुलता आई कहाँ से? वेदन तो बाद में,

परन्तु सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, तब उसमें तीन कषाय का राग तो है या नहीं? है या नहीं? कि है ही नहीं? है, तो वेदन है या नहीं? फिर बाद में छेदने की बात। है इसलिए दुःख है या नहीं? पीछे स्व का आश्रय करके उसका छेदन करते हैं। परन्तु है उसका छेदन करते हैं या नहीं है उसका छेदन करते हैं?

मुमुक्षु : ...का वेदन या भोक्तृत्व का वेदन?

पूज्य गुरुदेवश्री : भोक्तृत्व है। भोक्ता भी है, कर्ता भी है। करनेयोग्य है, ऐसा कर्तृत्व नहीं। वह दूसरी चीज़। भोगनेयोग्य है, वह दूसरी चीज़, वह नहीं। परन्तु परिणमन है और परिणमन का कर्ता और वेदन है, उस अपेक्षा से, ज्ञान की अपेक्षा से कर्ता-भोक्ता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। दृष्टि का जब विषय चलता है, तब तो ऐसा ही चलता है कि आत्मा तो ज्ञान और आनन्द का ही वेदन है। दुःख का वेदन है नहीं। क्योंकि उसका वेदन है फिर भी गौण करके दृष्टि और उसका विषय स्वभाव की मुख्यता करके दुःख नहीं, ऐसा कहने में आता है। परन्तु गौण करके कहने में आया है, अभाव करके कहने में नहीं आया है।

मुमुक्षु : अभाव हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का अभाव हो गया है? समझ में आया? भगवानजीभाई! भाई! यह तो ऐसा मार्ग है। आहाहा! ...मार्ग तो अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य... सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग अरिहन्तदेव ने जो कहा, वही कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। दिगम्बर मुनि संवत् ४९ में भगवान के पास गये थे महाविदेह में। वहाँ से आठ दिन रहकर आये, तब यह शास्त्र बनाया है। भगवान का ही सीधा सन्देश है। आहाहा! समझ में आया? तो भगवान का फरमान है कि जिसको अपने स्वरूप की दृष्टि हुई, वह दृष्टिवन्त और दृष्टि का विषय उस अपेक्षा से तो उसको आनन्द का ही वेदन है। मुख्य। समझ में आया? गौण करके, दृष्टि और दृष्टि के विषय में दुःख और राग को गौण करके 'नहीं है', ऐसा कहा है। अभाव करके 'नहीं'—ऐसा नहीं कहा।

भगवान आत्मा त्रिकाली द्रव्यस्वभाव भूतार्थ, वही सत्यार्थ और पर्याय असत्यार्थ कहा लो! ग्यारहवीं गाथा। '**भूदत्थमस्सिदो**' त्रिकाल वस्तु परम सत्य वही चीज़ है और

उस चीज़ के आश्रय से सम्यग्दर्शन धर्म की पहली शुरुआत वहाँ से होती है। तो वहाँ तो कहा कि पर्याय असत्यार्थ है। वह गौण करके असत्यार्थ कहा। अभाव करके असत्यार्थ नहीं कहा।

मुमुक्षु : हो, उसको असत्यार्थ कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : और पर्याय व्यवहार है। सब पर्याय व्यवहार है। व्यवहार को असत्यार्थ, त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ। उसकी (अपनी) अपेक्षा से सत्यार्थ। वह तो बहुत चला है यहाँ। अपना द्रव्य जो है वस्तु, उस अपेक्षा से सब द्रव्य अद्रव्य है। इस अपेक्षा से। उसकी अपेक्षा से? ऐसे अपना त्रिकाल ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से पर्याय असत्य है, झूठी है। है ही नहीं। है नहीं, ऐसा कहा। किस अपेक्षा से? त्रिकाल की अपेक्षा से। अपनी अपेक्षा से है। दोनों नय जानना चाहिए न। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल... पुद्गल का वेदन होगा उसको। आहाहा! पुद्गल का वेदन होगा। ऐसे पुद्गल कहा न, अचेतन कहा, अजीव कहा, जड़ कहा। आहाहा! केवल पुद्गल कहा। अर्थात् किस अपेक्षा से? अपना चैतन्य आनन्दस्वभाव है, उसका राग दया, दान, व्रत, भक्ति राग में चैतन्य का अंश का अभाव है, इस अपेक्षा से उसको अचेतन कहा। परन्तु यह अचेतन ऐसा नहीं कि उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पश है। समझ में आया? और वह अचेतन तो त्रिकाली चैतन्य की अपेक्षा से कहा। अपनी अपेक्षा से चैतन्य की पर्याय चैतन्य की अरूपी पर्याय है।

मुमुक्षु : चिदाभास कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसकी पर्याय है।

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसी जहाँ दृष्टि हुई वह तो उसको सम्यग्ज्ञान हुआ और सम्यग्ज्ञान से पर्याय में दुःख कितना है, आनन्द कितना है, सबका ज्ञान उसको होता है। कहो, समझ में आया? सूक्ष्म बात है भाई! जैनधर्म क्या है, मूल वह चीज़ सारी पड़ी रही। व्रत करना, अपवास करना, यात्रा करना, भक्ति करना, पूजा करना, यह राग है।

वह तो शुभराग की वृत्ति पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! उसको अज्ञानी ने अनादि से धर्म माना और मनाया। तो वह जैनदर्शन ही नहीं। समझ में आया? यहाँ तो जैनदर्शन से भ्रष्ट हुआ, श्वेताम्बर और स्थानकवासी वह भी जैन नहीं। वह कहा यहाँ १४वीं गाथा में। भगवानजीभाई! आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का अनादि दिगम्बर आत्मज्ञान, दर्शन और आनन्दसहित मुनि के पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण और नग्न मुद्रा, वह निश्चय, व्यवहार और निमित्त—ऐसी चीज़ अनादि की वस्तु की स्थिति की मर्यादा है। वह कोई दिगम्बर सन्तों ने कहा है, इसलिए ऐसा है, ऐसा नहीं। वह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? कल आ गया न वह १४वीं गाथा में। उसको जैनदर्शन कहने में आता है। मूल पंथ जो अनादि का था, उससे दुष्काल में भ्रष्ट (होकर) हुए श्वेताम्बर लोग। बारह साल का दुष्काल हुआ, उसमें वह निकला है। और उसमें स्थानकवासी तो अभी निकला है। तो वह जैनदर्शन ही नहीं। उसमें से निकलता है। मोक्षमार्गप्रकाशक पाँचवाँ अध्याय अन्यमति में डाला है। वह जैनमत में नहीं है। शान्तिभाई! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! उसमें किसी का पक्ष चले नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : नग्न दिगम्बर...

पूज्य गुरुदेवश्री : निकले अर्थात्? भ्रष्ट होने के बाद हुए न। भ्रष्ट होकर निकले या सच्चे होकर निकले? उसके घर में ही तीन पंथ हैं। उसका भाई माने स्थानकवासी, उसकी पत्नी माने डेरावासी। ... कुछ ढीले पड़े होंगे। अब नहीं? ठीक। परन्तु पहले होगा। पहले था न? आहाहा! मार्ग तो यह है, प्रभु! वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ और गणधर ने तो अनादि से यह मार्ग कहा है। जिसको आत्म सम्यग्दर्शनस्वरूप अन्तर आनन्दमूर्ति प्रभु उसका अनुभव दर्शन हुआ, उसका आत्मज्ञान हुआ, वह आत्मज्ञान और चारित्र की लीनता, आनन्द की लीनता हुई। उस भूमिका में पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प जो आस्रव है, वह होता है और मुद्रा नग्न होती है। उसको अनादि तीर्थंकरों ने जैनदर्शन कहा है। उससे जितना वेश में अन्तर करके निकला, वह सब जैनदर्शन वीतराग ने कहा है नहीं। माने, न माने स्वतन्त्र जगत है। समझ में आया? ..लालजी! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

और उसकी श्रद्धा, मोक्षमार्ग जो निश्चय है, यह मुनिमार्ग और यह जैनदर्शन, उसकी श्रद्धा स्वद्रव्य के आश्रय से होती है। समझ में आया? अमरचन्दजी! यह सभी झगड़े। वाड़े में झगड़ा। आहाहा! ऐसा उज्ज्वल मार्ग अनादि से चलता है। महाविदेह में भी यही चलता है। महाविदेह में वह मार्ग चलता है भगवान के पास। सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में। वहाँ गये थे और आठ दिन रहे थे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। समझ में आया?

तो कहते हैं। यहाँ तो खूबी क्या की? कि पहले शुद्ध चैतन्य अखण्ड आत्मा परिपूर्ण है, पर्याय है, राग है, पर होने पर भी सबसे दृष्टि उठाकर अपनी त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध ध्रुवस्वभाव स्वभावभाव की दृष्टि की तो निर्विकल्प दृष्टि हुई, राग की एकता टूट गई। तब उसको सम्यग्दर्शन कहने में आता है और वह सम्यग्दर्शन है तो ज्ञान सम्यक् होता है। यह ज्ञान सबको जानता है श्रेय, अश्रेय को, स्व को, पर को सबको जानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह दर्शन में तो अधिकार ऐसा आवे कि ज्ञानी तो आनन्द को वेदते हैं, दुःख को नहीं। उसको दुःख पृथक् है, इस अपेक्षा से। दर्शन और ज्ञान में राग की पृथक्ता है, इस अपेक्षा से पृथक् को नहीं वेदते हैं, ऐसा मुख्यपने से कहा। स्वभाव के मुख्यपने पृथक्। परन्तु उसके साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान तो अपृथक् अपनी पर्याय में दुःख है, ऐसा जानता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं। तुम्हारे भाई को क्या समझना? ऐसा कहो।

मुमुक्षु : उनको स्वयं को पहले क्यों समझ में नहीं आता था?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले क्यों नहीं था? तीर्थंकर को नहीं था। जब तीर्थंकर हुए उसके पहले ज्ञानी थे न वह? आहाहा!

क्या कहा? कि ऐसा सम्यग्दर्शन जैनदर्शन ऐसा है, मोक्षमार्ग निश्चय और व्यवहार विकल्प आदि और शरीर की नग्नता, यह एक जैनदर्शन। उसकी जिसको श्रद्धा है अन्दर में आत्मा के आश्रय से, उसका जो साथ में ज्ञान होता है, वह ज्ञान सबको जान लेता है। अपनी राग से कमी कितनी है? शुद्धता कितनी है? दुःख कितना है? आनन्द

कितना है ? पूर्ण आनन्द क्या है ? पूर्ण आनन्द क्या है ? पूर्ण आनन्द क्या है और साथ में दु:ख क्या है ? सबको ज्ञान जानते हैं।

मुमुक्षु : सब पढ़कर वह ज्ञान मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तब ज्ञान कहने में आता है। वह दर्शन हो तो ज्ञान कहने में आता है। ऐसा कहते हैं। और वह ज्ञान सबको जानता है। ऐसा। कहा न देखो न! '**श्रेयोऽश्रेयो**' ऐसा कहा न ? '**उपलब्धपदार्थे**' सम्यग्दर्शन से सम्यग्ज्ञान होता है और ज्ञान से '**सर्वभावोपलब्धि**' सर्व पदार्थ की प्राप्ति। सर्व पदार्थ जैसा है, वैसा ज्ञान में आता है। और '**उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि**' सब पदार्थ की प्राप्ति हुई दु:ख, सुख, विकार, अविकार, निमित्त, पर्याय तो उसमें श्रेयाश्रेय जान लेना। श्रेय, अपने स्वभाव की तरफ की एकाग्रता, वह श्रेय है और जितना भी व्यवहार आता है, वह अश्रेय है। आता है। है, व्यवहार है। व्यवहार का विषय भी है। परन्तु अश्रेय है, ऐसा ज्ञान जान लेता है। और वह व्यवहार से निश्चय होता है, वह ज्ञान नहीं जानता।

मुमुक्षु : नहीं होता है, ऐसा जानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता है, ऐसा जानते हैं। है बस इतना। व्यवहार का विषय इतना है। है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार जितना ... इतना कल्याणकारी है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ... आत्मा का आश्रय हुआ, वह तो। उसका अर्थ ही क्या ? ... को क्या ... अशुभ ... पर दृष्टि यहाँ है, स्वभाव पर अनुभवदृष्टि है तो उसको जो शुभभाव है, उसमें अशुभभाव नहीं है इतना। परन्तु राग, वह तो दु:खरूप है। शुभ में अशुभ की नास्ति है और इतना राग उसका अभाव भी है। ऐसा भी शास्त्र कहते हैं। परन्तु राग रहा, वह तो दु:खरूप है।

मुमुक्षु : दु:खरूप को तो तोड़ने का प्रयत्न करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तोड़ना, परन्तु आनन्द होता है न पहले। प्रश्न कहाँ है ? अतीन्द्रिय आनन्द होना चाहिए न पूरा ? अतीन्द्रिय आनन्द नहीं तो उसका अर्थ रा तो दु:ख है वहाँ। मुनि को दु:ख है। छठवें गुणस्थान में भगवान गणधर को भी जितना पंच

महाव्रत का विकल्प उठते हैं, एक बार भोजन, अदन्तधोवन आदि, यह सब राग है, यह तो विकल्प है, आस्रव है। तो आस्रव तो दुःख है। आस्रव सुखरूप है ? आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर उसका कहा, अरिहन्त का मार्ग। ऐसे तो कहे ... ...भगवान सच्चे हैं। परन्तु भगवान सच्चे तुझे समझे बिना सच्चे कहाँ से आया? तेरी समझ में तो आया नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **सम्यग्ज्ञान से जीवादि पदार्थों का स्वरूप यथार्थ जाना जाता है तथा जब पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जाना जाये, तब भला-बुरा मार्ग जाना जाता है।** देखो! श्रेय-अश्रेय है न? श्रेय-अश्रेय को भला-बुरा कहा। लो यह ... है।

आगे, कल्याण-अकल्याण को जानने से क्या होता है, सो कहते हैं:—१६वीं गाथा।

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ॥१६ ॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तीर्थंकर परमात्मा के पास गये और यह सन्देश लाये। वह तो मुनि थे, भावलिंगी सन्त थे। समझ में आया? छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे, झूलते-झूलते भगवान के पास गये थे। समझ में आया? और विशेष ज्ञान की निर्मलता हुई। हुई तो अपने से हुई। और वहाँ से आकर यहाँ शास्त्र की रचना की है ऐसी। आहाहा!

अर्थः—कल्याण और अकल्याणमार्ग को... लो यह गाथा आई। ... आ गई। आता है न इसमें। मोक्षमार्ग में नहीं आता? '**सुच्चा जाणइ कल्लाणं, सुच्चा जाणइ पावगंः उभयं वि जाणये सुच्चा, जं सेयं तं समाचर**' (पुराना मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ-१६७) यह गाथा है। दसवैकालिक का चौथा अध्ययन है, उसमें यह गाथा है श्वेताम्बर में। सोचा जाणही... ध्वनि आया। सुनकर कल्याण जाने और सोचा जाणे अकल्याण। सोचा कल्याण, सोचा जाणही अकल्याण। उभयंपि जानही सोचा। दोनों को उभयं पि। यह गाथा इसमें आती है मोक्षमार्गप्रकाशक के पाँचवें अध्याय में। श्रेय और अश्रेय दोनों को सुनकर जानते हैं, फिर जं श्रेयं तं समाहि। श्रेय हो, वहाँ आचरण करना। लिया है न इसमें से थोड़ा-थोड़ा। देखो न वही गाथा है। देखो।

कल्याण और अकल्याणमार्ग को जाननेवाला पुरुष... आहाहा! मिथ्याश्रद्धा, पुण्य से धर्म होता है और अन्यमत की क्रियाकाण्ड से भी कुछ लाभ होता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव वह कल्याण-अकल्याण देखने से मिथ्याभाव का नाश होता है। **'उद्धृतदु:शील:'** उद्धृतदु:शील: **अर्थात् जिसने मिथ्यास्वभाव को उड़ा दिया है—** दु:शील अर्थात् मिथ्यात्वस्वभाव। राग की मन्दता, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भाव वह सब राग है, पुण्य है। उससे धर्म होता है, ऐसी दृष्टि मिथ्यात्व है, वह श्रेयाश्रेय का ज्ञान करनेवाला उसको उड़ा देता है। समझ में आया? आहाहा! अरेरे! उसको सुधरने के रास्ते कठिन। पहले सुनने को मिले नहीं। यह मनुष्यभव चला जाता है। आहाहा! ढोर को, पशु को जैसे मनुष्यपना मिला नहीं और इसको मिला, परन्तु यह श्रेयाश्रेय कल्याण का मार्ग हाथ न लिया, मनुष्यपना मिला, न मिला बराबर है। धूल यह तो भस्म है। श्मशान की भस्म होकर उड़ जायेगा। यह तो चमड़ा है। भगवान आत्मा उससे भिन्न आनन्द का नाथ ज्ञानस्वभाव से भरा पड़ा प्रभु है। आहाहा!

कहा था न सुबह में नहीं? उसमें आया था। स्त्री, कुटुम्ब, पुत्र, पुत्री, उसकी चमड़ी दिखती है, आत्मा तो अन्दर भिन्न रहा। एक-दूसरे को सम्बन्ध चमड़ी का है। ऐसा नाक, ऐसी आँखें, चमड़े-चमड़े।

मुमुक्षु : ...चमड़ा है न वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऊपर है इतना। अन्दर में तो माँस, हड्डी केवल यह चमड़ी की लपेट है। चमड़ी है न वह लपेट है। इतना छीले तो थूकने खड़ा न रहे ऐसी चीज़ है। यह तो हड्डी और माँस है। आहाहा! गार कहते हैं? लींपण। यह लींपण नहीं करते? अब तो पत्थर हो गये। पहले तो गार पे लींपण करते थे। इस प्रकार यह चमड़ी लींपण है। अन्दर है माँस और हड्डी। और उसकी चमड़ी के साथ उसको सम्बन्ध है। यह मेरी पत्नी, यह मेरा पति, यह मेरा... चमड़ी मिट्टी, धूल, राख है, वह तो राख उड़ जाएगी। आहाहा!

यहाँ सम्यग्दर्शन होने से सम्यग्ज्ञान में सब विवेक आ जाता है, ऐसा कहते हैं। वह ज्ञान जानता है कि स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वह मेरी चीज़ ही नहीं। वह सम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ सम्यग्ज्ञान सब जानता है। शरीर भी मेरा नहीं, अवयव मेरे नहीं। यह

तो मिट्टी धूल का है। आहाहा! जगत की पुद्गलकाय है, उसकी यह चीज़ है। जड़ होकर शरीर रहा है। स्त्री, कुटुम्ब उसका आत्मा होकर रहा है और शरीर जड़ होकर रहा है। सम्यग्दर्शन हुआ, साथ में सम्यगज्ञान, जैसा है ऐसा जान लेता है। आहाहा! मेरा पुत्र-पुत्री के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि परद्रव्य स्वतन्त्र जगत की चीज़ है और मैं भी स्वतन्त्र जगत की चीज़ भिन्न हूँ। आहाहा!

आगे कहेंगे। '**जिणवयणम**' में। वीतराग का वचन तो विषय में सुखबुद्धि है, उसको रेच करा देते हैं। १७वीं है भाई! समझ में आया कुछ? वीतराग की वाणी त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव की जिनवाणी उसको कहे कि जिसको विषय में सुखबुद्धि है, वह उड़ा देते हैं। जब तक विषयों में सुखबुद्धि है, तब तक मिथ्याबुद्धि अज्ञानी है। आहाहा! विषय की वासना होती है समकिती को, परन्तु सुखबुद्धि नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? सम्यक्धर्म जहाँ से प्रगट हुआ, चौथा गुणस्थान। श्रावक तो पीछे रहे। यह सम्प्रदाय के श्रावक वह कोई श्रावक नहीं है। वह तो नाममात्र है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप और ज्ञानमूर्ति ऐसी जिसको प्रतीति समयग्दर्शन हुआ, उसको सारा इन्द्रिय विषय में सुखबुद्धि उड़ गई है। वीतराग की वाणी रेच करा देती है। आहाहा! रेच समझते हैं न? जुलाब। ...नहीं। रेच-रेच नहीं कहते? विरेचन। विरेचन शब्द है देखो! '**जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं**' १७वीं गाथा में है। विरेचन है। आहाहा! भगवान की वाणी, वीतराग त्रिलोकनाथ अरिहन्त परमेश्वर की दिव्यध्वनि वह वाणी, इन्द्र के इन्द्रासन में भी दुःख है; सुख नहीं, ऐसी वाणी जिसको समझ में आवे, विषयबुद्धि में सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! वह अकल्याण मार्ग अकल्याण से उठ जाती है दृष्टि। आहाहा! पीछे भले गृहस्थाश्रम में हो। समकिती भरत चक्रवर्ती छियानवें हजार, छियानवें हजार स्त्री थी, और छियानवें करोड़ सेना, ४८ हजार नगर, ७२ हजार पाटण, वह सब मैं नहीं। उसमें सुख नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ से पर में सुख नहीं। इन्द्राणी जैसी स्त्री परन्तु वह हड्डी और चमड़ी के पुतले हैं। पुतले हैं। आहाहा! मेरी सुख की बुद्धि तो मेरे आत्मा में है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन होते ही जिनवचन की प्रतीति यह हुई, ऐसा कहने में आता है।

आहाहा! शुभभाव दया, दान, व्रत भाव उसमें भी सुखबुद्धि उड़ जाती है। क्योंकि वह तो राग है। आहाहा! कठिन काम, बापू! तेरा मार्ग इतना सूक्ष्म है, प्रभु! उसको खबर नहीं है। दु:खी होकर चौरासी के अवतार में भटक मरता है। आहाहा! अरबोंपति सेठिया हो, राजा हो, वह बापड़ा बेचारे दु:खी हैं। अनाथ राग और पुण्य और पाप से घिरे हुए हैं प्रभु वे। समझ में आया? यह सब अरबोंपति, जिन्हें एक दिन की पाँच-पाँच, दस-दस, पच्चीस लाख की आमदनी हो। वह दु:खी हैं बेचारे। बापडा दु:खी। बापडा शब्द कल आया था।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। है। परन्तु वह ... आया था। आहाहा! भिखारी, वरांका ऐसा कहा था। भिखारी। वरांका। अरेरे! जिसको आत्मा में आनन्द है। आत्मा शान्त का सागर है, ऐसी जिसको भान और सम्पदा की खबर नहीं है और पर की सम्पदा से मैं सुखी हूँ ऐसा माननेवाले वरांका भिखारी बेचारे हैं। बेचारे रांका हैं। आहाहा! मोहनलालजी! आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें सुख मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ है। इस चमड़ी में यह धूल में सुख है? माँस और हड्डी को चूंथे, उसमें सुख है? मूढ़ है। मिथ्यादृष्टि है। उसको जैन की श्रद्धा नहीं है, ऐसा कहते हैं। जैन के वचन तो राग का विरेचन करानेवाले हैं। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय, वह चूरमा के लड्डू खाये, अरबी के पत्ते के भजिये, मरी के आचार। मरी समझे, क्या कहते हैं? कालीमिर्ची। कालीमिर्च का आचार होता है। आथणा समझते हैं? आचार। ..आचार होता है। और पिस्ता के पापड़ होते हैं, बादाम का मैसूर होता है। विष्टा है सब। आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी को पहले श्रेणी में सब पदार्थ में से सुखबुद्धि उसको उड़ जाती है। आहाहा! वाडीभाई!

मुमुक्षु : मनुभाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुभाई। वाडीभाई आनेवाले थे न? ठीक। कहो, समझ में आया कुछ? आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग। अरे..! कभी सुना नहीं। तीन लोक के

नाथ तीर्थंकरदेव जिनको सौ इन्द्र पूजा करे। जिनकी रज सिर पर चढ़ाये। आहाहा! ऐसे जिनेश्वरदेव की वाणी यहाँ तो कही है। वह वाणी का अर्थ वाच्यभाव है। वीतरागदेव का भाव वाणी में यह आता था। आहाहा! प्रभु! तुम तो आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का सागर-समुद्र तुम हो। तेरी बुद्धि जो आनन्द के ऊपर रही, सारी इन्द्रिय के विषय की सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! समझ में आया? तब उसको जिनवचन की रुचि हुई और सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहने में आता है। जिनवचन तो वीतरागभाव बताते हैं न! जिनवचन तो वीतराग की पुष्टि करते हैं न? या राग की? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो '**श्रेयोऽश्रेयवेत्ता उद्‌धृतदुःशीलः**' आहाहा! जिसको आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान सब कल्याण, अकल्याण को बराबर पहिचान लेते हैं। और '**उद्‌धृतदुःशीलः**' दुःशील। प्रकृति मिथ्या स्वभाव जो है, उसका तो नाश कर देते हैं। आहाहा! अन्दर में मिथ्याश्रद्धा, उसमें (राग में) धर्म होता है और पर में सुखबुद्धि है, वह सब मिथ्यात्वभाव उसको उद्‌धृत-नाश कर देते हैं। आहाहा! मिथ्यात्वस्वभाव को उड़ा दिया है। भाई! मार्ग सूक्ष्म है। बापू! तेरे जन्म-जरा-मरण से टूटने का रास्ता कोई अलौकिक है। समझ में आया? अनन्त काल में उसने लिया ही नहीं। अपनी दया की नहीं। दुनिया की दया करने को निकल पड़े। आहाहा! युवक मण्डल, दया मण्डल ऐसा नहीं होता है? जीवदया मण्डल, युवक मण्डल, भाई! मण्डल-फण्डल क्या है। तेरी तो कर तू। आहाहा! मान लेने को ऐसे अधिपति बने और साथ में यह पत्र बनाना, मासिक निकालना। अरे! प्रभु! तू क्या है वह तो पहले देख। आहाहा!

जिसको श्रेयाश्रेय का ज्ञान होता है, उसको मिथ्यात्व प्रकृति का स्वभाव का नाश होता है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा होता है तथा 'शीलवानपि' अर्थात् सम्यक्‌स्वभावयुक्त भी होता है...** सम्यग्ज्ञान से दुःशील स्वभाव का-मिथ्यात्व का नाश होता है और सम्यग्दर्शन स्वभाव को प्राप्त होता है। वह सुशील है। आहाहा! सम्यग्दर्शन स्वभाव, वह सुशील है। आहाहा! समझ में आया? लिया है न उसमें नहीं आगे। शीलपाहुड़ में लिया है न! कि नारकी जीव को शील है। पीछे आता है। सम्यग्दर्शन का शीलस्वभाव तो नारकी में भी है। आगे पाठ है। क्योंकि वहाँ तीर्थंकरगोत्र बाँधते (भी) हैं। यहाँ से निकलकर तीर्थंकर होगा। आहाहा! समझ में आया? श्रेणिक राजा वर्तमान

में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। पहली नरक में है। वहाँ भी सम्यग्दर्शनरूपी स्वभाव को वहाँ शीलवान कहने में आया है। आहाहा! शीलस्वभाव। आगे है। कौन सी गाथा है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन; भले चारित्र न हो, व्रत, तप आदि न हो। परन्तु वह सम्यग्दर्शन जो अनन्त काल में कभी न हुआ ऐसा जो प्राप्त किया, वह नारकी जीव में भी भगवान तो कहते हैं कि यह शीलवान है। यहाँ कहा न? '**उद्धुददुस्सील**' और '**सीलवंतो**' ऐसा कहा न पाठ में? वह '**सीलवंतो**' आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में तो आत्मा अखण्ड परिपूर्ण है, ऐसा अनुभव में भान होता है, परन्तु साथ में जो ज्ञान सम्यक् हुआ, वह सम्यग्ज्ञान सब पर्याय पर्याय, राग आदि भाग सब जान लेता है। ओहोहो! मेरे में अभी दुःख का वेदन है, वह अश्रेय है। मेरे स्वभाव का जो वेदन है, वह श्रेय है। ऐसा ज्ञान बराबर जान लेता है। आहाहा! कथनपद्धति दिगम्बर सन्तों की दिगम्बर मुनियों की पद्धति कथन की! केवली के मार्गानुसारी है। आहाहा!

मुमुक्षु : शीलपाहुड़ की २५वीं गाथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : २५वीं गाथा। ३२? हाँ है वह।

जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण॥३२॥

आहाहा! **अर्थः—विषयों से विरक्त है, सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गँवाता है...** देखो खूबी!

मुमुक्षु : यह सम्यग्दर्शन की वेदना...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सम्यग्दर्शन की वेदना... उसको (नरक की वेदना को) गँवाते हैं। है? देवीलालजी!

विषयों से विरक्त है सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गँवाता है, वहाँ भी अति दुःखी नहीं होता है... सम्यग्दर्शन है, वह शील है। अपना आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसका भान होकर प्रतीति हुई, वह शीलवन्त आत्मा है। आहाहा! ऐसा शीलवन्त

आत्मा नरक में भी दु:ख का वेदन कम कर देते हैं। **और वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है...** है ? पाठ में है न '**अरुहपयं**' '**अरुहपयं**' अरिहन्तपद को प्राप्त होते हैं। श्रेणिक राजा वर्तमान में पहली नरक में ८४ हजार वर्ष की आयु है। ३२वाँ। ३२वाँ कलश। ३३१ पृष्ठ नहीं आता ? उसको नहीं आता है। माणेकलाल... फँसे होते हैं न! ३२-३२ वह। '**जाए विसयविरत्तो**' भाषा देखो! नरक में भी विषय से विरक्त है समकिती। विरक्त का अर्थ ? रागादि जो भाव है, उससे मैं भिन्न हूँ। मेरी चीज़ ही... सम्यग्दृष्टि नरक में रहते हुए भी। आहाहा! भरत चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्री पद्मिनी जैसी है, वह नहीं... वह नहीं... इसमें सुख नहीं, ऐसा धर्मी मानते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ दु:खी नहीं होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अति दु:खी नहीं होता। ... में पड़ा। '**णरयवेयणा पउरा**' ऐसा शब्द है न। पाठ है। प्रचुर वेदना गँवाता है। तीव्र जो अनन्तानुबन्धी की वेदना, वह नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञानी को। अज्ञानी को रहे क्या ? दु:ख ज्ञानी को होता है। अज्ञानी को तो भान ही कहाँ है ?

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं कि अति दु:ख कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अति दु:ख ही है। '**पउरा**' दु:ख है परन्तु विरक्त होकर कम कर देते हैं। अनन्तानुबन्धी का मिथ्यात्व का गया इतना कम कर दिया, ऐसा कहा है। आहाहा! दु:ख दु:ख है।

छहढाला में आया नहीं ? छहढाला वह तो पाठशाला में सिखाते हैं पहले। उसमें क्या है ? देखो! 'राग आग दाह दहे सदा तातै समामृत सेईये। राग आग दाह दहे सदा।' चाहे तो शुभराग हो के अशुभराग हो। आहाहा! अरेरे! जगत को आत्मा आनन्दमूर्ति क्या है, उससे विरुद्ध राग। 'राग आग दाह...' वह तो आग है। 'दहे सदा' आत्मा की शान्ति को। चाहे तो शुभराग भगवान की भक्ति का हो, भगवान! इतनी बात है, प्रभु! तेरा मार्ग भिन्न है। आहाहा! 'राग आग दाह...' रागरूपी आग का दाह है, वह कहती है बाहर में। 'राग आग दाह दहे सदा तातै समामृत सेईये।' वीतरागभाव की सेवना करे।

समझ में आया? आहाहा! जितना राग है, वह सब आग है, आग है। अग्नि है। मार्ग तो यह है। दुनिया कुछ भी माने, उससे कुछ वस्तु (बदल) जाती है? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अग्नि। भट्ठी कहो या अग्नि कहो। उसमें क्या है। वह तो अग्नि है न। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा की है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मन्द-तीव्र आत्मा के स्वभाव से विरुद्धभाव। आहाहा!

यहाँ कहा न। चलता है न अपनी १६वीं गाथा। शीलवान **अर्थात् सम्यक्-स्वभावयुक्त भी होता है...** लो! अपनी चलती गाथा १६-१६। सम्यग्दर्शन—आत्मा का अनुभव होकर प्रतीत होती है, वह शीलवान है। मिथ्याश्रद्धा से मुक्त है। दु:शील से उड़ा दिया है। दु:शील को उड़ा दिया है और सुशील को प्राप्त है। बहुत कठिन मार्ग है। आहाहा! यह सब कहे कि व्यवहार का लोप हो जाता है। परन्तु व्यवहार स्वयं ही राग है, सुन तो सही। आहाहा! पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण साधु के वह सब राग है, अग्नि है, दाह है। वह आत्मा का धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहारनय से कथन कहने में आता है। आहाहा!

तथा उस सम्यक्स्वभाव के फल से अभ्युदय को प्राप्त होता है, तीर्थंकरादि पद प्राप्त करता है... देखो! सम्यग्दृष्टि आत्मा के अनुभव में भान है और राग का ख्याल है कि यह राग है मेरे में। समझ में आया? वह दु:ख है, अशान्ति है, दाह है। ऐसा भानवान अभ्युदय तीर्थंकरप्रकृति को बाँधता है, ऐसा कहते हैं। शुभविकल्प होता है तो तीर्थंकरप्रकृति बँध जाती है। 'षोडश कारण भावना' आता है या नहीं?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ... है तो शुभराग वह भी। वह अपराध है। जिससे तीर्थंकर-प्रकृति बँधे, वह समकित दृष्टि का अपराध है। तीर्थंकरप्रकृति का भाव तो अपराध ...

क्या है ? कुछ होगा ? तीर्थंकरप्रकृति तो चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें पर बाँधे। आठवाँ का अमुक माने। आहाहा! उसको भी अपराध कहा अमृतचन्द्राचार्य को। पुरुषार्थसिद्धि उपाय (गाथ २२०)। अपराध है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग। जिस भाव दर्शनशुद्धि की भूमिका में विकल्प आया, और तीर्थंकरगोत्र भी अपराध है। उसे अपराध से बन्ध होता है या धर्म से बन्ध होता है ? आहाहा!

मुमुक्षु : थोड़ा तीर्थंकर नाम आये तो खुश हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर नाम आया तो क्या है ? वह तो जड़ प्रकृति है। और उसका उदय भी केवलज्ञान होगा, तब आयेगा। तीर्थंकरप्रकृति का उदय तो तब आयेगा, जब केवलज्ञान होगा तब आयेगा। उसमें आत्मा को क्या है ? आहाहा! वस्तु भगवान की कही हुई तत्त्वदृष्टि बहुत सूक्ष्म है। और उस दृष्टि के बिना जितना भी ज्ञान करे, शास्त्र पढ़े, क्रिया-काण्ड करके मर जाये अपवासादि, व्रत पालकर सब एक बिना का शून्य, रण में चिल्लाने जैसा है। अरण्य में चिललाना। अरण्य रुदन है। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, **अभ्युदय को प्राप्त होता है, तीर्थंकरादि पद प्राप्त करता है तथा अभ्युदय होने के पश्चात् निर्वाण को प्राप्त होता है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव राग की एकताबुद्धि को उड़ा देते हैं। मिथ्या स्वभाव को उड़ाकर अपना सम्यग्दर्शन स्वभाव को प्राप्त करते है। और उसमें शुभरागादि आ जाये ऐसा, तीर्थंकरपद आदि बन्ध करते हैं और तीर्थंकर के बाद निर्वाण हो जाता है। परन्तु वह शील स्वभाव के कारण से होता है। आहाहा! समझ में आया ? लो हो गया। भावार्थ बाकी...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १४, बुधवार, दिनांक १०-१०-१९७३
गाथा-१६, १७, प्रवचन-२३

अष्टपाहुड़। दर्शनपाहुड़ की १६वीं गाथा। इसका भावार्थ है। **भले-बुरे मार्ग को जानता है, तब अनादि संसार से लगाकर, जो मिथ्यात्वभावरूप प्रकृति है, वह पलटकर सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होती है;...** क्या कहते हैं ? जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप द्रव्य, गुण और उसकी निर्मल पर्याय, वह भला है, अच्छा है, ऐसा जो जाने और जो पुण्य तथा पाप आदि का भाव बुरा है, खराब है, हेय है—ऐसा श्रेय-अश्रेय का जिसे ज्ञान हो, कल्याण-अकल्याण का ज्ञान हो। कल्याणस्वरूपी भगवान आत्मा है, उसके गुण कल्याणस्वरूप हैं, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, रमणता वह भी कल्याणस्वरूप है। ऐसा जिसे भला, कल्याणमार्ग का ज्ञान हो और अकल्याण विकारी भाव अश्रेय है, अकल्याण है, दुःखरूप है, ऐसा जिसे ज्ञान हो, वह **अनादि संसार से लगाकर, जो मिथ्यात्वभावरूप प्रकृति है,...** मिथ्यात्व श्रद्धारूप स्वभाव था। वह भले को बुरा माने और बुरे को भला माने। अर्थात् पर में सुख है, ऐसा माने और अपने में सुख है, ऐसा न माने। ऐसी जो अनादि की मिथ्यात्व प्रकृति, उसे झूठा स्वभाव था, वह यह भला-बुरा जाननेवाले का विकार स्वभाव का नाश होता है। समझ में आया ?

आत्मा सुख और आनन्दस्वरूप है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह आनन्द और सुखरूप है। और उससे विरुद्ध पर में कहीं सुख नहीं, पुण्य-पाप में सुख नहीं, यह सब बात अभी चली है। पर का आश्रय करने जाये तो वहाँ दुःख है। परद्रव्य के आश्रय से जितना भाव, वह दुःख है। स्वद्रव्य के आश्रय से भाव, वह सुख है। ऐसा जिसे... अपना ज्ञान अन्तर में हुआ है, उसका अनादि का मिथ्या स्वभावभाव है, उसका नाश हो जाता है। आहाहा! और **सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होती है;...** प्रकृति नहीं थे ? कि इसकी प्रकृति ऐसी है। उसका स्वभाव ही सम्यक् स्वभाव स्वरूपभाव होता है। कहो, समझ में आया ?

उस प्रकृति से... वह स्वभाव सम्यक् स्वभाव शुद्ध, वह मैं; अशुद्धता वह नहीं—ऐसा जो सम्यग्ज्ञान हुआ, वह स्वभाव प्रकृति, उससे खास पुण्यबन्ध होता है। उस

स्वभाव से पुण्यबन्ध होता है, उसका अर्थ कि उस स्वभाव के साथ जो विकल्प उस जाति के विचार आदि होते हैं, उससे तीर्थंकरगोत्र आदि बाँधे। अभ्युदय कहा था न? **अभ्युदयरूप तीर्थंकरादि की पदवी प्राप्त करके...** आहाहा! शुद्ध चैतन्य वस्तु पवित्र, उसके गुण पवित्र और उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति पवित्र, ऐसा जिसे ज्ञान हुआ और रागादि अपवित्र, ऐसा जो दोनों का विभाजन होकर जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान पवित्र या भला स्वभाव ... वह खोटे स्वभाव का नाश करता है। और भले स्वभाव में पूर्णता न हो और उस जाति का 'यह भला है', ऐसा जो विकल्प, उससे उसे तीर्थंकरप्रकृति बँध जाती है। तीर्थंकरादि हैं न? कोई बलदेव की प्रकृति।

निर्वाण को प्राप्त होता है। लो! वह मोक्ष को प्राप्त करता है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त किया। श्रेय-अश्रेय का ज्ञान होता है, मिथ्या स्वभाव का नाश होकर सम्यक् स्वभाव प्रगट होता है और सम्यक् स्वभाव प्रगट होने पर उसके अभ्युदयरूप तीर्थंकरादि की प्रकृति के परिणाम होते हैं, अर्थात् तीर्थंकरप्रकृति बाँध लेता है, पश्चात् मोक्ष जाता है।

मुमुक्षु : मोक्ष जाये उसमें तीर्थंकरप्रकृति...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर की कहाँ बात की है? यहाँ तो बीच में ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। पाँचवाँ काल है न इसलिए यहाँ सीधा मोक्ष नहीं है। इसलिए यहाँ भविष्य में भी, इस प्रकार से श्रेयाश्रय का जिसे ज्ञान यथार्थ होता है, वह भविष्य में भी भव बाकी हो तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे और फिर मोक्ष जाये, ऐसा कहा। अभी तो कहाँ तीर्थंकरगोत्र बाँधने का है? समझ में आया? ऐसी गम्भीर बात है। तीर्थंकरपना बाँधना, वह कहीं पंचम काल में तो है नहीं। बराबर है?

और यहाँ कहते हैं कि जिसे श्रेयाश्रेय का यथार्थ ज्ञान हो, वह तीर्थंकरप्रकृति आदि बाँधकर पश्चात् निर्वाण को पाता है। समझ में आया? उसका अर्थ यह हुआ कि जिसे यह चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा पवित्र है, ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता आयी, वह रागादिभाव सब अपवित्र, अश्रेय और अहितकर है। ऐसा जिसे भले-बुरे का ज्ञान हुआ, उस जीव की प्रकृति सम्यक् हो गयी। प्रकृति अर्थात् स्वभाव, श्रद्धा। मिथ्या स्वभाव और मिथ्या प्रकृति का नाश हुआ। और उसमें बाकी रहा तो। विकल्प हो वह

तीर्थंकरगोत्र बाँधे अभ्युदयप्रकृति और फिर मुक्ति प्राप्त करे। कहो, समझ में आया?

आगे कहते हैं कि ऐसा सम्यक्त्व जिनवचन से प्राप्त होता है... वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिन्हें सर्वज्ञ और वीतरागता पूर्ण प्रगट हुई है, ऐसे जो जिनेन्द्रदेव, उनकी वाणी से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। वाणी शब्द से उसका भाव जो कहते हैं वह। **सम्यक्त्व जिनवचन से प्राप्त होता है...** वीतराग की वाणी के अतिरिक्त अज्ञानियों की वाणी से कहीं समकितदर्शन प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि आत्मा का स्वरूप ही वीतरागमूर्ति है। ऐसा जिसे पर्याय में पूर्ण सर्वज्ञ वीतरागता प्रगट हुई है, उनकी वाणी में भी आत्मा सर्वज्ञ और वीतरागस्वरूप है, उसे प्राप्त करने की वाणी होती है। उनकी वाणी वीतरागता के भाव की पुष्टि की वाणी होती है। राग की पुष्टि की वाणी नहीं होती। राग को बतलाने की वाणी होती है। आहाहा! समझ में आया?

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥१७॥

अर्थ :— यह जिनवचन हैं सो औषधि हैं। वीतराग की वाणी। श्रीमद् में भी आता है न—

'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रस मूल;
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल॥

वचनामृत—वचन से लिया है न? यहाँ भी वचन से लिया है। वीतराग के परम शान्त रसमूल। वह तो अपना स्वभाव शान्त और आनन्द है, उसे बतलानेवाले हैं। वीतराग की वाणी, ऐसी वाणी को अन्यत्र... वह वीतराग की वाणी औषध है। **कैसी औषधि है? कि इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है, उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाला है।** यह सिद्धान्त। वीतरागी वाणी में, पाँचों इन्द्रियों के ओर के झुकाव में सुखबुद्धि का वीतरागवाणी से नाश होता है।

वीतराग वाणी आत्मा में सुख बतलाती है और आत्मा के आनन्द की जिसे प्रतीति होती है, उसे इन्द्रियों के विषयों में सुखबुद्धि का नाश हो जाता है। आहाहा! इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि जिसने पाँच इन्द्रिय के विषय छोड़े, इसलिए उसने

सुखबुद्धि छोड़ी। ऐसा नहीं है। ऐसे इन्द्रिय के विषय जिसे हों, इसलिए उसे सुखबुद्धि छूटी नहीं, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि हो, उसे सुखबुद्धि उड़ गयी होती है। विषयों में पाँच इन्द्रिय के विषयों में, हों! तो सुनने में उसकी प्रशंसा हो, तो उसमें से सुखबुद्धि उड़ गयी है। कोई भोग की बुद्धि हो, यह भोग शरीर आदि, उसमें से सुखबुद्धि उड़ गयी है। रस का खाने-पीने का, मौज-मस्ती की क्रियाओं में यह ठीक है, ऐसी बुद्धि समकिती को उड़ गयी है। तथापि आसक्ति का भाव होता है।

मुमुक्षु : आसक्ति का भाव हो, वही छोड़ना मुश्किल।

पूज्य गुरुदेवश्री : छह खण्ड का राग और आसक्ति हो, वह बुद्धि उड़ गयी। आसक्ति को टालने का कहा हो, परन्तु आसक्ति पहले धड़ाके छोड़ी न हो। आहाहा!

मुमुक्षु : एकता टूट गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकताबुद्धि टली हो अथवा अच्छी दुनिया में विकल्प से लेकर इन्द्र के इन्द्रासनों में भी सुख है, यह बुद्धि टल गयी है। तथापि वह इन्द्र के इन्द्रासनों में बैठा दिखाई दे, चक्रवर्ती समकिती तीर्थंकर छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में बैठा दिखाई दे, वहाँ बैठा नहीं है। आहाहा! वह सुख में बैठा है। आत्मा के सुख में उसकी दृष्टि, वहाँ स्थित है।

मुमुक्षु : अज्ञानी किसमें बैठा है? वह दुःख में बैठा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दुःख में बैठा है, कहा न। उसकी सुखबुद्धि है न उसमें? सुखबुद्धि है, उसमें वह बैठा है। विषय के राग में सुख है, उसमें वह बैठा है, भले भोग न लेता हो। समझ में आया? यह बात ऐसी है, बापू! यह तो मार्ग ऐसा है। सम्यग्दर्शन-चारित्र के विषय के अन्तर कठिन हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : एकताबुद्धि छोड़ी। सुखबुद्धि ही टल गयी है। चाहे तो चक्रवर्ती का राज हो, चाहे तो इन्द्र के इन्द्रासन हों, सम्यग्दृष्टि को पर में सुख है, यह बात ही उड़ गयी है। तथापि उसकी आसक्ति होती है, वह दिखता है, इसलिए सुखबुद्धि है—ऐसा नहीं है। आहाहा! उस अस्थिरता को टालना चाहिए, उतना पुरुषार्थ नहीं है, इसलिए

अस्थिरता... भाव अस्थिरता का आवे। यह तो ऐसी बात है, बापू! आहाहा! समझ में आया? वरना गुणस्थान नीचा कहाँ से होगा? यदि अस्थिरता न हो तो। उसकी अस्थिरता में सुखबुद्धि हो तो गुणस्थान समकित कहाँ से होगा? आहाहा! ऐसी बात है। जिनवचनं, यह शब्द आता है प्रश्न व्याकरण में। जिनवचन **इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है, उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाला है।** आहाहा! रेच लगाया रेच। आहाहा!

मुमुक्षु : परपदार्थ का जोर बहुत आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का कहाँ आया? पर में सुख मानने का जोर आया। पर में सुख है। पैसे में, स्त्री में, कीर्ति में, खाने में, पीने में, सुनने में, अभिनन्दन सुने और उसमें सुख है, यह सब सुखबुद्धि, आहाहा! उड़ गयी है। भाव हो। भाव हो—विषय का भाव हो, इन्द्राणी का राग हो, परन्तु उसमें सुखबुद्धि जहर देखता है वह। यह बात...

मुमुक्षु : ... भोगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भोगता नहीं, वह आता है, उसे जानता है। ऐई! चारित्र की अपेक्षा से भोगता है राग को। वेदन है। आहाहा! वीतराग का मार्ग अलौकिक मार्ग है, भाई! दुनिया को हाथ आया नहीं। बाहर की चीज़ की प्रवृत्ति, निवृत्ति। बाहर की प्रवृत्ति-निवृत्ति में मान लिया है। यह तो ऐसा कि संसार छोड़ा, स्त्री छोड़ी, विषय छोड़े। वह छोड़े ही नहीं, सुन न! आहाहा! जिसे राग की मन्दता का भाव, उसमें जिसकी रुचि है, उसे विषयसुख की रुचि है। है न, अपने यहाँ नहीं लिया? जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है। उसे आत्मा के धर्म की रुचि नहीं। आहाहा! यह तो अन्तर दृष्टि के विषय और दृष्टि में ध्येय में क्या होता है, वह बात है। सम्यग्दर्शन में पूरे संसार में से, अरे! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसमें से सुखबुद्धि उड़ गयी है। उसे दुःखबुद्धि जानता है। आहाहा!

अज्ञानी को चाहे तो बाह्य त्यागी होकर बैठा हो, मुनि नग्न दिगम्बर, परन्तु उसे राग की मन्दता में पुण्यबुद्धि में हेयबुद्धि आयी नहीं। उपादेय आनन्द है, वह आया नहीं, इसलिए यह हेयबुद्धि हुई नहीं। अभी शुभभाव में उपादेयबुद्धि है, उसे तो इन्द्रिय के विषय में सुखबुद्धि है। कहा न, नहीं? बन्ध अधिकार नहीं? भोग की व्याख्या में। भोग

के कारण से वह महाव्रतादि को सेवन करता है, ऐसा कहा है। हेतु क्या है? अनुभव से बात लेनी है न, इसलिए यहाँ आनन्द के अनुभव की तो खबर नहीं। इसलिए सब क्रियाकाण्ड करता है भोग के कारण से। भोग अर्थात् संयोग में सुख राचने के लिये करता है। आहाहा! क्यों? कि जिसे संयोगीभाव, पुण्यभाव का जिसे प्रेम है, उसे संयोग फल में सुखबुद्धि पड़ी है। आहाहा! समझ में आया?

जिसे राग की मन्दता... यह बन्ध अधिकार में स्पष्टीकरण है वह। राग की मन्दता के पंच महाव्रत के परिणाम, व्यवहार समिति, गुप्ति के भाव इत्यादि-इत्यादि कषाय की मन्दता के भाव की जिसे रुचि है, उसे दु:ख की रुचि है, उसे दु:ख है, उसकी खबर नहीं। और पर में सुखबुद्धि की रुचि है। भगवानजीभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा!

जिनवचन हैं सो औषधि हैं। वीतराग की वाणी अथवा वीतरागीभाव... आत्मा वीतरागस्वरूप है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और वीतरागचारित्र वह सब वीतरागी पर्याय है। वीतराग को उस पर्याय का कहना है। वीतरागी पर्याय के पोषण की बात है। सब शास्त्र का सार तो वीतरागता कही है न! उसका क्या अर्थ हुआ? कि निमित्त और राग की पुण्यबुद्धि, रुचि / बुद्धि जिसे छूट गयी है। आहाहा! और जिसे त्रिकाली आनन्द में जिसकी बुद्धि हुई है। यह कुछ बात है! पर में जिसे कुतूहलता से भी जिसे ठीक लगता हो, वहाँ तक उसे पर में सुखबुद्धि है।

मुमुक्षु : कुतूहलता अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुतूहलता अर्थात् ऐसा है, यह तो ऐसा करूँ। अंगों को ऐसा करूँ, अमुक को ऐसा करूँ, यह सब भाव कुतूहलता के पर में कुबुद्धि के भाव हैं। दूसरे प्रकार से कहें तो उसमें विस्मयता लगे, विशेषता। विषय के भोग में इसे विशेषता लगे। विशेषता, वह कुतूहलता, वह सुखबुद्धि है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : ... फल दूसरे प्रकार से आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

मुमुक्षु : उसके ... हों ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, आत्मबुद्धि हो सुख की, इसलिए परबुद्धि उड़ जाये। आत्मा आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्द प्रभु है, ऐसी अन्तर के आनन्द की जिसे बुद्धि हो, उसे पर में सुखबुद्धि उड़ जाती है। एक म्यान में दो रहते नहीं। दो तलवारें नहीं रह सकतीं। बात ऐसी है। ऐसी अनादि रह गया है कहीं उसका कारण है न! त्याग भी किया, मुनिपना लिया, साधु हुआ, परन्तु वस्तुस्थिति जो है, उसकी इसे खबर नहीं पड़ी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त अनन्त भव किये। वह भी आत्मा... यहाँ तो वीतराग की भाषा देखो! ओहोहो! यह शब्द आता है। तब कहते थे।... उसमें आता है। वीतराग की वाणी विषय के सुख को विरेचन करनेवाली है। ऐसा माने कि यह विषय छोड़ना, ऐसा। यह छोड़ना, ऐसा नहीं यहाँ।

पाँच इन्द्रिय रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श, उसमें जो कुछ सुखबुद्धि, ठीकबुद्धि, हितबुद्धि, विशेषबुद्धि, विस्मयबुद्धि, कुतूहलबुद्धि, का नाम मिथ्याबुद्धि है। समझ में आया? आहाहा! भगवानजीभाई! सुखबुद्धि उड़ गयी होने पर भी सम्यग्दृष्टि को, श्रावक को भी साधु की दशा न हो तो उसे राग होता है, विषय होते हैं। परन्तु उनमें सुखबुद्धि नहीं है। वह टलता नहीं, उसमें जरा जुड़ जाता है। अनन्तवें भाग में.... अनन्त-अनुबन्धी गयी है। आहाहा! ऐई! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ...अनन्तवें भाग सुख रहा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख गया नहीं, अनन्तवें भाग में उसे आसक्ति होती है।

मुमुक्षु : सुख अनन्तवें भाग में निषेध...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भले अनन्तवें भाग में हो।

मुमुक्षु : तो दुःख अनन्त भाग रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। सुख भले अनन्तवें भाग हो, परन्तु दुःख भी है अनन्त।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुख की अपेक्षा से भी अनन्तवाँ भाग है थोड़ा। प्राप्त हुए

सुख की अपेक्षा से तो अनन्तवें भाग है, परन्तु पूर्णानन्द की अपेक्षा से अभी बहुत थोड़ा। बहुत है दुःख। पूर्ण आनन्द की अपेक्षा से दुःख बहुत है। तीन कषाय का है न? परन्तु वह ... अनन्तानुबन्धी मिथ्या ... वह दुःख है। बाद का दुःख बहुत अल्प है। आहाहा! कठिन बात है। आसक्ति का दुःख है वह वास्तव में नहीं, वह खोटा है। और रुचि का दुःख है वह वास्तव में सुख (लगता) है। वह वास्तव में अनन्त दुःख है।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को दुःख नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्प होता है। यह कहा न आसक्ति का दुःख है। आसक्ति का दुःख है, परन्तु उसमें सुखबुद्धि नहीं। आहाहा! कहो, चेतनजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त कषाय का अनुबन्धी, यह मिथ्यात्व के साथ की अनन्त कषाय है, वह जहाँ गयी है, पूरे संसार में से सुखबुद्धि उड़ गयी है। शुभ विकल्प से लेकर पूरी दुनिया, उसके प्रति सुख में प्रेमबुद्धि जो थी, सुख की प्रेमबुद्धि जो थी, वह उड़ गयी है। आहाहा! और भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का प्रेम अन्दर जम गया है। उसके समक्ष दुःख है अभी आसक्ति का, परन्तु बहुत थोड़ा। ऐसा कहा नहीं? देखो न! सम्यग्दृष्टि को रस थोड़ा पड़ता है, ... आता है या नहीं? उसकी अपेक्षा से कहा है। परन्तु प्रकृति यह स्थिति थोड़ी, थोड़ा रस। यह इतना रस अनन्तानुबन्धी गया, तीन का पड़े तो भी थोड़ा रस और थोड़ी स्थिति है। यह मूल गाँठ गल गयी है, इतनी बात होती है। आहाहा! और अज्ञानी को भले पंच महाव्रत के भाव हों परन्तु उसे आत्मा आनन्द है, उसका तो आश्रय है ही नहीं। इसलिए वहाँ ही उसे सब सुखबुद्धि पड़ी है। आहाहा!

भगवान आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त किसी भी चीज़ के ऊपर अन्दर की अधिकता, ठीक, विशेषता,... विस्मय, कुतूहल हो जाये, आहाहा! तो कहते हैं कि वह तो मिथ्याबुद्धि है। वास्तव में तो उसे भगवान आत्मा में आनन्द का उसे अभाव है। उसे आत्मा का आनन्द है, उसकी दृष्टि ही नहीं। इसमें आनन्द है, वह मानता है। आहाहा! उसका अर्थ ऐसा नहीं कि वे सब विषय बाहर का छोड़कर बाबा हो जाये, इसलिए सुखबुद्धि गयी है। और हजारों स्त्रियों के वृन्द में-भोग में पड़ा हो, इसलिए उसे

सुखबुद्धि रही है, ऐसा नहीं है। आहाहा! धर्मी को विषय का राग आवे, परन्तु यह समाधान नहीं होता, छूटता नहीं। इतनी पुरुषार्थ की भूमिका में जागृति नहीं। आहाहा! इसलिए उसे दुःख लगने पर भी दुःख की भावदशा होती है, परन्तु इस अनन्त संसार का कारण वह नहीं है। अल्प संसार का... शुभभाव। अशुभभाव तो संसार है ही। आहाहा! शुभभाव भी संसार है। क्योंकि शुभभाव की गति जाती है ऐसे और शुद्ध की गति जाती है ऐसे। ऐसी जगत की ओर जाती है। आहाहा! यह छठवें गुणस्थान का शुभभाव भी जगत की ओर झुकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : कोई भी राग हो जगत की ओर झुकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपराध है। शुभोपयोग अपराध है। भले होता है। सम्यग्दृष्टि को होता है, मुनि को होता है, परन्तु है वह अपराध। तथापि जिनवचन यहाँ तो कहना है न। अर्थात् कि जिनवचन ने कहा हुआ जिनभाव। वाणी तो वाणी है। जिनवचन में है। यह अपने लिया न, उभयनय, विरोधध्वंसनार्थ... जिनवचन रमता है। समयसार (कलश ४) वह यह। जिनवचन में वीतरागता बतायी है। और वह वीतरागता स्वद्रव्य के आश्रय से होती है। ऐसी वीतराग की वाणी की पद्धति ही यह है। आहाहा! तीनों काल में तीर्थंकर और वीतरागी परमात्मा अनन्त जिनेन्द्र हुए, अभी वर्तते है, अनन्त होंगे, उन सबकी वाणी में वीतरागता का प्रगटपना करना, वीतरागता को पोषण करना और वीतरागता प्रगट करना, वीतरागस्वभाव का आश्रय लेना, ऐसा उसका उपदेश होता है। समझ में आया?

कैसी औषधि हैं? कि इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है, उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाले हैं। आहाहा! करोड़ों मनुष्य जिनकी प्रशंसा करें, परन्तु जिसमें उसे सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे करोड़ों अप्सराओं का सम्बन्ध हो विषय में, तथापि वहाँ आगे सुखपना है उसमें, वह बुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! ऐसी बात है। संवेग आता है न! तो इस ओर में वेग है। यहाँ से निर्वेग है। आता है न यह? वह सब बातें ऐसी की हैं। आहाहा! जहाँ जिसे सुखबुद्धि आत्मा में हुई है, उसका वेग सुख को बढ़ाने का होता है। और इस ओर से निर्वेग होता है। राग से अभावस्वभावरूप होना, ऐसा होता है उसका। आहाहा! समझ में आया?

वह छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द के भोग में दिखाई दे, तथापि वह सुखबुद्धि उसे नहीं है। आहाहा! अब यह कौन तुलना करे। अज्ञान का फल... अनन्त फल है। यथार्थ ज्ञान हो, वह जाने। और श्रीमद् में आया है न, देखो न! 'जो नव वाड विशुद्ध से...' आता है न? 'पावे ... सुखदाय... भव उसका... लव रहे तत्त्व वचन।' परन्तु यह बात इस प्रकार से होती है। ब्रह्मचर्य ब्रह्म अर्थात् आनन्द, उसमें जिसे चरना, उसका जिसे रस लगा है, उसे तो भव भी अल्प रहे हैं। यह बाद में शब्द पड़ा है न? 'जो नव वाड विशुद्ध से पाले शील सुखदाय।' अकेला नहीं। उसमें बुद्धि—सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? आजीवन स्त्री सेवन न की हो, तथापि सुखबुद्धि हो अन्दर। छियानवें हजार सेवन करता हो, तथापि सुखबुद्धि न हो। यह तोल कौन करे? आहाहा! ऊपर कहा था न? श्रेयाश्रेय का जिसे ज्ञान हुआ, समझ में आया? उसकी प्रकृति ही बदल गयी। प्रकृति अर्थात् सम्यक् स्वभाव ही दूसरा हो गया। ओहोहो! समझ में आया? उसमें मिथ्या स्वभाव सुखबुद्धि थी, ऐसा जो मिथ्यास्वभाव, वह छूट गया। आहाहा! दर्शनपाहुड़। खाने-पीने की क्रिया में भी जिसे कुछ अन्दर रस लगा कि इसमें ठीक है, वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : वह मानता है ... सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ठीक है, ऐसा माना है न अन्दर श्रद्धा में? रस वहाँ लगा है उसे। भगवान ठीक है, वह पड़ा रहा। आहाहा! आनन्द का नाथ अकेला सुख का सागर प्रभु, जिसकी दृष्टि में आया नहीं, इसलिए उसे पर में कुछ ठीक है—ऐसा लगता है। 'धार तलवारनी सोह्यली दोह्यली चौदमा जिनतणी चरण सेवा।' यह सेवा भगवान आत्मा की वह बात है। आहाहा! वीतराग के वचन अर्थात् कि वीतराग के वचन में कहा हुआ भाव जिसे परिणमता है, उसे विषय में से सुखबुद्धि उड़ जाती है। उसे रेच लगा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, हो गया निरोगी। निर्बलता रही थोड़ी। परन्तु हो गया निरोगी।

मुमुक्षु : स्वस्थ हुआ परन्तु निर्बलता रह गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वस्थ हुआ परन्तु निर्बलता रह गयी। और वह राग की रुचिवाला है, वह स्वस्थ ही हुआ नहीं। रोगी प्राणी भ्रान्ति में रोग (में) पड़ा है। 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं।' आहाहा! उसे भगवान आनन्द में उसे प्रेम नहीं। उसे उस राग में स्त्री, कुटुम्ब, इज्जत में प्रेम है। वह उसकी भ्रान्ति है। आहाहा! ऐसा मार्ग, बापू! वीतराग का। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने बहुत स्पष्ट-स्पष्ट कर डाला है। उसका आँगन साफ हुआ। आँगन में भगवान को पधराया, वह आँगन उसका साफ हुआ। आहाहा! ओहोहो!

ब्रह्मदत्त को सात सौ वर्ष का पहले से उसे वह चक्रवर्ती का था न। तब ... पूछा था कि ३० वर्ष की ... यह पोपटभाई ने पूछा था न इनके साला का। कहा, यह सब सामग्री कितने वर्ष रहे? ९९ के वर्ष में तो कुछ नहीं था। ... दो हजार दिये थे। यह ३० वर्ष का खेल। गजब बात है। आहाहा! पूर्व की कोई रस की स्थिति ... उसमें लिखा है। शून्य में से सर्जन किया। है? वह फोटो पड़ा है ... फोटो है न ... पाँच सौ दिये होंगे। शून्य में से सर्जन हुआ? क्या धूल सर्जन हुआ। यह ३० वर्ष में बड़ा बादशाह हो गया। आहाहा! यह शरीर धबो नमः आहाहा! कौन माने? ऐसी स्थिति में वह दुःखी। आहाहा! तृष्णा... तृष्णा... है। ... नहीं आयी थी? ...तृष्णा.... आया था या नहीं? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में दस प्रकार का धर्म। ... मुक्ति, उसमें आया था। तृष्णा और लोभ की व्याख्या। मिली हुई में आसक्ति और नहीं मिली हुई में लोभ। आहाहा! मुक्ति। मुक्ति। दुर्लभता।

जिसे वर्तमान पर में से सुखबुद्धि उड़ गयी, उसे तो आत्मा में सुखबुद्धि को बढ़ाने का भाव होता है। और अज्ञानी को अपना शुद्धस्वरूप है, यह बात बैठी नहीं। इसलिए उसने ऐसा माना है, उसे बढ़ाने का भाव होता है। वह जो बढ़ा मैं। यहाँ कहते हैं कि आत्मा की शान्ति में बढ़ा, वह बढ़ा मैं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! यह तुम्हारे ... हैं। वे तो बेचारे ... आवे। आहाहा! एक बार कहते थे भाई। ... इसलिए और ... पोपटभाई दोनों को... इतने बेचारे नरम। आहाहा! अरेरे! ऐसा काल चला जाता है, बापू! उसमें जिसे कुछ बाहर के अपने पदार्थ में जैसे सुखबुद्धि की विशेषता लगे, वैसे जगत से प्राप्त विशेष चीज़ें, उसमें उसकी विशेषता, वह आत्मा को भी कुछ ठीक है लगे, वह सब मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

जैसे अपने को भी प्राप्त चीजों में, बाहर की चीजों में अधिकता, विशेषता, विस्मयता,... ठीक (पना) ऐसा लगे, वैसे दूसरे प्राणी को भी बाहर की सामग्री में, साधन ऐसे चक्रवर्ती के राज जैसे हों, उसमें जिसे ठीक लगे, विशेष लगे, वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? जैसा वह अपने को मानता है, वैसा पर के लिये भी ऐसा मानता है। धर्मी अपने लिये आत्मा में सुख है, उस सुख से मैं सुखी हूँ, ऐसा माननेवाले दूसरे प्राणी को भी बाहर के साधन हैं, इसलिए वे सुखी हैं, ऐसा वह मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह वीतराग की वाणी की स्पष्टता होती है। आहाहा! वीतराग की वाणी में तो वीतरागता प्रगट होने के पोषण की बात होती है। राग व्यवहार हो, उसे बतलाने का हो, परन्तु उसका पोषण नहीं होता। आहाहा! व्यवहार होता अवश्य है, परन्तु व्यवहार के पोषण की बात नहीं होती, उसमें ज्ञान की बात होती है। तो ज्ञान तो जानने की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वृद्धि की (नहीं), परन्तु ठीक की नहीं। वृद्धि बाद में। परन्तु यह व्यवहार ठीक है, लाभदायक है, निश्चय को कुछ मदद करता है, ऐसा वाणी में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? रेल की पटरी जरा सी बदले न, वहाँ पूरी दिशा बदल जाती है। इस रेल के मार्ग में... नजदीक हो ... पटरी हो पटरी। पटरी हो। वह पटरी ऐसे जोड़ दे तो ऐसा चला जाये, ऐसे जोड़ दे तो ऐसा चला जाये। इस प्रकार रेल जाये और एक ऐसे जाये। दरवाजा .. पास में है। हमारे हमेशा वहाँ जाने का हो उस ओर दिशा को। तो पटरी पतली हो। मोटी हो और उसमें पतली पटरी हो, उसके साथ जोड़ दे तो उस ओर चली जाये। आहाहा! इसी प्रकार जिसे शुभराग और बाह्य सामग्री में सुखबुद्धि है, वह दूसरी पटरी पर चढ़ गया है। वह संसार की पटरी में, निगाद की पटरी में चढ़ गया है। कहो, पोपटभाई! और जिसे आत्मा में सुखबुद्धि है, उसे पर में से सुखबुद्धि उड़ गयी है, वह मोक्ष की पटरी में चढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया?

पुनश्च कैसे हैं? अमृतभूत अर्थात् अमृत समान हैं... आहाहा! वीतराग की वाणी अमृतस्वरूप। अर्थात् कि आत्मा अमृतस्वरूप है, उसे प्रगटानेवाली इस वाणी में

यह होता है। अमृतस्वरूप का आश्रय ले भगवान! तो तुझे पर्याय में अमृत आयेगा और उस अमृत का फल अमृत मोक्ष को भी अमृत कहते हैं। मोक्ष को भी अमृत कहते हैं आत्मा। ऐसा जिसे अमृत प्रगट हुआ। आहाहा! वीतराग की वाणी आत्मा के आनन्द में रुचि कराती है और अच्छे चक्रवर्ती के सुख में रुचि छुड़ाती है। आहाहा! यह त्याग और ग्रहण है। बाहर का त्याग-ग्रहण नहीं। समझ में आया? पाठ है न? '**अमिदभूदं**' आहाहा! राग में प्रेम है, पर में प्रेम है, वह जहरभूत प्रकृति है। आहाहा! वह वीतराग की वाणी उसे बतावे सही, परन्तु उसे पोषे नहीं। वीतराग की वाणी तो अमृतस्वरूप भगवान आत्मा की ओर का आश्रय लिवाकर पर्याय में अमृत को प्रगट करावे, वह वीतराग की वाणी है। आहाहा! ऐसी कठिन बात!

पूरी जिन्दगी शरीर से ब्रह्मचर्य पालता हो, परन्तु जिसे अभी उसमें सुखबुद्धि खड़ी हो पर में, वह जरा भी पालता नहीं। आहाहा! और करोड़ों स्त्रियों से विषय लेता हो, तथापि अन्दर सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! अब यह अन्तर कौन जाने? समझ में आया? कहो, छोटाभाई! आहाहा! पर में सुखबुद्धि, वह जगत को छोटी भूल लगती है। परन्तु कसाईखाना लगावे और भोग ले तो बड़ी भूल दिखती है। परन्तु ऐसा नहीं है। आहाहा! अनन्त शान्ति और आनन्द का सागर और अनन्त पवित्र धाम, अनन्त... अनन्त गुणों का पवित्रपने का धाम महा भगवान का जो अनादर करके ऐसे अनन्त गुण का ज्ञान का आनन्द, शान्ति का अर्थात् चारित्र का आनन्द, श्रद्धा का आनन्द, ... आनन्द, अनन्त गुण का आनन्द, अनन्त आनन्द का अनादर करके पर में सुखबुद्धि करता है, महापापी आत्मा का खून कर डालता है। आत्मा हनो भवन्ति। आता है। बन्ध अधिकार नहीं? मैं दूसरे को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, दूसरे को सुखी कर सकता हूँ, पर से मैं सुखी होता है, आत्मा हनो भवंति। आहाहा! लो, यह वीतराग की वाणी।

अमृतभूत अर्थात् अमृत समान हैं... आहाहा! परन्तु विषय के सुख जहर हैं। आहाहा! उस जहर की बुद्धि है, उसे वीतराग की वाणी की श्रद्धा नहीं। वीतराग ने कहा हुआ आत्मा और उसकी परिणति उसका उसे प्रेम नहीं। आहाहा! वह कोई वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं। यह तो भाव के समाधान से पार पड़े, ऐसा है। '**अमिदभूदं**' '**अमिदभूदं**' का अर्थ समान किया है।

मुमुक्षु : अमृतभूत।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृतभूत का अर्थ अमृत समान, ऐसा। अमृत जैसा।

और इसीलिए जरामरणरूप रोग को हरनेवाले हैं... वीतराग की वाणी... आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द का प्रेम हुआ और विषय सुख में जिसे अन्दर से प्रेम उड़ गया, उसे वीतराग की वाणी क्या कहती है, यह बात बैठ गयी। उसे वीतराग का मार्ग प्रगट हुआ। वीतरागी ऐसा जो आत्मा, उसकी शरण से—आश्रय से पर्याय प्रगट हुई, उसे मोक्ष का मार्ग—वीतरागी मार्ग प्रगट हुआ। उसे जरा... है? जरा—वृद्धापन। जवानी को खा जानेवाली जरा। जवानी के कीड़े पड़े जवानी में जरा। आहाहा! हष्ट-पुष्ट हो २५-३० वर्ष का युवक। वह वृद्धावस्था, उस जवानी में कीड़े पड़े। कमर ऐसे हो गयी, मुख ऐसा हो गया। उस जरा के नाश का करनेवाला यह अमृतभूत वीतराग का मार्ग है अर्थात् कि आत्मा का मार्ग है। उसे जरा का नाश करनेवाला है। जरा, जवानी का नाश करता, वह स्वयं ऐसा (आत्मा का) शरण लेता है, वह जरा का नाश करता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

देखो, तीर्थंकर पूर्व में आराधक होकर आये हैं, उनका शरीर में चाहे जितना करोड़ पूर्व का हो, परन्तु उनके शरीर में वृद्धापन नहीं दिखाई देता। आहाहा! उन्हें इस भव में शरीर में वृद्धापन दिखाई नहीं देता। बाद में तो वृद्धावस्था होती ही नहीं। आराधन करते हैं न आत्मा का! श्रीमद् लिखते हैं न एक जगह कि यदि यह भव पूर्व में नहीं मिला होता तो अब ऐसा मिलनेवाला नहीं है। अब दूसरा ही मिलेगा। दूसरा प्रकार। उसमें रोग और यह और यह। क्या कहलाये वह?

मुमुक्षु : संग्रहणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : संग्रहणी, वह संग्रहणी। अब नहीं मिले ऐसा (शरीर), ऐसा कहते हैं। दूसरा मिलेगा। दूसरी जाति का होगा। आहाहा!

जरा मरणरूप रोग... देखो! इस उदय को रोग कहा। जरारूपी रोग, मरणरूपी रोग। ओहोहो! अभी तो देखो न, २५-३०-३० वर्ष के लोग वह बहुत तेल चुपड़ा होता है न तो सफेद बाल हो गये होते हैं। तेल, तेल चुपड़ते हैं न कुछ?

मुमुक्षु : ब्राह्मी तेल।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्राह्मी तेल। देखो! ३०-३० वर्ष के को सफेद अकेले। टोपी ढाँकी हो इसलिए फिर। यह सब शौकीन कितनों को ७० वर्ष तक काल बाल हों। देखो, अपने भाई नहीं नेमिदास। ७०-८० वर्ष के हैं, परन्तु कितने हैं उन्हें? अधिक होंगे। ८८। ८८ वर्ष है नेमिदास को। काले बाल हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : है, खबर है न। एक दूसरा था कोई लींबड़ीवाला। ... लींबड़ीवाला था ... गये हैं न, वह लींबड़ीवाला था। वह वृद्ध अवस्था ८०-८२-८५। दिखाई दे ३५ वर्ष जैसा। बहुत कालेवाल। पोरबन्दर का था। (संवत्) १९८२ में गये, तब वे आये थे राणावाव... राणावाव है न उपाश्रय। ... था। आहाहा! वह सब पुण्य प्रकृति के फल ऐसे होते हैं, वे पाप प्रकृति के फल ऐसे होते हैं, उन सबकी रुचि जिसे—ज्ञानी को है ही नहीं। आहाहा! वह जरामरण रोग का हरनेवाली है। कौन? वीतराग की वाणी।

तथा सर्व दुःखों का क्षय करनेवाला है। 'खयकरणं सव्वदुक्खाणं' अमृतभूत अर्थात् अमृत की प्राप्ति करावे और सर्व दुःख का व्यय करावे, अमृत का उत्पाद करावे, ध्रुव तो ध्रुव है। समझ में आया? आहाहा! मूल इसे अभ्यास नहीं होता, इसलिए यह बात क्या है अन्दर, और कैसे उसकी प्राप्ति हो, इसकी खबर नहीं होती। और बाहर में भटका भटक करता है। यहाँ से होगा और यहाँ से होगा। आहाहा! सम्मेदशिखर जायें वहाँ से मिलेगा, शत्रुंजय से मिलेगा। गिरनार जायें। वहाँ कहाँ ... था? आहाहा! कल कोई आया था दिल्ली से। मोटर यहाँ निकली थी मोटर। आये थे बेचारे। पहिचाने तो सही न चरण छूने। महाराज! इस गिरनार में कितनी बार यात्रा की ... तीन बार तो जाना पड़े, ऐसा बोले थे। ऐसा बोले थे। तीन बार यात्रा की। भाई! अब तीन क्या एक ही बार। तीन बार अर्थात् कुछ तीन बार करे तो यात्रा करे। एक बार नीचे उतरे, एक बार मध्य में, एक बार... वहाँ। पाँचवीं-छठवीं (टोंक) में अभी तो बाबा बैठे हैं। कोई था बेचारा। ... लोग। पहिचानते थे। आये थे। ... तीन बार यात्रा करने का कहे? मैं पहले समझा नहीं... .....तो नीचे। यह तो सब देखा है न हमने।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नीचे नहीं। बीच में मन्दिर है और ऊपर... है। अरे रे! सुख सब यहाँ है अन्दर। गिरनार तो भगवान आत्मा है। आहाहा! उसके प्रेम के पक्ष में चढ़ जा, तेरी यात्रा सफल है। आहाहा! क्योंकि ऐसी बाहर की यात्राएँ तो अनन्त बार की हैं। उसमें कुछ भला नहीं हुआ। पुण्य बाँधे उसमें क्या? आहाहा! वीतराग के वचन सर्व दुःखों का क्षय करनेवाले हैं। आहाहा!

भावार्थ :— इस संसार में प्राणी विषयसुखों का सेवन करते हैं, जिससे कर्म बाँधते हैं... लो! मिथ्यात्व। **उससे जन्म-जरा-मरणरूप रोगों से पीड़ित होते हैं;...** इससे उसे जन्म, जरा, मरण ... १९ वें अध्याय में आता है। ... ओहो दुःखो, संसारो ... संति... अरे रे! यह जन्म-जरा-मरण के दुःख से पीड़ित पूरा संसार दुःखी है। ऐसे दुःख से छूटने का मार्ग प्रभु का यह है। **वहाँ जिनवचनरूप औषधि ऐसी हे जो विषयसुखों से अरुचि उत्पन्न करके...** वह कहते हैं कि स्त्री-पुत्र के ऊपर ऐसी अरुचि करो कि उनमें से प्रेम उड़ जाये। ऐई! चेतनजी! यह दीक्षा लिवाने के लिये।

मुमुक्षु : खाराश हो जानी चाहिए। उसके प्रति खाराश...

पूज्य गुरुदेवश्री : खाराश हो जानी चाहिए। धूल, वह तो द्वेष है। आहाहा! वे स्त्री-पुत्र कहाँ तुझे नुकसान करते हैं? वह तो परवस्तु है। विषयसुख की अरुचि कर। यह बात है। विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-२४ उपलब्ध नहीं है।

ज्येष्ठ कृष्ण १५, मंगलवार, दिनांक २३-०६-१९७०
गाथा-१८, १९, २० प्रवचन-१५

अष्टपाहुड़। पहले दर्शनपाहुड़ की १८वीं गाथा। १७ में ऐसा कहा, वीतराग के वचन विषय का विरेचन कराते हैं। आत्मा का विषय शुद्ध चैतन्य की दृष्टि कराकर, पर के विषय में सुखबुद्धि है, उसे वीतराग की वाणी टालती है। समझ में आया? विषय में, पाँचों इन्द्रिय के विषय में परलक्ष्यी जितना भाव होता है, वह सब दु:खरूप है। विषय के भोग का भाव, शब्द सुनने का भाव, रूप का, गन्ध का, रस का और स्पर्श का (भाव), वह सब विकारी भाव है। वे विषय हैं, वे दु:खरूप हैं। वीतराग की वाणी उनका रेच कराती है। विषय है, उनकी अरुचि कराकर वीतरागस्वरूप आत्मा आनन्द है, उसकी रुचि कराकर स्थिरता करने को कहती है। देवचन्दजी! समझ में आया? पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर लक्ष्य जाता है, वह सब शुभ और अशुभभाव है। आहाहा! वीतराग की वाणी सुनने में लक्ष्य जाता है, वह भी एक शुभभाव का विषय है।

मुमुक्षु : सुनना या नहीं सुनना?

पूज्य गुरुदेवश्री : बात यह है। वस्तु का स्वरूप (यह है)। पाँचों ही इन्द्रिय के (विषय) शुभ या अशुभ, उस ओर के झुकाववाला भाव सब राग है।

मुमुक्षु : स्वयंभूरमण समुद्र में मेंढ़क है, उसे कहाँ विषय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : देवता कहाँ? मेंढ़क। है न, हजार योजन का बड़ा मच्छ है।

मुमुक्षु : वह कहाँ सुनता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर आत्मा में है न! भगवान आनन्द का सागर है। चैतन्यमूर्ति नारायणस्वरूप ही-परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा का संग करना और बाह्य का संग छोड़ना, ऐसा वीतराग की वाणी कहती है। समझ में आया? यह १७वीं गाथा कही। अब १८वीं।

आगे, जिनवचन में दर्शन का लिंग अर्थात् वेश कितने प्रकार का कहा है, सो कहते हैं,... परमात्मा वीतराग का स्वभाव जो आत्मा का है, वैसा ही वीतरागभाव प्रगट

हुआ है। वे परमात्मा जैन में लिंग का-वेश का रूप कैसा होता है, उसका वर्णन इस १८वीं गाथा में है।

एगं जिणस्स रूवं बिदियं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि ॥१८॥

अर्थ :— दर्शन में एक तो जिनका स्वरूप है;... जैसे वीतराग परमात्मा अन्तर में वीतरागता प्रगट करके बाह्यलिंग नग्नदशा थी। केवली परमात्मा की दिगम्बर मुद्रा थी, वह 'जिन' का रूप है। यह एक वेश है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : उनने किया, नहीं किया, इसका प्रश्न कहाँ है? उनने कहा और जो किया, तद्नुसार उनने आचरण किया। कहे अनुसार न करने का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : भगवान ने...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं होता। जैसा किया है, वैसा कहा है। वीतराग परमात्मा वह जिनलिंग नग्न दिगम्बर और अन्तर में सर्वज्ञ वीतरागदशा, यह 'जिन' का उत्कृष्ट वास्तविक वेश है। समझ में आया?

वहाँ जैसा लिंग जिनदेव ने धारण किया वही लिंग है... देखो! वीतराग परमात्मा जो हुए, वे अन्तर में द्रव्य का आश्रय करके, स्थिर होकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए, तब उनकी दशा बाह्य में अत्यन्त नग्न-दिगम्बरदशा थी। दिगम्बरदशा के बिना अन्तर में केवलज्ञान नहीं होता। दिगम्बरदशा से नहीं होता परन्तु दिगम्बरदशा न हो और हो जाए, ऐसा भी नहीं होता। आहाहा! भारी सूक्ष्म काम। यहाँ तो सब उड़ाया, जितना जिनलिंग वीतराग का है, उसे धारण करे, वह जिनलिंग कहलाता है।

तथा दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का लिंग है... देखो! मुनि का वह लिंग है। मुनि को भी नग्नदशा का लिंग है। जहाँ स्वरूप की सावधानी में गया है, उसे बाह्य में नग्नदशा के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं होता। उससे यह विरुद्ध है... समझ में आया? यह जिनदेव वीतरागदेव हैं। इन्होंने नग्न-दिगम्बरदशा धारण की थी, उसे वीतरागमार्ग में

लिंग कहा जाता है। मुनि का लिंग भी ऐसा ही होता है। अन्तर्भानसहित, हों! अकेला नग्नपना नहीं। अभी आगे कहेंगे। समझ में आया?

तथा दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का लिंग है... दसवीं, ग्यारहवीं प्रतिमा को उत्कृष्ट (श्रावक) कहते हैं। वास्तविक ग्यारहवीं प्रतिमा-क्षुल्लक। वह नग्न-दिगम्बर से निचले दर्जेवाले। ग्यारह प्रतिमाधारी पाँचवें गुणस्थानवाले, एक लंगोटी होती है या एक साधारण वस्त्र का टुकड़ा होता है।

मुमुक्षु : ओढ़ने में काम नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पैर नीचे ढँके तो सिर पर नहीं ढँके और सिर ढँके तो नीचे पैर नहीं ढँके, इतना टुकड़ा होता है। ऐसा उत्कृष्ट श्रावक का दूसरे नम्बर का लिंग जैनदर्शन में अनादि से केवलज्ञानी परमात्मा ने यह देखा है। समझ में आया?

और तीसरा 'अवरस्थित' अर्थात् जघन्यपद में स्थित ऐसी आर्यिकाओं का लिंग है... आर्यिका एक कपड़ा रखती है। इसके अतिरिक्त दूसरा कपड़ा नहीं होता। वह आर्यिका। सच्ची आर्यिका, हों! अन्तर अनुभव, दृष्टि हुई है और अन्तर में आनन्द की लहरें वर्तती हैं। पंचम गुणस्थान के योग्य अतीन्द्रिय आनन्द की भूमिका। जिसे चौथे गुणस्थानवाले सर्वार्थसिद्धि के देव से भी शान्ति का अंश बढ़ गया है। ऐसे भावलिंग में उसका बाह्यलिंग अकेला एक वस्त्र रखे, एक ही वस्त्र (रखे), ऐसा उनका लिंग होता है। ये तीन लिंग जैनदर्शन वीतरागमार्ग, सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग में तीन लिंग को लिंगरूप से गिनने में आया है। **तथा चौथा लिंग दर्शन में है नहीं।** चौथा भेद। वेशरूप से कोई चौथा वेश नहीं है। कहो समझ में आया?

भावार्थ :— जिनमत में तीनों लिंग अर्थात् वेश कहते हैं। एक तो वह है जो यथाजातरूप जिनदेव ने धारण किया... वह है। जैसा जन्मा, जैसा माता ने जन्म दिया, वैसा नग्नरूप। वह तो छूट नहीं सकता, इसलिए वह तो रहता है। बाकी अन्दर में से तो देह के प्रति भी जहाँ ममता नहीं है, ऐसा भावलिंग अन्दर में आत्मा के आनन्द का जिसे प्रगट हुआ है। समझ में आया? उसे यह तीन भेष होते हैं। एक यथार्थ जिनदेव, मुनि का।

दूसरा ग्यारहवीं प्रतिमा के धारी उत्कृष्ट श्रावक का है... देखो! अकेली ग्यारहवीं ली है। **और तीसरा स्त्री आर्यिका का है। इसके सिवा चौथा अन्य प्रकार का वेश जिनमत में नहीं है। जो मानते हैं, वे मूलसंघ से बाहर हैं।** मूलसंघ जो अनादि का वीतरागपरमात्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान (वर्तता है) और वीतराग केवलज्ञानी (हुए), ऐसे परमात्मा ने जो यह मार्ग कहा, वह मूल संघ की स्थिति है। उससे दूसरे प्रकार माने, वे सब भ्रष्ट हैं। समझ में आया? यह वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना माने, वस्त्र-पात्र रखकर साधुपना माने, वे सब मूल / अनादि सनातन वीतरागमार्ग से भ्रष्ट हुए हैं। मार्ग यह है। सम्प्रदाय के आग्रही को जरा कठिन पड़े ऐसा है। देवीचन्दजी!

अनादि वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्होंने राग के एक कण का भी नाश करके वीतरागता प्रगट की और अल्पज्ञता का नाश करके सर्वज्ञता प्राप्त हुई, ऐसे परमेश्वर ने इस मूल संघ की जो स्थिति थी, उसमें ऐसे तीन लिंग थे। इसके अतिरिक्त मूल संघ से भ्रष्ट हुए, वे दूसरे लिंग में मुनिपना मानते हैं, दूसरे वस्त्र आदि रखकर आर्यिका, साध्वीपना मानते हैं, वे सब अनादि सनातन सत्यमार्ग से भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि हैं। देवीचन्दजी! ऐसा मार्ग है। मार्ग तो ऐसा है। लोगों को रुचे, न रुचे। अनादि से दूसरी बात सुनी होती है, खबर भी नहीं होती कि सत्य क्या है और दूसरे वाड़ा में जन्मे हों और वहीं के वहीं उनके भेष की बातें सुनी हों, इसलिए यह साधु है और साध्वी है, (ऐसा मानते हैं)। कहते हैं कि वे सब मूलमार्ग अनादि का सनातन सत्य नारायण परमात्मा को प्राप्त होने की विधि जो वीतरागमार्ग में है, उस वीतरागमार्ग में तीन लिंग ही मान्य है। चौथा लिंग नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसी बात तो अब स्पष्ट है, भाई! सेठी! आहाहा!

वह महाराष्ट्र में वेश होता है। वह वस्त्र ऐसा हो, उन्हें सब स्वामी कहे। गृहस्थों को। चाहे जो हो। वह... स्वामी, ऐसा कहे। अपने मोहनभाई ने नहीं कहा था? एक बार मोटर में जा रहे थे और रात्रि का भाग था और मार्ग पूछना था। था तो गृहस्थ था। लोटे जैसा वस्त्र ठेठ तक। लोटे जैसा। स्वामी! स्वामी कहा न? स्वामी के साथ दूसरा शब्द था। ऐ स्वामी! यह रास्ता कहाँ आया है? वहाँ तो स्वामी कहने की पद्धति ही है। गृहस्थ हो, राजा हो, भिखारी हो, समझे न? कसाई हो, स्वामी ही कहना पड़ता है। यह

तो वहाँ की रीति है, कहते हैं। मोहनभाई ने कहा था। यह मोहनभाई के साथ थे न? सवेरे... निकले... वहाँ से कुछ मार्ग फटता था तो ज्ञात नहीं होता था, इसलिए उससे पूछा। चाहे जो हो। स्वामी! यह मार्ग कहाँ आया? वह कहीं वेश नहीं गिना जाता। ऐसा मुझे यहाँ कहना है। समझ में आया? वेश तो इस प्रकार के होते हैं। इस वीतरागमार्ग में पाँचवें गुणस्थानवाली आर्यिका और श्रावक का वेश ऐसा होता है। एक लंगोटी और थोड़ा (वस्त्र का) टुकड़ा और श्राविका / आर्यिका को एक कपड़ा (होता है)। पहनने का, ओढ़ने का वह का वह कपड़ा। इतनी ममता टल गयी है कि उसे संयोग में इतनी ही चीज़ होती है और मुनि हो तथा आत्मज्ञानसहित जो मुनि हुए हैं, जिन्हें अन्तर भावलिंग, अन्तर्दृष्टि, आत्मा का अनुभव (हुआ है), जिन्होंने सच्चिदानन्द प्रभु का आनन्द का रस प्रगट हुआ है... आहाहा! और उस आनन्द के उपरान्त स्थिरता की आनन्द की दशा उग्र हो गयी है, उनका वेश तो नग्न ही होता है। जिन का रूप, वह उनका रूप होता है। इसके अतिरिक्त सनातन सर्वज्ञ के पन्थ से दूसरे वेश की दशा गिनने में नहीं आयी है।

मुमुक्षु : थोड़ी तो छूट रखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूट क्या रखे? परन्तु जैसा हो, उसमें छूट किसकी रखी? थोड़ा टुकड़ा कपड़ा रखे और मुनिपना माने, वह तो आगे कह गये हैं, (कि) निगोद में जाएगा। उनके प्रमुख होकर घूमेंगे, उनकी त्रस की स्थिति पूरी होने को आयी है।

मुमुक्षु : साहेब!....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें लिखा है, ऐसा कहते हैं या? ऐई..! सेठिया आया था या नहीं अन्दर? प्रमुख है। साधारण जीव हो तो बेचारे फिर स्वर्ग आदि में जाए, पश्चात् परम्परा से निगोद में जाएँगे।

मुमुक्षु : वाड़ा वहीं का वहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : वाड़ा तो वहाँ ही रहेगा, दूसरा जाएगा कहाँ? तत्त्व के विराधक, सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव का मार्ग अनादि सनातन, उसके जो विराधक हैं, उनकी स्थिति तो अमुक भव में तो उन्हें निगोद की दशा ही है। चाहे तो आचार्य नाम धरावे,

चाहे तो उपाध्याय नाम धरावे। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! भगवान तीर्थंकरदेव ने ऐसा कहा है। लो, १८वीं गाथा (पूरी हुई)। **इसके सिवा चौथा अन्य प्रकार का वेश जिनमत में नहीं है। जो मानते हैं, वे मूल-संघ से बाहर हैं।** देखो ! मूलसंघ जो अनादि का है, उससे सब बाह्य हैं।

आगे कहते हैं कि ऐसा बाह्यलिंग हो, उसके अन्तरंग श्रद्धान भी ऐसा होता है और वह सम्यग्दृष्टि है... ऐसा बाह्यलिंग हो, उसे अन्तरंग श्रद्धा ऐसी होती है। यहाँ व्यवहार की श्रद्धा कहेंगे, पश्चात् (गाथा) २० में निश्चय और व्यवहार दोनों रखेंगे।

छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥१९॥

भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। केवलज्ञानी परमात्मा ने जगत में अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु यह जड़, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, आकाश (ऐसे) छह द्रव्य। ऐसे लिंगवाले को छह द्रव्य की श्रद्धा तो बराबर होती है, तो उसका बाह्यलिंग कहलाता है; नहीं तो बाह्यलिंग नहीं कहलाता।

मुमुक्षु : छह द्रव्य, पाँच कहे तो क्या बाधा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छह द्रव्य। है न पाँच ? कहे हैं न, श्वेताम्बर काल को अलग द्रव्य नहीं मानते। जीव, अजीव की पर्याय को (काल) मानते हैं परन्तु वह तो सब अन्तर है, वहाँ अब इस साधारण बात का कहाँ प्रश्न ? बड़े पूरे मूलसंघ से बाह्य ही मार्ग है। वह वीतराग का मार्ग नहीं है। जगत को जँचे, न जँचे, उसके घर रहा। सेठी ! ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज सन्तों की जो रीति थी, उस प्रकार से यह बात करते हैं। भगवान के पास गये थे। भगवान सीमन्धर परमात्मा के पास (गये थे)। वहाँ जाकर आकर ये शास्त्र रचे हैं। समझ में आया ? सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान केवलीरूप से विराजते हैं। त्रिकाल ज्ञानरूप विराजते हैं। उनके पास गये, आठ दिन रहे, सुना और फिर यहाँ आकर यह बनाया। भगवान तो ऐसा कहते थे। परमेश्वर वीतरागदेव का यह मार्ग है। सम्प्रदाय के पक्षकार को न जँचे, इससे कहीं सत्य वस्तु दूसरी हो जाए (ऐसा नहीं है)। ऐसी बात है। आहाहा ! और वह बाह्यलिंग

ऐसा होता है, उसे ऐसी श्रद्धा अन्दर होती है। अकेला बाह्यलिंग नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उसे छह द्रव्य की श्रद्धा होती है। अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त परमाणु ये रजकण, अनन्तगुणें हैं, ऐसी एक समय की पर्याय में यह सब जानने की, श्रद्धा की पर्याय ऐसी होती है। नव पदार्थ की श्रद्धा होती है। छह द्रव्य के अन्तर्भेद करके नौ कहलाते हैं। दो द्रव्य और सात पर्यायें। स्पष्टीकरण करेंगे।

पाँच अस्तिकाय,... काल के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय तत्त्व हैं। वीतराग कथित हैं। जगत में जाने हुए, देखे हुए और कहे हुए। उनकी इन्हें अन्तर में श्रद्धा हो। यहाँ तो अभी नौ तत्त्व के नाम भी न आते हों, छह द्रव्य के नाम भी न आते हों और हो गये श्रावक! धूल में भी नहीं। सब एक रहित शून्य हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : णमो अरिहन्ताणं...

पूज्य गुरुदेवश्री : णमो अरिहन्ताणं और ऐसा तो आता हो। समझ में आया? कहीं प्रतिक्रमण न आता हो, दूसरा न आता हो तो भी बैठा दे। नग्न हो, नग्न हो तो क्या? समझ में आया?

सात तत्त्व - यह जिनवचन में कहे हैं,... सात तत्त्व। स्पष्टीकरण करेंगे। **उनके स्वरूप का जो श्रद्धान करे... 'सद्दहइ ताण रूवं'** उस द्रव्य के और तत्त्व के रूप का **श्रद्धान करे, उसे सम्यग्दृष्टि जानना।** उसकी दृष्टि सच्ची है। इसके अतिरिक्त कम-ज्यादा माने, उसकी दृष्टि सच्ची नहीं है।

भावार्थ — (जाति अपेक्षा छह द्रव्यों के नाम) जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—यह तो छह द्रव्य हैं... जगत में छह वस्तुएँ हैं। **जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष और पुण्य, पाप—यह नव तत्त्व अर्थात् नव पदार्थ हैं; छह द्रव्य काल बिना पंचास्तिकाय हैं। पुण्य-पाप बिना नव पदार्थ सप्त तत्त्व हैं। इनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है...**

जीव तो चेतनास्वरूप है... भगवान आत्मा तो चेतनास्वरूप है। वह जीव। रागस्वरूप या पुण्यस्वरूप, ऐसा नहीं। आत्मा वह तो चेतना जाननेवाला-देखनेवाला

ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव है। शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप उसमें नहीं है। आहाहा! गजब किया। बात ही ऐसी लगती है लोगों को। परन्तु यह सब है न? है वह उसमें रहा, चैतन्य में कहाँ है? जीव उसे कहते हैं, आत्मा उसे कहते हैं कि जिसमें जानने और देखने का चेतनस्वभाव है। जाननेवाला-देखनेवाला भगवान ज्ञातादृष्टा से भरपूर भगवान है। उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

चेतना दर्शनज्ञानमयी है;... दृष्टा और ज्ञाता। आत्मा चेतना और चेतना, वह दृष्टा और ज्ञाता। यह अपने आ गया है। मोक्ष अधिकार (में आ गया है)। **पुद्गल...** पुद्गल है यह परमाणु, यह पुद्गल शरीर जड़ है। शरीर, दाल, भात, लड्डू, यह सब मकान, पैसा सब पुद्गल-जड़ है।

मुमुक्षु : भले रहे, उसमें क्या बाधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने इनकार किया? भले रहे। जानने की बात है। है, ऐसा उसे ज्ञान करना चाहिए। है तो उसके घर में। यहाँ कहाँ आ गये हैं?

पुद्गल स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, गुणसहित मूर्तिक है,... इसमें तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श परमाणु में-इस जड़ में है। यह जड़ शरीर, वाणी, मन, पुद्गल पैसा, दाल, भात यह सब चेतना—ज्ञानदर्शन गुणरहित हैं। इनमें ज्ञानदर्शन का गुण नहीं है। जड़ है, यह तो मिट्टी है। यह लकड़ियाँ, पैसा। क्या होगा यह पैसा, यह क्या होगा? कहते हैं, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श से भरपूर एक मूर्तिक तत्त्व जड़ है। यह दिखता है, वह मूर्त। दिखता है, वह मूर्त है और आत्मा तो अमूर्त है। आहाहा! सुना नहीं, परन्तु इसकी खबर नहीं होती इसे। पैसे मेरे, धूल मेरी, स्त्री मेरी। थे कब? परन्तु वे तो उनके हैं, वे तेरे कहाँ से हो गये? तेरा तो चेतन है। जानने-देखने से भरपूर दर्शन-ज्ञान का भण्डार भगवान है। आहाहा! पुद्गल, वह जड़ है।

उसके **उसके परमाणु और स्कन्ध दो भेद हैं;...** इस पुद्गल में छोटे में छोटा अन्तिम भाग हो, वह परमाणु कहलाता है। दो परमाणु पूरा स्कन्ध पिण्ड... पिण्ड (कहलाता है)। **स्कन्ध के भेद शब्द,...** यह जड़ का भेद है, आत्मा का नहीं। आत्मा बोलता नहीं, आत्मा तो जानने-देखनेवाला है। आहाहा! शब्द जड़ है, पुद्गल का भेद

है, वह तो जड़ की दशा है। आहाहा! **बन्ध,...** परमाणु में बन्ध पड़े न, सूक्ष्म स्कन्ध। **स्थूल,...** यह दाल, भात, सब्जी सब बाहर का। **संस्थान,...** यह सब आकार हुए न? देखो न! इस शीशपैन का यह आकार, यह आकार, ये सब आकार वह जड़ का आकार है। **भेद,...** पड़े। उसमें से पृथक् पड़े। **तम,...** अन्धकार। यह अन्धकार, वह पुद्गल जड़ है। **छाया,...** इस शरीर की छाया पड़ती है न नीचे? वह जड़ है, अजीव है, पुद्गल है, मिट्टी है। समझ में आया? **छाया, आतप,...** इस प्रकार का आतप पड़ता है न? सूर्य का। **उद्योत...** चन्द्र का। **इत्यादि अनेक प्रकार जड़-पुद्गल हैं;...** ऐसा इसे श्रद्धा में बराबर रखना चाहिए। ये मेरे नहीं परन्तु उसके इस स्वरूप वे हैं। आहाहा! समझ में आया?

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य — ये एक-एक हैं,... धर्मास्ति एक तत्त्व है। चौदह ब्रह्माण्ड में एक धर्मास्ति नाम का अरूपी तत्त्व है, एक अधर्मास्ति नाम का अरूपी तत्त्व है, यह जीव और जड़ (पुद्गल) गति करे, उसमें धर्मास्ति का निमित्त है; स्थिर हो, उसमें अधर्मास्ति का निमित्त है। यह दो। **आकाशद्रव्य...** जिसमें रहने का स्वभाव है। पुद्गल आदि उसमें रहते हैं, वह आकाश है। खाली भी होता है। वे **ये एक-एक हैं, अमूर्तिक हैं, निष्क्रिय हैं,...** उनमें परिणमन है परन्तु क्षेत्रान्तर नहीं होता, वह क्रिया यहाँ लेनी है। समझ में आया? परिणमन है। बदलते हैं, परन्तु क्षेत्रान्तर नहीं होते। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश जहाँ है वहाँ है, अनादि के ऐसे के ऐसे हैं। आहाहा! ऐसी इसे श्रद्धा (होती है)। बाह्यलिंग ऐसा हो, उसे ऐसी श्रद्धा होती है। उस श्रद्धा को अभी व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है। **कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं।** काल है, काल है, वह असंख्य है। असंख्य अणु, हों! प्रदेश तो एक है। असंख्य अणु हैं।

काल को छोड़कर पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं,... काल के अतिरिक्त पाँच द्रव्यों में बहुत प्रदेश हैं। **इसलिए अस्तिकाय पाँच हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है, इसलिए वह अस्तिकाय नहीं है;...** काल को अस्ति है परन्तु काय नहीं। बहुप्रदेश नहीं। यह तो साधारण बात आ गयी है। **इत्यादिक उनका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र की टीका से जानना।**

जीव पदार्थ एक है और अजीव पदार्थ पाँच हैं, जीव के कर्मबन्ध योग्य पुद्गलों

को आना आस्रव है,... द्रव्य से बात ली है। जीव को कर्मबन्धन के योग्य जो परिणाम हैं, वह आस्रव है और रजकण आते हैं, वह जड़ है। यहाँ जड़ से बात ली है। जीव जैसे पुण्य और पाप के भाव करता है, वह भाव है, वह आस्रव-मैल है। आहाहा! और उसके कारण नये आवरण आते हैं, उन्हें भी आस्रव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बातें हैं। करसनजीभाई! कभी सुनी नहीं। कभी धन्धे से फुरसत नहीं मिलती। नौकरी की हो, धन्धा करे और मुश्किल से जिन्दगी निकाले, उसमें धर्म क्या और आत्मा क्या, सुना भी नहीं हो, समझे तो कहाँ से? आहाहा!

कर्मों का बँधना बन्ध है,... आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर जितनी भूल करता है, उतने प्रमाण में उसे नये रजकणों का बन्ध होता है। कर्म का बन्ध होता है, उसे यहाँ बन्ध-द्रव्यबन्ध गिना है। **आस्रव का रुकना संवर है,...** पुण्य और पाप के भाव रुकें और आत्मा के अन्तर की एकाग्रता हो, उसे संवर अर्थात् धर्म की शुद्धि की बात कहा जाता है, इसका नाम धर्म है। आहाहा! पुण्य और पाप के दो भाव, उनसे हटकर भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा मैं एकाग्रता हो, उसे धर्म की शुद्धि प्रगट हुई, ऐसा कहा जाता है। धर्म इसका नाम है।

कर्मबन्ध का झड़ना निर्जरा है,... पर की ही बात की है। कर्म के रजकण खिरें, आत्मा के स्वरूप का आश्रय लेकर आनन्द का नाथ भगवान का आश्रय (लेकर) उसके गर्भ में जाकर-स्वभाव में जाकर स्थिर होता है, इससे कर्म के रजकणों का बन्ध टल जाता है, उसे निर्जरा कहा जाता है। **सम्पूर्ण कर्मों का नाश होना मोक्ष है,...** मोक्ष का यह अर्थ है। सब कर्मों का अभाव होकर अकेली पवित्रता प्रगट हो जाए। आत्मा की पवित्रता पूर्ण प्रगट हो, उसका नाम मोक्ष है। आहाहा! समझ में आया?

जीवों को सुख का निमित्त पुण्य है... लो, यह धूल-बूल पूर्व के पुण्य के कारण मिलती है न? शरीर ठीक (मिले), वह बाह्य के धूल के सुख का निमित्त पुण्य कहलाता है। यह व्यवहारिक सुख दुनिया मानती है न? पैसे में सुख है और स्त्री में सुख है। धूल में भी नहीं। सुख तो तेरे स्वरूप में है। उस दुःख को यहाँ सुखरूप से लोग कहते हैं, इस अपेक्षा से कहा है। पुण्य-पाप की व्याख्या करते हैं न।

दुःख का निमित्त पाप है; ऐसे सप्त तत्त्व और नव पदार्थ हैं। इनका आगम के अनुसार स्वरूप जानकर... बराबर सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो जानकर कहा है, उनका स्वरूप जानकर श्रद्धा करे तो वह बाह्यलिंगवाले को व्यवहार समकिती उसे कहा जाता है। समझ में आया? अकेला बाह्यलिंग काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अब, व्यवहार-निश्चय के भेद से सम्यक्त्व को दो प्रकार का कहते हैं... लो, ठीक!

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं॥२०॥

जीव-अजीव पुद्गल आदि **पदार्थों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है...** अर्थात् शुभराग है। समझ में आया? **जिन भगवान ने... कहा है...** परमात्मा ने ऐसे द्रव्य, नवतत्त्व इत्यादि की श्रद्धा ऐसा जो शुभराग है, उसे व्यवहारसमकित (कहा है)। जिसे निश्चयसमकित हो, उसके ऐसे भाव को व्यवहारसमकित कहा गया है। समझ में आया? **और अपने आत्मा के ही श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त्व कहा है।** आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द पवित्रता का धाम है, ऐसा अन्तर में अनुभव होकर श्रद्धा करने का नाम सच्चा समकित है। यह सच्चा साबित हुआ, उसे सच्ची श्रद्धा हुई। आहाहा! समझ में आया? ऐसे बाह्यलिंगवाले को ऐसा होवे तो उसके बाह्य व्यवहार कहने में आता है। अज्ञानी को तो कहते हैं, श्रद्धा भी मिथ्या, लिंग भी मिथ्या, वह तो दोनों से भ्रष्ट है। आहाहा! भारी काम अष्टपाहुड़ का! प्राभृत है न? सार है न? सार। मक्खन है। मूल तत्त्व वीतराग परमात्मा ने अनादि से देखा हुआ, जाना हुआ, कहा हुआ यह तत्त्व है। समझ में आया?

कहते हैं, बाह्यलिंग तीन कहे, उन्हें ऐसे छह द्रव्य की श्रद्धा आदि हो, वह व्यवहार-शुभराग है और उसे भी व्यवहार कब कहा जाता है? और उसे बाह्यलिंग निमित्तरूप से भी कब कहा जाता है? कि उसे जीव-आत्मा अखण्ड आनन्द का कन्द शुद्धचैतन्यमूर्ति हूँ, ऐसी अन्तर में रागरहित निर्विकल्प दृष्टि हो, उसे भगवान ने सच्चा समकित कहा है। समझ में आया? देखो!

अपने आत्मा के ही श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त्व कहा है। है न? **'अप्पाणं हवइ सम्मत्तं'** आत्मा के समकित, ऐसा वापस यहाँ तो यह लिया है। समझ में आया? शरीर, वाणी, लिंगरहित का आत्मा तत्त्व और ऐसे आस्रव और बन्ध के विकल्परहित तत्त्व, ऐसा जो आत्मा चेतना—दर्शन-ज्ञान के स्वभाववाला आत्मा, उसका अन्तर में अनुभव होकर प्रतीति होना, उसे सच्चा समकित, सच्चा हुआ ऐसा कहने में आता है। नहीं तो वहाँ तक मिथ्या है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात भाई! ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प आत्मा वस्तु है। विकल्प अर्थात् रागरहित, परन्तु है महापदार्थ, महाज्ञान, दर्शन आनन्द के स्वभाव से भरपूर। ऐसे आत्मा के स्वभावसन्मुख होकर विकल्प टूटकर निर्विकल्प श्रद्धा का अनुभव होना, उसे भगवान सच्चा समकित / निश्चय समकित / यथार्थ समकित / वास्तविक समकित कहा जाता है। उसे ऐसा व्यवहार समकित होता है, उसे ऐसे व्यवहारलिंग होते हैं, इस प्रकार तीनों की बात की, देखो! समझ में आया?

जिसे निश्चय नहीं है, उसे व्यवहार भी सच्चा नहीं है, तो उसके लिंग की भी गिनती नहीं है। ऐसे नग्नपने के द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये। समझ में आया? परन्तु जिसे निश्चय सम्यक् (हुआ है), शुद्ध चैतन्यभगवान परमेश्वर ने कहा ऐसा आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है, उसकी प्रभुता की प्रतीति, प्रभुता का ज्ञान होकर अन्दर में होना, इसका नाम सच्चा समकित (कहते हैं)। ऐसा सच्चा समकित हो, वहाँ छह द्रव्य की श्रद्धा आदि हो, वह व्यवहार समकित, उपचरित समकित (कहा जाता है)। ऐसा हो, वहाँ लिंग ऐसा होता है, यह निमित्त की दशा का वर्णन है। समझ में आया? व्यवहारश्रद्धा वह अभ्यन्तर निमित्त, यह बाह्य निमित्त। दोनों निमित्त की व्याख्या है। निमित्त ऐसा होता है। ऐसे निमित्त के अतिरिक्त दूसरा निमित्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया?

फिर से। जिसे निश्चय स्वभाव का सम्यग्दर्शन, शुद्धचैतन्य परमात्मा स्वयं ही मैं हूँ—ऐसी अन्तर्मुख होकर भान होकर प्रतीति होना, वह सच्चा समकित, वह सम्यग्दर्शन, सत्यदर्शन है। ऐसे सत्यदर्शनवाले को व्यवहार समकित का विकल्प छह द्रव्य का, नौ तत्त्व का हो, वह निमित्त कहने में आता है। इस अभ्यन्तर में ऐसा व्यवहार निमित्त उसे

होता है, दूसरा निमित्त नहीं हो सकता और उसे इन तीन लिंग का निमित्त बाह्य में होता है। चौथा लिंग-भेष उसे नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अकेली नग्नदशा धारण हो तो भी मुनिपना नहीं है। अकेला व्यवहार समकित और पंच महाव्रत के विकल्प हों, वह यहाँ व्यवहार ही नहीं है। निश्चय बिना व्यवहार कैसा? तो वह भी व्यवहार भी नहीं और मुनि भी नहीं। आहाहा! गजब काम। समझ में आया? जिसे एक लंगोटी हो और कपड़ा एक ही छोटा हो और ग्यारह प्रतिमा धारण करने का विकल्प हो परन्तु जिसे अन्तर अनुभव की दृष्टि और समकित नहीं है, उसे श्रावक नहीं कहते, उसे क्षुल्लक-बुल्लक नहीं कहते, (ऐसा) कहते हैं। पण्डितजी! बात तो ऐसी है।

इसी प्रकार आर्यिका। एक कपड़ा रखे, एक बार आहार ले परन्तु वह यदि अन्तर निश्चयसम्यग्दर्शन हो तो व्यवहार समकित के विकल्प को निमित्त और तब उस लिंग को निमित्त कहने में आता है। परन्तु वस्तु न हो तो निमित्त किसका? समझ में आया? आहाहा! परन्तु निमित्त होवे तो ऐसा ही होता है, दूसरा निमित्त नहीं होता—ऐसा सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : निमित्त न हो ऐसा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं हो, ऐसा बनेगा ही नहीं। होवे तो ऐसा ही होगा। सेठी! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? यह तो सादी बात है। यह सम्प्रदाय के आग्रही मान बैठे हों, उसे तो यह चोट लगे ऐसा है कि ऐसा मार्ग कहाँ से निकाला? बस, यह एक ही मार्ग सच्चा, दूसरे खोटे? आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! क्या कहें? भगवान तीन लोक के नाथ परमेश्वर ने यह कहा है। इसके अतिरिक्त का मार्ग वह व्यवहार और निश्चय एक भी सच्चा नहीं है। समझ में आया?

भावार्थ — तत्त्वार्थ का श्रद्धान व्यवहार से सम्यक्त्व है... वह तत्त्वार्थश्रद्धान नहीं, हों! उमास्वामी में जो तत्त्वार्थश्रद्धान है (तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्), वह तो निश्चय समकित है। नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, वह व्यवहार समकित है—ऐसा यहाँ समझना, देवीचन्दजी! यह **तत्त्वार्थ का श्रद्धान व्यवहार से सम्यक्त्व है...** यह तत्त्वार्थश्रद्धान

सम्यग्दर्शन नहीं। यह तत्त्वार्थश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन तो निश्चयसमकित है परन्तु ऐसी श्रद्धा में नव तत्त्व और छह द्रव्य की श्रद्धा का भेदवाला विकल्प है और यहाँ व्यवहार समकित कहा है। मूल में कहा है ? देखो न! '**जीवादीसद्दहणं**' ऐसा शब्द है न ? उन्होंने यह प्रश्न किया था वहाँ, १५५ गाथा समयसार में आती है न ? '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' १५५ गाथा। विद्यानन्दजी ने वहाँ दिल्ली में पूछा था। कहा, '**जीवादीसद्दहणं**' निश्चय है। ज्ञान की परिणति होना, उसका नाम समकित है। अकेले जीवादि नव तत्त्व, वह नहीं। वहाँ पाठ है, जीवादि का श्रद्धान अर्थात् कि ज्ञान का उस रीति से परिणमना, ज्ञान उसरूप परिणम जाए, निर्विकल्प वीतरागी पर्यायरूप हो, उसे समकित कहा जाता है। आहाहा! सुना भी न हो और बैठे तो कहाँ से हो ? ऐसा का ऐसा अनादि से चौरासी के अवतार में भटकता है। भटकने में होशियार है। वास्तविक दोष टालने में होशियार नहीं है। आहाहा!

विपरीत मान्यता से और विपरीत राग-द्वेष के भाव से दुःखी है। अनादि का जीव दिगम्बर साधु हुआ परन्तु अन्तर में विपरीत श्रद्धा के कारण से दुःखी है। नग्न मुनि हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु उन्हें निमित्तरूप से कहने में नहीं आया। क्योंकि उपादान प्रगट नहीं हुआ, तो निमित्त कहना किसे ? आहाहा! निमित्त कहो या व्यवहार कहो। वह असद्भूतव्यवहार है, यह असद्भूत का उपचार भाग है। वह असद्भूत... बाकी तो राग, वह असद्भूत उपचार है, ख्याल में आवे वह (असद्भूत उपचार है) ख्याल में न आवे, वह असद्भूत अनुपचार है। ऐसी बात है।

आत्मा... यहाँ तो कहते हैं कि तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्व अर्थात् सच्ची प्रतीति है, वह कौन सी ? उमास्वामी ने कहा वह क्या ? और यह कहा वह क्या ? '**जीवादीसद्दहणं**' यहाँ नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा को तत्त्वार्थश्रद्धान (कहा है)। क्योंकि पाठ में '**जीवादीसद्दहणं**' है न ? उसका स्पष्टीकरण करते हैं न ? अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धान जो वहाँ उमास्वामी ने कहा है, उसे कितने ही व्यवहार सम्यक्त्व मानते हैं। सबको पूछा था, यह तत्त्वार्थश्रद्धान, वह क्या ? व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार श्रद्धा। परन्तु व्यवहार श्रद्धा तो राग है। उसका मार्ग है यह ? पुस्तक में है न। ऐ.. सेठी! इन सेठी को कहाँ भान था ? यह सब ऐसे के ऐसे हाँ, हाँ (करते थे)।

मुमुक्षु : उस छपी हुई पुस्तक में कहते हैं या सोनगढ़ की छपी हुई में।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, ठीक। तुम्हारी छपी हुई पुस्तक में लिखा है, कहते हैं। किसने छापी है? पन्नालाल। तुम्हारी-दिगम्बर की होगी। है न पुस्तक? लाओ न। उसमें लिखा है, तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, यह व्यवहार है। अरे! ऐसे के ऐसे पण्डित भी समझते नहीं। ऐई! देवचन्दजी!

मुमुक्षु : बहुत लज्जा की बात है...

पूज्य गुरुदेवश्री : लज्जा की बात है... यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। व्यक्तिगत कुछ नहीं। ऐसा स्वरूप ही है, भाई! क्या हो? आहाहा! जब तत्त्वार्थसूत्र का तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहार समकित कहे, तब निश्चय का अधिकार आया कहाँ? और ऐसे व्यवहार समकितवाले को पाँच ज्ञान ज्ञेय कहे? मति, श्रुत, अवधि और पाँच ज्ञान ऐसे को कहे? उसे चारित्र कहा? सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। व्यवहार समकित तो फिर ज्ञान भी व्यवहार और चारित्र भी व्यवहार। तीनों व्यवहार (हुए)। समकित व्यवहार और चारित्र निश्चय, ऐसा कहाँ से आवे उसमें? आता है। यहाँ तो कहना है, तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन, इस पाठ में दो स्पष्टीकरण है न? '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं ववहारा**' इसका स्पष्टीकरण करते हैं।

मुमुक्षु : उसे व्यवहार कहा है। निश्चय कहा तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी '**अप्पाणं हवइ सम्मत्तं**' भगवान ज्ञानमूर्ति निर्विकल्प का अन्तरभान और प्रतीति होना, वह सच्चा समकित, बाकी खोटा समकित है। इस निश्चय समकित बिना व्यवहार समकित भी कहने में नहीं आता। व्यवहाराभास है और उसका लिंग भी है, वह भी व्यवहाराभास असद्भूत झूठा है। समझ में आया?

यहाँ व्यवहार है और वहाँ निश्चय है, ऐसा कोई कहे तो उसका कारण? यहाँ तो '**जीवादीसद्दहणं**' को व्यवहार स्पष्ट (अलग) किया है और निश्चय '**अप्पाणं हवइ सम्मत्तं**' ऐसा कहा है। इसलिए यहाँ का तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार लिखा है, वह बराबर है और वहाँ जो कहा है, '**जीवादीसद्दहणं**' नव तत्त्वार्थश्रद्धान कहा न? नाम तो सातों ही तत्त्वों के डाले हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। वह तो अन्दर

का ज्ञान होकर अन्तरसन्मुख होकर प्रतीति हुई है, उसकी बात है। निश्चय सम्यग्दर्शन की व्याख्या है। समझ में आया? यहाँ यह तत्त्वार्थश्रद्धान है, वह व्यवहार समकित की व्याख्या है। सेठी! वहाँ सबको पूछे पहले। तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन पूछते थे, वह तो व्यवहार है। चाँदमलजी को पूछा था। वे कहें, व्यवहार है तो कहे यह शब्द में भूल हो गयी, भाषा में भूल हो गयी। ठीक। मेरी भूल नहीं। ऐसे के ऐसे। चाँदमलजी थे न? उदयपुर के। समझ में आया? उसमें है, वह तो बताया था, लिखा हुआ था, वह बताया था।

यहाँ कहते हैं, जिसे आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन—निर्विकल्प राग का कर्ता नहीं, देह की क्रिया मेरी नहीं, देह की क्रिया का कर्ता नहीं, वह मेरी पर्याय जितना भी भाव नहीं। ऐसी जिसे चैतन्यद्रव्य की ध्रुवता के लक्ष्य से जो दृष्टि हुई, उसे सच्चा समकित और सच्चा स्थिर हुआ, वह चौथे गुणस्थान में आया। इसके बिना श्रावक और मुनि सब एक बिना के शून्य हैं। यह लिंग ऐसे होवे तो उसे। दूसरे लिंग होवें, उसकी तो बात ही नहीं है। उसकी तो श्रद्धा भी मिथ्या और लिंग भी मिथ्या, सब मिथ्या है। समझ में आया? मार्ग तो यह है। जँचे, न जँचे वह स्वतन्त्र है। अनादि से इसे जँचा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जिसे बाह्यलिंग ऐसा होता है, अभ्यन्तर में भी अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प मुनि को होते हैं, उन्हें ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन होवे तो उसे व्यवहार कहने में आता है। इसमें कितना समझना? विपरीत बहुत घुस गया है, उतने प्रमाण में इसे सब सुलटा समझना पड़ेगा।

और अपने आत्मस्वरूप के अनुभव द्वारा उसकी श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, आचरण सो निश्चय से सम्यक्त्व है,... देखो! भगवान आत्मा अपने आत्मस्वरूप का अनुभव करके। भाषा देखो! ऐसे श्रद्धा-वृद्धा काम न आवे, कहते हैं। यह आत्मा ज्ञायक चिदानन्द आनन्दस्वरूप है, ऐसा अन्तर में ज्ञान होकर, अनुभव होकर, अनुभव में प्रतीति होना, उसकी श्रद्धा, उसकी प्रतीति, उसकी रुचि और उसमें आचरण-आत्मा का स्थिर होना, इसका नाम निश्चय समकित है। देखो! यहाँ तो **आचरण सो निश्चय से**

सम्यक्त्व है,... (ऐसा कहा है)। भाई! क्या कहा है? इतना आचरण वहाँ आता है। उसे यहाँ निश्चय समकित कहा है। समझ में आया? यह स्वरूपाचरण। अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर अन्दर स्थिर हुआ है। शान्ति प्रगट हुई है, प्रतीति के साथ शान्ति प्रगट हुई है। आहाहा! गजब काम, भाई! बहुत से तो पुस्तक तो रखी है परन्तु पढ़ते कहाँ हैं? और पढ़े तो अपनी दृष्टि से पढ़े, अर्थ करे अपनी दृष्टि से। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य को पक्षकार कहते हैं। रामजीभाई के थे न? वे 'चुडगर' यह पढ़ा था कि ऐसा होता है वहाँ सम्प्रदाय की बात है। यह वहाँ पहले मिला था, अष्टपाहुड़, यह मिला था। (संवत्) १९९० में। राजकोट में।... उसमें लिखा था। जहाँ-तहाँ आवे, नग्नपना, वह मुनिपना। सम्प्रदाय नहीं, यह तो वस्तु की स्थिति है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वहाँ समकित की व्याख्या बराबर कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ समकित की बराबर। उसने स्वयं प्रकाशित किया है न!.. वह तो बराबर लिखा है परन्तु उसके वांचन में सब अन्तर है।

यहाँ कहते हैं, अपना भगवान, वे पर भगवान और वीतरागदेव को मानना, वह भी विकल्प और राग है और परद्रव्य है। वह समकित नहीं। लोगों में दृष्टान्त देते हैं। छाछ चाहिए हो तो फिर... क्या कहलाता है वह? दोना छिपावे? हमारी मामी थी न? वहाँ भैंस रखते। यहाँ तो हमारे भैंस रखने का कहाँ साधन था। साधन नहीं था। साधारण। फिर छाछ-वाछ लेने जायें तो दो सेर अच्छी छाछ दे। घर में मेहमान आये हों और ज्यादा चाहिए हो तो बर्तन सामने करना पड़े। देखो! यह बर्तन है, इसमें नहीं आयेगी। दस सेर छाछ चाहिए। बोघणु समझते हो? बर्तन। सगी मामी थी। अकेले थे न जगजीवनभाई थे। गुजर गये। कढ़ी बनानी हो न, फिर प्रतिदिन सेर छाछ दे। यह पोसावे? घर में पाँच-सात मेहमान हों। कढ़ी, दाल, भात, सब्जी... इसी प्रकार यहाँ मार्ग है, उसे स्पष्ट रखे बिना हम समझेंगे किस प्रकार? मार्ग तो ऐसा है, भाई! कड़क लगो, विपरीत लगो, पक्ष लगो तो भी मार्ग तो यह है। दूसरा मार्ग यदि आड़ा-टेढ़ा कुछ माने तो वीतरागमार्ग से भ्रष्ट हुए मिथ्यादृष्टि हैं। जाधवजीभाई! ऐसा है। देखो।

व्यवहार... पाठ में व्यवहार पहला है न? फिर निश्चयश्रद्धारूपी आचरण।

आचरण सो निश्चय से सम्यक्त्व है,... वहाँ फिर वे ले लेवे कि आचरण ऐसा। स्वरूप की स्थिरता आत्मा की हो तो वह (कहना है)। वह बात यहाँ नहीं है। ले जाए न, क्या करे? यहाँ तो ऐसा स्वरूप आत्मा का है। ज्ञायक, आनन्द अनन्त गुण का अरूपी पिण्ड आत्मा है, उसके सन्मुख होकर, स्वभाव-सन्मुख होकर राग और पर्याय से विमुख होकर अन्तर में अनुभव में प्रतीति होना, (वह सम्यग्दर्शन है)। उसमें प्रतीति के साथ स्थिरता भी ऐसी होती है, वह आचरण है। भूमिका की योग्यता। उसे निश्चय समकित-सच्चा समकित कहा जाता है, उसे चौथा गुणस्थान सच्चा है, बाकी सब गप्प है। कहा नहीं?

आत्मा आनन्द और ज्ञान आदि अनन्त स्वभावी वस्तु है। वस्तु है न? पदार्थ है न? आत्मा तत्त्व है न? तत्त्व। वह आत्मा तत्त्व है, उसका स्वभाव सत् है। सत्य का सत्स्वभाव है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा गुण का पुंज, वह आत्मा है। ऐसी पर्यायबुद्धि छोड़कर, विकल्पबुद्धि छोड़कर, निमित्तबुद्धि छोड़कर त्रिकाल ज्ञायक पर दृष्टि होने से जो राग की एकता टूटी, स्वभाव की एकता हुई, उसे श्रद्धा, प्रतीति और स्थिरता का अंश समकित में भी जो आया, उसे निश्चय समकित कहने में आता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? उसे अभी चौथा गुणस्थान कहते हैं। ऐसा जहाँ नहीं, वह तो समकित भी नहीं है, जैन भी नहीं है और वह श्रावक और साधु है ही नहीं। वाड़ा के हैं। यह थैली के ऊपर लिखा शाकर और अन्दर हो करियातुं (चिरायता)। करियातुं समझते हो? चिरायता। चिरायता होता है न? अन्दर (होवे) चिरायता और ऊपर लिखे शाकर (मिश्री)। इसलिए चिरायता कहीं मीठा हो जायेगा? इसी प्रकार ऊपर कहे, हम जैन हैं, हम श्रावक और साधु हैं। अन्दर में चिरायता—मिथ्याश्रद्धा भरी है। राग से धर्म माने, पुण्य से धर्म माने, लिंग खोटा हो, वह भी हमारा मार्ग है—ऐसी अन्दर मिथ्याश्रद्धा है, वह जहर की है। बाहर में लिंग नाम धरावे कि हम जैन श्रावक और मुनि हैं, वह सब एकरहित शून्य हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे की बात ही कहाँ है? जैन के अतिरिक्त अन्यमत के

जितने भेद हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि के पोषक हैं। समझ में आया? चाहे तो वह नानकपन्थ हो और चाहे तो कबीरपन्थ हो और चाहे तो वेदान्तपन्थ हो, सभी मिथ्यात्व के पक्के पोषक हैं। यह वेदान्त, कहा न! एक आत्मा सर्वत्र माननेवाले, वह भी मिथ्यात्व का पोषक है। समझ में आया? (वीतराग का) ऐसा मार्ग सत्य है, बापू!...

मुमुक्षु : समन्वय का जमाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समन्वय का जमाना... जहर का और अमृत का समन्वय करता है कोई? खाते समय सब्जी खाये और माँस साथ में खाये, ऐसा करते होंगे समन्वय? करो सब्जी के दो भाग शाकाहारी और माँसाहारी, करो समन्वय।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों हैं अवश्य, यह समन्वय। परन्तु वह विपरीत। मार्ग ऐसा है, भाई!

यह सम्यक्त्व आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं है,... समकित है, वह (कहीं) आत्मा से भिन्न दशा नहीं है। वह तो आत्मा की वीतरागी पर्याय है। **आत्मा ही का परिणाम है, सो आत्मा ही है।** लो, वापस कहा है न? '**अप्पाणं**' कहा है न? **ऐसे सम्यक्त्व और आत्मा एक ही वस्तु है, यह निश्चय का आशय जानना।** इसका नाम सत्य का अभिप्राय भगवान ने ऐसा कहा है। इसके अतिरिक्त दूसरा सब व्यवहार उपचार है परन्तु ऐसा निश्चय हो, वहाँ ऐसा ही विकल्प होता है, लिंग भी ऐसा होता है। वेशरूप से। वेश न हों, वह अलग बात है। गृहस्थाश्रम में तो अनेक प्रकार हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १, शनिवार, दिनांक १३-१०-१९७३
गाथा-१९, २०, २१, प्रवचन-२५

१९ गाथा। दर्शनपाहुड़ की। उसका भावार्थ है। सात तत्त्व, पंचास्तिकाय की आगम अनुसार बराबर श्रद्धा करना, वह व्यवहार समकित कहने में आता है। उसकी व्याख्या चलती है।

भावार्थ—(जाति अपेक्षा छह द्रव्यों के नाम)... संख्या अनन्त, परन्तु जाति अपेक्षा से। एक **जीव...** जाति अपेक्षा से। हैं अनन्त। **पुद्गल...** जाति अपेक्षा से एक, हैं अनन्त **धर्म...** एक, **अधर्म...** एक, **आकाश...** एक **और काल...** जाति अपेक्षा से एक, संख्या से असंख्य। **यह तो सब द्रव्य हैं...** इनकी श्रद्धा। जैसा स्वरूप है, (वैसा) भगवान ने कहा, वैसा उसे आगम अनुसार श्रद्धा चाहिए। **जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष और पुण्य, पाप—यह नव तत्त्व अर्थात् नव पदार्थ हैं;...** ऐसा। तत्त्व उसे कहा जाता है और उसे पदार्थ भी कहा जाता है। नौ तत्त्व, नौ पदार्थ।

छह द्रव्य काल बिना पंचास्तिकाय हैं। छह में एक काल को छोड़कर पंचास्तिकाय। **पुण्य-पाप बिना नव पदार्थ सप्त तत्त्व हैं।** ... पुण्य-पाप बिना नौ पदार्थ सप्त तत्त्व है, ऐसा लिखा। पुण्य-पाप सहित वे नौ पदार्थ हैं, पुण्य-पाप रहित वे सात तत्त्व हैं। उसकी इसे बराबर श्रद्धा आगम अनुसार होनी चाहिए। **इनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है—जीव तो चेतनास्वरूप है और चेतना दर्शन-ज्ञानमयी है;...** जीव का स्वरूप चेतना है और उसके भेद करने से दर्शन और ज्ञानस्वरूप है। और उस जीव में ही आनन्दस्वभाव है। ऐसे जीव को आनन्द स्वाभाविक है, ऐसा उसे मानना और जानना। भले विकल्प से। समझ में आया? भेद से है न व्यवहार।

चेतना दर्शन-ज्ञानमयी के साथ ज्ञाता-दृष्टा में आनन्दस्वरूप है, वह आत्मा। उसके सुख के लिये कोई दूसरी चीज़ है नहीं। ऐसे भेद से, विकल्प से भी इसे ऐसा निर्णय करना चाहिए। समझ में आया? पुद्गल, वह स्पर्श है। चाहे तो पैसा हो, शरीर हो, कर्म हो, वह **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुणसहित मूर्तिक है, उसके परमाणु और स्कन्ध के दो भेद हैं, स्कन्ध के भेद शब्द,...** यह शब्द, वे सब पुद्गल की पर्याय है।

उसका आत्मा नहीं और वे आत्मा के नहीं। भेद करना स्कन्ध का। भेद पड़कर पृथक् करे वह पुद्‌गल है। **भेद शब्द, बन्ध,...** बन्ध। बन्ध पड़े कर्म का आदि। वह तो पुद्‌गल है। **सूक्ष्म, स्थूल,...** कार्मण शरीर आदि सूक्ष्म और यह औदारिक आदि स्थूल, यह सब पुद्‌गल है। पैसा, वह स्थूल पुद्‌गल है। वह आत्मा के नहीं, पुद्‌गल के हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अर्थात् क्या? उसके पास नजदीक आये, इसलिए उसके कहलाये। उसके हैं नहीं। वे तो जड़ के हैं। आहाहा! और जड़ का स्वामी हो तो उसे जड़ और आत्मा दो भिन्नता की व्यवहार श्रद्धा भी नहीं। आहाहा! भिन्न-भिन्न द्रव्य की श्रद्धा की बात है न अभी? पुद्‌गल पुद्‌गलरूप से है, जीव जीवरूप से है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय कहा न! पहले यह कहा करने का कि निश्चय जो है... वह तो यह सब विरोध बहुत चला न। परन्तु उसका अर्थ ही वह निश्चय है, वह तो यथार्थ है। और प्रमाणज्ञान करनेवाले को प्रमाणज्ञान करने में निश्चय का जो स्वरूप है, उसे तो प्रमाण मान्य रखता ही है। उपरान्त निमित्त और व्यवहार को मिलाकर ज्ञान करता है। ऐसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया?

प्रत्येक द्रव्य की जिस-जिस समय में उसके स्वकाल में पर्याय होती है, वह उसका निश्चय है। पुद्‌गल की या चैतन्य की। उस निश्चय को, प्रमाण निश्चय को रखकर विशेष मिलाता है अर्थात् कि निमित्त है। एक निमित्त है, उसका ज्ञान, परन्तु निश्चय का ज्ञान रखकर व्यवहारज्ञान निमित्त को मिलता है। समझ में आया? ऐसे मोक्ष का मार्ग जो निश्चय है स्वआश्रय। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो निश्चय, निश्चय ही है। परन्तु प्रमाणज्ञान भी निश्चय को तो ऐसा ही रखकर, व्यवहार राग की मन्दता आदि का व्यवहार मोक्षमार्ग, उसे मिलाकर प्रमाण ज्ञान करता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ... किंचित् प्रयोजन।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, निमित्त है न। व्यवहारनय का विषय है या नहीं ? विषय है न ? अविषय है ? अमौजूदगी है ? समझ में आया ? आहाहा ! रात्रि में कहा था कि एक द्रव्य का त्रिकालीपना है, वह भाव ध्रुव। स्वयं ही है और उसी त्रिकाली की एक समय की जो पर्याय, उस काल की वही है, उस काल की वही है। यह दो होकर प्रमाणज्ञान कहलाता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण यह। प्रमाण तो निश्चय से स्वसन्मुख हो गया। निश्चय प्रगट हुआ हो वहाँ सन्मुख हो गया ही है। प्रमाण तो तब कि वर्तमान वापस पर्याय है, रागादि है, उसका जो ज्ञान करे, वह प्रमाणज्ञान हुआ।

मुमुक्षु : यह निश्चय और यह व्यवहार, ऐसा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! ऐसी वस्तुस्थिति है, वहाँ क्या करे ? त्रिकाल वस्तु भगवान पूर्ण आनन्द और ध्रुवस्वरूप, वह त्रिकाल है। और त्रिकाल का त्रिकालपना इस प्रकार ही है। ऐसा जिसकी वर्तमान पर्याय, उसकी उस समय की उसी काल की, वही सत् और उसी स्वरूप है। आहाहा ! ऐंई ! ...भाई ! वस्तु यह है, भाई ! आहाहा ! और यह एक निश्चय ऐसा है त्रिकाली, इसका ज्ञान हुआ, वह यहाँ पर्याय ज्ञान और व्यवहार के ज्ञान में मिलाकर प्रमाणज्ञान करता है। आहाहा ! कहो, देवीलालजी ! गजब ऐसी बातें सूक्ष्म बहुत। लोगों को न बैठे तो फिर दूसरा मार्ग निकाले वे तो ... मार्ग तो यह है। भगवान का विरह पड़ा...

मुमुक्षु : जैन संस्कृति अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन संस्कृति यही है। दूसरी जैन संस्कृति कब थी ? इसलिए कहा कल जैन संस्कृतिवाले ने ... पत्र निकाला विरोध का। ... अरे ! भगवान ! अपनी बात स्थापन करने की, प्रभु क्या करता है यह ? आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कृति तो यह संस्कार। वस्तु स्वरूप पूर्ण शुद्ध ध्रुव, ऐसे जो संस्कार, वह जैन की संस्कृति है। राग, वह जैन की संस्कृति है ? जैनशासन कहा किसको ?

'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।' आहाहा! यह जैनशासन कहा। यह तो शुद्ध उपयोग जो है स्वभाव के आश्रय से, वह जैनशासन है, वह जैन संस्कृति है। आहाहा! पश्चात् उपचार से जैन संस्कृति राग की मन्दता का उसका भाव होता है, उसे उपचार से व्यवहार कहते हैं। वह उपचार जैनशासन है, वह वास्तविक जैनशासन नहीं। आहाहा! ८२वीं गाथा में नहीं आया, ८३ में। भावपाहुड़ में? पुण्य और व्रत वह जैनशासन के धर्म नहीं हैं। जैनधर्म नहीं हैं। विकल्प है। पूजा देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से होती है, इसलिए व्यवहार है। व्रत में सब भेद परलक्ष्य से पड़ते हैं। इस जैनशासन में उसे पुण्य कहा है। वह जैनशासन नहीं। आहाहा! मोह-क्षोभरहित परिणाम, वह जैनशासन है।

मुमुक्षु : जैनशासन का विरोध...

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोधी है परन्तु व्यवहार से ऐसा होने पर भी यहाँ हानि प्राप्त नहीं होती, इसलिए उसे अनुकूल कहा है। क्या कहा? जो मार्ग प्रगट हुआ है, स्वभाव के आश्रय से, उसमें राग की मन्दता है, यह उसे वर्तमान विघ्न नहीं करता। विघ्न करे, तब तो यह रहे ही नहीं। इसलिए उसे अनुकूल गिनकर व्यवहार कहा जाता है। बाकी है तो विरोध। निश्चय से वह व्यवहार विरोध ही है। वर्तमान की अपेक्षा से विरोध है। बात तो ऐसी है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग (में) अटकता है। वह स्वयं अटकता है सर्वत्र, है उसका दुःख। आहाहा! भावबन्ध है, आस्रव है, व्यवहार होता है अन्दर। आवे सही। व्यवहारनय का विषय है। निश्चय और व्यवहार दोनों का विषय है। व्यवहार के विषय को मिलाता है प्रमाण, परन्तु निश्चय को रखकर। निश्चय से जो निर्णय किया है, निश्चय का आश्रय है, उसे बदलाकर व्यवहार को मिलाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि निश्चय और व्यवहार दो का होकर प्रमाण ज्ञान है। परन्तु निश्चय और जो है, उसे तो ऐसा का ऐसा रखा है। अमरचन्दभाई! ऐसा मार्ग है भाई! उसमें कहाँ-कहाँ भटका भटक। ... आहाहा! भाई! तेरे हित के रास्ते की बातें हैं, प्रभु! आहाहा! इसमें कोई पक्ष की बात नहीं। यह सम्प्रदाय की बात नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है।

यह यहाँ कहते हैं। नौ पदार्थ में जीव का स्वरूप तो चैतन्य, परन्तु पुद्गल का स्वरूप यह। आहाहा! **बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल...** यह पैसा, स्त्री का शरीर, यह मकान / बँगला, लोहा, प्लास्टिक के जूते, वे सब पुद्गल हैं। टाईल्स के पत्थर, हीरा सब पुद्गल हैं। आहाहा! **संस्थान,...** आकार बाह्य के ऐसे। ऐसे छोटे-बड़े, देखो न! इसका ऐसा आकार, इसका ऐसा आकार। यह सब पुद्गल है। सुन्दर आकृति है, वह पुद्गल की है। वह परमाणु इस प्रकार से रचित परिणमित हुए हैं। ऐसी उसे अजीव पुद्गल की पुद्गलरूप श्रद्धा होनी चाहिए। कहते हैं, बाद में कि यह सब भेदवाली श्रद्धा, वह व्यवहार श्रद्धा है। उसमें से निश्चय निकाला हो, तब तो निकल सकता है। जीव का स्वरूप जो है शुद्ध जैसा, वैसा स्वरूप ... विमल शब्द पड़ा है उसमें? उसे वह जाने। यह निश्चय हुआ। उसे इसके अतिरिक्त दूसरे सबको जाने, यह व्यवहार हुआ। आहाहा!

संस्थान, भेद... भेद पड़ना। पृथक् पड़ना। यह कहीं आत्मा में तो... पुद्गल के ... **भेद, तम,...** अन्धकार। **छाया, आतप,...** सूर्य का, **उद्योत...** चन्द्र का। **इत्यादि अनेक प्रकार हैं।** यह द्रव्यसंग्रह में बोल आते हैं। यह द्रव्यसंग्रह की गाथा का अर्थ किया। पश्चात् **धर्मद्रव्य...** एक है। चौदह ब्रह्माण्ड में वह भगवान ने केवली ने देखा। जीव, जड़ गति करे वहाँ निमित्त है। निश्चय होने पर भी निमित्तरूप से कहने में आता है। अधर्मास्ति एक है स्थिर होने में (निमित्त)। वह तो स्वयं से होता है। परन्तु उसमें निमित्त भी एक गति पूर्वक स्थिर हों, उनकी बात है, हों! स्थिर जो अनादि के हैं, उन्हें स्थिर में निमित्त स्थिर नहीं। आकाश अनादि का स्थिर है। ऐसे गति करते हुए स्थिर हों, उन्हें अधर्मास्ति नाम का पदार्थ निमित्त है। वह तो वस्तु है। **आकाशद्रव्य—ये एक-एक हैं, अमूर्तिक हैं, निष्क्रिय हैं, कालाणु असंख्यात द्रव्य है...** कालाणु असंख्य पदार्थ हैं। एक-एक आकाश प्रदेश है, उसमें एक-एक अणु (कालाणु) है। बहुत सूक्ष्म है।

अँगुल के असंख्य भाग में आकाश के असंख्य प्रदेश हैं यहाँ। अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी के समय जितने, उसके एक-एक प्रदेश में एक-एक कालाणु है। यहाँ अँगुल के असंख्य भाग में ... इतनी संख्या पड़ी हुई है असंख्य चौबीसी का समय। आहाहा! और एक-एक...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : समय। असंख्य। आँकड़ा असंख्य है परन्तु उसके भाग में असंख्यवाँ भाग आता है। एक-एक प्रदेश में एक-एक कालाणु। अब यह बातें। वस्तु की स्थिति ऐसी है। अकृत्रिम—किसी ने किया नहीं यह जगत। आता है न? छहढाला में आता है। अकृत्रिम—अकृत। किसी ने जगत को किया नहीं। वस्तु है, उसका सत् है, उसे करे क्या? सत् है, उसे करे क्या? ऐसी सत् पर्याय है, उसे करे क्या? द्रव्य भी न करे, ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। यह। ... बहुत था छहढाला में। वस्तु है, इसलिए यह है, उसे करे क्या? नहीं, उसे करे क्या? आहाहा! है, वह रूपान्तर होती है, है, रूपान्तर होती है, वह उसका व्यवहार। आहाहा! समझ में आया?

अस्तिकाय पाँच हैं,... असंख्यात द्रव्य **काल को छोड़कर पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं...** काल का एक ही अणु है। एक-एक (पृथक् रहते हैं)। वे असंख्य इकट्ठे नहीं होते और दूसरे पाँच द्रव्य हैं, वे अस्तिकाय हैं—बहुप्रदेशी हैं। **इसलिए अस्तिकाय पाँच हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है इसलिए वह अस्तिकाय नहीं है, इत्यादि उनका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र की टीका से जानना। जीव पदार्थ एक है और अजीव पदार्थ पाँच हैं,...** एक का अर्थ उस छह की अपेक्षा से। वह पदार्थ एक अर्थात् सब जीव होकर एक, ऐसा नहीं। छह द्रव्य में जीव पदार्थ एक है। पाँच अजीव पदार्थ हैं।

अजीव पदार्थ पाँच हैं, जीव के कर्मबन्ध योग्य पुद्गलों का आना आस्रव है,... यह व्याख्या करते हैं नौ की। रजकणों का आना, ऐसे भाव को आस्रव कहते हैं। ... यह पुद्गल को आस्रव है। **कर्मों का बँधना बन्धन है, आस्रव का रुकना संवर है, कर्मबन्ध का झड़ना निर्जरा है,...** बहुत संक्षिप्त व्याख्या की है। **सम्पूर्ण कर्मों का नाश होना मोक्ष है, जीवों को सुख का निमित्त पुण्य है...** यह बाहर की धूल का। आहाहा!

मुमुक्षु : बाहर का ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर का ... यह पुण्य की बात आयी। सुख का निमित्त कल्पना आदि की करता है कि हम सुखी हैं, उसमें यह निमित्त है। आहाहा! मकान,

बँगला, पैसा, गहने, मखमल के कपड़े, उसमें हीरे डाले हों। अभी तो फिर यह कैसे करते हैं। यह पहनते हैं तो यहाँ वापस यहाँ उसके साथ माला जैसा साथ में ही आया कपड़ा ऐसा। सुमनभाई ने पहना था वह। वह पहनाव ही यहाँ से यहाँ। फूल की माला जैसा ... फूल हो। ओहोहो! रंग-बिरंगी विचित्रता हो गयी है अभी।

मुमुक्षु : सबमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें। आहाहा! कहते हैं कि यह सब पुद्गल की जाति है। यह ... छाया हो तब उसे सुख की कल्पना में सुख का निमित्त कहलाये। कल्पना का सुख। आहाहा!

और दुःख का निमित्त पाप है... दुःख का निमित्त, हों! दुःख तो स्वयं अन्दर से खड़ा करता है, परन्तु उसके निमित्त से बाहर की प्रतिकूलता... **ऐसे सप्त तत्त्व और नव पदार्थ हैं, इनका आगम के अनुसार स्वरूप जानकर श्रद्धान करनेवाले सम्यग्दृष्टि होते हैं।** आहाहा!

अब कहते हैं कि व्यवहार और निश्चय की व्याख्या स्पष्ट करते हैं।

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं॥२०॥

आहाहा! **अर्थ :— जिन भगवान ने...** तीर्थंकर देव ने **जीव आदि पदार्थों के श्रद्धान को व्यवहार-सम्यक्त्व कहा है...** यह पाँच अस्ति, नौ पदार्थ, सात तत्त्व उन सबकी श्रद्धा वह व्यवहार समकित है।

मुमुक्षु : तत्त्वार्थसूत्र में उसे निश्चय समकित कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अन्दर अकेले अभेद की दृष्टि से निश्चय कहा। यहाँ कहेंगे। तत्त्वार्थश्रद्धान, वह व्यवहार समकित है। यहाँ ऐसा रखते हैं। यह वह शुभ ऊपर लिया न? वह अभेद है इसलिए लिया। अकेला आत्मा को श्रद्धा करने से उसमें यह चीजें नहीं, ऐसी श्रद्धा साथ में आ गयी, यह ज्ञानप्रधान से उसे तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... की कहाँ अपेक्षायें हैं न सब उसमें। ज्ञान की विशालता है

वह। ज्ञान की सब अपेक्षायें हैं। तत्त्वार्थश्रद्धान, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। यहाँ जो कहना है, वह नव तत्त्व का, वह सब व्यवहार है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सात तत्त्व निश्चय समकित।

पूज्य गुरुदेवश्री : सातों ही तत्त्व निश्चय समकित हैं। अभेद है न अभेद। सात भेद नहीं। एक आत्मा की यथार्थ श्रद्धा होने पर उसे सातों तत्त्व की श्रद्धा (हुई कि) यह वस्तु अन्दर में नहीं। वास्तव में संवर, निर्जरा, आस्रव, पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष वह द्रव्य में नहीं है, उस द्रव्य की श्रद्धा होने पर सातों की श्रद्धा इकट्ठी हो गयी। समझ में आया? अस्ति और नास्ति होकर सातों तत्त्व आ गये उसमें।

मुमुक्षु : किस प्रकार अभेद लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे अभेद लेना। अलग-अलग यह है, ऐसा है, वह तो सब भेद पड़ गया। वह व्यवहार कहा है न? नियमसार में तो सब तत्त्व मोक्ष तत्त्व आदि को नाशवान व्यवहार कहा है। वह एक का तत्त्व अलग-अलग। और यह तत्त्व पूरा है, ऐसा ... भूतार्थ से आत्मा को जानने पर उसमें इन सबका... नास्ति का ज्ञान अन्दर आ जाता है। एक को जानने में सब आ जाता है। आहाहा! क्योंकि वह वस्तु स्वयं ही पूर्णानन्द अखण्ड अभेद है और उसमें यह नहीं अन्दर में, उस वस्तु में यह नहीं, उसका अन्दर में ज्ञान आ जाता है। भिन्न कर-करके, ऐ...

जिन भगवान ने जीव आदि पदार्थों के श्रद्धान को व्यवहार-सम्यक्त्व... व्यवहार समकित अर्थात् विकल्प राग। **और अपने आत्मा के ही श्रद्धान को निश्चयसम्यक्त्व कहा है।** ध्रुव वस्तु परमात्मा स्वयं। ऐसी एकरूप चीज़ निश्चय आत्मा। **अपने आत्मा के ही...** निश्चय आत्मा अर्थात् ज्ञायकभाव, शुद्धभाव, परमभाव, एकरूपभाव। उसे **निश्चयसम्यक्त्व कहा है।**

भावार्थ:—तत्त्वार्थ का श्रद्धान व्यवहार से सम्यक्त्व है... ऐसे तो तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन चाहिए। मोक्षशास्त्र में कहा है, वह तो निश्चयसमकित है।

मुमुक्षु : ...मोक्षशास्त्र का है वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहते हैं। है न लिखा हुआ। तत्त्वार्थश्रद्धानं, मोक्षशास्त्र

व्यवहार... निश्चय से है। कहते हैं न बहुत कहते हैं। सब पूछने आते हैं यह ? चाँदमल को पूछा था। चाँदमल थे न तुम्हारे। उन्हें पूछा था। तत्त्वार्थश्रद्धान वह व्यवहारश्रद्धान। ऐसे सब गाडा ऐसे चले ही हैं। मोक्षशास्त्र है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।

वस्तु आत्मा एकरूप चैतन्य सामान्य एक शब्द प्रयोग किया है शुद्ध को। शुद्ध कहो, सामान्य कहो, एकरूप कहो। यह शब्द प्रयोग किया है यहाँ कलशटीका में बहुत। राजमलजी की टीका में। एक का था न तुम्हारे नहीं ? दो की संख्या है और एक की संख्या नहीं। ... था न। वह भले हो उसका कुछ ... यहाँ तो एकरूप है, वह संख्या है। परन्तु यहाँ एकरूप है, उसका अर्थ भेद नहीं वहाँ। आहाहा! वरना शास्त्र में ऐसा कहा... में नहीं तो एक-एक की संख्या है, उसके साथ। परन्तु एक ऐसी जो ध्वनि वह अंश ऐसा कहाँ है अन्दर ? मनुष्य को जैसा है, वैसा जानना चाहिए। ... होवे तो निकाल डालना चाहिए।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आता है न सब बहुत जगह। एक शुद्ध। सब बहुत जगह आता है। कलश में तो कितनी जगह शास्त्र में। शुद्धो। शुद्ध का अर्थ ही एक करते हैं वहाँ कलशटीका में। शुद्ध अर्थात् एक, ऐसा। अशुद्ध में भेद, उसमें क्या ? यह तो एक ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कोराकोरा। उसे ही आत्मा कहा। पर्याय है, वह तो व्यवहार आत्मा, उपचरित आत्मा हुआ। आहाहा! परिणाममात्र को तो अभूतार्थ कहा। पर्याय अभूतार्थ है। यह समय का अर्थ नहीं। त्रिकाल की अपेक्षा से सत्यपना शून्य... सत् है। यह बात ... नहीं। उसकी अपेक्षा से सत् है। आहाहा! इसमें वीतराग के मार्ग के अन्दर जैसा है, वैसा इसे... इसे बराबर जानना चाहिए। ऐसे काल में नहीं जानेगा तो अवसर कब आयेगा ? ... गया चौरासी के अवतार में, उसके दुःख। उसके दुःख रोते इसे पूरे पड़े नहीं। देखनेवाले को आँख में से आँसू की धारा बहे, ऐसे दुःख... उसे खबर कहाँ है ? भूल गया। जरा यहाँ बाहर आया, वहाँ भूल गया। आहाहा! उस नरक के उस काल में कितना ? अनन्त काल। आहाहा! अरेरे! नारकी में तो... है। ... एक .... नहीं आयी।

तो सैकड़ों रोग, असंख्य रोग। आहाहा! बड़े रोग। वीभत्स रूप देखकर दूसरे मनुष्य मर जायें, ऐसा तो जिसका कठोर शरीर का रूप। और वह अग्नि में उसका पानी हो शरीर के और फिर इकट्ठे हो जायें। अरेरे! ऐसा क्षण जाता नहीं, वहाँ ऐसा सागरोपम कैसे जायेगा? व्यतीत किया है इसने। व्यतीत किया है परन्तु गल नहीं गया—वहाँ मर नहीं गया। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ... अर्थ यह। आत्मा है न अब। भले वहाँ गया तो कर्म की निर्जरा हो, ऐसा कहा। ... नहीं आता? अपेक्षा से कहा।

मुमुक्षु : ... नरक में जाये, जाये तो निर्जरा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाये तो निर्जरा होती है, ऐसा आता है। आ गया है बराबर है। राग की अस्थिरता ऐसी रह गयी। और उसे कहा... उसे दृष्टि की निर्मलता है। निकलकर तीर्थंकर होगा। आहाहा! दर्शनशुद्धि अर्थात्.... उसका फल क्या और उसका ध्येय क्या? आहाहा! अलौकिक चीज़ है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक जाता है। दुःखी... दुःख कहीं संयोग से है? तो सुख तो... अन्दर में मिथ्यात्व और कषाय से दुःख और मिथ्या कषाय जितना गया, उतना सुख। आहाहा! इसकी त्रिकाली चीज़ और त्रिकाली रहित पर्याय में अनन्त काल अनादि अभी तक। स्वयं त्रिकाली चीज़ और रही अभी अनादि पर्याय वर्तमान तक वहाँ संसारदशा। आहाहा! उस संसारदशा का विचार करे तो इसे ऐसा लगे कि आहाहा! एक श्वास में अठारह भव निगोद के जीव। आहाहा! भव की गृद्धि, मिथ्यात्व के भाव की। यह महिलायें होती हैं न? कितने प्रकार की साड़ियाँ रखती हैं—तीन, चार, दस प्रकार की। बदला ही करे। रसोई बनावे तब दूसरी, बाहर निकले तब दूसरी, पानी भरने जाये तब दूसरी। जूते अलग प्रकार के। इसका अर्थ कि वहाँ गृद्धि हो गयी है। इसी प्रकार यहाँ भव में ऊपरा-ऊपरी भव करे गृद्धि मिथ्यात्व की। आहाहा!

मुमुक्षु : सन्दूक में पड़ी हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़ी हों कितनी ही, तो भी अभी मँगाती हैं दो। सब खबर है न। अच्छी-अच्छी पड़ी हों दस-बार प्रकार की। ... जाति के आते हैं। मुम्बई में ऐसा है। वहाँ एक ऐसा है ... यह अमुक प्रकार का है। क्या कहलाता है वह ? भात। अमुक भात का है तो एक अपने मँगाओ पाँच। ऐई! पोपटभाई!

मुमुक्षु : इसकी अलमारी में पड़ी हैं, उसमें गृद्धि...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एक ... क्या करूँ? और बदला-बदली करे वापस। बैठने जाना हो तो दूसरा, शोक में जाना हो तो दूसरा। काण अर्थात् शाम-शाम को जाये न, क्या कहलाता है? शाम को रोने जाये न? पहले ऐसा था। मर जाये तो शाम को चार-पाँच बजे सब महिलायें आधे घण्टे रोये। शोक करने। आठ-दस दिन रोवे मर जाने के बाद। हमने तो नजर से देखा है। हमारे दीपचन्दभाई गुजर गये बड़े भाई। ... ... फिर सब इकट्ठी होकर रोवे। आधे घण्टे। फिर ... बैठे। ... मुफ्त के। आहाहा! सब नजरों से देखा है। ५७ की बात है। (संवत्) १९५७ के वर्ष। ११ वर्ष की उम्र। (भाई की) २८ वर्ष की उम्र। ७ वर्ष का विवाहित। बहुत रूपवान शरीर था। खुशालभाई से बड़े थे। एक लड़का है जयन्तीभाई। ५६ में उसका जन्म और ५७ में गुजर गये। आहाहा! .... स्थिति गयी थी। लड़कों बाहर निकल जाओ। बाहर निकल जाओ। तुम्हारे देखने का नहीं है। ऐसे पड़े हैं। मरने की तैयारी। ... नजरों से देखा। मामा का घर वहाँ... चले गये थे। ... छोटा मरण। आहाहा! नाटक के खेल तो देखो सब! आहाहा!

भाई! तेरा रोना, मर गया (तो) तेरे रोने में पूरे अनन्त समुद्र भरें, ऐसे आँसू गिरे हैं, बापू! तुझे यहाँ जरा सी अनुकूलता में प्रसन्नता तुझे हो जाये, भाई! वह जहर पड़ता है तुझे। ...भाई! जरा कुछ पाँच-पचास लाख मिले। करोड़-दो करोड़ हों। ... हाथ व्यवस्थित न लगता हो तो। कोई ऐसा कहे, पोपटभाई को दो करोड़ है। ... बातें हैं। कौन गिनने गया है? परन्तु उसमें क्या है? धूल दो करोड़ हो या पाँच करोड़ हो। वह तो मिट्टी अंगारा है। दुःख के निमित्त हैं।

मुमुक्षु : मिट्टी तो ठण्डी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख के निमित्त हैं, कहा न, अग्नि। आहाहा! अरे! तुझे क्या हुआ है? ऐसे दुःख में तू अनन्त बार रहा। तेरी जरा सी अनुकूलता में तुझे अन्दर प्रसन्नता आयी। और प्रसन्नता से प्रसन्न हो गया है तू। आहाहा! तेरे आनन्द के नाथ भगवान को भूलकर पर में प्रसन्न हुआ। आहाहा! भाई! तूने तेरा खून किया है। आनन्दस्वरूप है, ऐसा न जीवित जाना, ऐसा आनन्दस्वरूप हूँ—ऐसे जीव को जीवित नहीं जाना और यह पर में प्रसन्नता आयी, भगवान! तूने तेरा खून किया है। कहो, चन्दुभाई! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : यह करना क्या, इसका कुछ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना आत्मा के सन्मुख जाकर निर्णय और निश्चय अनुभव करना। जहाँ स्वयं आनन्द से पड़ा है, वहाँ जाकर स्थिर होना। निर्णय करके करना... स्थिर, यह बात है। आहाहा! समझ में आया? यह कहेंगे बाद में। २२ में कहेंगे। शक्ति है, उस प्रमाण करना, बाकी श्रद्धा तो सच्ची रखना। आहाहा! श्रद्धा में वह गड़बड़ यदि की बापू! तेरे भव का अन्त नहीं आयेगा। आहाहा! माता के गर्भ में बारह-बारह वर्ष रहा तू। उल्टे सिर ... ... बारह वर्ष, हों! एक बार बारह वर्ष। आहाहा! यह डबल। वापस बारह वर्ष हुए निकलकर तुरन्त वापस दूसरे गर्भ में बारह वर्ष।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जन्म होता है। यह तो बारह वर्ष रहता है। उसकी कायस्थिति है। यह तो जन्म होता है नौ महीने में होता है, वह अलग वस्तु है। न हो तो बारह वर्ष तक न हो, ऐसा (भी) सिद्धान्त है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ... कहते हैं अभी आत्मा की। ... से रहा है, ऐसा कहे। तीन-तीन, चार-चार वर्ष तो अभी ... है। ... कहलाये वह। ... एक बार बारह वर्ष, दूसरी बार बारह वर्ष। वहाँ मरकर वापस... चौबीस वर्ष ऐसे। ऐसे अनन्त बार। ऐई! पोपटभाई! पाँच-छह लड़के, पैसे .... यह सब भूल गया। सब भूल गया है तू। वह वहां और मैं यहाँ, ऐसा हो गया। आहाहा!

रात्रि में एक लड़का मरा। रात्रि में निद्रा नहीं होती। ... लड़का मर गया था न रायचन्द। उसकी माँ बेचारी ... लींबड़ीवाली। पैसेवाले। दस लाख रुपये। यह ७५ की बात है। छह महीने का विवाह और मर गया। था भेड़ जैसा शरीर।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वह दामोदरसेठ जब देखे अन्दर। ... बाहर खड़े। अन्दर रोती हो सोते-सोते। सोते-सोते रोती हो। यह तो जरा व्यक्ति। ... ऐसे रोती हो। पैसे दस लाख रुपये। चालीस हजार की तो आमदनी। घर में आरबो। घोड़े। घोड़े, हों! एक-दो घोड़े, ऐसा नहीं। वह तो राजवाला बड़ा... घोड़ी के ऊपर स्वयं बैठा हो, ऐसे निकले तो ऐसा राजा निकला हो, ऐसा उसका दिखाव। वह ... घर में रात्रि में ... बाई को। सुबकती हो। मर गया। आहाहा! यह पैसे थे तो भी। आहाहा! पति नगरसेठ। स्थानकवासी का सेठ। बड़ा इज्जतदार व्यक्ति। घर में पूरा गाँव। दस हजार रुपये का एक गाँव। तब जमींदार, हों! ... पूरा गाँव घर में। दस हजार तब, अर्थात् अभी सोलहगुणे हो गये, सब। आहाहा! वह रोई ... कहते बेचारे, हों!

अरेरे! ऐसे-ऐसे दु:ख तो भगवान! तूने अनन्त बार (सहन) किये हैं, भाई! तुझे खबर नहीं। तू भूल गया है। तू अनादि का है, रहा कहाँ, तुझे खबर नहीं? यह पर्याय, ऐसी पर्याय में रहा अनन्त बार। आहाहा! मानो आँख मींचकर उघाड़े तो सुख की झलक नहीं थी कहीं। ऐसा सुख का सागर भगवान छोड़कर तू यह बाहर भटका। आहाहा! भाई! तेरे स्थान में आ जा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? '**अप्पाणं**' कहा न यहाँ?

अपने आत्मस्वरूप के अनुभव द्वारा उसको श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, आचरण सो निश्चय से सम्यक्त्व है,... तेरे स्वरूप के स्थान में, तेरे राज में आ जा न प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : मुद्दे की रकम तो यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है।

भगवान आत्मा **अपने आत्मस्वरूप के...** आहाहा! **अनुभव द्वारा...** आहाहा! अनुभव अर्थात् उसे अनुसरकर ज्ञान होना। वस्तु जो चिदानन्द आत्मा पूर्ण स्वरूप, उसे अनुसरकर ज्ञान होकर श्रद्धा करना, ऐसा कहते हैं। **अनुभव द्वारा उसकी श्रद्धा,...** ऐसी

की ऐसी श्रद्धा किस काम की? वस्तु को... आत्मा ज्ञान में, लक्ष्य में आया नहीं, उसे श्रद्धा किसकी करना? आहाहा! समझ में आया? ... अपने। ... था न आज। नहीं कहा था? आहाहा! कहते हैं कि तत्त्वार्थश्रद्धानं व्यवहार से सम्यग्दर्शन। वह भी निश्चय हो उसे, हों! ....

अपने आत्मस्वरूप के अनुभव द्वारा... पाठ में है न? **'अप्पाणं हवइ' 'णिच्छयदो अप्पाणं हवइ'** ऐसा ही है न? आत्मा, वह समकित है, ऐसा कहते हैं। आत्मा, वह समकित है, ऐसा कहा यहाँ तो। **'अप्पाणं हवइ सम्मतं'** ऐसा कहा न? आत्मा स्वयं समकित है। आहाहा! आत्मध्वनि यही है। भगवान आत्मा शुद्ध पूर्ण ध्रुवस्वरूप के सन्मुख की जहाँ ज्ञान करके, अनुभव करके, प्रतीति की कि आत्मा आत्मा स्वयं समकित है। वह व्यवहार समकित वह आत्मा तू नहीं ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! उसकी समझ में इस बात को सुहावे और रुचे तो सही। आहाहा! पाँच-दस लाख, पच्चीस लाख मिले एक दिन में तो लापसी का आंधण रखो, कहते हैं। आज तो सगे-सम्बन्धियों को बुलाओ, पुत्री-दामाद को बुलाओ गाँव में हो तो। गाँव में हो तो, बाहर से तो कहाँ बुलावे? ... और जब पाँच लाख जाये, आहाहा!

मुमुक्षु : ... अब तब दो लाख, जाये तब दो लाख....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाय... हाय... आये हुए समाते हैं, परन्तु गये समाते नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! लोग ऐसी बातें करते हैं। धूल में भी नहीं आये। तेरा नाथ अन्दर लक्ष्मी का भण्डार पड़ा है। वह उसे जिसने जाना, वह लक्ष्मीवन्त और वह बादशाह है। वह सधन है और बाकी सब निर्धन है। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा! जिसे हथेली में मोक्ष तो अल्प काल में आयेगा। आहाहा! कोलकरार किया है... आया तो तुझे मोक्ष तो आना ही पड़ेगा। आहाहा! क्योंकि उस केवलज्ञान की अनन्त पर्याय को मैंने कब्जे में कर लिया है। आहाहा!

यह **'अप्पाणं हवइ' 'णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं'** सत्य ऐसा जो निश्चय, वह आत्मा, वह समकित है। वह व्यवहार उपचार है। समझ में आया? वह अनात्मा है। आहाहा! व्यवहार समकित वह अनात्मा है। ऐसा मार्ग है, भगवान! यह तेरी महिमा की बात क्या कहना! तेरी महिमा के समक्ष केवलज्ञान ढँक जाये। एक अंश है। तेरी महिमा

का पार नहीं होता, बापू! तुझे विश्वास नहीं, तुझे उसका भरोसा नहीं। विद्यमान चीज़ की मौजूदगी की तूने अविद्यमानता की, भाई! आहाहा! लक्ष्मी यह क्या है? आहाहा! पति मर जाये, दो वर्ष का विवाह हो, फिर रोवे। गहरे कुँए में उतारकर डोरी काटी। ऐसे रोवें महिलायें। सुना हुआ है, हों! महिलायें रोवे न! हमारी रोती थी न हमारी। कुँए में उतारकर, क्या कहते हैं भाषा दूसरी? ...काटा। वह डोरी होती है न, उसे उतारकर काटा। जाओ नीचे। ऐसे रोवे महिलायें, पति मरे तब। अरेरे! कुछ नहीं... तूने काटा है, बापू! पर से सुख और पर से दुःख मानकर तूने तेरा वरत (डोरी) काटा, गहरे गया संसार में। आहाहा!

कहते हैं, **अपने आत्मस्वरूप के अनुभव द्वारा...** अनुभव द्वारा। भान द्वारा, ऐसा कहते हैं। **श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, आचरण...** आचरण अर्थात् इस प्रकार का उसे। **सो निश्चय से सम्यक्त्व है, यह सम्यक्त्व आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं है...** अब अर्थ करते हैं। **आत्मा ही का परिणाम है, सो आत्मा ही है।** यह अर्थ किया। **'अप्पाणं हवइ सम्मत्तं'** आहाहा! 'समकित सावन आयो...' आज बोले थे झांझरीजी। वे बोलते हैं न। ... निर्णय का ठिकाना नहीं होता। झांझरी को, यह लोगों को बहुत रास आ गया है। घर में सब हों ... बहुत अच्छा। भाग्यशाली। ... उसकी इसे श्रद्धा। आहाहा! सवेरे बोले थे। उनसे मैंने एक बार कहा था, हों! वह ... का आहार करते। खबर है? सेठ के यहाँ आहार करते थे। एक व्यक्ति बैठा था। पहले कुछ देखने में उसमें? अन्यमति में ऐसा है। ... में भी ऐसा है। दूसरे के सन्त हैं, ऐसा बोलते उस भजन में। ऐई! गंगवाल! खोटी बात है। सेठ लालचन्दसेठ। वहाँ आहार करते थे न घर में, वहाँ गंगवाल बैठे थे। यह नहीं। जैनधर्म के सिवाय सन्त कहीं होते नहीं। दूसरे... बोले परन्तु... बोले ऐसा ... काल में। परन्तु समकित किसे कहना? आहाहा! बापू! अरेरे! सत्य श्रद्धा। सम्यक् अर्थात् सत्य। जैसा वह सत्यस्वरूप है, वैसा उस सत्यस्वरूप से परिणमना। आहाहा! होवे वैसा ... आहाहा! बापू! इस वस्तु के लिये प्रयत्न चाहिए है। इसे बहुत पक्ष व्यवहार के सुधारे हों। विकल्प से इसे पक्का निर्णय हो पहले तो। आहाहा!

मुमुक्षु : ... करना काम का।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं सब समझने के। आहाहा! यह विकल्प से निर्णय

करे, तथापि वह निर्णय सच्चा नहीं। अन्तर अनुभव होकर निर्णय हो... यह कहा न? अनुभव द्वारा। है न, वस्तु तो ऐसी ही है। ऐई! छोटाभाई! ऐसा है यह। भिन्न वस्तु वह निश्चय समकित।

वह **निश्चय से सम्यक्त्व है, यह सम्यक्त्व आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं है...** वस्तु अर्थात् वह पर्याय भी अलग नहीं वहाँ। **आत्मा ही का परिणाम है, सो आत्मा ही है।** आहाहा! **ऐसे सम्यक्त्व और आत्मा एक ही वस्तु है, यह निश्चय का आशय जानना।** निश्चय है न! समकित और आत्मा एक ही वस्तु है। निश्चय का आशय जानना। परिणाम परिणामरूप से है, द्रव्य द्रव्यरूप से है, यह और अलग वस्तु। अभी यह समझना। आहाहा!

अब कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन ही सब गुणों में सार है, उसे धारण करोः— अनादि अनेक गुण हों, परन्तु उसमें सार तो यह है। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, परन्तु उसमें सम्यग्दर्शन, वह सार है। आहाहा!

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥२१ ॥

अर्थः—ऐसे पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर देव का कहा हुआ दर्शन है... यहाँ समकित की बात है। जिनेश्वरदेव परमेश्वर ने कहा हुआ '**केवलिजिणेहिं भणियं**' आयेगा न बाद में २२ में आता है। इसका अर्थ ऐसा लिया है इन्होंने '**केवलिजिणेहिं भणियं**' अर्थात् कि तीर्थंकर केवली होने के बाद ही प्ररूपणा करते हैं, ऐसा। दूसरे करते हैं, वह उसके अनुवाद के रूप का कथन करते हैं... छद्मस्थ... उनके कहे हुए का अनुवाद है। और यह तो सीधा जब कहते हैं, वह तो केवली होने के बाद तीर्थंकर बोले। आहाहा! समझ में आया? '**जिणपण्णत्तं दंसणरयणं**' वीतराग तीर्थंकरदेव ने कहा। जिनेन्द्रदेव ने। आहाहा! आता है न पाठ में आता है। मुनि हो, परन्तु उपदेश न दे तीर्थंकर छद्मस्थ (दशा में)। केवल (ज्ञान) होने के बाद ही उपदेश देते हैं। दूसरे को ... दें, वह तो उनका कहा हुआ अनुवादरूप से देते हैं। समझ में आया? इसलिए दूसरे नहीं कह सकते, ऐसा कुछ नहीं है। परन्तु दूसरे कहते हैं, वह कहा हुआ कहते हैं। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर होने के बाद तीर्थंकर को उपदेश आता है। आहाहा! ऐसे पुरुष की ... वाणी वह ... होने के बाद आती है। आहाहा! जिनके समक्ष अर्धलोक के नायक शकेन्द्र को और ईशान इन्द्र, जैसे पिल्ला बैठे, वैसे बैठे सभा में। आहाहा! प्रभु! हमारे वैभव की कीमत हमको नहीं, ऐसा कहते हैं, प्रभु! तेरे वैभव की कीमत हमको है। आहाहा! अर्धलोक के स्वामी हो! ३२ लाख विमान जिसे। एक-एक विमान में असंख्य देव। किसी में संख्या छोटी है। उसका यह ... है। देव का स्वामी। वह भी समकिती एकावतारी। आहाहा! प्रभु के निकट जाकर प्रभु की वाणी सुनने। अरे! परन्तु ऐसा वैभव है न! अरे! प्रभु! यह वैभव हमारा नहीं। नाथ! तुझे जो केवलज्ञान का वैभव प्रगट हुआ, उस वैभव का हमारे बहुमान होकर आता है। आहाहा! यह वैभव हमको तुच्छ है। इससे हम अधिक हैं, यह हमको नहीं लगता, प्रभु! आहाहा! यह बैठे हों और वाणी निकले वीतराग की, केवल (ज्ञान) होने के बाद जिनेन्द्र की (वाणी खिरे)। ओहोहो! धन्य अवतार जिनके। श्रोताओं को सुनाया, यह नहीं आता पंचास्तिकाय में? यह सुनाया। स्वभाव श्रोताओं को सुनाया भगवान ने। मोक्ष स्वभाव का... सुननेवालों को भगवान ने ऐसा सुनाया है। आहाहा!

ऐसा कहते हैं।

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स॥२१॥

तीन बातें की हैं। एक तो **पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वरदेव का कहा हुआ दर्शन है...** केवलज्ञानी परमात्मा ने कहा। एक बात। **गुणों में और दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन रत्नों में सार है...** क्षमादि गुणों में और सम्यग्दर्शन आदि चारित्र रत्न में सार उत्तम। दो; और **मोक्ष मन्दिर में चढ़ने के लिये पहली सीढ़ी है,...** आहाहा! इसकी विशेष व्याख्या आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण २, रविवार, दिनांक १४-१०-१९७३
गाथा-२१, २२, प्रवचन-२६

यह अष्टपाहुड़ है। इसमें दर्शनपाहुड़ पहला अधिकार चलता है। गाथा २१ चलती है।

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स॥२१॥

अर्थ :— ऐसे पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वरदेव का कहा हुआ दर्शन है... यहाँ दर्शन की व्याख्या यहाँ सम्यग्दर्शन है। पहले दर्शन की व्याख्या आयी थी, वह अलग। पहले दर्शन की व्याख्या यह थी कि यह आत्मा बाह्य-अभ्यन्तर त्याग से विराजमान अन्दर निर्मल आनन्दसहित जिसकी अन्तर आत्मा की दृष्टि स्व के आश्रय से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हुआ है। और जिसे आत्मा का ज्ञान, आत्मज्ञान हुआ है, तदुपरान्त जिसमें जिसे चारित्र अर्थात् स्वरूप की रमणता है। वह जीव.... जैनदर्शन है, उसे जैनदर्शन कहते हैं। उसके साथ व्यवहार में उसे अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत आदि के विकल्प जो होते हैं, यह व्यवहार जैनदर्शन है। वह निश्चय जैनदर्शन है। और जिसकी मुद्रा नग्न दिगम्बर हो, वह अजीव का निमित्त इतना, उसे इस मर्यादा का होता है। उसे यहाँ जैनदर्शन कहा जाता है। भगवानजीभाई! ऐसा है।

वस्तु जैनदर्शन अर्थात् मोक्ष का मार्ग, निश्चय और व्यवहार और निमित्त, तीनों को यहाँ जैनदर्शन में गिनने में आया है। जिसके अन्दर में अपना आत्मा आनन्दस्वरूप की अधिकता में किसी की अधिकता ज्ञानी को भासित नहीं होती। अर्थात्? बाहर की सुविधा .... असुविधा में हीनता और सुविधा में अधिकता धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को भासित नहीं होती। स्वयं ही अधिक आनन्द का नाथ हूँ, पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन हूँ। ऐसा जहाँ अन्तर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन है, वहाँ अपने स्वभाव की ही सब दुनिया से भिन्न अधिकता भासित होती है। पोपटभाई! तुम्हारे पैसे-बैसे की तो इसमें गिनती ही नहीं। आहाहा!

जिसकी एक समय की पर्याय की भी जहाँ अधिकता नहीं। ऐसा जो भगवान

आत्मा का सच्चिदानन्द पूर्ण स्वरूप, उसकी जिसे दृष्टि निर्विकल्प अनुभव हुआ है। आहाहा! उसके साथ ज्ञान आत्मा का और उसके साथ चारित्र की रमणता। यह छठवें गुणस्थान के योग्य उसे पंच महाव्रत के और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प होते हैं और नग्न मुद्रा होती है। उसे जैनदर्शन गिनने में आया है। चन्दुभाई! आहाहा! इस जैनदर्शन से जो कोई भ्रष्ट अर्थात् विपरीत वेश और विपरीत श्रद्धा आदि हो, उसे जैनदर्शन गिनने में आया नहीं। और उसमें भी अब सम्यग्दर्शन वापस। क्षमा आदि गुण और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुण, उनमें भी सम्यग्दर्शन मुख्य वस्तु है। समझ में आया? वह बात यहाँ चली है। २० में कहा न कि '**जीवादीसद्दहणं**' जैसा जीव का स्वरूप व्यवहार से भेद (सहित), अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष नौ तत्त्व की जैसी स्थिति है, वैसी भेदवाली श्रद्धा, उसे व्यवहार समकित कहते हैं। वह समकित है नहीं। परन्तु जिसे अन्तर आत्मा के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ है, उसकी ऐसे नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा को व्यवहार श्रद्धा कहा जाता है। समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, **जिनेश्वरदेव का कहा हुआ दर्शन है, सो गुणों में...** ऐसा जो सम्यग्दर्शन... ओहो! उसकी क्या कीमत, कहते हैं। आहाहा! जो गुण अर्थात् क्षमा आदि गुण हो, उसमें भी उस सम्यग्दर्शन की प्रधानता है। समझ में आया? **और दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन रत्नों में (सम्यग्दर्शन) सार है...** आहाहा! परन्तु वह बहुत सूक्ष्म बातें। साधारण प्राणी को उसकी परीक्षा होना भी कठिन है। समझ में आया? साधारण अर्थात् ऊपर से देखनेवालों को। ऊपर से बाहर के आचरण और क्रिया देखनेवालों को वह सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसे रुचना कठिन है।

मुमुक्षु : प्रभु! आपके समवसरण में तो ऐसे ही आये हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का है।

देखो न '**जिण**' कहा है न? '**जिणपण्णत्तं**' नीचे तो स्पष्टीकरण करेंगे। ... में तो।'**केवलिजिणेहिं भणियं**' ऐसा कहा है न भाई बाद में? २२ में। ऐसा कहकर कहते हैं, केवली तीर्थंकरों ने यह कहा है। यह जिन प्रणीत है, यह तीर्थंकरों का कहा हुआ है। केवली होने के पश्चात् तीर्थंकरदेव ने ऐसा कहा है। क्योंकि वे तीर्थंकरदेव केवलज्ञान

से पहले उपदेश नहीं करते। आहाहा! सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव पूर्ण सर्वज्ञपना प्राप्त न हो, तब तक वे उपदेश नहीं करते। अब मूल पुरुष है वह जीव। दूसरे उपदेश करें छद्मस्थ, समकिती आदि मुनि, वे उनके कहे हुए का अनुवाद करके कहते हैं। अनुवाद अर्थात् उसे अनुसरकर कहते हैं। समझ में आया?

लो, यह अनुवाद का अर्थ हो गया। वह अनु आया न भाई! अनु? अनुवाद अर्थात् अनुसरकर बोलना। फिर अनुवाद करना है न।... कहाँ की कहाँ बात है? समझ में आया? जिनेश्वर वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा तीर्थंकरदेव केवल (ज्ञान) हो, तब ही उपदेश करते हैं। आहाहा! मूल पुरुष हैं, इसलिए उन्हें छद्मस्थ में उनका उपदेश नहीं होता। आहाहा! उन भगवान तीर्थंकर ने कहा कि जिसे आत्मस्वरूप की अन्तर प्रतीति अनुभव होकर निर्विकल्प दर्शन हुआ, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। उसे छह द्रव्य, नौ तत्त्व, नौ पदार्थ, सात तत्त्व और पंचास्तिकाय की आगम परमागम के अनुसार श्रद्धा हो, उसे व्यवहार श्रद्धा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उसे '**जिणपण्णत्तं**' तीर्थंकर त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर ने ऐसा समवसरण में इन्द्र और गणधरों के बीच ऐसा कथन था। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य, मैं कहता हूँ—ऐसा नहीं कहते '**जिणपण्णत्तं**' तीर्थंकर ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह सार है। तीन रत्न में भी सम्यग्दर्शन सार है। यह आया न उसमें? रत्नकरण्डश्रावकाचार। तारण तरण।

मुमुक्षु : ... कर्णधार...

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्णधार। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र में भी सम्यग्दर्शन कर्णधार है। जहाज चले, उसे चलानेवाला ऐसा है। मार्ग सम्यग्दर्शन से शुरु होता है। कल्याणजीभाई! आहाहा! सार है।

और वह **उत्तम है...** आहाहा! **मोक्षमन्दिर में चढ़ने के लिये पहली सीढ़ी है,...** आहाहा! पूर्ण आनन्दस्वरूप ऐसा जो मोक्ष, पूर्ण आनन्दस्वरूप ऐसा मोक्ष, उसे प्राप्त करने में पहली निसरणी / सीढ़ी, पहला सोपान यह है। आहाहा! समझ में आया? एक तो जिनेश्वर ने कहा, यह कहा, क्षमादि गुणों में वह मुख्य है और दर्शन-ज्ञान-चारित्र में

रत्न माणेक रत्न, दर्शन-ज्ञान-चारित्र माणेक, उसमें भी सम्यग्दर्शन मुख्य है। वह **मोक्षमन्दिर में चढ़ने के लिये पहली सीढ़ी है,...** ओहो! पूर्णानन्द की प्राप्ति होने में उसका पहला सोपान सम्यग्दर्शन है।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि—हे भव्य जीवो! तुम इसको अन्तरंग भाव से धारण करो,... 'भावेण' है न पाठ? **'धरेह भावेण'** आहाहा! क्रियाकाण्ड से नहीं। **बाह्य क्रियादिक से धारण करना तो परमार्थ नहीं है,...** कोई शुभभाव से भगवान को माने और शुभभाव से क्रिया करे, वह कोई मार्ग नहीं। आहाहा! समझ में आया? **तुम इसको अन्तरंग भाव से धारण करो,...** ओहोहो! भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य आनन्दघन, उसकी अन्तर में सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीति भाव से धारण करो। आहाहा!

मुमुक्षु : भाव से धारण करो अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निर्विकल्प भाव धारण करो, ऐसा कहते हैं। मात्र विकल्प से धारण करो कि ऐसा यह मार्ग है और ऐसा यह मार्ग है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। विकल्प से निर्णय करे... आहाहा! यह नहीं, ऐसा कहते हैं। पहला विकल्प से निर्णय करते हैं न कि ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है... यह नहीं। आहाहा! निर्विकल्प की दृष्टि से निर्णय करे, वही मूल पहला सार है। आहाहा! कहेंगे इसमें। दूसरा भले तुझसे चारित्र न पले, व्रतादि, तपादि न हो सके, परन्तु श्रद्धा तो ऐसी रखना। क्योंकि वह श्रद्धा, उसे भगवान ने समकित कहा है। समझ में आया? यह कहेंगे अभी २२ में।

यहाँ तो कहते हैं, **हे भव्य जीवो! 'धरेह भावेण'** ऐसा कहा न? किसने कहा यह? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। **'धरेह भावेण'** यह किसी को कहते हैं न? भव्यजीव को कहते हैं। आहाहा! जिसकी श्रद्धा भाव से धारण है, भाई! आहाहा! तेरा निर्मल निर्विकल्प भाव, उससे अन्तर की दृष्टि हुई है, ऐसा धारण कर। आहाहा! मन के सम्बन्ध से नहीं, राग के सम्बन्ध से नहीं, अन्तर के शुद्ध स्वभाव के भाव से सम्यक् धारण कर। आहाहा! समझ में आया?

बाह्य क्रियादिक से धारण करना तो परमार्थ नहीं है,... अर्थात्? कि कोई शुभराग के विकल्प से समकित ऐसा है, यह चारित्र ऐसा है—ऐसा जो शुभभाव, उस क्रिया से

धारण करना, वह वस्तु नहीं है। आहाहा! और ऐसे शुभविकल्प से निश्चित करे, इसलिए उसे यह सम्यक् निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। पहले हो, यह कहना व्यवहार है। पहले और बाद में कुछ नहीं इसमें। पहले तो यह कहा। परन्तु वह तो समझाना हो, तब क्या हो?

मुमुक्षु : समझाना कहाँ से...

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाने की पद्धति में व्यवहार के अवलम्बन से बात की जाती है। पहला विकल्प, पहला निर्णय तो देखे। जैसी चीज़ है, वैसा उसे विकल्प तो होना चाहिए न? विकल्प से तो निर्णय होना चाहिए न! इतनी बात। तथापि वह विकल्प से निर्णय हुआ, वह उचित है और निश्चय का कारण है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : वह भूमिका नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वस्तु ही नहीं। यह आवे सही। नय, निक्षेप, प्रमाण नहीं आया १३वीं गाथा में? नय, निक्षेप, प्रमाण से उसका ज्ञान करने में ऐसा भाव आवे सही। परन्तु वह वस्तु नहीं है। अभूतार्थ है। आहाहा! वस्तु जगत को सुनना मुश्किल पड़ी। सम्यग्दर्शन निश्चय क्या उसे पहुँचने के लिये उसकी श्रद्धा जो आनी चाहिए कि व्यवहार के क्रियाकाण्ड से वह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। तेरे शुभयोग की क्रिया लाख-करोड़ कर, परन्तु उससे निश्चय समकित हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वह तो सहजस्वरूप अपने स्वभाव से ज्ञात हो, माना जाये और पहिचाना जाये, ऐसी वह चीज़ है। समझ में आया? आहाहा!

यह **बाह्य क्रियादिक...** बाह्य विनयादि। आदि में सब आया न? देव-गुरु-शास्त्र का विनय करना, बहुमान करना, शास्त्र पढ़ना, शास्त्र का जगत को कहना। ऐई! देवीलालजी! ऐसी **क्रियादिक से धारण करना तो परमार्थ नहीं है,...** आहाहा! यह आदि शब्द है न? देव-गुरु-शास्त्र का विनय करने की क्रिया से सम्यग्दर्शन हो, ऐसा नहीं है। यह वस्तु ही अलग है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत जवाबदारी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाबदारी नहीं। वस्तु की स्थिति की कीमत ही इतनी है।

मुमुक्षु : उपदेश कौन दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश कौन दे ? उपदेश तो राग है। आहाहा ! उसमें मुझे उपदेश देना आता है, यह तो मिथ्यात्वभाव है। विकल्प उठे, वह अलग बात है, परन्तु उसे अधिकपने मानना कि यह उपदेश देना मुझे ही आता है, मेरी वाणी का मेरा स्वामीपना हूँ। मैं जैसा कहूँ, वैसी निकलती है। सच्ची बात है, बापू ! मूल मार्ग को रखने के लिये अनन्त काल से यह आया है। आहाहा ! और मैं दूसरे को समझाकर समझा दूँ, यह भी जोर राग का विकल्प है, वह आत्मा का नहीं। शशीभाई ! कहते हैं...

मुमुक्षु : वकील लोग जज को समझावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी समझावे ? धूल समझावे ? अभिमान था वहाँ। ऐई ! चन्दुभाई ! आहाहा !

भाई ! कहाँ नहीं अमृतचन्द्राचार्य ने ? मैं समझानेवाला हूँ और यह मुझे समझाता है अथवा मैं समझनेवाला हूँ और यह मुझे समझाता है, ऐसा करना नहीं। आहाहा ! पूज्यपादस्वामी तो कहते हैं कि मैं दूसरे से समझूँ, मैं दूसरे को समझाऊँ, यह पागलपना है। आहाहा ! राग है न ?

मुमुक्षु : तो सम्यग्दृष्टि का राग...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात है न यहाँ सम्यग्दृष्टि की। ज्ञानी को भी यह विकल्प है, वह पागलपना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! आत्मा की शान्ति का, समाधि का लूटनेवाला है। आहाहा ! यह शुभभाव। मार्ग वीतराग का बहुत सूक्ष्म है। वीतराग सर्वज्ञ... है।

क्रियादिक से धारण करना तो परमार्थ नहीं है,... आहाहा ! कहो, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और तप और ऐसी क्रिया, उससे माने कि हम करते हैं तो हमको समकित है या नहीं ? श्रद्धा है या नहीं ? कहते हैं, नहीं, नहीं। ऐसा तो अनन्त बार किया है। **अन्तरंग की रुचि से धारण करना...** आहाहा ! अन्तरंग... अंग। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, वह अन्तरंग है। आहाहा ! विकल्प है, वह अन्तरंग नहीं। वह तो बहिरंग है। आहाहा ! वस्तु तो ऐसी है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आये बिना रहेगा नहीं। आने पर भी उससे प्राप्त नहीं होता, ऐसी वस्तु है। आहाहा! तीर्थंकर केवली... आहाहा! अर्थात् क्या? एक समय में जिन्हें तीन काल का ज्ञान। ... पर्याय में पूर्णता का ज्ञान हो जाये उन्हें। आहाहा! उनका कहा हुआ तत्त्व यह है। समझ में आया?

अन्तरंग की रुचि से धारण करना... अन्तरंग में आत्मा आनन्दस्वरूप निर्विकल्प प्रभु, उसकी रुचि से धारण करना। यह २१वीं हुई।

अब कहते हैं, **श्रद्धान करता है उसी के सम्यक्त्व होता है:—** भले पालन न कर सके, चारित्र न हो, व्रत-तप न हो, समझ में आया? भोग की वासना का त्याग भी न हो। परन्तु वह श्रद्धा यदि निर्विकल्प यथार्थ करे तो भगवान के मुख में से आया है कि वह समकिती है। समझ में आया? यह गाथा आती है नियमसार १५४। नियमसार की १५४ नीचे लिखा है न? वहाँ यह कहा, भाई! तुझे निश्चय प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान ध्यान में करना चाहिए। अन्तर के निर्विकल्प ध्यान में प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, सामायिक... भक्ति, समाधि, प्रायश्चित वह सब अन्तर स्वरूप की दृष्टिपूर्वक ध्यान अर्थात् लीनता, निर्विकल्प लीनता, वह तुझे कर्तव्य है। आहाहा! परन्तु यदि इतना न कर सके तो गड़बड़ नहीं करना कि विकल्प से तो कुछ करते हैं न, व्यवहार से तो करते हैं न? गड़बड़ नहीं करना। श्रद्धा रखना कि मार्ग तो यह है। आहाहा! अन्तर सम्यग्दर्शन उपरान्त चारित्र की रमणता तुझमें न हो सके, न हो सके पुरुषार्थ की मन्दता से, चारित्र के दोष से। आहाहा! श्रद्धा करना कि करनेयोग्य तो अन्दर स्थिर होकर ध्यान में रहना, वह ठीक है। आहाहा! श्रद्धा में गड़बड़ नहीं करना कि भाई! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, पश्चात् चारित्र न हो, भले वासना शुभादि की हो, तो वह भी अभी बस है। ऐसा नहीं होता। चन्दुभाई! आहाहा! ऐसा है।

जिसे अनन्त तीर्थंकरों ने प्रसिद्ध किया है कि वास्तविक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... चारित्र अर्थात् आत्मा के आनन्द की रमणता। आहाहा! जिसकी वीतराग की पर्याय की छलाछल दशा प्रस्फुटित हो गयी है। आहाहा! ऐसा चारित्र, उसे मोक्ष के

मार्गरूप से, प्रधानरूप से कहा है। वह तीन काल में सम्यग्दर्शन भले, परन्तु मोक्ष का प्रधान कारण चारित्र है। चारितं खलु धम्मो। आहाहा! वह वस्तु तो यह है। अन्दर रमणता, स्वरूप का भान होने के बाद भी स्वरूप की रमणता अन्दर में लीनता, आनन्द में, ध्यान में ध्रुव को ध्येय बनाकर ध्यान के विषय में भगवान को लेकर स्थिर हो जाना, इसका नाम चारित्र है। इसका नाम प्रतिक्रमण, इसका नाम प्रत्याख्यान, इसका नाम आलोचना, इसका नाम भक्ति। यह इसका नाम भक्ति। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान की व्यवहारभक्ति और विकल्प में आया, इसलिए कुछ करते हैं। ऐसा रहने देना। श्रद्धा में गड़बड़ नहीं करना। समझ में आया? आहाहा! पूरा दारोमदार सम्यग्दर्शन के ऊपर है। मोक्षमार्ग का दारोमदार। समझ में आया? आहाहा! भाई! तुझे छूटने के पंथ में, जो मार्ग (संसार से) छूटने का है दर्शन-ज्ञान-चारित्र... अकेला चारित्र और यह वर्तन न हो सके तो पुरुषार्थ की कमजोरी, चारित्र का दोष। तुरन्त यहाँ कहेंगे। कोष्ठक में कहा है। चारित्र का प्रबल दोष। यह तो अपनी ओर से लिखा है। कोष्ठक में डाला है। उसे चारित्रमोहकर्म का उदय प्रभाव... ऐसा कहकर डाला है। बात तो यह है। चारित्र का अपना दोष है। आहाहा! विषय वासना, अस्थिरता, ऐसी गृद्धियाँ उत्पन्न हों, इसलिए उसे चारित्र नहीं हो सकता। समझ में आया? नहीं हो सकता तो बचाव नहीं करना। समझ में आया? क्योंकि शास्त्र में तो कहा है कि ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : बचाव नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा बचाव नहीं करना। वहाँ किस अपेक्षा से कहा था। गड़बड़ नहीं करना। आहाहा! हम तो धर्मी तो हैं। हमारे भोग होते हैं, विषय होते हैं, सब होता है। हम तो निर्जरा के लिये करते हैं।

मुमुक्षु : टाले नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : टालने की बात कहाँ? यह तू बचाव करता है, वह तो देख न! यह तो सम्यग्दर्शन के जोर की अपेक्षा से, राग जरा होता है, परन्तु राग में रुचि नहीं है।

भोग की वासना जहर जैसी भासित होती है। काला नाग जैसे देखे और भय पावे, उसी प्रकार अशुभभाव यह विषय की वासना, आसक्ति, वह काला नाग है। मिठास उड़ गयी है जिसकी, जहरपना भासित होता है। उसे यहाँ निर्जरा कहा, अर्थात् क्या? दृष्टि का जोर है इस अपेक्षा से। बाकी भोग का भाव, वह निर्जरा है? तब तो फिर भाव छोड़ना और स्थिर होना अन्दर से आनन्द में, यह तो रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह तो आत्मा के सम्यक् आनन्द की अपेक्षा से वह भोग की वासना जरा उठी, उसकी कुछ कीमत नहीं। स्वभाव की कीमत है, ऐसा गिनकर वह अशुद्धता छूटती जाती है, ऐसा कहते हैं। परन्तु अशुद्धता है, वह तो दुःख का कारण और बन्ध का कारण है, सम्यग्दृष्टि को। आहाहा! ऐई...!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्धता अभी चौथे-पाँचवें में नहीं होती, यह किसने कहा? छठवें में अशुद्धता होती है। मुनि को भी प्रमाद, पंच महाव्रत के विकल्प आदि सब अशुद्धता है। आहाहा! वह दोष है।

मुमुक्षु : वह तो परद्रव्य पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य पर्याय है। वह तो किस अपेक्षा से कही? स्वभाव की अपेक्षा से। पर्याय की अपेक्षा से उसकी है। आयेगा अपने नहीं? दोपहर में आयेगा। पुण्य और पाप वह ज्ञान की पर्याय है, आत्मा की पर्याय है, ऐसा कहा वहाँ। वह १५वाँ नहीं कथन। कथम् न जाने... यह दोपहर में चलता है। गाथा बोल ली गयी है। अर्थ आयेगा। (समयसार गाथा ३९० से ४०४)

शुभ और अशुभभाव वह तेरा तेरे ज्ञान में अर्थात् ज्ञान का अर्थात् आत्मा की पर्याय है। समझ में आया? एक ओर कहे कि शुभ और अशुभभाव पुद्गल है। किस अपेक्षा से? वह तो त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि में उस विकार का अभाव है, दृष्टि और दृष्टि के विषय में विकार नहीं, इस अपेक्षा से (बात है)। पर्याय में पर्यायज्ञान से देखे तो सब अन्दर है। देवीलालजी! आहाहा! कण-कण का हिसाब यहाँ लिया। राग जितने प्रकार का छठवें गुणस्थान में मुनि को राग आता है। मुनि को तीन कषाय (चौकड़ी)

का नाश है। सच्चे भावलिंगी को भी शुभराग और संसार की ओर झुका है, ऐसा भगवान तो कहते हैं। ऐसे झुका है, ऐसा कहते हैं। जगत से देखने पर। समयसार नाटक में। ... दूसरी। वह तो शुभभाव जगत से ऐसे झुका है। जगत की ओर झुका है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...समयसार नाटक। है न परन्तु वस्तु। शुभभाव स्वयं संसार है। आहाहा! इस संसार की पर्याय अपने में है। देवीलालजी! बात तो, उसमें बचाव करना नहीं, यह यहाँ कहना चाहते हैं। यह गाथा वहाँ १५४ नियमसार में। यह सब प्रतिक्रमण... करने के बाद भाई! आत्मा का ध्यान और आनन्द में रहना, उसे प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना कहते हैं। तुझे विकल्प उठे कि यह... मिच्छामि दुक्कडम, वह नहीं। वह तो राग है। आहाहा! वह शुभराग की क्रिया, वह तो जहर का प्याला, जहर का घड़ा है। आहाहा! वीतरागमार्ग तो ऐसा है। जिसमें राग का सूक्ष्म कण भी (सह) सके नहीं। समझ में आया? यह तो वीरों का काम है, कायरों का नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ... (समकित को) तत्त्वार्थसूत्र में उसे देवायु का कारण कहा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : देवायु का, वह तो राग को कहा, उसे क्या? भाषा है। व्यवहार समकित का अंश है, वह बन्ध का कारण है। निश्चय समकित तो अबन्ध स्वरूप है, परन्तु साथ में राग है, इसलिए देव आयु का आरोप से कथन है। आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक कहा कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अपराध है। यह तो तत्त्वार्थसूत्र में पाठ है। शुभोपयोग अपराध।

मुमुक्षु : पुरुषार्थसिद्धि उपाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थसिद्धि उपाय। पुरुषार्थसिद्धि उपाय (गाथा २२० में है)। समझ में आया? आहाहा! षोड्शकारण भावना, जिनसे तीर्थंकरगोत्र बँधता है। भगवान फरमाते हैं, भाई! वह तेरा अपराध है। पण्डितजी! आहाहा! समझ में आया? भाई! तेरे उभरने का अवसर तो वीतरागभाव से है। आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार में दुःखी होकर... उसके दुःख की बातें भगवान कहे तब सुनते हुए आँसू गिरें, ऐसी बातें हैं।

आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ जरा सुविधायें और थोड़ा कुछ पाँच इन्द्रियाँ मिलीं, कुछ निरोगता, किंचित् ठीक, वहाँ उसमें हर्षित हो जाये और प्रसन्न हो जाता है। बापू! प्रसन्नता, तेरी रोग में प्रसन्नता है तेरी। आहाहा! तुझे किसमें प्रसन्नता आती है? यह कुछ शरीर ठीक मिला, हमारे स्त्री ठीक, पुत्र ठीक, आमदनी बहुत प्रवाह से चली आती है। अरे! बापू! वह क्या चीज़ है? वह तो अग्नि का लावा है। आहाहा!

उसमें नहीं कहा? अनुभवप्रकाश। मुख में अग्नि का लावा डाले तो मुझे ऐसा है। अनुभवप्रकाश में आता है। अग्नि में लावा डाले तो अग्नि मुझे प्रगटी है, ऐसा कहता है। ऐसा आता है। आहाहा! भगवान! शुभराग भी अग्नि की ज्वाला है। आया नहीं छहढाला में? 'राग आग दाह दहे सदा तातै समामृत सेईये' छहढाला में आता है, पण्डितजी! वह छहढाला नहीं? 'राग आग दाह दहे सदा...' आहाहा! शान्तरस प्रभु, उसमें राग है, वह आकुलता की अग्नि है। पंच महाव्रत के परिणाम आकुलता की अग्नि है, भाई! मार्ग ऐसा वीतराग कहते हैं। मेरी भक्ति में तू जो खड़ा है, वह कषाय अग्नि है। आहाहा! वीतराग कहे, हों! अज्ञानी का पार नहीं। आहाहा! हमारी भक्ति में तो ऐसे तल्लीन हो गया है। बापू! वह तो शुभराग है। वह कषाय अग्नि है। वह साधन नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई! तेरा छूटने का पंथ कोई अलग है। आहाहा! बँधने के पंथ में चढ़कर माना कि मैं छूटने के मार्ग में हूँ। भाई! तू भ्रम में है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं—

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं॥२२॥

अर्थ :— जो करने को समर्थ हो वह तो करे... सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूप की स्थिरता की रमणता चारित्र की बने उतनी तो करे। **जो करने को समर्थ नहीं हो...** ओहो! स्वरूप के चारित्र और आनन्द की लीनता करने में समर्थ न हो, **उसका श्रद्धान करे...** श्रद्धान तो पक्का रखना, भगवान! आहाहा! वह चारित्रदोष है, वह चारित्र नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम चारित्र का दोष है। वह चारित्र नहीं। श्रद्धा में कुछ गड़बड़ नहीं करना। आहाहा! समझ में आया?

‘**केवलिजिणेहिं भणियं**’ उसका वचन टीका में कहा है, भाई! टीका है न अष्टपाहुड़ की। ‘**केवलिजिणेहिं**’ तीर्थंकर भगवान जिनेश्वर ने केवली होने के बाद कहा। इससे पहले भगवान का उपदेश नहीं होता। आहाहा! ‘**केवलिजिणेहिं भणियं**’ तीर्थंकर ने केवली होकर कहा है। जिसने तीन काल—तीन लोक को एक समय में झपट लिया है (जान लिया है)। आहाहा! ऐसे त्रिलोकनाथ की वाणी जिनेन्द्र केवलीरूप से हुए, उनकी वाणी यह आयी है, कहते हैं। भाई! तू श्रद्धा पक्की रखना। न पाल सके तो उसका बचाव नहीं करना कि पंचम काल में ऐसा भी चारित्र होता है, ढीला ऐसा होता है, शिथिल होता है, अभी पाँचवाँ काल है। चौथे काल जैसा अभी नहीं होता, इसलिए यह भी ढीला, शिथिल भी चारित्र है। ऐसा करना नहीं। घर में चोट लगेगी तुझे। श्रद्धा की विपरीतता की तेरी चोट तुझे लगेगी। समझ में आया? आहाहा!

तुझे जितना चारित्रदोष अन्दर है, उसका बचाव नहीं करना कि दिक्कत नहीं, यह भी मेरे निर्जरा हो जाती है। अरे! भगवान! किस अपेक्षा से कहा और क्या लगा देता है तू? समझ में आया? शास्त्र में ऐसा भी आता है। सम्यग्दृष्टि को जो उदय आवे, वह खिर जाता है। उसका स्वामी नहीं। परन्तु किस अपेक्षा से? ऐई! वह तो दर्शन की अपेक्षा से स्वामी नहीं, ऐसा कहा है। स्वभाव की अपेक्षा से स्वामी नहीं, ऐसा कहा है। परन्तु पर्याय में राग जितना है, उसका स्वामी ज्ञान की अपेक्षा से आत्मा है। स्वामी है। आहाहा! समझ में आया? ४७ नय नहीं आये प्रवचनसार में? वहाँ ऐसा लिया है। जो समकिती भी जानता है, गणधर जानते हैं। छद्मस्थरूप से राग का कर्ता हूँ, करनेयोग्य है यह बुद्धि गयी है, परन्तु करना, करना परिणमन, वह अभी रहा है, वह उसका है, और उस करने का स्वामीपना, उसका अधिष्ठाता आत्मा है। कर्म के कारण वह राग हुआ है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरेरे! उभरने के अवसर में वहाँ बचाव का अवसर करे, उसका उद्धार कहाँ जाकर होगा, भाई? मनुष्य का आयुष्य पूर्ण हो जायेगा। आँखें मिंच जायेंगी, बापू! यह सब सामग्री धूल राख हो जायेगी। आहाहा! तेरे सम्बन्धियों को जो पहिचानता है, वह तू उनके चमड़े को पहिचानता है। उस चमड़े की तो श्मशान में राख होगी। तुझे वह पहिचानते हैं, वे भी चमड़े को पहिचानते हैं। उसकी तो राख होगी। सब रजकण उड़ जायेंगे।

केवली भगवान ने श्रद्धान करनेवाले को सम्यक्त्व कहा है। श्रेणिक राजा समकित क्षायिक। समझ में आया? तथापि मरते हुए सिर पछाड़ा या जो हो वह। लो! आहाहा! परन्तु वह तो राग है, वह कहीं समकित को दोष नहीं है। अरे! आहाहा! यह चारित्र का दोष है वह तो। और वे जानते हैं अन्दर धारा में। ज्ञानधारा में वे जानते हैं कि यह मेरी धारा नहीं है। यह उदय की धारा में है। है मेरी पर्याय में। आहाहा! समझ में आया? जिनेन्द्रदेव वीतराग परमात्मा जिनचन्द्र। जिनचन्द्र। जिन्हें वीतरागी शान्ति पूर्ण प्रगट हुई है, ऐसे जिनचन्द्र की वाणी में तो यह आया है।

करने को समर्थ हो वह तो करे और जो करने को समर्थ नहीं हो, उसका श्रद्धान करे... अर्थात् ऐसा कहना चाहते हैं। वापस फिर बचाव किया है उसने। ऐसा कि अभी यह व्रतादि करते हैं, वह चारित्र है, ऐसा कहते हैं। वह चारित्र जिसे पालना नहीं, वे चारित्र की निन्दा करते हैं कि चारित्र नहीं, यह नहीं, यह चारित्र नहीं। परन्तु किसे कहना चारित्र? भाई! तेरे व्रत के परिणाम हैं, वे अभी शुभराग हैं, वह चारित्र नहीं और वह भी चाहिए वैसे वे भी कहाँ हैं? आहाहा! भाई! तुझे यह कोई... यह मार्ग वीतराग का है। जिसमें अनन्त-अनन्त केवली और तीर्थंकरों के पंथ में पड़ना, भाई! वह कहीं ऐरे-गैरे किसी कायर के पंथ में नहीं जाना है। आहाहा! कहो, पोपटभाई! ऐसा मार्ग है। पाव घण्टे (१५ मिनिट) की देरी है, हों! सवेरे से आने का है न अपने यहाँ। आहाहा!

भावार्थ :— यहाँ आशय ऐसा है कि यदि कोई कहे कि—सम्यक्त्व होने के बाद में तो सब परद्रव्य - संसार को हेय जानते हैं। सम्यग्दर्शन में तो राग से लेकर परवस्तु सब हेय जानते हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसका जिसे सत्कार, स्वीकार दृष्टि में—अनुभव में हुआ, वह तो राग का कण हो महाव्रत का, परन्तु वह हेय जानता है। तो राग से लेकर सब परद्रव्य, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत सब हेय है। समझ में आया? जिसे भगवान आत्मा की प्रीति, रति जगी है। लो, यह और निर्जरा का आया। निर्जरा (अधिकार, समयसार) में आता है न... जिसे आत्मा आनन्द और ज्ञान का सागर, उसकी रति और प्रीति और रुचि जगी है, उसे राग से लेकर सब चीज़ों का हेयपना है, वृत्ति उड़ गयी है। आहाहा! एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। जिसे भगवान आत्मा का प्रेम है, उसे राग और पर का प्रेम

उड़ गया है। और जिसे राग तथा पर का प्रेम है, उसे भगवान का प्रेम नहीं। ... आत्मा यहाँ तो। आहाहा! कहो, कल्याणजीभाई! ऐसा स्वरूप है। वाडा में से निकलकर ... वहाँ यहाँ ऐसा कठिन आया। आहाहा! कहो, रतिभाई! वहाँ से उन श्वेताम्बर में से निकले वहाँ ऐसा कठिन आया। मार्ग तो यह है, अनन्त तीर्थंकरों का मार्ग। यह कोई पक्ष और सम्प्रदाय नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि **सम्यक्त्व होने के बाद में तो सब परद्रव्य - संसार को...** पूरा देखा! परद्रव्य की व्याख्या की है संसार। रागादि से लेकर सब संसार धर्मी को तो हेय ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को आत्मा के प्रेम की रुचि के कारण जगत में किसी राग की रुचि, प्रेम अन्तर में से आता ही नहीं और यदि वह संसार का विकल्प और संसार के फलरूप यह सामग्री, स्त्री, पुत्र, राजपाट चक्रवर्ती का हो, उसमें यदि उसे कुछ प्रेम लगा, अधिक हो गया, मिथ्यादृष्टि है। वह सम्यग्दृष्टि नहीं। आहाहा! अरे! संसार में रहना और संसार का प्रेम रखना नहीं! संसार में रहना ही नहीं, रहा ही नहीं तू। ज्ञानी संसार में है ही नहीं। ज्ञानी तो आत्मा के आनन्द और ज्ञान-दर्शन में ही है। राग में ज्ञानी नहीं तो फिर वह बाहर में कहाँ से आया? आहाहा! मार्ग ऐसा है, पोपटभाई!

संसार का ल्हावा (मौज) लेना और धर्म भी साथ में करना—ऐसे दो नहीं होते, ऐसा कहते हैं। ... कितने दो-दो करोड़ रुपये हों, चार-चार करोड़ रुपये हों। कितने चालीस करोड़, दो अरब। पोपटभाई है या नहीं? है। इनका साला शान्तिलाल खुशाल। यह उसके बहनोई हैं। मर गया न अभी बेचारा। शान्तिलाल खुशाल। दस मिनिट। कितने पैसे। अभी बाहर भले नहीं आये हों, परन्तु अरबोंपति कहलाये। उसमें क्या, बापू! बाहर की चीज़ है। आहाहा! एक दस मिनिट। कभी जिन्दगी में रोग नहीं। भाई कहते थे। पहला-पहला आया डेढ़ बजे, मुझे दुःखता है। वहाँ डॉक्टर को बुलाया, वहाँ तो ऊं। कुछ नहीं मिलता। दस मिनिट में कुछ नहीं। इस संसार के ... पीछे क्या रहा है, इसकी खबर नहीं उसे। आहाहा! देह छूट गया। क्या साधन? साधन तो भगवान! शुभराग भी साधन नहीं तो फिर यह बाहर के साधन कहाँ रहे तेरे? श्रद्धा पक्की रखना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं **संसार को हेय जानते हैं।** आहाहा! उदयभाव राग का, विषय का, शुभ का, उसे तो सम्यग्दृष्टि हेय जानता है न! **जिसको हेय जाने, उसको छोड़ मुनि बनकर चारित्र का पालन करे, तब सम्यक्त्वी माना जावे,...** अज्ञानी की दलील है। लो कहे, हम त्यागी हैं। त्याग तो करना नहीं, बातें करना है। हम समकिती... अरे! सुन न अब। आहाहा! समझ में आया? एक ऐसा कहती थी, वह बाई अभी है। दूसरे को समझाना आवे, वह बड़ा या स्वयं समझे, वह बड़ा? कि समझाना आवे वह बड़ा। और आज एक आया। आहाहा! मार डालते हैं। सब सभा इकट्ठी हो... से बातें करे और लड़े आमने-सामने। आहाहा! मानो हम तो भारी समझे। अरे! मर जायेगा। निगोद में जायेगा, तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गया है तू, बापू! तुझे यह क्या है? आहाहा! भाषा समझना, विकल्प उठा, वह किसका? बापू! तुझे यह क्या हुआ? ऐसा कि समझाना आवे, वह बड़ा। यह प्रश्न उठा था सम्प्रदाय में—स्थानकवासी में। भाई! समझे वह बड़ा कहलाये। स्वयं समझे वह या समझावे वह बड़ा कहलाये? ऐई! चन्दुभाई! आहाहा! सुना है तुमने? सुना है? नहीं सुना। ... वाले हों? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो समझाते हुए केवली हों और मूक केवली हों। सर्वज्ञ हों और वाणी न हो, उससे क्या? यह तो ऐसा कि वाणी भी नहीं। उससे क्या उनकी हीनता हो गयी? और वाणी जो करे तीर्थंकर को वाणी होती है, वे केवली से अधिक हो जाये? देवीलालजी! यह तो ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : यह तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : लाखों का उपचार कोई कर सकता नहीं। आहाहा! केवली—मूक केवली कुछ बोले नहीं और मोक्ष चले गये। आहाहा! वाणी भी नहीं। किसी का उपकार किया नहीं, परन्तु अपना उपकार करके मोक्ष में चले गये। आहाहा!

कहते हैं कि जिसे हेय जाने, उसे छोड़े तो समकित कहलाये—ऐसी अज्ञानी की दलील है। **मुनि बनकर चारित्र का पालन करे, तब सम्यक्त्वी माना जावे, इसके**

समाधानरूप यह गाथा है। उसके समाधानरूप से यह गाथा कही जाती है। **जिसने सब परद्रव्य को हेय जानकर...** सबको हेय जाना। विकल्पमात्र को। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर भी ज्ञानी को तो हेयरूप से है। आहाहा! उनकी वाणी—दिव्यध्वनि भी हेयरूप से है। जगत को कठिन पड़ता है। आहाहा! अरेरे! इसे खबर नहीं, इसकी समृद्धि की। उसकी इसे खबर नहीं (कि) अन्दर में क्या सम्पदा है!

कहते हैं, **जिसने सब परद्रव्य को हेय जानकर...** सब द्रव्य में यह व्याख्या आ गयी। वीतराग की वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, शत्रु और स्वजन तथा पंच परमेष्ठी पद, वह भी जिसने हेय जाना है। आहाहा! डालचन्दभाई! कठिन मार्ग भाई! **जिसने सब परद्रव्य को हेय जानकर निजस्वरूप को उपादेय जाना,...** अपना स्वरूप जो ज्ञानानन्द प्रभु, उसे ही जिसने आदरणीय और अंगीकार करके आदरणीय माना है। आहाहा! कहो, समझ में आया? पहले तो थे न भाई ... ईश्वरचन्द कहते थे, नहीं? ईश्वरचन्दजी! वह भूरीबहिन नहीं थी भूरीबाई और वे। इन्दौर में नहीं? तुम नहीं कहते थे कि कोई साधु-बाधु को पैर नहीं छूते। बहुत पढ़ी हुई महिला। भूरीबाई। पठन बहुत था। दूसरे वे पन्नालाल। पन्नालाल... वे बहुत। वे भी किसी को साधु-बाधु किसी को मानते नहीं। भूरीबाई ने तो प्रतिमा भी नहीं ली थी कभी। अरे...! बापू! अभी तो... बहुत पढ़ी हुई बाई। विधवा थी, फिर बहुत उतर गया था... वह अभी समझे बिना लेकर बैठे बड़े। बहुत होशियार थी। देखी न ईश्वरचन्दजी? तुमने देखी?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह बस। आहाहा! वह किसी साधु को, त्यागी को किसी को वन्दन नहीं करती। कोई है ही नहीं। भारी कठिन।

यहाँ कहते हैं कि श्रद्धा में समकिती सबको हेय मानता है तो भी छोड़ नहीं सकता। इसलिए उसे सम्यग्दर्शन नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **श्रद्धान किया तब मिथ्याभाव तो दूर हुआ,...** वह परद्रव्य विकल्प से लेकर सब संसार हेय है और आत्मा निजस्वरूप ही उपादेय है, ऐसा श्रद्धान अन्दर किया, **तब मिथ्याभाव तो दूर हुआ, परन्तु जब तक (चारित्र में प्रबल दोष है तब तक) चारित्र मोहकर्म का उदय प्रबल**

होता है... यह पण्डित जयचन्दजी का अर्थ है। और यह कोष्ठक में डाला वह अपना यहाँ का अर्थ है। व्याख्यान के समय कहा हो न कि भाई! चारित्रदोष अपना है। वह तो कर्म के निमित्त से बात की है। इसलिए कोष्ठक में डाला है। जब तक अपनी निर्बलता है, चारित्र का दोष है, आर्तध्यान-रौद्रध्यान ध्यान होता है, संकल्प-विकल्प वर्तता है, वह चारित्र का दोष है। आहाहा!

तब तक चारित्र अंगीकार करने की सामर्थ्य नहीं होती। तब तक स्वरूप की... चारित्र, वह कहीं व्रत, नियम और बाहर, वह कहीं चारित्र है? लो, लेकर बैठे व्रत यह किया। धूल भी नहीं। चारित्र तो आत्मा के अन्तर में रमणता जम जाना, चरना, आनन्द का चरना, आनन्द का भोजन करना। आहाहा! पशु जैसे घास को चरे, वैसे धर्मी जब अन्तर के आनन्द को चरे, रमे आनन्द में, उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया? **चारित्र अंगीकार करने की सामर्थ्य नहीं होती। जितनी सामर्थ्य है, उतना तो करे और शेष का श्रद्धान करे,...** मार्ग तो प्रभु का, आत्मा के ध्यान में रहना, वही मोक्ष का मार्ग है। विकल्प आदि भाव, वह मोक्ष का मार्ग नहीं।

इस प्रकार श्रद्धान करनेवाले को ही भगवान ने सम्यक्त्व कहा है। जिनेनद्रदेव ने केवली होने के बाद जिनेश्वर ने उसे समकित कहा है। भगवान ने तो यह (कहा है)। लो, विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ३, सोमवार, दिनांक १५-१०-१९७३
गाथा-२२, २३, २४, प्रवचन-२७

अष्टपाहुड़। दर्शनपाहुड़ अधिकार। २२वीं गाथा चली। उसमें ऐसा कहा कि आत्मा की शान्ति प्रमाण दर्शन—सम्यग्दर्शनसहित आचरण योग्यता प्रमाण करे। और वह शक्ति न हो तो श्रद्धा तो पक्की रखे। उसे भगवान ने समकित कहा है। चारित्रदोष हो, सम्यग्दर्शन—क्षायिक समकित होने पर भी चारित्रदोष हो। परन्तु उसकी श्रद्धा में ऐसा चाहिए कि चारित्रदोष है, मुझमें अभी पवित्रता पूर्ण नहीं है। ऐसा उसे श्रद्धा में पक्का रखना चाहिए। और उसका अर्थ यह हुआ, सम्यग्दर्शन होने पर भी चारित्रदोष है। चारित्रदोष नहीं? सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगटने से कहीं चारित्रदोष ही नहीं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : परद्रव्य पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य क्या? पर्याय अपनी है न! आहाहा! चारित्रदोष वह किसका? कहीं कर्म के कारण हैं? अपने अपराध के कारण हैं।

मुमुक्षु : ७५, ७६, ७७, ७८ (गाथा, समयसार) में परद्रव्य पर्याय कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी बात है। वह किस अपेक्षा से बात है? वहाँ तो वस्तु द्रव्यस्वभाव पूर्ण शुद्ध चैतन्य की जहाँ दृष्टि हुई, उस दर्शन की अपेक्षा से स्वभाव का परिणमन स्वभाव ... विभावरूप परिणमन उसका नहीं है, ऐसा गिना है। ऐंई! ७५-७६। इससे ऐसा मान ले कि रागादि होते हैं, वे पुद्गल के परिणाम, मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। मूढ़ है वह समझता ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय से तो ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से किस प्रकार? निश्चय से यह है। पर्याय में राग है, यह निश्चय से है।

मुमुक्षु : पर्याय व्यवहार और राग निश्चय।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निश्चय... निश्चय स्व वह निश्चय, ऐसा यहाँ। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों निश्चय हैं। निमित्त पर, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों निश्चित है उसकी अपेक्षा से। जब त्रिकाल द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि कराने को मुख्य, वह निश्चय है और पर्याय आदि, वह गौण करके व्यवहार कहने में आया है। अभाव करके नहीं। वह जब ज्ञान की, सम्यग्ज्ञान द्वारा जब खोज करे, तब मेरी पर्याय में रागादि है।

मुमुक्षु : परन्तु पर्याय तो मैं हूँ नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है किसकी ? जड़ की है ? पर में है वह ? पण्डितजी !

मुमुक्षु : पर्याय तो ऐसा कहती है कि मैं तो द्रव्य हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से ? वह तो पर्याय का झुकाव त्रिकाल के ऊपर है, इस अपेक्षा से पर्याय कहती है कि मैं द्रव्य हूँ। परन्तु वापस उसके साथ हुआ ज्ञान, वह ज्ञान ऐसा जानता है (कि) मेरी पर्याय में राग और द्वेष का जितना परिणमन है, वह मेरा अपने स्वरूप में, मैं उसका स्वामी, मैं उसका स्वामी और मेरे अपराध से वह भाव होता है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे एकान्त खींचे, वह नहीं चलता। यहाँ वीतराग अनेकान्त मार्ग है। ऐसा मार्ग है। आहाहा !

चारित्र, स्वरूप में असंयमपना जितना चारित्र दोष है, वह दोष ही है। सम्यग्दृष्टि को रुचि में स्थिरता करने का भाव है। तो भी वह स्थिरता पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण होती नहीं। इसलिए उसे श्रद्धा में ऐसा नहीं रखना कि भले न होती हो तो भी दिक्कत नहीं। चारित्र है।

मुमुक्षु : चारित्र आये बिना रहनेवाला नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु रहने का तो भविष्य में न ! अभी कहाँ है ? आहाहा ! बात तो जैसी हो, वैसी होनी चाहिए न ! अभी चारित्र नहीं। चारित्र आनेवाला है, वह तो बाद में आवे तब की बात है। भावना में तो इस प्रकार से भाता है कि इस स्वरूप में रमणता... मैं। परन्तु रमण हुआ नहीं, तब तक तो दोष है न ? यह वस्तुस्थिति है। उसे सम्यग्दर्शन और श्रद्धा में गड़बड़ नहीं करना, ऐसा कहते हैं। यह गाथा वहाँ भी आयी है। नियमसार। लिखा है न ! १५४ में यह आया है।

कि भाई! निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय आलोचना वह तो आत्मा के ध्यान में लीनता, वह प्रतिक्रमण है। निश्चय प्रत्याख्यान, निश्चय भक्ति, निश्चय समाधि, निश्चय आवश्यक उन सब स्वरूप भगवान... यह एक तो विचार... आया है अधिक। कि आत्मा की जो जीवत्वशक्ति है न आत्मा में? वस्तु जो है, उसमें जीवत्व नाम का एक गुण है। जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता, वीर्य तो इकट्ठा आ जाता है जीवत्व में। ऐसे प्राण से जिसका जीवन धार रखा है। आहाहा! अर्थात्? ऐसी जो शक्ति है। जीव की जीवनशक्ति, उसका टिकना, ज्ञान, दर्शन और आनन्द और सत्ता से है। ऐसा जिसे पर्याय में स्वीकार हुआ, वर्तमान पर्याय ने स्वीकार किया कि यह प्राण से दर्शन, ज्ञान और चारित्र और आनन्द से जीव का जीवन है। ऐसा जिसकी पर्याय में स्वीकार हुआ, उसमें उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द के अंश बाहर आये, वह उसका जीवन है। वह उसका जीवन है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है। हाँ, ऐसा चले? यह तो मार्ग है, बापू! अनन्त केवली, अनन्त तीर्थंकर...

कहते हैं, आहाहा! जीव उसे कहते हैं कि जिसमें जीवत्वशक्ति अनादि-अनन्त पड़ी है, ऐसा अनादि-अनन्त जीवत्वशक्ति का धारक वह जीव, उसे जिसने पर्याय में दृष्टि से, ज्ञान से जिसे स्वीकार किया, उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति, आनन्द का अंश, सत्ता की निर्मलता, वह उसका जीवन सम्यग्दृष्टि का है। दस प्राण से जीना, वह जीवन धर्मी का नहीं, तथा दस प्राण से... भावप्राण दस के जो हैं। वे तो जड़ के। पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काया, श्वास, आयुष्य वे तो जड़ हैं। वह तो अजीव का जीवन है। अन्दर योग्यता है भावप्राण जीने की, अज्ञानरूपी भावप्राण बाह्य। इन्द्रिय से योग्यता भाव की, मन, वचन, काया की योग्यता—वह भी अज्ञानी का जीवन है। आहाहा! ज्ञानी का जीवन तो जड़ के जीवन से भिन्न भावप्राण, पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काया, श्वासोच्छ्वास के जीवन से भिन्न जीव की शक्ति है। चन्दुभाई! आहाहा! ऐसा मार्ग है, परन्तु भाई! आहाहा!

इस जीवत्वशक्ति का धारक जीवस्वरूप भगवान, उसके जीवत्वशक्ति के कारणरूप शक्ति को बनाकर जिसने पर्याय में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, शान्ति, आनन्द आदि भावप्राण प्रगट किये, ओहोहो! वह जीव का जीवन है। समझ में आया? और जिसने पूर्ण प्रगट किये, वह तो केवली का जीवन। स्थिरता से अधिक जीवन प्रगट किया, वह चारित्र का जीवन है। ऐसी बात है। आहाहा! स्वयं... पर के साथ सम्बन्ध क्या है? पर तो यह सब उसके कारण से खड़े और उसके कारण से परिणम रहे हैं। और पर्याय में दस प्राण की योग्यता जो है, वह योग्यता उस पर्यायबुद्धि में, अज्ञानबुद्धि में वह मान्य है। आहाहा!

अथवा जिस सम्यग्ज्ञान में जीवत्वशक्ति के भान में जो प्राण प्रगट हुए, वह उसका वास्तविक जीवन है, उसके साथ योग्यता इतनी रही है, उसे ज्ञान जानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। इससे पाँच इन्द्रिय की योग्यता से रहना, मन, वचन और प्राण। द्रव्यार्थिक है वह छह है और प्राण है, वह दस है। उसके आयुष्य वे अलग प्राण में आते हैं। बाकी वे यह आहार, श्वास, इन्द्रिय, भाषा, मन वह छह पर्याप्ति इसमें—दस में आ जाती है। शरीर, इन्द्रियाँ आ गयी, मन, वचन, काया छह पर्याप्ति आ गयी। एक आयुष्य नहीं आता। पर्याप्ति में। छह पर्याप्ति में पूरा रूप उसमें हो, तब नौ आवे और एक दसवाँ आयुष्य आवे। ऐसी जो पर्याय में जो योग्यता है, वह एक जानने जैसी रहे। स्वरूप की दृष्टि होने पर अर्थात् कि आत्मा जैसा है, वैसा उसे दृष्टि में प्राप्त होने पर, उसका ज्ञान, आनन्द आदि का जीवन प्रगट हुआ। वह तो उसका वास्तविक जीवन है। और जो पाँच इन्द्रिय आदि मन, वचन की योग्यता और एक... रह गयी अभी, वह उसे ज्ञान जानता है कि यह है। जाननेयोग्य है। वह भी मुझमें है, ऐसा जानता है, हों! पर के कारण नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! निर्मलानन्द प्रभु वह निर्मल से जीवे, उसमें जीवन है।

उसके जीवन में जितनी मलिनता है, वहाँ तक उतना ज्ञान जानता है कि मुझमें है। मेरे कारण से है। किसी पर के कारण से या पंचम काल है, इसलिए यह निर्बलता का दोष है, ऐसा नहीं। देवीलालजी! बात ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोष देखना या नहीं देखना?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव देखना। परन्तु स्वभाव देखकर दोष का ज्ञान तो साथ में होता है न! स्वभाव को जाननेवाला ज्ञान एक पक्ष का हुआ, परन्तु दूसरे पक्ष का ज्ञान व्यवहार का, उसे जाने या नहीं अकेला शुद्ध जाने, उसे तो मिथ्यादृष्टि है। अकेला शुद्ध जानकर अत्यन्त शुद्ध पर्याय प्रगट हो गयी, वह तो अलौकिक है। परन्तु शुद्ध को जानने से शुद्धपना कितना प्रगट हुआ है, उसे मुख्य गिनकर उस शुद्ध की प्राप्ति है, ऐसा कहने में आता है। परन्तु उसे जितनी अशुद्धता बाकी है, वह तो उसे ज्ञान में बाकी ही रहा है।

मुमुक्षु : मुख्यता कहा तो गौण आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख्यता कहने से गौण आ जाता है। वह यह जिनशक्ति कहने का यह आशय है। तेरा सामर्थ्य हो तब तो आचरण दर्शनपूर्वक, ज्ञानपूर्वक आचरण करना। जितनी शक्ति हो तत्प्रमाण करना। न शक्ति हो तो गड़बड़ न करना कि इस काल में भी ऐसा भी चारित्र होता है और ऐसा भी मोक्ष का मार्ग होता है। समझ में आया? पोपटभाई! यह तो क्रीड़ा अलग है, हों! उस पैसे में कुछ मेहनत पड़ी नहीं, हों! वह तो भूल उस पूर्व के पुण्य से आये और चले गये, ऐसा दिखता है। उसमें कुछ है नहीं। धूलधाणी, वा पाणी।

मुमुक्षु : हमारे बड़ा पुरुषार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही पुरुषार्थ है। वह तो धूल में कहाँ पुरुषार्थ?

मुमुक्षु : हम करते हैं वह छोटा पुरुषार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मानता है कि मैंने यह चतुराई की, इसलिए यह पैसे मिले। धूल भी नहीं वहाँ। ...भाई! कैसे भाई! बात तो यह है, बापू! यह तो परम सत्य की बात हे। बाहर की लक्ष्मी आदि... पूर्व के पुण्य जल गये। लोन लाया है, वह जल गया। और नया कमाने का पाप का, नयी लोन पाप की बाँधी। भगवानजीभाई! ऐसा है।

यहाँ तो यह पुरुषार्थ है। आहाहा! और वीर्य का गुण का स्वरूप भी ऐसा भगवान ने वर्णन किया न? कि स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। ४७ शक्ति में आया है। आहाहा! वाणी तो वीतराग की, ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य, साक्षात् भगवान की वाणी, उसे जगत् के समक्ष रखते हैं। तुझे अन्दर में बैठना चाहिए बापू यह तो। समझ में

आया ? पुरुषार्थ उसे कहते हैं, प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि जो पुरुषार्थ आत्मा का, आत्मा की शान्ति, गुण आदि की परिणमन की रचना करे, वह वीर्य। पर की रचना करे ? मकान की, पैसे लाने की वह रचना कर सके वीर्य ? आहाहा! और राग की रचना करे, वह वीर्य नपुंसक वीर्य है। आहाहा! अपना पुरुष ऐसा आत्मा, उसकी शक्तियों की रचना में वीर्य न रुके और राग में रुके, वह उसका वीर्य नहीं। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! ऐसी बात है। आहाहा!

यह तो ... ऐसा आया न इसलिए जो वस्तु की स्थिति है, उस प्रकार श्रद्धा करना। पालन नहीं किया जा सके, इसलिए गड़बड़ करना कि नहीं, नहीं, समकिती को तो भोग निर्जरा का कारण कहा है। ऐसा करना नहीं। मर जायेगा। किस अपेक्षा से कहा था ? वह तो दृष्टि के जोर में उसका आदर नहीं, इसलिए उसे अल्परस और स्थिति बँधे, ऐसा भाव होता है, परन्तु उसे न गिनकर निर्जरा कही है। परन्तु तू ऐसा मान ले कि दिक्कत नहीं, हमारे भोग का भाव हो या योग का भाव हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? ऐसा भगवान ने कहा, देखो न '**सद्दहमाणस्स सम्मत्तं केवलिजिणेहिं भणियं**' तीर्थंकरदेव परमात्मा जिनस्वरूप विराजते हैं, उन्होंने तो केवली होकर यह कहा है। इससे पहले यह कहा नहीं था, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? उसका ज्ञान और उसकी वास्तविकता क्या है, यह पहले प्रगट तो लक्ष्य में तो ले। आहाहा! समझ में आया ? यह २२ गाथा हुई।

२३। **अब कहते हैं कि जो ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित हैं, वे वन्दन करनेयोग्य हैं:—** मुनि-चारित्रदशा की प्रधानता का वर्णन है न यह ? चारित्रसहित का, उसे जैनदर्शन कहा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप चारित्र और अट्ठाईस मूलगुण मुनि के योग्य जो व्यवहार विकल्प, है बन्ध का कारण, परन्तु ऐसा व्यवहार हुए बिना रहता नहीं। और नग्न मुद्रा। यह तीन होकर उसे जैनदर्शन का रूप कहा है। आहाहा! उसकी श्रद्धा करना कि मार्ग यह है। समझ में आया ? यह जैनदर्शन है। आहाहा! जैनदर्शन का आत्मा, जैनदर्शन का मोक्षमार्ग, जैनदर्शन का व्यवहारमार्ग, जैनदर्शन की निमित्तपने की मुद्रा। आहाहा! ऐसे की श्रद्धा करना। श्रद्धा में कहीं गड़बड़ करना नहीं। कहे—नहीं, नहीं, अभी इस काल में तो कुछ पुरुषार्थ मन्द है, इसलिए वस्त्रसहित भी

मुनिपना चल सकता है, अपवाद मार्ग यह मुनिपने का। यह अपवाद नहीं। अपवाद तो पंच महाव्रत के परिणाम और गुरु का विनय, शास्त्र वाँचन का विकल्प, वह अपवाद मार्ग है। वह विकल्प उठा, वह अपवाद मार्ग है। मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा! समझ में आया? ऐई! सुन्दरजी! क्या आया यह? जैनदर्शन इसे कहा। यह तुम्हारा भाई माने, वह जैनदर्शन नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो है बेचारा नरम व्यक्ति। जामनगर के मन्दिरमार्गी का प्रमुख है। इसके काका का भाई। हिम्मतभाई। नरम व्यक्ति है। परन्तु ... यह है भाई! मार्ग यह है।

जैन परमेश्वर का अनादि का धोख (परम्परा) मार्ग... अपवाद मार्ग में, वे विकल्प हैं, वह अपवाद मार्ग में जाते हैं। आहाहा! और अन्दर राजमार्ग तो परमात्मा स्वयं चिदानन्द है, उसके घोलन में दर्शन, ज्ञान और चारित्र की जो दशा हो, वह भगवान का जैनदर्शन का उत्कृष्ट मार्ग, उत्सर्ग मार्ग है। उत्सर्ग मार्ग है। साथ में व्यवहार हो, वह अपवाद मार्ग है। आहाहा! और नग्नपना हो, वह तो उसकी वस्तु की मर्यादा है। कि मुनि हो और वस्तु रहे और पात्र रहे, यह तीन काल में नहीं होता। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग कहते हैं कि श्रद्धा में गड़बड़ करना नहीं, हों! आहाहा!

कहा न वह प्रश्न हुआ था कि उद्देशिक आहार का जरा स्पष्टीकरण हो तो क्या? मैंने क्या कहा उद्देशिक का? यह गृहस्थ बनाते हैं, इसलिए वह उद्देशिक नहीं, ऐसा होता है? यह साधु के लिये गृहस्थ बनाते हैं, इसलिए वह उद्देशिक नहीं है, ऐसी होती है उसकी व्याख्या? भगवान का विरह है अभी। अभी परमेश्वर का विरह है, इसलिए केवली के मार्ग में ऐसी-ऐसी गड़बड़झाला डाले? वह मार्ग नहीं है, बापू!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। दोष है। सदा ही दोष है। किसकी मर्यादा? ... जयपुर में मनोहरलालजी (ने प्रश्न किया था)। मैंने कहा, बापू! मार्ग तो यह है। मैंने तो शान्ति से कहा था कि गृहस्थ बनावे, इसलिए वह उद्देशिक नहीं है और लेनेवाले को उद्देशिक दोष नहीं लगता, यह वस्तु नहीं होती। परमात्मा का विरह पड़ा है। उनके मार्ग को कहीं भी आँच आवे, वह मार्ग नहीं होता। आहाहा! पोपटभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ क्या? एक दिन भी उसके लिये बनाया हुआ ले, वह सब टूटता है। ऐसा कि चातुर्मास में उसके लिये ले तो बाधा नहीं। ... अरे! मार्ग बापू! अलग प्रकार है, भाई! उसमें कहीं भी त्रुटि नहीं आ सकती। यह यहाँ कहते हैं। श्रद्धा में कहीं गड़बड़ करना नहीं।

मुमुक्षु : मायाचारी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मायाचार नहीं। कोई बचाव नहीं चलता। यह तो केवली परमात्मा का मार्ग है। वह तू पंचम काल में जन्मा और वीतराग का विरह पड़ा, इसलिए मार्ग केवली का नहीं यह, ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनेश्वरदेव का यह मार्ग है। यहाँ तो यह कहा न? कि तीर्थंकर ने जैसी दीक्षा ली, तब जो रूप धारण किया, उस मार्ग को जिनदर्शन कहते हैं। जिनेन्द्रदेव, जिन्हें सौ इन्द्र पूजें। आहाहा! जिनके जन्म से पहले इन्द्र आकर माँ की सेवा करें, देवियाँ सेवा करें। आहाहा! ऐसे भगवान तीन ज्ञान के धनी, उन्होंने जब दीक्षा ली, तो जिनरूपी है। जैसा माता से जन्मा, वैसा रूप उनका अन्तर में तीन ज्ञान और आनन्दसहित, चारित्रसहित उनकी दशा यह हो गयी। उसे जैनमार्ग, वह वीतराग का मार्ग, वह जिन का रूप, वह तीर्थंकर का रूप, वह जैनदर्शन का रूप। समझ में आया? दुनिया में न बैठे और कोई विरोध भी करे, तिरस्कार करे, इससे कहीं सत्य बदल जायेगा?

कहा था न नियमसार में पीछे? दुनिया सुन्दर मार्ग की निन्दा करे, परन्तु सत्य मार्ग की अभक्ति नहीं करना, भाई! आहाहा! अरे! ऐसा सत्य है और यह दुनिया इतनी-इतनी निन्दा करे और आदर नहीं। ऐसा ही होता है। समझ में आया?

अब कहते हैं कि **दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित हैं, वे वन्दन करनेयोग्य हैं:—** गुरु वन्दन चारित्र की अपेक्षा है न अभी? २३ गाथा।

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।
ए दे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं॥२३॥

अर्थ :— दर्शन-ज्ञान-चारित्र,... उसे आत्मदर्शन, आत्मा प्रभु परमात्मा की भेंट

हुई सम्यग्दर्शन में। जीवती ज्योति चैतन्य जागृतस्वरूप भगवान परमात्मा स्वयं। आहाहा! जिसे दर्शन में ऐसे आत्मा की भेंट हुई, ऐसा सम्यग्दर्शन। ऐसे भगवान का, ऐसे परमात्मस्वरूप का, उसका ज्ञान और उसमें रमणता, चारित्र की लीनता। ओहो! और तप अर्थात् मुनिपना। अट्ठाईस मूलगुण इत्यादि। **तथा विनय...** यह डाला इन्होंने। विनय शब्द है न? विनय क्यों डाला? कि पाँच महाव्रतधारी मुनि सन्त दिगम्बर आदि का इसे विनय होता है। भले छोटे साधु का विनय न करे, परन्तु इसके हृदय में पंच परमेष्ठी के प्रति विनय होता है, सच्चे सन्त को। और वे मूलमार्ग से भ्रष्ट हुए, निकले, उन्होंने सच्चे सन्त का विनय नहीं किया और मत्सरभाव से द्वेष किया। समझ में आया? आहाहा!

यह तप। पाठ है न, देखो न! '**तवविणये**' मूल पाठ में है। '**दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।' भले प्रकार... 'सुपसत्था' स्थित हैं...** आहाहा! वह आत्मा के सम्यग्दर्शन में, ज्ञान में, चारित्र में, विनय में, तप में, इच्छा निरोध में स्थित है। आहाहा! '**णिच्चकालसुपसत्था**' वापस ऐसा नहीं (कि) किसी समय... यह आया तुम्हारा, देखो! चातुर्मास में ऐसा करना, आठ महीने ऐसा करना। यहाँ तो हमेशा '**सुपसत्था**' हमेशा की धारा ऐसी होती है, कहते हैं। समझ में आया? हमारे सम्प्रदाय में ऐसा चलता था। अधिक घर हों न, उतने साधु वहाँ घूमे और मिला रहे उन्हें। और ... गाँव में हों, वहाँ उनके लिये किया हो तो वह ले लेवे। और बड़े गाँव अधिक घर हों २००-३०० वहाँ जरा चाळा (नखरे) करे। हमारे बहुत कड़क था न हमारा सब कड़क था। गाँव में हों या शहर में। फिर दूसरे साधु नकल करे। ऐसा कि यह लोग इनके लिये किया हुआ—बनाया हुआ लेते नहीं। तो अपने बड़े शहर में नहीं खाना। गाँव में तो छह घर, पाँच घर हो तो... समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गड़बड़ करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गड़बड़ करे, ऐसा नहीं चलता। हमारी क्रिया उस समय बहुत कड़क थी। हमारे गुरु थे सम्प्रदाय के बहुत कड़क, बहुत कड़क। उनके लिये पानी की बूँद बनायी (प्रासुक की) हो। ख्याल आया कि हम गाँव में आने के बाद इसने पानी बनाया है। नहीं लेते। पूछे। किसके लिये बनाया बहिन? नहाये थे उसका? नहाने में

बढ़ा हुआ तो पकड़ में आ जाये। हीराजी महाराज बहुत सख्त थे। उन्हें बेचारों ने जो मानी हुई बात थी। यह वस्तु तो कहाँ थी वहाँ? नहीं, नहीं। बहिन! हम... नहीं लेंगे। आहाहा! वे बेचारे चिल्लाहट मचाये। अरेरे! हीराजी महाराज दो—चार वर्ष में गाँव में आवे और आहार न होवे तो रोवे बेचारे। बहिन! हम तो आहार लेने आये थे, माँ! हम तो निर्दोष लें तो लेंगे। हमारे लिये बनाया हो, वह कैसे लेंगे? नवनीतभाई! सम्प्रदाय में बहुत शान्त थे। परन्तु बेचारों को इस वस्तु की तो खबर नहीं। माना हुआ था कि यह चारित्र और यह आचरण क्रिया ऐसे पालना। नहीं लेते। पानी बिना पूरा दिन बितावे। काठी में से छाछ ले आवे। छाछ समझे? मठ्ठा। बस रोटी और छाछ। ऐसे चलावे। हमने भी चलाया है कितनी ही बार। पानी न मिले पूरे दिन। गर्मी में, हों! रोटी, दाल और छाछ। उस समय यह माना था, ऐसा करते थे। आहाहा! ... रखते हैं। साधन ऐसा ... था। पाँचों ही बात की, देखा! दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और विनय तथा वह नित्य काल / हमेशा। किसी समय ऐसा और किसी समय ऐसा, ऐसा मार्ग नहीं, भाई! अररर!

भले प्रकार स्वस्थ हैं... लो! यह वह किया। टीका की इसलिए। लीन हैं स्वरूप में। आनन्द-आनन्द प्रभु भगवान वह आनन्द में लीन मुनिराज हैं। उन्हें यहाँ जैनदर्शन में गिनकर उन्हें वन्दनीय कहने में आया है। आहाहा! कहो, गिरधरभाई! यह तो मार्ग... उथल-पुथल में निकला। सुविधापंथी। वीतरागमार्ग में नहीं चलता। आहाहा! **भले प्रकार स्वस्थ हैं, लीन हैं...** ...हो। टीका में जरा लोलुपता कहा है। लोलुप ... **और गणधर आचार्य भी उनके गुणानुवाद करते हैं...** गणधर भी उनके गुणानुवाद करे। धन्यमुनि! धन्य तेरा अवतार, भाई! आहाहा!

इन्होंने अब यह दूसरा अर्थ किया। वह गुणवादी। गणधरों के भी गुण गाते हैं। ऐसा लिया है। मुनि गणधरों के गुण गाते हैं, ऐसा। यहाँ गणधर उन्हें मुनिरूप से गिनते हैं। टीका में ऐसा लिया। गुणवादी गुण के धारक ऐसे गणधर, ऐसे मुनि के गुण गाते हैं। यहाँ ऐसा कहते हैं कि ऐसे गुण के धारक गणधर उनकी महिमा करते हैं और उनके गुण गाते हैं, ऐसा कहते हैं। गणधरों के भी गुण गाते हैं।

उनके गुणानुवाद करते हैं, अतः वे वन्दने योग्य हैं। मुनिरूप से चारित्रसहित के जो पूज्य गुरु, वे तो यह हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र के गुरु ही यह हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

वन्दने योग्य हैं। दूसरे जो दर्शनादिक से भ्रष्ट हैं... देखा है न? वे वन्दनीय है। इसका अर्थ किया न? और यह वन्दनीय और इसके अतिरिक्त के जैनदर्शन से भ्रष्ट होकर पंथ निकाला, जैन के नाम से, वह वन्दनीक नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? श्वेताम्बर आचार्य बड़े चाहे जो हों, परन्तु कहते हैं कि मूलसंघ से भ्रष्ट हुए वे वन्दनीक नहीं हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग कठिन पड़े। समझ में आया? '**एदे दु वंदणीया**' ऐसा कहा न? वे वन्दनीक हैं। इसका अर्थ कि इनके अतिरिक्त वन्दनीक नहीं। ऐसा है अन्दर। आहाहा!

गुणवानों से मत्सरभाव रखकर विनयरूप नहीं प्रवर्तते... देखा! उस समय तो मुनि थे न दिगम्बर सच्चे सन्त और उस समय यह श्वेताम्बर पंथ भी निकल गया था। सच्चे सन्त को देखकर वे मत्सर करे और अभिमान करे। यह तुम्हारे नंगे हैं और ऐसे हैं और वैसे हैं। ... **गुणवानों से मत्सरभाव रखकर विनयरूप नहीं प्रवर्तते...** देखो! **वे वन्दनेयोग्य नहीं हैं।** वे मार्ग से भगवान के मार्ग में वन्दनयोग्य नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग का स्वरूप। उसमें वे कहते हैं कि अपवाद है। ऐई! चेतनजी! चेतनजी ने पूछा कि यह... अपवाद है वस्त्र-पात्र ले। अरेरे!

मुमुक्षु : प्रवचनसार में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचनसार में यह कहा होगा? अरर!

यह प्रवचनसार में तो गुरु का विनय करना, वह करनेरूप ग्रहण है। वाणी कहना और सुनना वह भी उपकरण कहते हैं। यह उपकरण गिने हैं। आहाहा! अपवादिक मार्ग राग में जुड़ते हैं न, तब पर का विनय और सुनना होता है न? इसलिए उसे व्यवहार उपकरण कहा। बाकी तो वास्तव में प्रभु आत्मा तो पूर्णानन्द का नाथ, उसके समीप में जाकर रमणता करे, वह उसका वास्तविक स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? अपनी निर्मल परिणति में आत्मा को हमेशा समीप रखे। 'सनेहु अप्पा।' सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति में जिसका ध्येय आत्मा है, इसलिए आत्मा ही उसे समीप वर्तता है।

आहाहा! ऐसा जो मार्ग, वह वन्दनीक है और उससे भ्रष्ट हुए, वे वन्दनीक नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी मुनि सब आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंगी मुनि खोटे। यह अभी आयेगा। भाव बिना द्रव्यलिंगी वन्दनीक नहीं। यह अब आयेगा। ठेठ अन्तिम गाथा। २६-२६। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य ने तो, ओहोहो! मार्ग को जैसा है, वैसा बाहर प्रसिद्ध करके जगत के प्रति महाकरुणा की है। आहाहा! इसमें कहीं फेरफार, कम, अधिक, विपरीत कुछ चलता नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरेरे! चौरासी के अवतार में भटकता, इसे वापस कहाँ जाना है, इसकी खबर नहीं पड़ती।

मुमुक्षु : बड़ा अन्तर पड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत अन्तर पड़ गया। वे आये थे न तीन साधु। दर्शनविजय, ज्ञानविजय... वे कहें यह समयसार गुरु की वाणी है और हमारी वाणी भगवान की वाणी है, ऐसा कहा। (संवत्) १९९९ की बात है। यहाँ बैठे थे। गुरु की वाणी है। मैंने कहा गुरु की.... ऐसा। तुम कौन? क्या नाम तुम्हारा? दर्शनविजय। आत्मा भव्य है या अभव्य है? वह तो भगवान जाने। अब भव्य-अभव्य की खबर नहीं होती, वह भगवान की वाणी की परीक्षा करने निकले ... कहते हैं ... दर्शनविजय, ज्ञान (विजय) और चारित्र (विजय) तीन थे। वे कुछ... विवाह कर लिया? ऐसे तो व्यक्ति चतुर, हों! उसे जिसने बात इतनी की, वह भव्य-अभव्य का निर्णय हुआ है? कहा, भगवान को खबर। अभव्य क्या, इसका निर्णय नहीं, वह भगवान की वाणी का निर्णय किस प्रकार करेगा? जिसे भव का अभाव कभी होनेवाला नहीं। वह कहे, हाँ, हाँ, ज्ञात होता है। ज्ञात होता है। वह गया। अन्दर था, वह आ गया पहला। आहाहा! और वहाँ ९९ में इकट्ठे हुए थे, वहाँ रास्ते में काँप में। फिर पुण्यविजय था न, पुण्य नहीं कैसा? पूनमविजय। पूनमविजय। पूनमचन्द। हाँ, वह था न, उसने कहा हम इकट्ठे होकर उनका विरोध करेंगे। वहाँ पूनमचन्दजी आया था, वह भी आया था। अरे! रहने दो उनके सामने। वहाँ पकड़ा था। वाद रहने दो उनके साथ। अपने तो शान्ति से... अपने कहीं कोई वह नहीं, बापू! उसे

अभव्य है या भव्य, ऐसा अभी निर्णय आया नहीं। वह वीतराग की वाणी की परीक्षा (करे) कि यह गुरु की वाणी और यह केवली की वाणी है ? बापू! ऐसा नहीं चलता। यह तो वीतराग मार्ग है। समझ में आया ? गुरु की वाणी यह केवली की वाणी है और केवली की वाणी ठहरायी है, वह केवली की वाणी नहीं। आहाहा! वह तो मिथ्यादृष्टि की वाणी है। आहाहा!

जिसकी वाणी में वस्त्र का धागामात्र रखकर मुनि माने, मनावे तो विरोध जाता है। वह वाणी कहाँ और जिस वाणी में मुनि को दस-दस वस्त्र चलें, चादर चलें, पछेड़ी चलें। अरे! यह मार्ग वह किसने किया यह ? आहाहा! बापू! वह वाणी वीतराग की नहीं, समकिती की नहीं। भगवतीसूत्र को मान दे। भगवतीसूत्र। बहुत, वह कहता था, भगवतीसूत्र बाहर में बहुत पूज्य है। आहाहा! बापू! मार्ग नहीं चलता ऐसे। वह जैसे होगा, वैसे रहेगा। तू करे वैसा होगा, ऐसा नहीं होगा। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे पुरुष वे वन्दनीक हैं, दूसरे भ्रष्ट हुए वन्दनयोग्य नहीं। बड़े आचार्य नाम धराते हों और धर्मधुरन्धर जैनशासन प्रभावक ऐसी पदवी हो, परन्तु वह वीतरागमार्ग से विरुद्ध भ्रष्ट है। वे वन्दन करनेयोग्य नहीं। आहाहा! चारित्र की गुरु की अपेक्षा की बात होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : शिष्टाचार...

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्टाचार बिल्कुल नहीं। शिष्टाचार क्या है वहाँ ? लड़की का ससुराल है कि शिष्टाचार करना ? राजा हो तो भी वह कहलाये, मुसलमान हो तो भी वह कहलाये। समकिती जाये तो अन्नदाता! बाहर की अपेक्षा की बात है न! मुसलमान राजा के पास। वह लौकिक लाईन है। वह धर्म की लाईन नहीं।

मुमुक्षु : भाँति-भाँति की वाणी...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मुसलमान राजा हो और (कोई) समकिती हो तो भी जाये तो उसे अन्नदाता, ऐसा कहना पड़े।

मुमुक्षु : ... धर्मबुद्धि से वन्दन न करे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो फिर किस बुद्धि से वन्दन करे? परन्तु करे किसका? वह कहीं रिश्तेदार होता है? माँ का पिता है वह? धर्मबुद्धि से न करे। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह फिर छठवें अध्याय में लिया है कि एक ओर गुरु बैठे हों कुन्दकुन्दाचार्य जैसे तथा एक ओर उसके विरुद्ध श्रद्धावाले बैठे हों, उनका विनय करे तो इनका अविनय हो गया। छठवें में है गुरु की... निकाला था न तब।

मुमुक्षु : प्रतिपक्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रतिपक्ष है। आहाहा! धर्ममार्ग संसार मार्ग से अलग है। मुसलमान बादशाह हो, माँस खाता हो, तथापि सम्यग्दृष्टि भी उसे सलाम करे, वन्दन करे। वह तो लौकिक लाईन है। वह चारित्रदोष है। और ऐसे अधर्मी के पैर छूना, वह मिथ्यात्व का दोष है। गिरधरभाई!

मुमुक्षु : धर्मबुद्धि का राग नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मबुद्धि तब कौन सी बुद्धि थी? वहाँ रिश्तेदार है, तुम्हारी माँ का बाप है वह?

मुमुक्षु : समाज में रहता हो वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह समाज नहीं। धर्म का समाज हो, वह उसका समाज कहलाये। यह तो सब पाप के समाज हैं। सेठिया का क्या करना, ऐसा कहते हैं। उलझन में है। ऐई! जयन्तिभाई! आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, प्रभु, हों! ...चले बिना नहीं। आहाहा! लज्जा, गारव आता है, नहीं आता? लज्जा से नहीं, गारव से नहीं, कर्म से नहीं, ऐसा होता है। आहाहा! वहाँ धर्मबुद्धि होती नहीं। दूसरी बुद्धि वहाँ कहाँ है? संसार वहाँ कहाँ है? माँ-बाप हो, वे मिथ्यादृष्टि, स्वयं हो समकिती तो भी उनका विनय करे। लौकिक अपेक्षा से। आहाहा! लड़का हो समकिती, माँ-बाप हो मिथ्यादृष्टि और वे उल्टी श्रद्धा आदि को माननेवाले हों, लो। आहाहा! तथापि उन्हें लौकिक में...

मुमुक्षु : बाहर की सब सुविधा सम्हालकर धर्म होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुविधा किसकी? धर्म की सुविधा या बाहर की सुविधा? किसकी सुविधा? धर्म की सुविधा में बाहर की सुविधा जरा भी काम आती ही नहीं।

आहाहा! समाज को एक ओर रख देना चाहिए। ऐसी बात है भाई यहाँ तो। पोपटभाई! आहाहा!

आगे कहते हैं कि—जो यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव से वन्दना नहीं करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि ही हैं:— इसमें अधिकार में यही लिया है अधिक। आहाहा!

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो॥२४॥

अर्थ :— जो सहजोत्पन्न यथाजातरूप को देखकर नहीं मानते हैं,... अकेला यथाजात नहीं वापस, हों! यह २६ में आयेगा। **जो आचार्य यथाजातरूप को दर्शन कहते आये हैं, वह केवल नग्नरूप ही यथाजातरूप होगा,...** वह नहीं। यह २६ में है भावार्थ में। भावार्थ में। समझ में आया? यह तो मार्ग, बापू! धर्म का निश्चय और धर्म का व्यवहार जगत से कोई अलग प्रकार है यह। किसी के प्रति विरोध नहीं, वैर नहीं, प्रेम। भगवान आत्मा है। समझ में आया? उसकी श्रद्धा विरुद्ध हो तो भी वन्दन न करे, इसलिए द्वेष करना, ऐसा नहीं है। आहाहा! आत्मदृष्टि से आत्मबन्धु साधर्मी है। पर्यायबुद्धि में जो फेरफार है, उसके लिये विरोध न करे। आहाहा! ऐसा मार्ग! श्रीमद् ने नहीं कहा? 'करुणा उपजे जोई। ज्ञानमार्ग की शुद्धता।' क्या आया? 'बाह्य क्रियामां राचता, अन्तर भेद न कांई, ज्ञान मार्ग निषेधता ते क्रिया...' वह नहीं। 'कोई क्रिया जड़ हो रहे शुष्क ज्ञान में कोई। माने मार्ग मोक्ष का करुणा उपजे जोई।' अरेरे! दुःखी। विपरीत मान्यता से तो वह दुःख में है और उस दुःख में रहनेवाले हैं। उसका अनादर कैसे हो? समझ में आया? उसकी दृष्टि विपरीत है, वह वर्तमान दुःखी है और वापस विपरीत फल में नरक और निगोद में जायेगा, बापू! उस मरते हुए को मारना, वह काम नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। आहाहा! 'धार तलवारनी सोह्यली दोह्यली, चौदमा जिन तणी चरण सेवा।' वीतराग की आज्ञा, इस प्रकार श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का मार्ग है। उस प्रकार होना चाहिए। आहाहा!

सहजोत्पन्न यथाजातरूप को देखकर... स्वयं नग्नमुनि और अभ्यन्तर आनन्द और ज्ञान-दर्शन-चारित्र से सहित ऐसी जो यथाजात, अन्तर यथाजात और बाह्य यथाजात।

अन्तर यथाजात अर्थात् ? जैसा वीतरागीस्वभाव है, वैसा प्रगट हो गया है। जैसा भगवान आत्मा का वीतरागस्वभाव है, वैसा पर्याय में वीतरागस्वभाव, वह यथाजात है। आहाहा! और बाह्य में यथाजात नग्नदशा है। **'सहजुप्पण्णं रूवं' 'सहजुप्पण्णं रूवं'** स्वभाव से सहज उत्पन्न हुआ है। आहाहा! और शरीर की भी सहज अवस्था माता जन्म दे, वैसी दशा है।

ऐसे **सहजोत्पन्न यथाजात...** भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप से उत्पन्न हुई सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह सहज उत्पन्न यथाजात वीतरागमार्ग है और बाह्य में सहज उत्पन्न नग्नदशा है। अरेरे! **उसका विनय सत्कार प्रीति नहीं करते हैं...** पाठ तो यह है, **'दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।'** मत्सरभाव से उसका विनय न करे और अभिमान करे। अपनी पदवी आचार्य, उपाध्याय बड़ी देखकर ऐसे सन्त नग्न सच्चे मुनि धर्मात्मा अन्तर आनन्दसहित के, भानसहित के। उनसे मत्सर करे। हम भी हैं। यही हैं साधु ? हम नहीं ? वस्त्र रखा तो क्या ? मूर्च्छा... मूर्च्छा परिग्रह... मूर्च्छा को परिग्रह कहा है, वस्त्र को परिग्रह कहाँ कहा है भगवान ने ? यह अभी आया था। भाई का है न! आहाहा! जगत को मारकर जिस पक्ष में खड़ा हो, उस पक्ष का...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह नहीं कहा कुन्दकुन्दाचार्य ने ? कि हिंसा बाहर में हो, न हो, परन्तु शरीर रखकर मूर्च्छा न हो। चरणानुयोग में।

मुमुक्षु : जीव मरना बन्द हों...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वस्तुस्थिति वर्णन की है। चलते हुए प्राणी मर जाये, इससे उसे अपना प्रमादभाव नहीं है। परन्तु कोई कहे कि हम वस्त्र का टुकड़ा रखते हैं और उसमें हमको मूर्च्छा नहीं है। तो यह नहीं चलता। ... मेरे! परिग्रह रखकर फिर कहे, मूर्च्छा नहीं, काया से करना, कराना, अनुमोदन नौ-नौ कोटि का छूटना चाहिए परिग्रह। काया से करना, कराना, अनुमोदन कहाँ से हुआ तेरा ? आहाहा! ऐसा मार्ग है। दर्शनपाहुड़। उसमें वापस समकित की निर्मलता का वर्णन चला यह। समझ में आया ?

उसका विनय सत्कार प्रीति... ओहो! भावलिंगी सन्त और द्रव्यलिंगी बाह्य। ये

दो होकर पूरा रूप देखकर जो कोई विनय न करे, मत्सरभाव रखे, गौरव करे–अपना अभिमान और पदवी में। उनका सत्कार न करे, विनय न करे, प्रीति न करे... **और मत्सर भाव करते हैं, वे संयम प्रतिपन्न हैं,...** भले बाह्य से कदाचित् साधु दिखाई दे। **दीक्षा ग्रहण की है, फिर भी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं।** आहाहा! स्त्री, पुत्र छोड़कर, राज छोड़कर साधु हुआ हो वस्त्रसहित। समझ में आया ? गजब मार्ग, भाई! कहो, इसमें धीरुभाई! वे कहे कि तुम पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत की क्रिया को धर्म नहीं कहते तो बड़ी गलती होती है। आहाहा!

अब यहाँ तो यह सब बड़ा कहते हैं कि बड़ी गलती तेरी है। वह तो समझ पहले। आहाहा! अरे! भगवान! क्या हो ? अरे! कोई साथ चलेगा नहीं, हों! यह बाहर के संघों में से और बड़े माने। ओहो! हमने लाखों को धर्म में रखा है। कोई साथ आवे ऐसा नहीं है। आहाहा! अकेला पाप बाँधा और अकेला पाप का फल भोगेगा। वहाँ कोई सामने देखे, ऐसा नहीं है। आहाहा! नरक की वेदना, एक अग्नि का तिनका। अरे! वहाँ तो ऐसा लिया है कि नारकी के शरीर का एक टुकड़ा यहाँ बाहर आवे तो उसकी गन्ध से—दुर्गन्ध से अमुक लोग मर जाये, उसकी दुर्गन्ध से। आहाहा! ऐसा तो उसका शरीर दुर्गन्धवाला है। नारकी का शरीर, शरीर इतना दुर्गन्धवाला है। आहाहा! जिसका टुकड़ा लावे यहाँ तो लोग देखकर दुर्गन्ध में सहन न कर सके, मर जाये। आहाहा! वह क्या कहते हैं यह ? जिसने महामिथ्यात्वभाव सेवन किया है और जिसने महा आरम्भ और परिग्रह की भावना उसमें सेवन की गयी है। आहाहा! जिसकी पर्याय तो... उल्टी हो गयी, परन्तु जिसका शरीर दुर्गन्ध। आहाहा! ऐसे साबुन चुपड़ते हैं नहलाकर। कहते हैं कि उसका नारकी का एक टुकड़ा बाहर आने पर उसकी दुर्गन्ध से मनुष्य मर जाये। बापू! ऐसी दुर्गन्ध में अनन्त बार शरीर धारण किये हैं। आहाहा! यह मिथ्यात्व के कारण है। समझ में आया ? ओहोहो!

और जिसका दिखाव रखकर यद्यपि यहाँ लावे नारकी को लाना हो तो, देखकर मनुष्य मर जाये भड़ककर। ऐसा रूप सब नारकी का, हों! यह रत्नकरण्डश्रावकाचार में (विस्तृत वर्णन है)। परन्तु ऐसा रूप उसका। ऐसा देखे वहाँ, आहाहा! ऐसे करके मर जाये मनुष्य भड़ककर (भयभीत होकर)। ऐसा तो शरीर का रूप। यह बापू! तू वहाँ

अनन्त बार गया, भाई! और जो अभी मिथ्यात्व नहीं टाले तो उसे भी मिथ्यात्व के फल में अनन्त भव है। आहाहा! यह जिसने संस्कार डाले हैं अन्दर के सत् के। आहाहा! उसे तो अब भवभ्रमण नहीं। आगे बढ़ गया है। भले सम्यग्दर्शन न हो। समझ में आया? परन्तु जिसने अन्दर में यह संस्कार डाले हैं। आहाहा! वे जीव आगे नहीं भवे। नहीं भवे अर्थात् भव में नहीं होंगे। एकाध-दो भव हों, किसी को दो-चार-पाँच (भव हो)। समझ में आया? आहाहा!

मत्सर भाव करते हैं, वे संयमप्रतिपन्न हैं, दीक्षा ग्रहण की है फिर भी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं। 'यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव से उसका विनय नहीं करते हैं तो ज्ञात होता है कि—इनके इस रूप की श्रद्धा-रुचि नहीं है, ऐसी श्रद्धा-रुचि बिना तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। लो! आहाहा! **यहाँ से ऐसा है कि - जो श्वेताम्बरादिक हुए...** लो, लिखा है। श्वेताम्बर में यह मन्दिरमार्गी और स्थानकवासी दोनों इसमें आये।

मुमुक्षु : दोनों थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय कहाँ थे? उस समय तो श्वेताम्बर अकेले थे। वे थे तब थे या नहीं? टोडरमलजी ने कहा तब थे। उन्होंने डाला है। नहीं?

वे दिगम्बर रूप के प्रति मत्सरभाव रखते हैं और उसका विनय नहीं करते हैं, उनका निषेध है। आहाहा! सच्चे सन्त मुनि उस समय थे। दिगम्बर भावलिंगी और यह खोटे बाहर थे। मुनि को ऐसा देखकर नग्न मुनि को, वे मत्सर भाव करते थे। हम होशियार हैं, हम राजाओं को समझाते हैं, बड़ी-बड़ी सभायें भरती हैं। यह अब नग्न जंगल में पड़े हैं। ये नागा हैं, वे बादशाह से आघा है। और मोक्ष में जानेवाले हैं। और तुम नरक और निगोद में जानेवाले हो। कहा न, यह वस्त्र रखकर (मुनि माने) निगोद में जायेगा। आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक १६-१०-१९७३
गाथा-२५, २६, २७, २८, प्रवचन-२८

२४ चली न? इस २४वीं को विशेष दृढ़ करते हैं।

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति॥२५॥

आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि जिसे बाह्य दिगम्बर वेश है और अन्दर में '**सीलसहियाणं**'। वीतरागभाव के स्वभाव से परिणमित है, ऐसे मुनि को देखकर जो वन्दन नहीं करते, उनका आदर नहीं करते, वे अभिमानी सम्यक् दृष्टि रहित हैं। है? **देवों से वन्दनेयोग्य...** देवों से वन्दनेयोग्य। मुनिपना अर्थात्... आहाहा! देव जिन्हें वन्दन करते हैं। **शील सहित...** अन्तर के आनन्द के स्वभाव की शुद्धपरिणतिरूपी शीलसहित जिनका आत्मा है। ब्रह्मानन्दस्वरूप भगवान आत्मा के आनन्द की उग्रता के शील स्वभावसहित जिनका आत्मा है। और **यथाजातरूप को देखकर...** ऐसे **जिनेश्वरदेव के यथाजातरूप को देखकर...** अन्तर में भी यथाजातरूप भाव वीतरागी मूर्ति। आहाहा! मोक्ष का मार्ग। और बाह्य में भी मुद्रा जिणंद। स्वयं जब दीक्षित हुए, ऐसा जिनका नग्नपने का दिखाव।

जो गौरव करते हैं,... ऐसे मुनि को देखकर गौरव या अभिमान करते हैं, **विनयादि नहीं करते हैं...** विनय-बहुमान नहीं करते, **वे सम्यक्त्व से रहित हैं।** ऐसी बात है। कहो, चन्दुभाई! यह तो पक्षपोषण हुआ है। वे ऐसा कहते हैं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? जिनका आत्मा ब्रह्मानन्दस्वरूप। ओहोहो! जिन्होंने अन्तर्मुख होकर आनन्द की पर्याय में उग्रता जिन्होंने प्रगट की है। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित जिन्हें आनन्द की दशा, सुख की दशा, सुखरूप अनाकुल जिनकी परिणति वीतरागदशा है और जो बाह्य में नग्न है। ऐसा ही जैनदर्शन का स्वरूप मुनिपने का और वह जैनदर्शन। आहाहा! उसे देखकर कोई आदर न करे। हम भी साधु हैं, भले हम वस्त्र-पात्र (सहित हैं)। ऐसा अभिमान करके (वन्दन) न करे तो वे समकितरहित हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ... करे तो भी वह मिथ्यादृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वन्दना उसे करे नहीं, ऐसा कहे। परन्तु कहते हैं कि यथाजात को वन्दन न करे तो वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा। वन्दन करे तो वह अलग बात है। यह तो वन्दन न करे, यह बात लेनी है। उनका आदर करता नहीं और अपने अभिमान में रहता है, ऐसा। ऐसा यहाँ बतलाना है। उस समय... चलता था न। ...हुए थे। श्वेताम्बर निकले... हुए थे। उस समय वे सब पढ़े हुए हों न बहुत। क्योंकि ताजा निकले हुए, बहुत शास्त्रों का जानपना हो, बड़ी बातें करते हों। वे कहते हैं। ऐसे यों तो समकितरहित हैं ही, ऐसा। परन्तु ऐसा आदर न करे, उनका समकितरहितपना बाहर में प्रसिद्ध होता है। कहो, समझ में आया? कठिन मार्ग भाई ऐसा!

... उसमें नहीं? आहाहा! वह जगतप्रसाद है न कोई, नहीं? उसे ऐसा कहे... गाथा आयी है। ... लिखा है। वाँचा है तुमने? ... है। वह है। वाँचा है। जगतप्रसाद है न कोई? है कुन्दकुन्दाचार्य का वह। वह अंग्रेजी अनुवाद किया है। उसमें यह गाथा आयी तो यह ... वाँचा है सही सब। वह तो अष्टपाहुड़ को सबने मान्य रखा है और श्रीमद् ने स्वयं मान्य रखा है अष्टपाहुड़ को प्रमाणिकरूप से। और प्रचलित इस प्रवृत्ति में कोई गाथा फेरफारवाली है, ऐसा उसमें कुछ नहीं। परन्तु लोगों को पक्ष की... लगे कि यह तो दिगम्बर पक्ष है। और स्त्री को मुक्ति नहीं, वस्त्रसहित मुक्ति नहीं, यह सब पक्षवाला कुन्दकुन्दाचार्य कैसे कहे? ऐसा (वे) कहते हैं। परन्तु जैसा हो वैसा न कहे? ऐसा स्वभाव वस्तुस्थिति ऐसी है, वहाँ क्या हो? कहते हैं कि विनय आदि बहुमान आदि नहीं करते, वे सम्यक्त्व से रहित हैं।

जिस यथाजातरूप को देखकर... महा दिगम्बर दशा जिनकी बाहर की, अन्तर में जिनकी दिगम्बर दशा। जिन्हें विकल्प की वृत्ति से पृथक् होकर अन्तर की वीतरागी परिणति में आनन्द में रमते हैं, उन्हें राग की वृत्ति का... नहीं है। बाहर के वस्त्र का धागा नहीं। आहाहा! जितनी दशा निर्मल हुई उसमें। दूसरा अट्ठाईस मूलगुण आदि का विकल्प भले हो। ऐसे को देखकर गारव से—अभिमान से, हम भी जाननेवाले हैं, हमारा भी एक मार्ग है। ऐसा मानकर वन्दन न करे तो वह समकितरहित प्रसिद्धि होती है, ऐसा तो है। परन्तु उसकी समकितरहित की प्रसिद्धि बाहर आती है। आहाहा!

जिस यथाजातरूप को देखकर अणिमादिक ऋद्धियों के धारक... देव बड़े

अणिमादिक सूक्ष्मरूप करना हो तो करे। मेरु पर्वत जैसा करना हो तो करे। ऐसे ऋद्धि के धारक **देव भी चरणों में गिरते हैं...** परन्तु ऐसे, हों! भावलिंगी अन्तर आनन्द की दशा जिन्हें ... है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र। आहाहा! अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है। आहाहा! ४७ शक्तियों में लिया है न, देखो न ... सब। जीवत्वशक्ति। तथाप ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि लिये। वे अनन्त चतुष्टय जो भरे हैं, उनका वर्णन है। आत्मा में। फिर एक ... शक्ति में यही पूरा वर्णन है। चितिशक्ति। दृशिशक्ति, ज्ञान, सुख, वीर्य सब यही अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, सुख से भरपूर तत्त्व है, ऐसा वहाँ बतलाना है। आहाहा! समझ में आया?

जीवत्वशक्ति में ऐसा लिया कि दर्शन, ज्ञान, आनन्द, वीर्य... फिर कहे चितिशक्ति ली, उसमें भी ज्ञान और दर्शन आया। पश्चात् दर्शन और ज्ञान पृथक् किये, उसमें दर्शन-ज्ञान आया। फिर सुख और वीर्य किये। क्योंकि उसमें दो थे, उसमें सुख और वीर्य डाला। वह भी अनन्त चतुष्टय में बतलानेवाला सब अनन्तवीर्य और सुख। फिर प्रभुत्व और विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, वह भी अन्दर का बतलानेवाला है। सर्वगुण परिपूर्ण हैं, व्यापक है और प्रभुत्व है, सर्वदर्शी है, सर्वज्ञ है, स्वच्छत्व है, और प्रकाशशक्ति है, वह सब अनन्त चतुष्टय की प्रतीति करते हैं। आहाहा! समझ में आया? ... अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान, दर्शन और असंकुचितविकास। ऐसी उसकी शक्ति है। आहाहा! तेरह शक्तियाँ ली उसमें मानो पूरा, उसका स्वभाव भगवान आत्मा परिपूर्ण ज्ञान, परिपूर्ण दर्शन, परिपूर्ण सुख, परिपूर्ण शान्ति, स्वच्छता, निर्मलता, पृथक् होने की शक्ति। ओहोहो! ऐसा जो आत्मा जिसकी दृष्टि में, अनुभव में आया है और तदुपरान्त जिसकी रमणता, आनन्द में लीनता जम गयी है। आहाहा! मुनिराज की बाह्य दशा नग्न हो जाती है। समझ में आया? यह तो वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, वहाँ क्या कहना?

ऐसा यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य के हृदय में यह है कि ऐसी वस्तु को साधनेवाले और नग्न दिगम्बर का आदर करे नहीं और अभिमानी, हम भी जाननेवाले हैं और लाखों लोगों को समझाते हैं, ऐसा करके लोग इकट्ठे करे, उससे क्या? वस्तु के सत्य की शरण में जाता नहीं और आगे नहीं बढ़ता, वह मत्सर अभिमानी है। **मत्सरभाव से नमस्कार नहीं**

करते हैं, उनके सम्यक्त्व कैसा? वे सम्यक्त्व से रहित ही हैं। ऐसा मार्ग है। यह २५ हुई।

आगे कहते हैं कि असंयमी वन्दनेयोग्य नहीं है:—

अस्संजदं ण वन्दे वत्थविहीणोवि तोण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि ॥२६ ॥

अर्थ :— असंयमी को नमस्कार नहीं करना चाहिए। असंयम है, वहाँ साधु के योग्य नमस्कार है, वह वहाँ हो नहीं सकता। समझ में आया? आहाहा! और **भावसंयम नहीं हो और बाह्य में वस्त्र रहित हो...** लो! नग्न हो, परन्तु अन्दर में भाव आनन्द, राग के कण का कर्ता नहीं, ऐसी जिसे अन्तर में ज्ञाता, दृष्टा और शान्ति प्रगट नहीं हुई, ऐसे भले बाह्य में नग्न हो, वे भी **वन्दनेयोग्य नहीं है...** दोनों वन्दनयोग्य नहीं हैं। मुनिपने की योग्यता से जो उनकी भक्ति और वन्दन है, वह असंयति को नहीं होता और भावलिंग बिना अकेले वेशधारी को भी नहीं होता। आहाहा! गजब! समझ में आया? इस मार्ग की रीति है, हों! कोई कहे कि ऐसा क्यों लिया? कुन्दकुन्दाचार्य जैसे अध्यात्मी पुरुष जो गौतम के पश्चात् तीसरे नम्बर में आये। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम गणी... वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, भाई!

आत्मा विकल्प-राग के अंशरहित प्रभु है। ऐसा आत्मा भगवान ने जो कहा, ऐसे आत्मा के आनन्द की श्रद्धा, ज्ञान और रमणतावाला जीव और बाह्य में नग्न, उसके कारण ऐसा कोई वस्त्र रखकर पण्डिताई से गारव में खड़े आदर न करे, उसे तो अज्ञानी कहा और यह दो असंयम—संयमदशा नहीं भाव और अकेला असंयमी है, वह संयमी मुनि को जो वह वन्दनयोग्य है, ऐसी वन्दना उसे हो सकती नहीं। समझ में आया? ऐसा तो आया न, 'लेश न संयम।'

मुमुक्षु : लेश न संयम, पे सुरनाज जजे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुरनाथ जजे हैं। छहढाला में आया। यह वन्दन न करनेयोग्य, उस स्थिति में जजे नहीं। दोनों का मेल। वहाँ कहा सम्यग्दृष्टि को जजे। देव जजे है। यहाँ कहते हैं कि असंयम को वन्दन नहीं। वह यह।

मुमुक्षु : मुनि के योग्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह। आशय करने का यह है भाई! समझ में आया?

यह तो पद्मनन्दी आदि में तो ऐसा भी कहा कि सम्यग्दृष्टि जीव धर्मात्मा श्रावक है, वह भी वन्दन के योग्य है, ऐसा कहा। पाठ है। वन्दन अर्थात् गुणगान करनेयोग्य आदि, उसके योग्य आदर करनेयोग्य है।

मुमुक्षु : विनय के योग्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, उसके योग्य। समझ में आया?

बाह्य में वस्त्र रहित हो, वह भी वन्दनेयोग्य नहीं है क्योंकि यह दोनों ही संयम रहित समान हैं,... क्योंकि संयम चारित्र, वह मुख्य पूजनीय है। क्योंकि चारित्तं खलु धम्मो। चारित्र, वह वीतरागीदशा, वह चारित्र। यह लोग अभी तो बाहर के व्रत और उसे चारित्र मानते हैं। आहाहा! क्या हो, बापू! अन्दर मिथ्यात्व और अस्थिरता से रहित जिसे सम्यक्त्व और स्थिरता की दशा प्रगट हुई है।

भावार्थ :— जिसने गृहस्थ का वेश धारण किया है, वह तो असंयमी है ही,... सीधा। **परन्तु जिसने बाह्य में नग्नरूप धारण किया है और अन्तरंग में भावसंयम नहीं है...** आहाहा! **तो वह भी असंयमी ही है,...** वह तो और ऐसा लिखा है। कि अपने दिगम्बर, **जैनप्रतिमा ...** जिसमें ले जाये वह तो दूसरे की हो गयी, वह वन्दनीक कैसे हो? ऐसा नहीं। ऐसा आता है। उनमें। उपासक में। साधु हों... जिन प्रतिमा वह दूसरे में मिल जाये, अन्यत्र जाये, वह आदर योग्य रहे नहीं। ऐसा आता है। उसने यह डाला है कि ऐसी जिन प्रतिमा... है न? हाँ वह। पहले ... प्रतिमा ले जायेंगे भगवान की तो वह तो अन्यमति की हो गयी। वहाँ कहाँ भगवान का ... इसलिए यह सब अभी देशकरण में यह सब हुआ। क्या कहलाता है? राष्ट्रीयकरण। उसमें यह ... है। यह बहुत लिखा।

यहाँ कहते हैं, **बाह्य में नग्नरूप धारण किया है और अन्तरंग में भावसंयम नहीं है तो वह भी असंयमी ही है, इसलिए यह दोनों ही असंयमी हैं, अतः दोनों ही वन्दनेयोग्य नहीं हैं। यहाँ आशय ऐसा है अर्थात् ऐसा नहीं जानना चाहिए कि — जो आचार्य**

यथाजातरूप को दर्शन कहते आये हैं... देखा! नग्नपने को ही दर्शन कहते आये हैं, ऐसा नहीं समझना। यह १४वीं गाथा में तो सब स्पष्ट किया है। **यथाजातरूप को दर्शन कहते आये हैं, वह केवल नग्नरूप ही यथाजातरूप होगा, क्योंकि आचार्य तो बाह्य-अभ्यन्तर सब परिग्रह से रहित हो...** यह १४वीं गाथा में आ गया है। बाह्य-अभ्यन्तर त्यागरूप। १४वीं नहीं? **'दुविहं पि गंथचायं'** दोनों प्रकार का ग्रहण-त्याग। बाह्य और अभ्यन्तर दोनों। उसे जैनदर्शन कहते हैं। आहाहा! १४वीं गाथा में। उसका ज्ञान शुद्ध है और खड़े-खड़े आहार लेते हैं और जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागता अन्दर प्रगट हुई है, उसे जैनदर्शन कहने में आता है। समझ में आया? कठिन बातें पड़े लोगों को वाडा में। सम्प्रदाय के विरुद्ध बात आवे, इसीलिए संगठन करो... संगठन करो... बापू! सम्प की व्याख्या क्या? ऐसे जितना मैल है उतना संगठन ६से काम ले। परन्तु जो अभिप्राय में अन्तर है, वह कहीं मिलान खाये ऐसा है? समन्वय करो। कोई ऐसा कहता था। समन्वय करना चाहिए। ....

अभ्यन्तर भावसंयम बिना बाह्य नग्न होने से तो कुछ संयमी होता नहीं है, ऐसा जानना। अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। अन्तर आत्मा आनन्द का सागर प्रभु, उसके सन्मुख की परिणति हुई नहीं। उसे संयम से बाहर.... कहलाये। जो पूरा सम्यग्दर्शन का मूलस्वरूप जो परमात्मा स्वयं आनन्द का नाथ। आहाहा! सुखस्वभाव से भरपूर अनन्त ज्ञान, अनन्त जिसे ज्ञान अनन्त है, वह स्वभाव है न! स्वभाव है, उसे मर्यादा कैसी? ऐसा जिसका अन्तर ज्ञान अनन्त, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, वह स्वचतुष्टय से भरपूर पदार्थ, उसके सन्मुख से होकर जो निर्विकल्प दृष्टि हो, उसे तो अभी सम्यग्दर्शन कहते हैं। तदुपरान्त स्वरूप में इतनी लीनता, सम्यग्दर्शन से चारित्र तो महामहँगा है। ऐसा नहीं कि सम्यग्दर्शन की कीमत बहुत और चारित्र की कम है। आहाहा! चारित्र अर्थात्....

उस छहढाला में तो ऐसा लिया है कि एकेन्द्रिय में से त्रसपना प्राप्त करना, वह चिन्तामणि रत्न मिलने जैसा है। आहाहा! और उसमें भी पंचेन्द्रिय आदि वह मिलना और मनुष्यपना मिलना, वह तो चौक में रत्न खो गया हो और लेने जाये, ऐसा है। हजारों, लाखों लोग तो चलते हों और रत्न खो गया, पड़ा हो। मेरा रत्न कहीं खो गया,

लाओ ले आऊँ। कहाँ से मिले बापू? समुद्र नहीं, चौक में। अहमदाबाद का झबेरी चौक, माणेकचौक। जहाँ हजारों लोग पूरे दिन चलते हों। अब वहाँ मेरा रत्न गिर गया। परन्तु वहाँ होता नहीं रत्न, मिलता नहीं। आहाहा! इसी प्रकार ऐसा मनुष्य का देह वह रत्न चौक में मिलने जैसा है। ऐसा महँगा है, परन्तु लोगों को कीमत कहाँ? यह महँगा धर्म के लिये है, हों!

मुमुक्षु : मौज-शौक मानने के लिये?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मौज-शौक और भोग-विषय के लिये महँगा वह तो अब.... किया ही करते हैं अनादि से। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

पूर्ण स्वरूप से भरपूर भगवान के सन्मुख की उपदेश दशा और मुख्य प्राप्ति की शुरुआत तो मनुष्यभव में होती है। संयम तो मनुष्यभव में ही होता है, परन्तु इस सम्यग्दर्शन की मूल शुरुआत की प्राप्ति या इसका उपदेशादि मिलना यह तो पहला मनुष्यभव में ही है। अन्यत्र भले होता है परन्तु वह सब यहाँ से सुना हुआ हो और ऐसे को वहाँ होता है। आहाहा! उसे ऐसा का ऐसा होता है। परन्तु मुख्यत: यह बात है। ऐसा मनुष्यपना तो चौक में... आहाहा! रत्न खो गया और लेने जाये, ऐसी बात है, ऐसी मिल गयी है। उसमें वीतराग की वाणी मिलना, जैन सनातन वीतराग धर्म का तत्त्व सुनने को मिलना, वह तो महादुर्लभ है। और सुनने के बाद भी अन्दर में दृष्टि का परिणमन करना, वह तो महादुर्लभ है। उससे चारित्र का परिणमन करना, वह तो उससे भी महादुर्लभ है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं **अभ्यन्तर भावसंयम बिना बाह्य नग्न होने से तो कुछ संयमी होता नहीं है—ऐसा जानना। यहाँ कोई पूछे—बाह्य वेश शुद्ध हो, आचार निर्दोष पालन करनेवाले को अभ्यन्तर भाव में कपट हो उसका निश्चय कैसे हो,...** प्रश्न है। वेश नग्न हो, आचार निर्दोष हो यह शास्त्र प्रमाण। परन्तु शास्त्र प्रमाण हो न। **अभ्यन्तर भाव में कपट हो...** ...बिना दृष्टि—मिथ्यात्व हो और मुनिपना मनवाता हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उसका निश्चय कैसे हो, तथा सूक्ष्मभाव केवलीगम्य हैं, मिथ्यात्व हो उसका निश्चय कैसे हो, निश्चय बिना वन्दने की क्या रीति?** यह प्रश्न है। आहाहा!

उसका समाधान :— ऐसे कपट का जब तक निश्चय नहीं हो, तब तक

आचार शुद्ध देखकर वन्दना करे... यह व्यवहार है। सच्ची अन्तर्दृष्टि नहीं या कपट है, ऐसा यदि ख्याल आ जाये, तब तो फिर वन्दन न करे। समझ में आया? परन्तु जब तक न आवे, तब तक आचार शुद्ध देखकर वन्दना करे। व्यवहार आचार बराबर निर्दोष आगम प्रमाण आहार, पानी लेना इत्यादि-इत्यादि। प्ररूपणा भी आगम प्रमाण व्यवहार बराबर हो। समझ में आया?

मुमुक्षु : निर्णय हो पश्चात्...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात कही है। वे तो बहुत अच्छे होते हैं बाह्य में और अन्दर में कुछ अन्तर लगे तो बाह्य में जब तक भिन्न नहीं किये तो उसे तब तक खुल्ला नहीं करना। संघ में से अलग नहीं किया, ऐसा।

मुमुक्षु : ... नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। अन्दर में यह ख्याल में आ गया है। परन्तु वह बहुत सूक्ष्म रीति से। बाह्य में तो सब स्पष्ट है चुस्त सब। अन्तर में सूक्ष्म का अन्तर ख्याल में आ गया है। तथापि बाह्य में उसका अनादर करे तो संघ में विरुद्ध हो। व्यवहार... इसलिए कहा है। कहा है मोक्षमार्गप्रकाशक में। समझ में आया? सूक्ष्म भेद का पता जहाँ अन्दर में अन्तर हो ऐसी कोई प्ररूपणा से, किसी चेष्टा से कोई ख्याल गया तो उसे बाह्य में उसका अनादर करे तब तो संघ में विरोध आ जाये। जब तक उसके आचार्यों ने उसे अलग नहीं किया, तब तक उसे... विरोध हो। ऐसा आता है। आता है।

और कपट का किसी कारण से निश्चय हो जाये, तब वन्दना नहीं करे,... यह ऐसा कहते हैं। ख्याल आवे वह नहीं, यह तो कपट, मायाचार करता हो। श्रावक, साधुपना नहीं और बाहर साधुपना मनवाने का प्रयत्न करता हो। समझ में आया? पाँचवें काल के ऐसे होते हैं, चौथे काल जैसे अभी नहीं होते। फलाना होता है, ढींकणा नहीं होता। यह सब कठिन बातें हैं सब। एक साधु आये थे या नहीं? अभी चौथे काल जैसे साधु कहाँ से लावें? पाँचवें काल जैसे साधु नहीं बराबर आदर करो तो फिर सब अच्छा नहीं रहे।

केवलीगम्य मिथ्यात्व की व्यवहार में चर्चा नहीं है,... देखो! **छद्मस्थ के ज्ञानगम्य**

की चर्चा है। ज्ञान में ख्याल में आवे, उस प्रकार की बात का यहाँ विवेक करनी की बात है। सूक्ष्म बहुत हो अन्दर, उसका पता कहाँ लगे ? **जो अपने ज्ञान का विषय ही नहीं...** लो! ज्ञान में उस जाति का ज्ञेय आया ही नहीं। **उसका बाध-निर्बाध करने का व्यवहार नहीं है,...** अन्तर ज्ञान में जहाँ अन्दर ख्याल में आवे नहीं, ऐसी चीज़ रह गयी तो उसके लिये बाध-निर्बाध करना कि यह ठीक है या ठीक नहीं, ऐसा किस प्रकार किया जा सके ? ऐसा कहते हैं।

सर्वज्ञ भगवान की भी यही आज्ञा है। व्यवहारी जीव को व्यवहार का ही शरण है। ज्ञान से बराबर जानने में आवे, वह व्यवहार है। सम्यग्दर्शन-चारित्र आदि ज्ञान में आवे, वह तो व्यवहार है। वह व्यवहार नहीं। निश्चय का सूक्ष्मपना अन्दर हो, वह तो अभी वह तो कहाँ है ? यह तो कोई अच्छे काल में है। अभी तो विपरीत सब ... है। उसमें कहीं कोई परीक्षा करने का है नहीं। आहाहा! व्यवहारिक जीव का... इस व्यवहार का अर्थ यह लेना। यह बाद में किया है न! यह अपने कहा, वह डाला है इसमें। पहले में आया।

एक गुण का दूसरे आनुषंगिक गुण द्वारा निश्चय करना व्यवहार है,... लो! एक गुण द्वारा दूसरे गुण का निर्णय करना, वही व्यवहार है। ज्ञान द्वारा समकित का, चारित्र का निर्णय करना, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : ज्ञान द्वारा ही सबका निर्णय होता है। सब निर्णय ज्ञान द्वारा ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान द्वारा ही होते हैं। दूसरा उपाय कहाँ है ? यह व्यवहार है, ऐसा कहा है। ज्ञान बिना तो उपाय ही कहाँ है ? ज्ञेय प्रमेय का ज्ञान प्रमाण करता है न। इस प्रकार की शैली जितनी योग्यता हो तत्प्रमाण ज्ञान प्रमाण करे। ज्ञान से जाने, ज्ञान का सूक्ष्म कोई भाव हो, वह बात इसके ख्याल में न रहे। उस व्यवहार का तो निषेध करने योग्य नहीं।

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं :—

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ॥२७॥

यह डाला है इसमें। क्योंकि इसमें जाति को भी कहीं वन्दन कहा नहीं। इसलिए चाहे जैसी जाति का आदर ... ऐसा कहते हैं। यहाँ तो वन्दन नहीं, ऐसा कहते हैं। जाति है, इसलिए वन्दनीक है, ऐसा नहीं, ऐसा कहा। इन्होंने ऐसा डाला है। कुन्दकुन्दाचार्य ने यहाँ जाति का निषेध किया और फिर स्त्री जाति को मुक्ति नहीं। अमुक ऐसा है, उसका कैसे कहे? ऐसा। अब इन्होंने यह डाला है। आहाहा! गाथायें डाली हैं, बराबर डाली हैं सूत्रपाहुड़ में। स्त्री का शरीर ऐसा है कि उसमें मुनिपने की दशा रह सकती ही नहीं। वस्त्र बिना रह सके नहीं और ध्यान में... शरीर ही ऐसा पराधीन है। ध्यान में घण्टे, दो घण्टे निडररूप से, नि:सन्देहरूप से पर के भय बिना रहना, वह रह सकती ही नहीं। वे तो चाहे जिस जगह वृक्ष के नीचे महामुनि बाहर एकान्त में ध्यान में रह सकते हैं। उन्हें कुछ डर नहीं है। उनका शरीर ही ऐसा है कि कोई दूसरा बलात्कार करे तो कर सके। पुरुष का क्या कर सके पुरुष को? यह वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। ऐसा नहीं चलता।

यहाँ तो यह कहते हैं कि .....

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ॥२७॥

अर्थ :— देह को भी नहीं वन्दते हैं... वन्दन देह को है या अन्दर गुण को है? अरे! विकल्प है आस्रव अट्ठाईस मूलगुण, वह वन्दनीक है? आहाहा! मुनि के पंच महाव्रत के परिणाम हैं, देखो! राग, आस्रव, वह वन्दनीक है? प्रमेय तो गुण है। आहाहा! **और कुल को भी नहीं वन्दते हैं...** ऊँचे कुल का आदमी, इसलिए वन्दनीक है, ऐसा है कुछ? महा उत्तमकुल का व्यक्ति है। धवल में कहा है न कि मनोज्ञ। दश नहीं? वैयावृत्य। आचार्य मनोज्ञ। वैयावृत्य, ऐसा आता है। परन्तु वह तो महा मनोज्ञ शीलवन्त है, अच्छे कुल का है, श्रेष्ठ दृष्टि है, श्रेष्ठ ज्ञान है, सब ऐसा है, उसकी बात ली है। लोगों में जिसकी छाप पड़े, उसमें कि ओहो! ऐसा पुरुषपने का अन्त में यह सब सम्पदा छोड़कर ऐसे ... भाव छोड़कर यह सब... आता है मनोज्ञ में। ...साधु और पण्डित...

मुमुक्षु : मनोज्ञ सम्यक्त्व...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसने किया है। यह पहली बात। फिर कहीं श्रद्धा... कहीं मनोज्ञ का अर्थ समकित भी किया है। पुण्यवन्त हों, अच्छे कुल के हों, इज्जतदार हों और उपदेश में भी जिसकी बहुत ही प्रसिद्धि हो, ऐसा सम्यग्दृष्टि भी वैयावृत्य करनेयोग्य है, ऐसा आता है। उसकी योग्यता प्रमाण होता है न। यह बात है। भगवान तीन ज्ञान के धनी समकिती हैं, साधु नहीं जन्मे तब, तथापि इन्द्र आकर पूजता है।

मुमुक्षु : इन्द्र आकर पूजता है, परन्तु साधु कोई आकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु किसका पूजे? ऐसा कि वन्दनीक नहीं ही बिल्कुल, ऐसा कहाँ आया? सम्यग्दर्शन, समाधि... साधु तो है नहीं। माता के गर्भ में से जन्मे, तब ही इन्द्र वन्दन करता है। हैं तो असंयमी जीव।

मुमुक्षु : ... अभी वन्दन करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी वन्दन, वह तो असंयमी है। तथापि वह मुनि के योग्य जो वन्दन है, वह नहीं। समझ में आया? खींचतान करे तो नहीं चले। वस्तु जैसी है, वैसी लेना। यह तो बहुत समझने की बात है। उस पत्थर में कहीं बहुत समझने का नहीं आया था वहाँ। नहीं? वहाँ तुम्हारे प्लास्टिक में कहीं इतनी सिरपच्ची करनी पड़ती होगी? लड़के ऐसे हो गये कि आगे गाड़ा हाँके। यह तो मार्ग अलग प्रकार का है। आहाहा! जन्म-मरण से रहित होने का मार्ग, इसका विवेक...

मुमुक्षु : अलौकिक मार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकि मार्ग है। अरे! अनन्त-अनन्त दुःख का अन्त, अनन्त-अनन्त दुःख का अन्त, अनन्त-अनन्त आनन्द की शुरुआत। आहाहा! यह मार्ग है, बापू! समझ में आया?

कुल को भी नहीं वन्दते हैं तथा जातियुक्त को भी नहीं वन्दते हैं... देखो! जातिवाला हो। बहुत उत्तम जाति जिसकी। नगरसेठ, दीवान, राजा, उत्तम जाति। वह कोई जाति वन्दनीक है? **क्योंकि गुण रहित हो, उसको कौन वन्दे?** आहाहा! जिसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुण नहीं, उसे कौन वन्दन करे? चाहे जो जाति हो। **गुण बिना प्रकट मुनि नहीं,...** गुण बिना प्रगट मुनि नहीं। **श्रावक भी नहीं है।** लो!

आहाहा! अन्तर स्वभाव का आश्रय लेकर जिसे गुण प्रगट हुए नहीं, वह फिर श्रावक और मुनि कैसा? कहते हैं। बाहर की प्रवृत्ति के क्रियाकाण्ड में लवलीन हो, वह क्या? वह वस्तु है? वह तो अनन्त अभव्य भी ऐसा तो करते हैं। गजब मार्ग, भाई! अष्टपाहुड़ में दर्शनपाहुड़ की कथनी। सूत्रपाहुड़ की, ऐसी ही सब रचना। बोधपाहुड़ की रचना। आहाहा!

इन्होंने लिखा है कि शुरुआत अष्टपाहुड़ की रचना की लगती है। ऐसा लिखा है। फिर प्रौढ़ अवस्था में समयसार, प्रवचनसार ऐसा लिखा है। इसमें है। यह सब ... किये हैं, इसलिए ऐसा कि शुरुआत में यह....

मुमुक्षु : उसमें और इसके कथन में अन्तर?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं अन्तर नहीं। दोनों समान हैं। कहीं विस्तार से, कहीं संक्षिप्त से, परन्तु वस्तु तो यही है। आहाहा! प्रौढ़ ही हैं दोनों। विस्तार करना हो, तब तो उसकी सब बात करे न! वहाँ भी स्पष्टीकरण किया है न! वेश और जाति तो ऐसी होती है, तथापि वह वेश और जाति वन्दनीक नहीं है। वहाँ भी कहा था। व्यवहारनय का हो सही वेश ऐसा। व्यवहारनय से... निश्चय और व्यवहार दोनों होते हैं। आता है न उसमें? आता है। यह संक्षिप्त में है। परन्तु वस्तु तो एक जैसी है। ओहोहो! यह तो भाई जिसे मध्यस्थ से, मध्यस्थ रहकर... आता है न उसमें—पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। निश्चय और व्यवहार ज्ञान होकर मध्यस्थ हो जाये। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आता है। उसकी जो स्थिति है, वैसा उसे समझ ले। खींचतान न करे। मध्यस्थ भवति, ऐसा है। निश्चय-व्यवहार बराबर जानकर... पुरुषार्थसिद्धि... सब आगम का मेल आना चाहिए न! एक आगम में ऐसा कहा, परन्तु अन्यत्र कहे उसकी सन्धि होकर पूरे आगम का सार... भाई ने लिखा है, फूलचन्दजी ने उसमें—खानियाचर्चा में (लिखा है)। एक आगम में ऐसा कहा था। मुनि को।... जैसे व्यवहार है। परन्तु सब आगम में से उसका सार व्यवस्थित आना चाहिए न? सब आगम के ऊपर दृष्टि रखकर तत्त्व कहना चाहिए, ऐसा लिखा है। बात सच्ची है। न्याय बात।

सब आगमों में कितने प्रकार की कितने नय से वहाँ कहा। उसका सब सार—तात्पर्य आना चाहिए न? किस अपेक्षा से वहाँ कहा, किस अपेक्षा से यह कहा, इसका

सार। योगफल में वीतरागता आनी चाहिए सब शास्त्रों की। योगफल तो वीतरागता चाहिए। दृष्टि में वीतरागता, ज्ञान में वीतरागता और चारित्र में वीतरागता—सबका सच्चा तात्पर्य यह निकलना चाहिए। इस प्रकार इसे सब आगमों को दृष्टि से विचारना चाहिए।

लोक में भी ऐसा न्याय है जो गुणहीन हो, उसको कोई श्रेष्ठ नहीं मानता है, देह रूपवान हो तो क्या,... देह तो जड़ है, वह तो मिट्टी है। उसका रूप हो, उसमें क्या? वह तो परमाणु की पर्याय है। उसमें आत्मा का क्या? उसमें आत्मा को गुण की अधिकता क्या आयी? आहाहा! **कुल बड़ा हो तो क्या,...** देखो! दीवान की लड़की है, दीवान का लड़का है, राजा का लड़का है, नगरसेठ का लड़का है तो क्या परन्तु अब वहाँ? उससे धर्म के साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा! चाण्डाल हो और धर्म प्राप्त करे तो (उसे) भगवान ने देव जैसा कहा है, देखो! कुन्दकुन्दाचार्य ने।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन...

पूज्य गुरुदेवश्री : हो उसमें क्या है? जैसे अग्नि भस्म से ढँकी हुई है, वैसे चैतन्य का भान है, देह है चाण्डाल की, संयम नहीं है, तथापि वह अन्दर में अंगारा-चैतन्य से जागृत है। देव है देव। लो, वहाँ ऐसा कहा। आहाहा! दिव्यशक्ति का भण्डार भगवान जिसे स्पर्शा है, वह देव है, कहते हैं। केवलज्ञान हुआ तो फिर दिव्यशक्ति प्रगट हुई श्रद्धा की। उसे दूसरे केवलज्ञान की क्या बात करना? यह भी चाण्डाल। आहाहा! काला कुबड़ा शरीर, मलिन शरीर, अरे! नारकी के शरीर में समकिती होता है। आहाहा! शरीर देखो तो एक-एक अंग, एक-एक अवयव ऊँट के अठारह अंग टेढ़े, उसी प्रकार यहाँ सब टेढ़ा। ऐसा मुँह ऐसा, आँख... आहाहा! ऐसे पाप के फल गये हैं न। एक-एक अवयव झूठा सब। हाथ सब उल्टे। तथापि अन्दर सम्यग्दर्शन होता है। इससे कहीं देह की स्थिति से गुण है, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

वहाँ **जाति बड़ी हो तो क्या,...** देखो! कुल पिता का, जाति माता की कि जाति की बहुत ऊँची जाति आदि हो। उससे क्या? **क्योंकि मोक्षमार्ग में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र गुण हैं,...** आहाहा! मोक्षमार्ग में तो भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वह मोक्षमार्ग में है। आहाहा! दुःख से मुक्त और आनन्द की पूर्ण प्राप्ति का मार्ग भी दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। समझ में आया? **मोक्षमार्ग में तो दर्शन-**

ज्ञान-चारित्र गुण हैं, इनके बिना जाति-कुल-रूप आदि वन्दनीय नहीं हैं,... गुण न हो तो वह कोई वन्दनीक नहीं है। आहाहा!

इनसे मुनि-श्रावकपना नहीं आता है,... अन्तर दर्शन, ज्ञान, स्थिरता बिना मुनिपना और श्रावकपना आता नहीं। बाहर के वेश से और क्रियाकाण्ड से कहीं मुनिपना, श्रावकपना आता नहीं। श्रावक नाम धरावे, श्रावक का वेश, साधु का वेश नग्न और क्रियाकाण्ड हो बाहर की, सब ऐसी, उससे कहीं सच्चे मुनि और श्रावक नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? **इनसे मुनि-श्रावकपना नहीं आता है, मुनि-श्रावकपना तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होता है,...** लो, यह बात आयी। अट्ठाईस मूलगुण, बारह व्रत से कहीं मुनिपना और श्रावकपना नहीं आता। मुनिपना और श्रावकपना तो आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन का अनुभव, प्रतीति, ज्ञान और रमणता का अंश थोड़ा या विशेष, परन्तु उस गुण से मोक्षमार्ग है। व्यवहार की क्रिया और निमित्त का नग्नपना... ऐसा तो यथाजात कहा था जैनदर्शन का। परन्तु वह तो गुणसहित, विकल्प और निमित्त। गुण नहीं और अकेला विकल्प और ऐसा निमित्त हो, वह कहीं गुण में गिनने में नहीं आते। आहाहा!

मुमुक्षु : ... नमस्कार ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा हो तब ऐसा होता है। ऐसा हो, तब ऐसा होता है अर्थात् क्या? बहुत साधु सन्त अच्छे विचरते हों, उसमें से कोई ऐसा हो और पहले आवे, उसे वन्दन तो करना चाहिए न। ... परन्तु ऐसा हो तब। यह तो ऐसी सब परीक्षायें हो गयी होती हैं। वह तो अच्छे सन्त हजारों विचरते हों, उनमें कोई अनजाना साधु आया। ... वन्दन करे तो पहले, फिर परीक्षा करे। अभी तो परीक्षा हो चुकी है सब।

मुमुक्षु : ... गुरु होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होते हैं। होते हैं। होय उसे न? होवे कैसे, इसकी खबर बिना किसकी?

मुमुक्षु : है उसमें से एक नहीं मानो तो पंचम काल में मुनिपना...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मुनिपना ऐसा होगा वहाँ।

मुमुक्षु : ...मुनिपना

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। ऐसा कुछ नहीं। परन्तु कोई हंस दिखाई न दे तो कहीं बगुले को हंस माना जाता होगा? दृष्टान्त नहीं दिया? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में दृष्टान्त दिया है। हंस न दिखाई दे तो हम बगुले को माने कि यहाँ अपने मानना पड़ेगा, भाई!

मुमुक्षु : ऐसा तो शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में लिखा है अर्थात् क्या परन्तु? तब तो अन्यमति के बाबा को मानना पड़ेगा। हमारे कहते थे वे। हीरजीभाई के बाप थे न ताराचन्दभाई, वे कहते थे। कि देखो, करोड़ों साधु कहे हैं। वे सब अन्यमति के वे अमुक, बड़े-बड़े इकट्ठे डालेंगे तब यह करोड़ों होंगे। ऐसा कहते थे। वेशधारी सब जैन के हैं, उन्हें डालोगे तब होगा। अरे! ऐसा है नहीं। वह तो सच्चे, यह तो आयेंगे उसमें। खोटे उसमें नहीं आते। वह अंक आता है न शास्त्र में, ऐसा अंक यहाँ न देखे। यहाँ नहीं देखा, परन्तु अन्यत्र कहाँ नहीं? महाविदेह में नहीं? महाविदेह में लाखों साधु-सन्त विराजते हैं। सच्चे सन्त हैं, केवली विराजते हैं। आहाहा! ऐसी बात होती थी पहले।

यहाँ कहते हैं कि गुण हो तो वह मान्य है। अकेली जाति, कुल और वेश तथा क्रियाकाण्ड वह कहीं मान्य है नहीं। आहाहा! है न? **इनसे मुनि-श्रावकपना नहीं आता है, मुनि-श्रावकपना तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होता है, इसलिए इनको धारण हैं, वही वन्दनेयोग्य हैं,...** परीक्षा करनी पड़ेगी न इसे? **जाति, कुल आदि वन्दनेयोग्य नहीं हैं।** इसलिए यहाँ से डालते हैं न। जाति है न, उसका निषेध करते हैं। उसमें से चाहे जिस जाति को केवल (ज्ञान) हो सके। ऐसा कहाँ वर्णन किया है यहाँ?

मुमुक्षु : जाति में कुछ नहीं होता... हो सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ ऐसा। तो सब हो सके, ऐसा इसमें लिखा है। ऐसी यहाँ कहाँ बात है? शास्त्र में तो ऐसा आया नहीं? समाधिशतक में। जिसके आगम में वेश और लिंग से मोक्ष होता है, ऐसा आग्रह नहीं चलता (वे मिथ्यादृष्टि हैं)। इसलिए चाहे जैसा लिंग हो और चाहे जैसी जाति हो, ऐसा कहना है वहाँ? भाई कहते ... देखो, इसमें तो यह लिखा है।

मुमुक्षु : समाधिशतक में।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाधिशतक में। खबर है न। यह तो बात करते थे। ऐसा नहीं कहना। वहाँ तो कहना है कि स्त्री जाति के लिंग से हमको मोक्ष होगा, इसका निषेध है। बाकी तो जाति और लिंग जो सम्यग्दृष्टि, मुनि को हो वही होता है। ऐसे आड़ी-टेढ़ी विपरीतता डालते हैं न। बड़ी चर्चा हुई थी लालन के साथ।

मुमुक्षु : तो ... मूर्ति नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ... कहा था। सम्यग्दृष्टि ... वह तो उन्होंने कल्पित सब बनाया है। कथायें—बथायें सब कल्पित हैं। वीतरागमार्ग में सनातन सन्तों ने जो कथायें कही हैं, उनमें न्याय होता है, भाई! वह तो सब कल्पित है। ऐसे फटे जहाँ। बड़ा फेरफार... फेरफार...

मुमुक्षु : बहुत...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुमत इसमें चलता नहीं।

मुमुक्षु : बहुमत तो पागल का। संसार में कुछ बहुमत नहीं। अमुक उम्र के हों, अमुक योग्यता हो उसे भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने लिखा है चन्द्रशेखर ने। कि इस प्रमाण तुम राष्ट्रीयकरण करके... तो फिर बहुमत से यह धर्म सिद्ध होगा। हमारे साधुओं का मत नहीं उसमें, यह नहीं आता। धर्म का मत नहीं आता। और ऐसा होते-होते तो जैन की अपेक्षा बहुमत वेदान्त में होगा तो वह बाहर में आयेगा। और वेदान्त से बौद्ध का बहुमत बहुत अधिक संख्या। बौद्ध की बड़ी संख्या है वेदान्त से और उनसे ख्रिस्ती की बड़ी संख्या है। इसलिए ईशुख्रिस्तन का धर्म आकर रहेगा पूरा। लोगों को तर्क। ऐसा तर्क होवे लौकिक में ? बहुत संख्या, थोड़ी संख्या हो परन्तु जो सत्य है, वह सत्य ही है।

मुमुक्षु : एक हो तो भी क्या, एक न हो तो भी धर्म तो जो है, वह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म जो है, वह है। उसमें संख्या का यहाँ क्या काम है ? आहाहा! और दूसरे को सुधारना और दूसरे का करना, ऐसा विकल्प ही आत्मा को लाभदायक नहीं।

मुमुक्षु : वह तो बन्धन का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! दूसरे को ऐसा रखना, वह मुझे लाभदायक है। बात ही झूठी है। बहुत धर्म में तो रहेगा, इतना लाभ होगा। क्या लाभ होगा तुझे? तुझे तो विकल्प हुआ। विकल्प तो बन्ध का कारण है। ऐसी बात है। आहाहा!

अब कहते हैं कि जो तप आदि से संयुक्त है, उनको नमस्कार करता हूँ :—

वंदमि तवसावण्णा सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण सुद्धभावेण॥२८॥

पाठ में जरा कहते हैं। **आचार्य कहते हैं...** स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य महाराज स्वयं कहते हैं। **कि जो तप सहित श्रमणपना धारण करते हैं...** तप अर्थात् मुनिपना। दीक्षा जो साधु की दिगम्बर दीक्षा लेते हैं, **उनको तथा उनके शील को,...** देखो, भाषा है न? ऊपर आ गया है। '**सीलसहियाणं**' इसमें आ गया है पहले। शीलसहित। २५वीं। '**अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।**' यह आया। है न, '**तवसावण्णा सीलं**' तपस्या मुनिपना है और उसका शील है। शुद्ध चैतन्यस्वभाव का आचरण अन्दर शील स्वभाव। आनन्द का शील है। अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे शील अर्थात् स्वभावदशा प्रगट हुई है। आहाहा!

उनके गुण को व ब्रह्मचर्य को मैं सम्यक्त्व सहित... आहाहा! और उसका ब्रह्मचर्य। ब्रह्म अर्थात् आनन्द में रमणता। सन्तों की तो ब्रह्म अर्थात् भगवान आनन्द में रमणता, वह ब्रह्मचर्य है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! ब्रह्मास्मि—मैं ब्रह्म हूँ, आनन्द हूँ। ऐसी आनन्द की ऐसी परिणति अतीन्द्रिय आनन्द की दशा, ऐसा जो ब्रह्मचर्य, उसे **मैं सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से नमस्कार करता हूँ...** आचार्य स्वयं कहते हैं, लो! ओहोहो! ऐसे ब्रह्मचर्य को **मैं सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से...** है न पाठ? '**सम्मत्तेण सुद्धभावेण**' ऐसा है। तप, क्षमापना वह श्रवणा है न? क्षमापना कहते हैं। साधन है।... समस्तेण ऐसा पाठ होने से पाद भंग नहीं होता। समस्तेण। '**सम्मत्तेण**' है न, परन्तु होने से पाद भंग नहीं होता। ऐसे महामुनि, अरेरे! वे अभी तो कहाँ हैं। यहाँ तो वस्तु का स्वरूप वर्णन करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द का।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। **उनको तथा उनके शील को, उनके गुण को...** वह शील, वह गुण है सब। शान्ति, वीतरागता, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह सब शील है। पूरा शीलपाहुड़ आता है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह सब शील है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन शील है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन शील है न। यह तो तीनों इकट्ठे लिये हैं। साधु की बात है न! सम्यग्दर्शन शील है। नारकी को यह शील गिना है। नारकी में शील है। सम्यग्दर्शन है न? वही शील है। यह नारकी। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होनेवाले हैं। वहाँ शील है। उस शील के प्रकार हैं वहाँ। आहाहा! रूखी बातें लगें यह सब। सत्य समझने की जो वस्तु है, वह तो सूक्ष्म और पकड़ने में दरकार न हो, उसे ऐसा लगे। बापू! मार्ग तो यह है। इसे पहुँचने से ही छुटकारा है, जगत को हित करना हो तो। बाकी वहाँ ऐशो-आराम वहाँ चले ऐसा नहीं वहाँ। आहाहा!

क्योंकि उनके उन गुणों से... देखो! **सम्यक्त्वसहित शुद्धभाव से सिद्धि अर्थात् मोक्ष उसके प्रति गमन होता है।** लो! सम्यक्त्वसहित शुद्धभाव परिणति वीतरागी, उससे मोक्ष **उसके प्रति गमन होता है।** आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित शुद्धभाव की परिणति से मोक्ष में गमन होता है। कोई अट्ठाईस मूलगुण और नग्नपना, उससे कहीं मोक्ष में गमन होता है, ऐसा है? होता है वह। समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक १७-१०-१९७३
गाथा-२८, २९, ३०, ३१, प्रवचन-२९

यह अष्टपाहुड में से दर्शनपाहुड़ चलता है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में हुए। दिगम्बर मुनि थे। वह भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य जो यहाँ भरतक्षेत्र के आचार्य थे, वह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ गये थे। वहाँ आठ दिन रहे थे। और वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। उसमें यह अष्टपाहुड़ में दर्शनपाहुड़ की बात चलती है। गाथा २८ का भावार्थ है।

पहले कहा है कि देहादिक वन्दनेयोग्य नहीं हैं,... शरीरादि है, वह तो जड़ है। वह कोई वन्दन करनेयोग्य चीज़ नहीं। दर्शन की प्रधानता का वर्णन है न उसमें? तो कहते हैं कि अन्दर गुण जो हो तो वन्दनीक है। देहादि की क्रिया या देह वह कोई वन्दनीक नहीं। **गुण वन्दनेयोग्य हैं।** यह गुणसहित की वन्दना की है। अन्तर में जिसको सम्यग्दर्शन, आत्मा का सम्यग्दर्शन अनुभव, आत्मा का आनन्द का अनुभव होकर जिसको सम्यग्दर्शन हुआ हो, वह प्रथम गुण उसमें है।

तो कहते हैं कि **अब यहाँ गुण सहित की वन्दना की है। वहाँ जो तप धारण करके...** सम्यग्दर्शनसहित मुनिपना, नग्नपना, बाह्य में और अन्तर में शान्ति और आनन्द की जिसकी वेदनदशा बहुत हुई है। ऐसा **तप धारण करके...** तप अर्थात् मुनिपना। जिसकी अन्तर में आनन्दस्वरूप में रमणता बहुत दिखती हो और बाह्य में जिसकी नग्न मुद्रा हो, **वहाँ जो तप धारण करके गृहस्थपना छोड़कर मुनि हो गये हैं, उनको तथा उनके शील, गुण, ब्रह्मचर्य सम्यक्त्वसहित...** शील अर्थात् अन्तर आनन्दस्वभाव का अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव का प्रगट होना वह शील है। ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य आगे विशेष लेंगे। शील, गुण और ब्रह्मचर्य समकित सहित। जिनको आत्मा सम्यग्दर्शन अनन्त काल में 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया। अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत और नग्नपना, वह तो अनन्त बार लिया। परन्तु आतमज्ञान बिन, आत्मा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो कहा ऐसा आत्मा का अनुभव न हो, आत्मा का वेदन न हो, आत्मा की शान्ति का प्रगट अनुभव न हो, तो उसमें कुछ फल है नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **शील, गुण, ब्रह्मचर्य सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से संयुक्त हों...** आहाहा! अब उसकी व्याख्या करते हैं। **यहाँ शील शब्द से उत्तरगुण...** क्षमा आदि **और गुण शब्द से मूलगुण तथा ब्रह्मचर्य शब्द से आत्मस्वरूप में मग्नता...** आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना आत्मा में मग्नता कभी होती नहीं। केवल पंच महाव्रत पाले, नग्न हो, वह कोई मुनिपना नहीं। आहाहा! अन्तर आत्मा में—ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चर्य अर्थात् चरना, सूक्ष्म बात है। वह ब्रह्मचर्य है। **आत्मस्वरूप में मग्नता समझना चाहिए।** आहाहा! देहादि से तो भिन्न और महाव्रतादि का विकल्प है, वह शुभराग है। उससे भी भिन्न। अपना आत्मस्वरूप में लीनता उसका नाम यहाँ ब्रह्मचर्य कहने में आता है। सूक्ष्म बात है। अनन्त काल में कभी उसने सम्यग्दर्शन पाया नहीं और सम्यग्दर्शन बिना सारी क्रिया व्रत हो, तप हो, भक्ति, पूजा, वह पुण्यबन्ध हो। और उससे कोई स्वर्गादि मिले परन्तु भव का अभाव नहीं होता है। ऐसी बात है। आहाहा!

तो कहते हैं, **ब्रह्मचर्य शब्द से...** पाठ में है न? शील, गुण और ब्रह्मचर्य। तीन शब्द पड़े हैं। गाथा। अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। उसमें सम्यग्दर्शनसहित लीनता करना। आहाहा! उसका नाम परमात्मा ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव ब्रह्मचर्य कहते हैं। समझ में आया? ब्रह्मचर्य वह मुख्य चीज़ है। वह ब्रह्मचर्य हों! शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह तो अनन्त बार लिया है, पाला है। वह तो क्रियाकाण्ड शुभभाव की क्रिया है। परन्तु यह तो ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। चैतन्य ब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है। आहाहा! वह आनन्दस्वरूप की अनुभवदशा उपरान्त उसमें विशेष लीनता करना, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का विशेष उग्रपने स्वाद आना, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना। आहाहा! उसको यहाँ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने कहा वह कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त जगत के पास जाहिर करते हैं। पण्डितजी! आहाहा!

ऐसा ब्रह्मचर्य अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप में लीनता। मात्र शरीर से क्रिया विषय की न हो, मन, वचन, काया की क्रिया से राग न हो। परन्तु वह ब्रह्मचर्य तो शुभराग है। इसलिए यहाँ आत्मा में रागरहित होकर, दृष्टि में... पहले शुद्ध चैतन्यमूर्ति उसका सम्यग्दर्शन, ज्ञानस्वभावी प्रभु आतमा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूपी प्रभु आत्मा

उसकी अन्तर में ज्ञान में निर्णय, प्रतीति अनुभव होकर सम्यग्दर्शन होना और उसके उपरान्त विशेष आनन्द में लीन होना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। वह अनन्त काल में कभी किया नहीं। सेकेण्ड भी किया नहीं। मुनिव्रत पाला, पंच महाव्रत, नग्नपना नन्त बार। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार...' छहढाला में आता है। आता है? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक पायो, पै निज आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मज्ञान, जिसको परमात्मा वस्तु शुद्ध चैतन्य आनन्द, उसकी सन्मुख होकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और विकल्परहित आत्मा का ज्ञान कभी किया नहीं उसने और उसके बिना सब एक के बिना बिन्दु हैं। लाख बिन्दु हो परन्तु एक न हो तो संख्या गिनने में आती नहीं। आहाहा! समझ में आया? वीतराग जैनदर्शन वीतराग का यह मार्ग है। आहाहा!

कहते हैं कि **ब्रह्मचर्य शब्द से आत्मस्वरूप में मग्नता समझना चाहिए।** देखो! ओहोहो! '**बंभचेरं च**' है न? यह मुक्ति का मार्ग है। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय शान्तरस, आनन्दरस ध्रुव पड़ा है। उसमें लीनता, चरना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का खुराक आना। नित्यभोजी आता है न? आनन्दं नित्यभोजी। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान उसका अतीन्द्रिय का वेदन खुराक खाना, आनन्द का खुराक उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। समझ में आया? ऐसा चारित्र धर्मी को वन्दनीक है। धर्मी को वह वन्दनीक है। णमो लोए सव्व साहूणं। वह साधुपद आचार्यपद में अन्दर सम्यग्दर्शनसहित आता है, वह वन्दनीक है। अब यह गाथा पूरी हुई।

अब २९। **आगे कोई आशंका करता है कि—** आशंका, हों! शंका नहीं परन्तु आशंका। स्पष्टीकरण माँगते हैं **कि संयमी को वन्दनेयोग्य कहा...** ऐसी जिसको अन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप में आनन्द की लीनता ऐसे को वन्दनीक कहा और वह मार्ग में है, ऐसा कहा **तो समवसरणादि विभूतिसहित तीर्थंकर हैं...** तीर्थंकर को तो समवसरण विभूति है बड़ी। ओहो! भगवान तीर्थंकरदेव महाविदेह में वर्तमान में सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं। महाविदेह में विराजते हैं, महाविदेह क्षेत्र है जमीन पर। श्री सीमन्धर परमात्मा विद्यमान तीर्थंकर विराजते हैं। तो कहते हैं कि उनको तो समवसरण है। महावीर भगवान आदि हो गये वह तो सिद्ध हो गये अभी। णमो सिद्धाणं में है। णमो अरिहंताणं में तो वर्तमान में विराजते हैं परमात्मा। महाविदेह में सीमन्धर प्रभु, विहरमान

भगवान। तो कहते हैं कि तीर्थंकर को तो बड़ी समवसरण की ऋद्धि होती है। समवसरण आदि विभूति। चौसठ इन्द्र जिसको चँवर ढालते हैं, ३४ अतिशय सहित है और त्रिगढ़ रचना आठ की रचना करते हैं इन्द्र। आठ प्रकार की सभा होती है न समवसरण में? आठ। तो वह ऐसी विभूतिवाले तीर्थंकर वन्दनयोग्य है या नहीं? यह पूछते हैं। उनको तो बहुत वैभव है। मणिरत्न का गढ़ है और आठ भूमिका है, बारह सभा होती है और ऊपर मणिरत्न के सिंहासन पर ऊपर विराजते हैं। ऊपर नहीं। अन्तरिक्ष। चार तसु (ऊपर) अन्तरिक्ष विराजते हैं। कहो, समझ में आया?

अन्तरिक्ष तो यहाँ दिगम्बर में ही है, ऐसा। श्वेताम्बर में अन्तरिक्ष नहीं। वह विवाद चलता है न अन्तरिक्ष में। वहाँ से आया है। सिरपुर। सिरपुर। हम गये थे न वहाँ। बड़ी सभा थी। आठ दिन रहे थे। वह विवाद चलता है न दोनों के बीच में। तो अन्तरिक्ष तो दिगम्बर में ही होता है। श्वेताम्बर में अन्तरिक्ष आता ही नहीं बीच में। तो अन्तरिख तो दिगम्बर का ही तीर्थ है वह। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं देखो! जो समवसरण में है और उसकी विभूति बहुत है। उनको वन्दन करनेयोग्य है या नहीं? **उसका समाधान करने के लिये गाथा कहते हैं कि जो तीर्थंकर परमदेव हैं, वे सम्यक्त्वसहित तप के माहात्म्य से तीर्थंकर पदवी पाते हैं...** आहाहा! तीर्थंकर भगवान समकित आत्मा के अनुभव की प्रतीतिसहित, **तप के माहात्म्य से...** मुनिपना आदि। **तीर्थंकर पदवी पाते हैं, वे भी वन्दनेयोग्य हैं—** आहाहा! २९ गाथा।

चउसट्ठि चमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो॥२९॥

भगवान तीर्थंकरदेव अरिहन्त त्रिलोकनाथ **जो चौसठ चंवरों से सहित हैं,...** देव उनको चौसठ चंवर ढालते हैं। वह तो उसकी भक्ति है। भगवान को क्या है? वह तो इन्द्रों की भक्ति है। भगवान उससे रहित है। भगवान तो वीतराग है। वह तो केवलज्ञानी वीतराग परमात्मा है। उसको कोई चंवर ढाले तो ठीक लगता है, ऐसा है कुछ? वे तो वीतराग हैं। इन्द्र अपनी भक्ति करते हैं। **चौसठ अतिशय सहित हैं, निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है...** दो अर्थ किये है उसमें। नीचे हैं न? '**अणुचर-बहुसत्तहिओ**'

अनुचर-सेवको ... ऐसे। अनुचर अर्थात् भगवान कहते हैं, उसके अनुसरण करनेवाले सेवक। अनुचर है न? उसमें लिखा है।

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा अरिहन्तदेव जो फरमाते हैं, उसका सेवक जो है, उसका अनुचरण करनेवाला ऐसे सेवक समकिती आदि उसका बहुसत्वहित। उसका बहुत सत्व जीव का हित होता है। उसके सेवक को बहुत हित होता है। आहाहा! **निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है...** वीतराग की दिव्यध्वनि जिससे जगत के प्राणी को हित का मार्ग पंथ दिखने में आता है। **ऐसे उपदेश के दाता हैं...** भगवान को इच्छा बिना ऐसी उपदेश वाणी निकलती है। भगवान को कोई इच्छा होती नहीं है। वे तो वीतराग हैं। उपदेश ध्वनि ॐ ध्वनि उठती है।

ऐसे उपदेश के दाता हैं, और कर्म के क्षय का कारण है... निमित्त। निमित्त कारण है। जो कर्म जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपने से प्राप्त करते हैं, उसमें भगवान की वाणी और भगवान निमित्तकारण कहने में आता है। **ऐसे तीर्थंकर परमदेव हैं...** ऐसे तीर्थंकर परमदेव वह वन्दनेयोग्य है ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :— यहाँ चौसठ चंवर चौतीस अतिशय सहित विशेषणों से तो तीर्थंकर का प्रभुत्व बताया है... तीर्थंकरदेव की पुण्य प्रकृति की प्रभुता बतायी। वह कोई गुण नहीं। बाहर की पुण्य प्रकृति की प्रभुता। **और प्राणियों का हित करना तथा कर्मक्षय का कारण विशेषण से दूसरे उपकार करनेवाला बताया है, इन दोनों ही कारणों से जगत में वन्दने पूजनेयोग्य हैं।** लो! वीतरागता और सर्वज्ञता है और जगत के प्राणी के हित के कारण से वाणी निकलती है और जगत के प्राणी का हित होता है, तब उपकार बहुत होता है। उस कारण से वन्दनेयोग्य भगवान... कहते हैं कि वह समवसरण की ऋद्धि उस कारण से नहीं है। वह तो अन्तर का गुण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र केवलज्ञान। उस गुण के कारण से वन्दनीक है। समझ में आया?

समन्तभद्राचार्य कहते हैं न? भगवान! तुम्हारे समवसरण की ऋद्धि... उसमें तुम्हारी प्रभुता नहीं मानते हम। समवसरण आदि तो इन्द्र भी करे। बनाये। उससे हम तुम्हारी प्रभुता नहीं मानते। समन्तभद्राचार्य। मुनि जैसे तीर्थंकर जैसे ... इसको बुलाओ। जाये। तुम्हारे समवसरण के अतिशय से हम तुमको प्रभुता मानते नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा। गाथा वह पण्डित जाने। पण्डित है न। संस्कृत के प्रोफेसर है। गाथा में सब याद है। यहाँ तो भाव की खबर है, गाथा सभी याद नहीं है।

भगवान के समवसरण में समन्तभद्राचार्य ने ऐसा कहा। यहाँ तो समवसरण नहीं है। प्रभु! आपके समवसरण के अतिशय को हम वन्दन नहीं करते हैं। आपकी प्रभुता उससे हम नहीं स्वीकारते। तुम्हारे अन्तर में सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतरागता अनन्त चतुष्टय जो प्रगट हुआ है। सर्वज्ञ परमेश्वर को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य वह प्रगट है, उसको हम वन्दन करते हैं। उससे हम तुम्हारी प्रभुता मानते हैं। आहाहा! उनकी प्रभुता तो इन्द्र भी ऐसा खड़ा कर दे। समवसरण की रचना कर दे। आता है न। समझ में आया कुछ?

कहते हैं **दोनों ही कारणों से जगत में वन्दने-पूजनेयोग्य हैं। इसलिए इस प्रकार भ्रम नहीं करना कि तीर्थंकर कैसे पूज्य हैं, यह तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं।** आहाहा! जिसको एक समय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं। सर्वज्ञ है परमात्मा तीर्थंकरदेव महाविदेह में अरिहन्तपने विराजते हैं। वहाँ महावीर भगवान जब समवसरण में थे, तब भी अरिहन्त थे। अभी तो सिद्ध हो गये। णमो सिद्धाणं अशरीर सिद्धपद में हैं। वह तो सर्वज्ञ वीतराग के कारण से गुण में बड़ा है, वन्दनीक है। बाहर की विभूति के कारण से नहीं। आहाहा!

आया था न जाति का पहला? जाति और कुल देह वन्दनीक नहीं है। २७ में है। जाति में भी कोई उत्तम जाति हो, वह वन्दनीक नहीं है। कुल में तो ऊँचे कुल में जन्म लिया हो, वह कोई धर्मी नहीं। और कोई माता-पिता का कुल ऊँचा हो, उससे कोई वन्दनीक नहीं। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य समुद्र भगवान आनन्द का सागर प्रभु! आहाहा! जिसमें पूर्ण ज्ञानस्वभाव भरपूर भरा है। ऐसा आत्मा भगवान आत्मा, उसकी जिसको दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई, वह गुणी और वही वन्दन करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? कोई बाहर की पुण्य प्रकृति आदि हो तो वह कोई आदरणीय नहीं। वह तो जड़ है। आहाहा!

तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं। तीन काल—तीन लोक को भगवान जानते हैं। और फिर वीतराग-विज्ञानता। आता है न? वीतराग-विज्ञानता। विज्ञान तो है परन्तु वीतराग -विज्ञान।

मुमुक्षु : तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग विज्ञान। यह छहढाला में आता है। छहढाला की शुरुआत में। वीतराग विज्ञानता। यह अज्ञानी का विज्ञान है, वह विज्ञान नहीं है। अभी जो सब लोग विज्ञान कहते हैं न? ऊपर उड़ता है, यह होता है, यह होता है। ऐरोप्लेन। वह कोई विज्ञान नहीं, कुविज्ञान है। रॉकेट यह और वह। वीतराग-विज्ञानता। जिसमें विज्ञानता तो प्रगट हुई है, परन्तु वीतरागता प्रगट हुई है। आहाहा! णमो अरिहंताणं। शास्त्र में जो ऐसा चला है, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। ऐसा धवल में चला है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। ऐसा है। परन्तु छोटा करके णमो अरिहंताणं कहा। णमो लोए सव्व साहूणं आखिर में कहा। सबमें लागू पड़ता है पाँचों में। णमो लोए सव्व साहूणं। तो णमो लोए सव्व अरिहंताणं। ऐसा पाठ है। णमो लोए सव्व सिद्धाणं। परन्तु वह तो णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। आहाहा! वह अनन्त वीतराग विज्ञानता प्रगट हुई है उनको। उस कारण से देव और दिव्यता कहने में आता है। देव तो स्वर्ग में भी देव है और भगवान भी देव हैं। देव-देव में अन्तर है। आहाहा! यह (स्वर्ग के देव तो) पुण्य-प्रकृति के कारण से देव है, यह तो आत्मा के गुण के कारण से देव है। आहाहा! सर्वज्ञ पद एक समय में तीन काल—तीन लोक देखते हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान। हथेली जैसे दिखे ऐसे देखे भगवान त्रिकाल। वीतराग-जिसमें राग का अंश है नहीं। ऐसे भगवान ही पूज्य हैं।

उनके समवसरणादिक विभूति रचकर इन्द्रादिक भक्तजन महिमा करते हैं। कुछ सम्बन्ध है नहीं। समवसरण आदि विभूति करते हैं न आठ प्रातिहार्य। यह तो इन्द्रादि भक्तजन महिमा करते हैं। **इनके कुछ प्रयोजन नहीं है,...** भगवान को कुछ प्रयोजन नहीं है। समवसरण से क्या प्रयोजन है? वह (प्रयोजनभूत) तो केवलज्ञान है। उस कारण से अवन्दनीक हो, ऐसा नहीं। पुण्य प्रकृति के कारण से संयोग हो विशेष, अन्दर की प्रभुता प्रगट हुई हो, वह विशेष वीतराग विज्ञानघन है।

स्वयं दिगम्बर को धारण करते हुए... तीर्थंकर तो नग्नमुनि, नग्न शरीर है। समवसरण में नग्न शरीर है। समझ में आया? उनको वस्त्र या कुछ होता नहीं। दिगम्बर मुनि है। महा समवसरण में। **दिगम्बर को धारण करते हुए अन्तरिक्ष तिष्ठते हैं...** देखो! आया न अन्तरिक्ष? कमल के ऊपर। चार अँगुल ऊपर विराजते हैं। कमल को छूते नहीं नीचे। वह **अन्तरिक्ष तिष्ठते हैं, ऐसा जानना।** अच्छी टीका की है। भगवान तो अन्तरिक्ष तिष्ठते हैं। श्वेताम्बर में ऐसा कुछ है नहीं। अन्तरिक्ष-फन्तरिक्षपना वह मानते ही नहीं। वह तो नीचे बैठते हैं। बाग में उतरे, पृथ्वी, शिला है, वहाँ उतरते हैं, वहाँ तो ऐसा पाठ है। यहाँ तो ऐसा भगवान कहते हैं। वह तो त्रिलोकनाथ जिनको समवसरण की रचना २० हजार सीढ़ी। सीढ़ी २० हजार। नीचे से पाँच सौ धनुष ऊँचा। दो हजार हुआ न दो हजार? ऐसे भगवान, उनको यहाँ तीर्थंकर और अरिहन्त कहने में आता है। दुनिया दूसरी तरह अरिहन्त की कल्पना करते हैं, वह अरिहन्त को समझते नहीं।

मुमुक्षु : अतिशय।

पूज्य गुरुदेवश्री : अतिशय?

मुमुक्षु : अतिशय उनका ऐसा है वस्त्र सहित...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... झूठ है। भगवान को वस्त्र होता ही नहीं। झूठ बात है। दिगम्बर सन्त, मुनि हुआ तो दिगम्बर है, तो पीछे केवलज्ञान में कैसा वस्त्र? ऐसा कहते हैं श्वेताम्बर। श्वेताम्बर कहते हैं, खबर है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि वस्त्र अतिशय है तो दिखता नहीं। अतिशय नहीं दिखे ऐसे। धूल में भी नहीं दिखे।

मुमुक्षु : परन्तु वस्त्र तो था नहीं। एक टुकड़ा निकल गया फिर दीक्षा ली। तो वह बात कहाँ से आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह झूठ बात है।

मुमुक्षु : पाठ में तो कहा ... होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अतिशय है। यह उसका स्वरूप है। वह झूठ बात है। जब दीक्षा ली, तब से नग्न है। वस्त्र का धागा होता भी नहीं। संयम अन्तर की दशावाले की बात हैं। यह बात करते हैं। उसके भाई है न! वह श्वेताम्बर है इसलिए जरा। यहाँ तो अनादि सनातन सत्य मार्ग यह है। उसमें जरा भी गड़बड़ी चले नहीं। दिगम्बर स्वयं मुनि होते हैं, तब तीर्थंकर दीक्षा ले तो वस्त्र छोड़ देते हैं। इसमें आयेगा। वस्त्रधर तीर्थंकर हो तब तक मोक्ष नहीं होगा। समझे? है न इसमें। सूत्रपाहुड़? सूत्रपाहुड़। सूत्रपाहुड़ में है। '**ण वि सिज्झदि वत्थधरो**', २३ गाथा है। पृष्ठ-५६। ५६-५६। ५ और ६। और गाथा २३। मूल पाठ है न?

ण वि सिज्झदि वत्थधरो, जिणसासणे जइ विहोइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे॥२३॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। है? दो जगह पर आया है। इस पाठ में है और उसके अर्थ में है। **जिनशासन में इस प्रकार कहा है कि...** अर्थ-अर्थ। २३ गाथा। **वस्त्र को धारण करनेवाला सीझता नहीं है,...** जब तक वस्त्र है, तब तक केवलज्ञान होता नहीं, मुनि(पना) होता नहीं। ऐसा अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवलियों का वह पंथ है। वह कोई पक्ष का पंथ है नहीं। परन्तु वह केवल वस्त्र का त्याग नहीं। अन्दर आनन्दस्वरूप में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित हो, उसकी बात है। **सीझता नहीं है, मोक्ष नहीं पाता है, यदि तीर्थंकर भी हो तो जब तक गृहस्थ रहे, तब तक मोक्ष नहीं पाता है,...** तीर्थंकरदेव तीन ज्ञान, गृहस्थाश्रम में ऋषभदेव प्रभु ८३ लाख पूर्व रहे। भगवान महावीर ३० वर्ष रहे। परन्तु गृहस्थाश्रम है, वस्त्र है, तब तक केवलज्ञान नहीं पाते। मोक्ष नहीं होता उसको। वह अन्तर की ममता छूटकर निर्विकल्प आनन्द की दशा प्राप्त हो, तब उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वस्त्र का टुकड़ा रखकर हम मुनि मानते हैं तो निगोद में जायेगा। सूत्र में तो यह कहते हैं। समझ में आया? वस्त्र का टुकड़ा... केवल सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित हो, परन्तु चारित्र सहित न हो और वस्त्र का टुकड़ा रखे और चारित्र है, ऐसा माने। निगोदं गच्छई। यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं निगोद में जायेगा। वस्तुस्थिति की दृष्टि की खबर नहीं, चैतन्य क्या चीज़ है। समझ में आया? यह गाथा २३-२३। है न?

'**ण वि सिज्झदि वत्थधरो, जिणसासणे**' जैनशासन में तीर्थंकर हो, परन्तु वस्त्रसहित हो तब तक मोक्ष होता नहीं। मुनि(पना) होता नहीं तो मोक्ष कहाँ से हो? आहाहा! '**णग्गो विमोक्खमग्गो**' **नग्नपना ही मोक्षमार्ग है,...** अन्दर में और बाह्य में दोनों हो। केवल नग्न नहीं। अन्दर में विकल्परहित निर्विकल्प आनन्द की दशा वीतरागता और बाह्य में नग्नदशा। '**णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया**' उसके सिवा सभी उन्मार्ग है, मार्ग है नहीं, यह कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं भगवान की वाणी। आहाहा!

अन्तर स्वरूप की जिसे आनन्द की रमणता हुई, उसको वस्त्र लेने का विकल्प भी होता नहीं। केवल विकल्प वस्त्र रहित है, उस चीज़ की गिनती नहीं। वह तो अनन्त बार हुआ। वह नहीं। जिसको अनन्त आनन्दस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई उसको वस्त्र लेने का विकल्प आता ही नहीं। समझ में आया? ऐसी दशा, बापू! यह तो अलौकिक बातें हैं। मार्ग तो परमसत्य ऐसा कोई अलौकिक है।

यहाँ कहते हैं, स्वयं दिगम्बर धारण कर अन्तरिक्ष तिष्ठते विराजमान। इसलिए तीर्थंकर को समवसरण आदि विभूति है, वह वन्दनीक नहीं ऐसा है नहीं। वह तो पुण्यप्रकृति का फल है। पुण्यफला अरहंता। पुण्यफला अरहंता की व्याख्या? पूर्व के पुण्य के कारण से यह समवसरण वाणी आदि मिली है, इसलिए अरहंता। अरहंता अर्थात् अन्तर का अरिहन्त पद पुण्य के कारण से मिला, ऐसा है नहीं। है न ४५ गाथा में प्रवचनसार। पुण्यफल अरहंता। पूर्व के पुण्य के कारण समवसरण, ऋद्धि, वाणी ऐसी होती है।

मुमुक्षु : ... ... होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरा। यहाँ यह नहीं। वह दूसरी बात है। आत्मा में शुद्धता, पवित्रता, विकार रहितता प्रगट हो, उसको भी पुण्य कहते हैं, परन्तु वह पुण्य पवित्रता के अर्थ में है। और यह पुण्य सामग्री मिले, उसके अर्थ में है। संयोग मिले उसके अर्थ में है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! उसने अनन्त काल में कभी सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो? उसकी बात उसने रुचि से कभी सुनी नहीं। आहाहा! अनन्त बार दूसरा सब किया, परन्तु वह सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है अभी? आहाहा! प्रथम महा

दुर्लभ... आगे कहेंगे। ३३ में कहेंगे। '**सम्मद्दसंणरयणं अग्धेधि सुरासुरे लोए**' सुरासुर लोक जिनको वन्दन करते हैं। सम्यग्दृष्टि को देखो! ३३ में है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास क्या श्वेताम्बर का क्या है? श्वेताम्बर में है क्या? वह तो पहले कह दिया। मूलसंघ अनादि का आत्मज्ञान दर्शनसहित दिगम्बर। और मूलसंघ से भ्रष्ट हुआ, वह श्वेताम्बर है। वह तो पहले कह गये। इस गाथा में आयेगा। समझ में आाय? अनादि वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, उसका पंथ अन्तर आनन्द और श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति और बाह्य में पंच महाव्रतादि और बाह्य में एकदम नग्नपना—वह जैनदर्शन है। वह मूल जैनदर्शन है अनादि का। समझ में आया? उसमें से श्वेताम्बर बारह (वर्ष के) दुष्काल में भ्रष्ट हुआ। भ्रष्ट होकर नया पंथ निकाला। वह जैनदर्शन नहीं। और उसमें स्थानकवासी निकले, मुँहपत्ती। वह भी जैनदर्शन नहीं। श्वेताम्बर में से भ्रष्ट हुआ है। और उसमें से यह तेरापंथी निकला। तुलसी है न तुलसी, नहीं?

मुमुक्षु : उसने ज्यादा सुधारा किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्यादा भ्रष्ट होकर निकले। मूलसंघ तो अनादि का आत्मज्ञानदर्शन सहित दिगम्बर। उसमें कुछ फर्क कमीबेसी है नहीं। पण्डितजी! परन्तु वह अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की बात है। आहाहा! १४वीं गाथा में आ गया पहले। १४वीं गाथा में।

यहाँ तो भगवान तीर्थंकर को समवसरण आदि है, वह तो पुण्य की प्रकृति का फल है। वह कोई गुण नहीं। गुण तो सर्वज्ञ वीतरागता प्रगट हुई है, वह पूजनीक है, वह गुण वन्दनीक है। वहाँ देह और पुण्य वन्दनीक है? समझ में आया? श्रेणिक राजा एक सम्यग्दर्शन था। लो! सम्यग्दर्शन था। चारित्र व्रत उसको नहीं था। क्योंकि सम्यग्दर्शन सहित अन्दर रमणता करना, वह चारित्र तो अलौकिक पुरुषार्थ है। वह कोई साधारण बात नहीं। आहाहा! श्रेणिक राजा सम्यग्दृष्टि था। परन्तु नरक का आयुष्य बँध गया था पहले। नरक में है। परन्तु तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। आनेवाली चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। ... होंगे। कौन? श्रेणिकराजा। अभी पहली नरक में है ८४ हजार वर्ष स्थिति में।

परन्तु आत्मदर्शन–सम्यग्दर्शन पाया था। वह अलौकिक चीज़ है, भाई! तो उसके प्रताप से तीर्थंकरगोत्र अभी बाँधते हैं, नरक में भी बाँधते हैं। और ८४ हजार वर्ष पूरे करके इस भरतक्षेत्र में जैसे महावीर भगवान थे, वैसे तीर्थंकर होंगे। और उस भव में केवलज्ञान पाकर मोक्ष होगा। सम्यग्दर्शन की इतनी महिमा, परन्तु वह सम्यग्दर्शन चीज़ ऐसी है। साधारण जनता को उसकी खबर ही नहीं। देव–गुरु–शास्त्र को मानो, नव तत्त्व को मानो। यह सम्यग्दर्शन है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन तो कल्याण की परम्परा का कारण है। और देव जिनकी पूजा करते हैं। आहाहा! उसने डाला है न? छहढाला में डाला है न! 'लेश न संयम।' भाई!

मुमुक्षु : चरितमोहवश लेश न संयम पे सुरनाथ जजे है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुरनाथ जजे है, यह देखो आया न यहाँ? आधार से डाला है। छहढाला के आधार से रखा है। पहले के जो पण्डित थे टोडरमलजी, बनारसीदासजी आदि वह सब शास्त्र के अनुसार बात करते हैं। वह कोई आधार बिना बात करते नहीं वह। भवभीरु थे। भगवान परम्परा का मार्ग है, उसको वह चलाते थे। उसमें विरोध नहीं करते। आहाहा! देखो! इसमें आया न ३३ में। '**कल्लाणपरंपरया लहंति जीवि विसुद्धिसम्मत्तं। सम्मदंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए॥**' तो उसमें वह आया या नहीं? आहाहा! यह २९ गाथा हुई।

३०–३० (गाथा)

णाणे दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
जउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥३०॥

जैनशासन में भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसा देखा कि जिसको सम्यग्ज्ञान हो। अकेला ज्ञान नहीं, दर्शन सहित ज्ञान हो। केवल शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! आत्मज्ञानसहित जिसको ज्ञान हो, आत्मा का ज्ञान हो। वह पहले दूसरा लेंगे थोड़ा। ३१ में सामान्यज्ञान, ... परन्तु यहाँ तो सामान्यज्ञान मूलज्ञान लेना है। आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसका ज्ञान हो, आत्मज्ञान हो। आहाहा! दूसरा ज्ञान थोड़ा हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आत्मज्ञान हो। भगवान तीर्थंकर ने जो आत्मा कहा, ऐसा आत्मा का

ज्ञान अन्दर में हो। तो वह ज्ञान मोक्ष के कारण में कारण है।

और **दर्शन...** हो। सम्यग्दर्शन। अन्तर स्वरूप शुद्ध पूर्ण स्वरूप की ज्ञान में वह वस्तु ज्ञेयरूप होकर प्रतीति हो। वर्तमान ज्ञान की पर्याय में त्रिकाली ज्ञेय होकर प्रतीति हो, ऐसा सम्यग्दर्शन, वह भी मोक्ष का कारण है। साथ में मुनिपना हो। तप अर्थात् मुनिपना। तप कल्याणक कहते हैं न? दीक्षा कल्याणक। भगवान को तप कल्याणक कहते हैं। तप कल्याणक कहो या मुनिपना कहो। पंच कल्याणक आता है न? मुनिपना नग्नदशा बाह्य में, अन्तर में आनन्ददशा हो। आहाहा! और चारित्र हो अन्दर रमणता। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप में चरना, चरना, रमना, जमना, ऐसा चारित्र हो।

इन चारों का समायोग होने पर... चारों इकट्ठे होकर मुक्ति हाती है। केवल सम्यग्दर्शन से नहीं, केवल सम्यग्ज्ञान से नहीं, सम्यग्दर्शन बिना मात्र व्रतादि से नहीं। आहाहा! सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, मुनिपना दीक्षित और चारित्र अन्दर ऐसे चार योग से मुक्ति होती है। चार में एक कम हो तो, तब तक मुक्ति होती नहीं। समझ में आया? '**समाजोगे**' है न? '**जउहिं पि समाजोगे**' चारों का योग—सम्बन्ध हो पूरा, तब मुक्ति होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान से तीर्थंकरगोत्र बाँधा श्रेणिक ने। परन्तु जब तक चारित्र न होगा तब तक मुक्ति नहीं होगी। तो भविष्य में अन्तर रमणता, चारित्र अर्थात् अन्तर आनन्द में रमणता, ऐसा होगा, तब मुक्ति होगी। ऐसा जिनशासन में ऐसा भगवान ने कहा है। केवल दर्शन-ज्ञान से नहीं, केवल व्रत से नहीं। चारों इकट्ठे हों, तब होता है। वह आयेगा। **उससे जिन शासन में मोक्ष होना कहा है।**

आगे इन ज्ञान आदि के उत्तरोत्तर सारपणा कहते हैं :—अब थोड़ी दूसरी बात करेंगे।

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं॥३१॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। **पहले तो इस पुरुष के लिये ज्ञान सार है...** क्या छोड़नेयोग्य है, क्या आदरनेयोग्य है, ऐसा ज्ञान न हो तो कुछ समझते नहीं। हेय-उपादेय। अन्दर में दया, दान, व्रतादि का भाव होता है, वह हेय है। क्योंकि वह राग है। आहाहा! और भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप है, वह उपादेय है।

मुमुक्षु : ज्ञान कैसा लेना? भय....

पूज्य गुरुदेवश्री : साधारण लेंगे वह। साधारण लेंगे। परन्तु यह तो साधारण करके सम्यग्दर्शन ऐसा लेंगे अर्थ में। परन्तु वह तो वास्तव में यथार्थ ज्ञान हो तो हेय-उपादेय बिना ज्ञान होता नहीं। यह तो जरा भाषा ऐसी ली है। पहले साधारण ज्ञान तो हो न? व्यवहार ज्ञान। यथार्थ नहीं। परन्तु व्यवहार में रागादि हेय है और वस्तु उपादेय है, निमित्त हेय है, शुद्ध भगवान आत्मा उपादेय है, ऐसा साधारण पहले विकल्पसहित का ज्ञान, यथार्थ भले नहीं। समझ में आया? वह तो सम्यग्दर्शन हो तो यथार्थ ज्ञान हो।

मुमुक्षु : ज्ञान हो तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब ही वास्तव में ज्ञान कहने में आता है। आहाहा!

यहाँ तो साधारण बात करते हैं कि **ज्ञान से सब हेय-उपादेय जाने जाते हैं, फिर उस पुरुष के लिये सम्यक्त्व निश्चय से सार है, क्योंकि सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है।** ऐसा लेंगे।

मुमुक्षु : .... में निश्चय शब्द।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय। आहाहा! यहाँ वह शास्त्र का ज्ञान है हेय-उपादेय का। परन्तु सम्यग्दर्शन न हो तो वह ज्ञान यथार्थ कहने में नहीं आता।

सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है,... आहाहा! सारा सम्यग्ज्ञान को सम्यक् करने में तो सम्यग्दर्शन कारण है। आता है न वह छहढाला में आता है। सम्यग्दर्शन कारण और सम्यग्ज्ञान कार्य। आता है न? साथ ही होने पर भी वह कारणकार्य कहने में आता है। छहढाला में आता है। वह पुरुषार्थसिद्धिउपाय... दीपक और प्रकाश। दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है। ऐसे सम्यग्दर्शन कारण है। दिया समझे? दीपक। दीपक कारण है और प्रकाश है तो साथ में। परन्तु कारण-कार्य है। ऐसे सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। वह सम्यक् यथार्थ की बात, हों! सम्यग्दर्शन बिना का जो ज्ञान है, वह ज्ञान अज्ञान है। चाहे तो ग्यारह अंग पढ़े और चाहे तो नव पूर्व पढ़े। नव पूर्व का ज्ञान भी सम्यग्दर्शन के बिना वह अज्ञान है। आहाहा!

यहाँ तो **पुरुष के लिये सम्यक्त्व निश्चय से सार है...** उसको तो निश्चय सम्यक्त्व

सार है। **सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है। सम्यक्त्व में चारित्र होता है...** समकित हो, पश्चात् चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन न हो और चारित्र हो, वह हो सके नहीं। अज्ञान है सब। आहाहा! अन्तर आत्मदर्शन के अनुभव बिना चारित्र कभी होता नहीं। समझ में आया? व्रत, तप, संयम सब सम्यग्दर्शन अनुभव दृष्टि बिना निरर्थक है। परन्तु समकित से चारित्र होता है। **सम्यक्त्व के बिना चारित्र भी मिथ्या ही है,...** देखो! अन्तर भगवान निर्विकल्प सम्यक्, हों! समकित अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह नहीं। नव तत्त्व की श्रद्धा भेदवाली, वह भी नहीं। वह तत्त्व श्रद्धा अभेद अन्दर जो है मुख्य जिनशास्त्र में। तत्त्वार्थसूत्र में है न उमास्वामी। 'तत्त्वाश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' आत्मा अन्दर पूर्णानन्द प्रभु और संवर-निर्जरादि की पर्याय उसमें है नहीं, ऐसा अन्तर में ज्ञान हो, उसमें प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सूक्ष्म बात कठिन बहुत, भाई! धर्म ही सूक्ष्म बहुत। आहाहा!

शुभभाव है न शुभ? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा शुभभाव है, वह भी स्थूल है। ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य समयसार में कहते हैं, पुण्य-पाप (अधिकार) में। वह स्थूल राग है। आहाहा! वह राग से भिन्न भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति ध्रुवस्वभाव, उसके सन्मुख में रुचि का परिणमन होना। आहाहा! ज्ञान का सम्यग्दर्शनरूप से परिणमन होना। **'जीवादीसद्दहणं'** देखो, वह आया। पुण्य-पाप की है न गाथा। १५५। **'जीवादीसद्दहणं'** मात्र **'जीवादीसद्दहणं'** नहीं, उसका ज्ञान समकितरूप से परिणमन। आहाहा! वैसे तो जीवादि नव तत्त्व का तो अनन्त बार ज्ञान किया भेदवाला। आहाहा! यह तो निश्चय सम्यग्दर्शन व्यवहार सम्यग्दर्शन वह तो विकल्प है, राग है, वह कोई सम्यग्दर्शन है नहीं। सम्यग्दर्शन तो आत्मा निर्विकल्प आनन्दमूर्ति प्रभु, उसका ज्ञान होकर अन्तर में निर्विकल्प प्रतीति होना, उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। जो सम्यग्दर्शन न हो तो ज्ञान भी वृथा और उसकी क्रियाकाण्ड सब वृथा है। उसमें कुछ फल मोक्ष का है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सम्यक्त्व से चारित्र होता है क्योंकि सम्यक्त्व बिना चारित्र भी मिथ्या ही है, चारित्र से निर्वाण होता है। स्वरूप की रमणता में निर्वाण होता है। स्वरूप की रमणता न हो और मात्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो तो मुक्ति नहीं होती। आहाहा!

भावार्थ :— चारित्र से निर्वाण होता है... स्वरूप आनन्द प्रभु, उसमें चरना, रमना। जैसे पशु अनाज या घास चरते हैं। पशु घास चरते हैं न? ऐसे धर्मी आनन्द को चरे अन्दर। चारित्र है न? चरना। आनन्दमूर्ति प्रभु भगवान आत्मा उसका अनुभव चरना, रमना, उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। आहाहा! वह चारित्र से निर्वाण होता है। वह चारित्र से मुक्ति होती है। चारित्र बिना मुक्ति नहीं होती। **और चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होता है...** सच्चे ज्ञानपूर्वक हो तो चारित्र सच्चा होता है।

मुमुक्षु : ....समकित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद में कहेंगे। समझ में आया? चारित्र में तो हेय-उपादेय का तो यथार्थ ज्ञान होता है। आहाहा! जिसमें पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह भी हेय है। वह चारित्र नहीं। आहाहा! चारित्र तो आत्मा के स्वरूप में आनन्द में रमना, वह चारित्र है। ऐसा **चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होता है...** सच्चा ज्ञान हो तो चारित्र होता है। जिसके ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसको चारित्र होता नहीं। यह ज्ञान, हों! दूसरा कुछ समझ में आवे, न आवे, वह चीज़ नहीं। अन्तर में...

देहादि, वाणी की क्रिया है, वह मेरी नहीं। और रागादिभाव होता है, वह हेय है, दूर करनेयोग्य है, छोड़नेयोग्य है। और मेरी चीज़ आनन्दस्वरूप है, वह ही आदरणीय और अंगीकार करनेयोग्य है। ऐसे ज्ञान बिना चारित्र सत्यार्थ होता नहीं। ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होता है। ज्ञान समकितपूर्वक सच्चा होता है। वह ज्ञान भी सच्चा कब होता है? कि सम्यग्दर्शन हो तो सच्चा ज्ञान होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात। अनन्त काल में उसने कभी किया नहीं। व्रत, नियम, तप, क्रियाकाण्ड करके चार गति में भटकता है। भवभ्रमण किया। परन्तु भवभ्रमण के अभाव की चीज़ वस्तु आत्मा अखण्ड परमात्मस्वरूप परमेश्वरस्वरूप, उसके सन्मुख होकर प्रतीति, श्रद्धा, रुचि और परिणमन, आहाहा! वह समकित है। और समकित बिना सत्यार्थ ज्ञान होता नहीं।

इस प्रकार विचार करने से सम्यक्त्व के सारपना आया। समकित का सारपना आया। पहले वह ज्ञानसार कहा था न। परन्तु ज्ञान सार भी समकित हो तो सारपना। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं। दिगम्बर मुनि वनवासी थे। वे कहते हैं

कि भाई! समकितपूर्वक ज्ञान हो तो सत्यार्थ है। आहाहा! **इस प्रकार विचार करने से सम्यक्त्व के सारपना आया। इसलिए पहले तो सम्यक्त्व सार है...** लो! पहले तो सार में सार सम्यग्दर्शन है। आहाहा! उसके बिना सारा ज्ञान और व्रत, नियम सब व्यर्थ है। चार गति में भ्रमण करने का कारण है। आहाहा! उसमें निष्क्रिय भगवान आत्मा राग की क्रिया बिना की चीज़ आत्मा है। ऐसी आत्मा की, स्वभाव की प्रतीति अनुभव ज्ञान में अन्दर में भान होकर होना, वही समकित सार है। कहो, उसका व्याख्यान करेंगे ३२ और ३३ में। महिमा करेंगे। वह सम्यग्दर्शन सुरासुर से पूजनीक है। ३३ में आता है न? अघेय... अघेय। सम्यग्दर्शन को अर्घ चढ़ाते हैं। सुरासुर देव। आहाहा! चाण्डाल को भी सम्यग्दर्शन होता है। चाण्डाल... रत्नकरण्डश्रावकाचार में आया है। उसको देव कहने में आता है। सम्यग्दर्शन मातंग हो तो देव है। और रत्नकरण्डश्रावकाचार में। क्या है गाथा? मातंग नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह। क्या कहा? है रत्नकरण्डश्रावकाचार। समन्तभद्राचार्य। समन्तभद्राचार्य कहते हैं। चाण्डाल हो और पुण्य हीन हो, शरीर काला हो।

मुमुक्षु : नारकी प्राप्त करे तो चाण्डाल....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। नारकी, सप्तमी नारकी। आहाहा! सातवीं नरक में सप्तमी रवरव नरक। अपयठाणा नरक। वहाँ भी सम्यग्दर्शन पाते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन तो वहाँ भी पाते हैं। भले मिथ्यात्व लेकर जाते हैं। और सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं और पीछे भी मरकर मिथ्यात्व लेकर निकलते हैं, सातवें नरक में। ऐसी चीज़ हैं। आहाहा! परन्तु बीच में सम्यग्दर्शन होता है। वह चीज़ यहाँ सारपने गिनने में आयी है।

पीछे ज्ञान चारित्र सार है। सम्यग्दर्शन हो तो पीछे सम्यग्ज्ञान और चारित्र सार है। **पहले ज्ञान से पदार्थों को जानते हैं। अतः पहले ज्ञान सार है तो भी सम्यक्त्व बिना उसका भी सारपना नहीं है, ऐसा जानना।** उसमें सम्यग्दर्शन का मुख्यपना सारपना गिनने में आया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक १८-१०-१९७३
गाथा-३२, ३३, ३४, ३५, प्रवचन-३०

गाथा-३२। इसमें दर्शनपाहुड़, पहला है न यह ?

णाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
चउण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो॥३२॥

अर्थ :— ज्ञान और दर्शन के होने पर... यह सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन अथवा सम्यग्ज्ञानी **सम्यक्त्वसहित...** और वह समकित सहित। **दर्शन होने पर...** अर्थात् वह समकित सहित दर्शन, ऐसा। दर्शन वह। यहाँ तो **ज्ञान और दर्शन के होने पर सम्यक्त्वसहित...** दर्शन है, वह समकित है, ऐसा लेना है यहाँ। **तप करके चारित्रपूर्वक...** ऐसा है। टीका में भी ऐसा है और यहाँ भी ऐसा है। सम्यग्दर्शनसहित का जो ज्ञान और दर्शन और चारित्र '**चउण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो।**' चार के सम्बन्ध से, जैनशासन में इन चार के कारण से मुक्ति होती है। यह कहते हैं।

जीव सिद्ध हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं है। 'ण सन्देहो।' आत्मा परिपूर्ण शुद्ध आनन्द और ज्ञानस्वभावी का दर्शन सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसका चारित्र और मुनिपना। यहाँ तप अर्थात् मुनिपना लेना है। मुनिपना, वह चारित्र समकितसहित। यह चार। **चारों के संयोग से ही हुए हैं, यह जिनवचन है, इसमें सन्देह नहीं है।** जो कोई अभी तक सिद्ध हुए, वे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, तप और चारित्र इन सहित हुए। समझ में आया ? इसमें सन्देह नहीं है। यह ३२ हुई।

अब ३३। यह सब सम्यग्दर्शन की माहात्म्य की गाथायें हैं सब। **आगे कहते हैं कि लोक में सम्यग्दर्शनरूप रत्न अमोलक है और वह देव-दानवों से पूज्य हैं।** आहाहा !

कल्लाणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं।
सम्मद्दंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए॥३३॥

अर्थ :— जीव विशुद्ध सम्यक्त्व को... दर्शनविशुद्धि कहते हैं न सोलह कारण भावना में। दर्शनविशुद्धि। वह दर्शनविशुद्धि। विशुद्ध समकित। निरतिचार समकित और दर्शनविशुद्धि। वह विकल्प... **विशुद्ध सम्यक्त्व को कल्याण की परम्परासहित पाते**

हैं... समझ में आया? पहली गाथा में गया, उसकी यह विशेष बात है। सम्यग्दर्शन सहित जो **विशुद्ध सम्यक्त्व को कल्याण की परम्परा...** एक बाद एक कल्याण। यह तीर्थंकर की बात चलती है, उसमें पंच कल्याणक—गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक, मोक्ष कल्याणक—ये पंच कल्याणक होते हैं। **विशुद्ध सम्यक्त्व को कल्याण की परम्परा सहित पाते हैं...** उसका मूल विशुद्ध समकित है पहला। उसे विशुद्ध समकित निरतिचार पच्चीस दोष रहित आदि... व्यवहार के पच्चीस दोष हैं न? ऐसा जो अन्तर में सम्यग्दर्शन, उसे कल्याण की परम्परासहित **पाते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन रत्न है...** सम्यग्दर्शन अमोलक रत्न है। **वह इस सुर-असुरों से भरे हुए लोक में...** लोक शब्द है न? **सुर-असुरों से भरे हुए लोक में पूज्य हैं।** लो, यहाँ सम्यग्दर्शन को पूज्य कहा गया है।....

सम्यग्दर्शन विशुद्ध निरतिचार। पहले गाथा में आ गया ३२ में तो कि चार के समयोग से मुक्ति होती है। अब यहाँ सम्यग्दर्शन का माहात्म्य वर्णन करते हैं कि सम्यग्दर्शनसहित कल्याण की परम्परा। सम्यग्दर्शन, वह जीव तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। उसकी परम्परा पाँचों ही कल्याणक उसे होते हैं। वह सम्यक् रत्न सुर-असुर जैसे देव में भी पूज्य है। आहाहा! टीका में तो यह लिया है। ऐसा जो सम्यग्दर्शन निर्मल, उसकी कीमत ही नहीं। कीमत नहीं अर्थात् अमूल्य है और उसका मूल्य कम करने जाये तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है, ऐसा कहते हैं। मूल तो यह है....

सम्यग्दर्शन का महत्त्व कम, थोड़ा करे। जैसा उसका महत्त्व है, उसके बदले व्रत और नियम की कीमत करे और इसकी कीमत कुछ नहीं। आहाहा! क्योंकि मनुष्यपने में चारित्र की मुख्यता है। व्रत, नियम दूसरी गति में होते नहीं। इसलिए इस भव में व्रत क्या? इसके माने वे, हों!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन सहित या रहित?

पूज्य गुरुदेवश्री : रहित। वह तो ऐसा कहे, हमको सम्यक् श्रद्धा तो है। व्रत और तप का कल प्रश्न नहीं किया था? कि यह मुनिपना जो कोई जिनाज्ञा माने बिना लेते होंगे? रात्रि में प्रश्न था। जिनाज्ञा, वह कौन सी जिनाज्ञा? परमार्थ से जो जिनाज्ञा जो आत्मा के आनन्द का अन्तर भान होकर जो सम्यग्दर्शन हुआ, वह तो मूल आज्ञा है। उस

आज्ञा की तो खबर नहीं होती और फिर यह व्रत, तप और बाहर के लगावे, ऐकड़ा बिना के शून्य हैं। समझ में आया? बहुत अच्छी बात है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन रत्न है, वह इस सुर-असुरों से... भवन में भी जिसकी पूज्यता है, ऐसा कहते हैं। मनुष्य तो पूज्य है, परन्तु सुर-असुर देव जो दूर रहे, उन्हें भी इसकी कीमत है और वे पूजते हैं। '**लोए**' शब्द है न? '**लोए**' भवन। उनके भवन। उनके भवन में। भवनपति देवों आदि के भवन में भी सम्यग्दर्शन पूज्य है, उसकी कीमत है। समझ में आया? आहाहा! उस चीज़ की कीमत बिना सब बाहर की लगायी यह सब उपवास, व्रत, और फलाना, उनका माहात्म्य। तो कहते हैं कि जिसे सम्यग्दर्शन का माहात्म्य अचिन्त्य है, उसका माहात्म्य जो कम—थोड़ा करता है, कम करता है। टीकाकार ने तो इतना लिखा है। यह तो पण्डितजी को पूछा, तब कहे कोढ़ हो। सम्यग्दर्शन का उपदेश में यदि महत्त्व कम करे तो उसके मुख में कोढ़ हो। कोढ़ अर्थात् यह। वाँचे कौन? यह तो वह भाषा ऐसी है जरा। लाईन है, देखो, लाईन है लाल। ऊपर-ऊपर। कोढ़। देखो न है। यहाँ तो सत्य है, वह कहते हैं। यहाँ तो ... उसे कोढ़ लगा है, प्ररूपणा में ऐसा उसका अर्थ है। उसकी प्ररूपणा में कोढ़ है शरीर को। जिसने सम्यग्दर्शन की कीमत घटायी है और दूसरे बाह्य के व्रत और तप की कीमत करनी है, वह तो महामिथ्यात्वी जीर्णपना लागू पड़ा है। स्वभाव की जीर्णता कर डाली है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की कीमत अधिक?

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्शन की कीमत अधिक। ज्ञान की अलग बात है। परन्तु कीमत दर्शन की है न! दर्शन बिना ज्ञान सम्यक् कहाँ से हो? जाने वह ज्ञान, वह ज्ञान। यह प्रश्न किया। चारित्र को जाने ज्ञान। इससे कहीं ज्ञान की कीमत है अधिक? चारित्र की है। परन्तु इतना चारित्र को ज्ञान जाने न? चारित्र को ज्ञान जाने न? आहाहा! तो ज्ञान की कीमत विशेष है या चारित्र की? जाने अर्थात्? वस्तु मुख्य यह है। क्योंकि दर्शन पहला पूरा होता है और ज्ञान पहला पूरा नहीं होता। इसलिए सम्यग्दर्शन पहले लिया है।

मुमुक्षु : दर्शन...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। दर्शन पहले पूरा हो जाये क्षायिक समकित आदि।

ज्ञान पूरा नहीं होता। ज्ञान तो पूरा केवलज्ञान हो तब होता है। चारित्र पूरा तो फिर बारहवें में होता है और चौदहवें में अन्त में होता है। पूरे आत्मा का चारित्र चौदहवें में अन्त में।

यहाँ तो कहते हैं। अपने तो उस टीका में ऐसा अर्थ किया है जरा थोड़ा। बात अपने उसमें से इतनी सार लेनी है कि वस्तु जो है प्रथम भूमिका आत्मा आनन्द और पूर्ण स्वरूप अखण्ड अभेद ध्रुव, उसकी जिसे अन्तर में प्रतीति सम्यग्दर्शन हुआ है, उस सम्यग्दर्शन का मूल्य कौन आँके? कहते हैं। ऐसी वह चीज़ है। और उसका यदि मूल्य आँकने जाये... यह तो आता है न, श्रीमद् में नहीं? वाणी में। निज मति... 'उपमा आप्यानी जेने तमा राखवी ते व्यर्थ' वीतराग की वाणी की उपमा देना व्यर्थ। और उपमा देने से निजमति मप जाती है। यह पहला... कर डालते हैं। वीतराग की वाणी क्या चीज है? बड़ा कोढ तो यह है अब। शरीर के कोढ़ की क्या? उल्टी मान्यतावाले बहुत होते हैं। शरीर को कुछ नहीं होता। निरोग शरीर हो। आहाहा!

यह तो जरा कड़कता बतलाकर... मुख मौन हो जायेगा उसका, ऐसा कि मुख बन्द हो जायेगा। ऐसी सम्यग्दर्शन की कीमत घटाने जायेगा तो एकेन्द्रिय होगा, ऐसा इसका अर्थ है।

मुमुक्षु : खराब बोले तो नहीं कहते कि तेरा मुख बन्द...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो मुख नहीं मिलेगा तुझे। मुख नहीं मिलेगा। आहाहा! ऐसी कीमत है आत्मा की। वस्तु सम्यग्दर्शन अर्थात् कि ओहोहो! जिससे धर्म की शुरुआत, जिससे ज्ञान सम्यक्, जिससे चारित्र सम्यक्। ऐसी जो चीज़ है कीमत तो सम्यग्दर्शन की पहली बात है, हों! फिर उसकी अपेक्षा तो चारित्र की कीमत तो अनन्तगुणी है। वह अलग विषय है। क्योंकि चारित्र तो अलौकिक है, परन्तु चारित्र से पहले दर्शन की कीमत अलौकिक है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : दर्शन के बिना किसी को चारित्र नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को नहीं। अज्ञानी को ज्ञान नहीं होता, चारित्र नहीं होता, दर्शन नहीं होता। चारित्र कहाँ था परन्तु? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **विशुद्ध अर्थात् पच्चीस मलदोषों से रहित निरतिचार सम्यक्त्व**

से कल्याण की परम्परा अर्थात् तीर्थंकर पद पाते हैं,... लो! आहाहा! पच्चीस मल के दोषरहित... है न पच्चीस? व्यवहार समकित में आते हैं। नाम कहीं आये हैं? कहीं नाम है। पच्चीस दोष आयेंगे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। **सम्यक्त्व से कल्याण की परम्परा अर्थात् तीर्थंकर पद पाते हैं, इसलिए यह सम्यक्त्व-रत्न लोक में...** लोक में है न पाठ में? **सब देव, दानव और मनुष्यों से पूज्य होता है।** लो! मनुष्य डाला उसमें। **'सुरासुरे लोए'** देव से भरपूर आदि लोक और मनुष्य आदि में उसकी कीमत है। **पूज्य होता है।** आहाहा! चाण्डाल भी सम्यग्दृष्टि है तो उसे देव कहा है। लोगों ने सम्यग्दर्शन की चीज़ बिना यह सब हाँक रखा है। हमने बाहर का त्याग किया है और यह व्रत लिये हैं और हमने यह लिये इसलिए हमारी कीमत है। वह कीमत करने के लिये सम्यग्दर्शन की कीमत ही घटा दी पूरी। समझ में आया? धर्म के मूल में चारित्र का मूल तो सम्यग्दर्शन है। चारित्र धर्म है, परन्तु उसका मूल? सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र कहाँ से आया? ज्ञान कहाँ से आया? उसका एक अक्षर भी सच्चा कहाँ से हुआ? आहाहा!

सम्यक्त्व-रत्न लोक में सब देव, दानव और मनुष्यों से पूज्य होता है। आहाहा! **तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध के कारण...** पच्चीस दोष का वर्णन नहीं किया। विस्तार अन्यत्र है। **तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध के कारण सोलहकारण भावना कही हैं, उनमें पहली दर्शनविशुद्धि है...** दर्शनविशुद्धि है न? समकितसहित विकल्प ऐसा उठे तीर्थंकरगोत्र का, वह प्रथम है। वह दर्शन न हो तो वे पन्द्रह (भावनायें) व्यर्थ हैं। समझ में आया? षोडशकारण में पहली दर्शनविशुद्धि, वह प्रधान है। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा अन्दर पूर्णानन्द प्रभु। आहाहा! अखण्ड अभेद ध्रुव चैतन्य परमात्मा स्वयं परमस्वरूप ही है। ऐसी अन्तर में ज्ञान में ज्ञेय होकर प्रतीति होना, वह चीज़ तो अलौकिक है। उस चीज़ से ही शुरुआत होती है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : सोलह (कारण) भावना में दर्शनविशुद्धि ली विकल्पात्मक?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प-विकल्प कहा न! पहले बात हो गयी। उसमें बोला

गया है। दो बार बोला गया है। दर्शनविशुद्धि में अकेले समकित से तीर्थंकरगोत्र नहीं बाँधता परन्तु तीर्थंकरगोत्र बाँधनेवाला समकिती होता है। और उस सम्यग्दर्शन में भी... कहा है न तत्त्वार्थसूत्र में। देव का आयुष्य बाँधे समकिती, ऐसा वहाँ कहा है। वह समकित नहीं परन्तु साथ में राग है, वह बाँधता है ऐसा। समकित है न। 'सम्यक्त्वं च'। तत्त्वार्थसूत्र का देव का आयुष्य का कारण समकित भी कहा है। समकित का अर्थ? सम्यग्दर्शन की भूमिका में देव का आयुष्य बाँधे, ऐसा भाव उसे होता है, ऐसा। पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) में भी कहा नहीं? मोक्ष का मार्ग बन्ध भी है और निर्जरा भी है। मोक्षमार्ग से बन्ध भी होता है, ऐसा कहा है, अर्थात् वह राग बाकी है न व्यवहार वह। आहाहा! उसे समझना चाहिए न! जितने अंश में राग है, उतने अंश में बन्ध है। जितने अंश में दर्शनशुद्धि है, उतने अंश में अबन्ध है। आहाहा!

दर्शनविशुद्धि है, वही प्रधान है,... आहाहा! **यही विनयादिक पन्द्रह भावनाओं का कारण है,...** देखो! दर्शनविशुद्धि के बाद है न विनय आदि सोलह बोल? परन्तु वह दर्शनविशुद्धि हो तो विनयादिक कारण हों और सम्यग्दर्शन न हों तो उस विनय और वे सब छह आवश्यक और फावश्यक सब व्यर्थ जाते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इसलिए सम्यग्दर्शन के ही प्रधानपना है।** अब यह सम्यग्दर्शन की मुख्यता ही पीछे में लेने लगे हैं। पहले जिनदर्शन लिया था। समझ में आया? उसमें जैनदर्शन में भी अब सम्यग्दर्शन, ऐसा। समझ में आया? जैनदर्शन लिया था चौदहवीं गाथा में पहले... उसमें भी सम्यग्दर्शन मुख्य चीज़ वापस। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान, चारित्र और बाह्य-अभ्यन्तर त्याग यथार्थ नहीं होता। वह तो सब विपरीत है। आहाहा!

वस्तु, वह भी दिगम्बर जैनदर्शन में कहा हुआ समकित, हों! दूसरे तो अभी व्यवहारसमकित, ऐसा कहे। ऐई! चेतनजी! यशोविजय नहीं कहते? आवश्यक में। व्यवहार अर्थात् समकित। व्यवहार समकित कैसा? वह तो राग है। राग से तो पुण्य प्रकृति बँधे तीर्थंकर (प्रकृति) शुभभाव, परन्तु सम्यग्दर्शन हो तो। वह न हो तो थोथेथोथा है। कहो, समझ में आया? पाठ **'अग्धेदि सुरासुरे लोए'** आहाहा! पहले वन्दनीक, इनकार किया था। ऐई! ... लो, पहले यह आया। वह तो मुनि के योग्य जो दशा है, ऐसी वन्दना समकिती को नहीं होती। जो मुनि चारित्रवन्त गुरु हैं, उन गुरु की जो विनयविधि,

पद्धति है, ऐसी विधि असंयति को नहीं होती। यहाँ वन्दनीक कहा। तीर्थंकर स्वयं लेना। असंयति है न?

माता के गर्भ में आये तब असंयति है। इन्द्र आकर पूजते हैं और भक्ति करते हैं। किस अपेक्षा से बात है? समझना चाहिए न! एक ही खींचे, ऐसा चले? कहो, पण्डितजी! तीन ज्ञान, तीर्थंकर गोत्र (लेकर) आते हैं। तो संयति हुई या असंयति हुई? माता के गर्भ में बाहर आवे तो भी असंयति है। जन्मे तब देव आकर नमो रत्नकूखधारिणी माता! जननी! ऐसे रत्न को तुमने कूख में रखा, माता! तुझे पहला नमस्कार है। लो! समझ में आया? नमो रत्नकूखधारिणी। ऐसे तीर्थंकर का आत्मा, उनका यह शरीर। माता! तुमने रत्न कूख में रखा, तुझे हमारा पहला नमस्कार है। आहाहा! उनकी माता असंयति है। संयति है? इस प्रकार उनकी योग्यता प्रमाण उनका वन्दन, वन्दन अर्थात् गुणग्राहण स्तुति आदि होती है। हो उसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्रमोह (वश) लेश न संयम, पै सुरनाथ जजै हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह। कल कहा था न यह दृष्टान्त। चारित्र का लेश संयम (नहीं हो) परन्तु सुरनाथ जजै हैं। तब यहाँ कहते हैं कि असंयति को वन्दन नहीं करना, वहाँ कहे—सुरनाथ समकिती को पूजते हैं। यहाँ कहते हैं कि पूजते हैं। उसी और उसी की गाथा। पहले आयी न उसी और उसी की गाथा। अपेक्षा जाननी चाहिए न। आहाहा! समझ में आया? और इससे सम्यग्दर्शन न हो और अकेले व्रत और बाहर की क्रिया और शुभभाव (हो), वह कोई वस्तु नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में, मुनिपने में... ज्ञान और चारित्र में मुख्य तो सम्यग्दर्शन प्रधान है। आहाहा! कहो, समझ में आया? दर्शनपाहुड़ है न? दर्शनपाहुड़ में दर्शन तो पहले बात कर गये। अब इन तीन में भी पहला सम्यग्दर्शन मुख्य है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन की स्थिति द्रव्यस्वभाव जो परिपूर्ण है, उसका आश्रय लेकर, यह उसका नाम सम्यग्दर्शन। कोई देव-गुरु-शास्त्र का आश्रय लेकर या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करके सम्यक्त्व हो, ऐसा नहीं है। वह व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा-राग हो व्यवहार, तो निश्चय समकित होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! यह तो

छह द्रव्य के आश्रय से.... भगवान की ध्वनि में यह आया। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन और उसमें भी सम्यग्दर्शन के भाग करे कि सराग समकित और वीतराग समकित। वह सराग समकित, समकित सराग होता ही नहीं। वह तो चारित्र के रागसहितवाली दशा को सराग समकित (कहते हैं) । परन्तु समकित तो वीतराग ही है। आहाहा! वीतरागमूर्ति आत्मा की प्रतीति और जो ज्ञान हुआ, वह तो वीतरागी भाव है। आहाहा! वीतराग अंश है। वह तो अबन्ध परिणामी परिणाम है। आहाहा!

इसलिए... कहते हैं कि सोलह भावना जो 'सोलह भावना भाये...' आता है न? हमारे श्रीचन्दजी बहुत करते हैं, वहाँ अन्दर। कहाँ गये श्रीचन्दजी? पहले बहुत करते थे, अब करते होंगे। 'दर्शनविशुद्धि भावना भाये...' पश्चात? 'सोलह तीर्थंकर पद पाये, परमगुरु होय।' परन्तु इस सम्यग्दर्शन बिना षोडशकारण भावना हो सकती नहीं। आहाहा! समझ में आया? सबमें कीमत सम्यग्दर्शन की है। चारित्र भी सम्यग्दर्शन हो तो चारित्र यथार्थ होता है। सम्यग्दर्शन हो तो ज्ञान यथार्थ होता है। आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थाश्रम में हो। कहो, तीर्थंकर छियानवें हजार स्त्रियों के उसमें (वृन्द में) स्थित हों। लो! वहाँ तक तो असंयति है। भले पाँचवाँ गुणस्थान लेते हैं ... है। परन्तु हैं मुनि—संयत तो नहीं न? मुनि की अपेक्षा से संयति नहीं। राग है, तब तक राग है अन्दर। पश्चात् अस्थिरता आ जाती है अन्दर है। तीर्थंकर को भी होती है अभी। कहो, आहाहा! कहते हैं कि उसका सम्यग्दर्शन तो स्वर्ग में देवों को पूज्य है। लो, ठीक! समझ में आया? भले उसे अस्थिरता का त्याग न हो, रागभाव हो, विषय आदि, तथापि सम्यग्दर्शन तो इन्द्रों को पूज्य है। आहाहा!

... आया न? पहले के उन शास्त्रों का आधार देकर बातें करते हैं सब। पहले के श्रावक। शास्त्र के शब्द हों, वे रखकर... लघुनन्दन।

अब कहते हैं कि उत्तम गोत्र सहित मनुष्यत्व को पाकर सम्यक्त्व की प्राप्ति से मोक्ष पाते हैं, यह सम्यक्त्व का माहात्म्य है:—आहाहा! अब माहात्म्य वर्णन करते हैं।

लदधूण य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गोत्तेण।
लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसोक्खं च मोक्खं च॥३४॥

अर्थ :— उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपना... आहाहा! **उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपना प्रत्यक्ष प्राप्त करके...** महापुण्य के कारण। आहाहा! हीरा की कणी एक समुद्र में पड़ी हो, उत्कृष्ट रजकण का पार न हो, उसमें एक हीरा की कणी खो गयी, वह जैसे मिलना, प्राप्त होना मुश्किल, उसी प्रकार उत्तम गोत्र का मनुष्यपना प्राप्त होना महामुश्किल है। समझ में आया? असंख्य रजकण स्वयंभूरमण समुद्र। रेत के। उसमें भी वह है तो वहाँ सब मणिरत्न के। परन्तु उसमें एक हीरा की कणी मिलना, खो गयी हो वह मिलना महामुश्किल है। इसी प्रकार उत्तमगोत्र सहित का मनुष्यपना महामुश्किल है। दुर्लभ चीज़ है। उसी दुर्लभ में समकित प्राप्त करना, वह दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं। उसमें से समकित प्राप्त करने के लिये उसकी दुर्लभता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसी बात है नहीं।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन प्राप्त कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रकार से हो।

मुमुक्षु : परन्तु ... प्रयत्न काललब्धि...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, काललब्धि आत्मा है। यह कहा था न किसी ने किसने कहा था? काललब्धि का अर्थ जिस समय में जो कार्य होनेवाला है, उसका नाम काललब्धि। परन्तु यह कार्य इस समय में हुआ, उसे जाने कौन? वह आत्मा के स्वभाव की दृष्टि करे, वह जाने। अकेली बातें करना काललब्धि... काललब्धि... ऐसा चले?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी दृष्टि करे तो आवे ही। उसका ज्ञान कब हो... काललब्धि का? काललब्धि का बहुत आता था हमारे बहुत वर्ष पहले। मैंने कहा देखो ऐसा भगवान... उसमें पुरुषार्थ उड़ाते थे। काललब्धि होती... परन्तु ऐसा कि पुरुषार्थ ऐसा कि काल में जब होनेवाला होगा, तब होगा। इसके बिना पुरुषार्थ नहीं होगा। परन्तु पुरुषार्थ करे और काललब्धि न पके, तीन काल में नहीं हो सकता। आहाहा! कालादि पाँच बोल है न? तो पाँचों बोल कब एक समय में है या आगे-पीछे है? जिस समय में

काल हुआ, उस समय में भवितव्यता होने की होगी, वह होगी, उस समय में स्वभाव का पुरुषार्थ, उस समय में कर्म का अभाव सब आ गया वहाँ। भवितव्य, स्वभाव, पुरुषार्थ, काल और कर्म का अभाव। आहाहा! वह तो एक ही समय में पाँच हैं। उसे फिर काललब्धि बाद में पके, पुरुषार्थ पहले हो, ऐसा पुरुषार्थ पहले हो और स्वभाव पहले हो और काल बाद में पके, बाद के काल में, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! जैसे उसकी पद्धति है, वैसे उसे रखना चाहिए। आड़ा-टेढ़ा करे तो वह सत्य नहीं रहे।

श्रीमद् नहीं कहते? 'भवस्थिति आदि नाम लई छेदो नहीं आत्मार्थ।' उसमें आया है उसमें। 'भवस्थिति आदि नाम...' अर्थात् भवस्थिति पकेगी, काल होगा, उसका नाम लेकर आत्मा को छेदो नहीं। पुरुषार्थ करे अन्दर। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव चीज है न! आहाहा! चीज़ तो पड़ी है, मात्र तेरी नजर फिरे (तो) निधान दिखाई दे ऐसा है। आहाहा! ऐसी जो सम्यग्दर्शन की दशा, वह कहते हैं कि महाकीमती और महँगी है। उसकी कीमत कोई कर नहीं सकता। कीमत करने जाये तो उसकी कीमत हो जायेगी। उसे आता नहीं। सम्यग्दर्शन का, उपदेश में दूसरी चीज़ को महत्त्व देकर, सम्यग्दर्शन का महत्त्व जो कम करे—घटाये, वह मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि और मिथ्यात्व को पोषता है। कहो, समझ में आया?

ओहो! उत्तम गोत्रसहित मनुष्यपना। **'लदधूण य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गोत्तेण।' प्रत्यक्ष प्राप्त करके और सम्यक्त्व प्राप्त करके...** आहाहा! ऐसा मनुष्यदेह, उत्तम गोत्र, उसमें वीतराग की वाणी सुनने को मिले। आहाहा! उसमें तो कहते हैं कि मनुष्य को प्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करनी चाहिए। आहाहा! बाद में दूसरी बात। शास्त्र का जानपना या अमुक बाद में सब। पहली यह बात है। समझ में आया? शास्त्र का जानपना बहुत न भी हो, व्रत और तप का—त्याग (भाव) भी न हो। वस्तुस्थिति... आहाहा! उत्तम मनुष्यपना प्राप्त करके तेरा सफलपना तो तब कहेंगे, कहते हैं कि जो समकित प्राप्त करे। नहीं तो मनुष्यपना पाया, वह समकित नहीं पाया, धूल पाया और चींटी-कौआ न पावे—दोनों का समान है। आहाहा!

उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपना... 'मणुयत्तं लदधूण य' 'दठ्ठूण' नीचे लिया है। **'दठ्ठूण'** नीचे किया है। नीचे है न, पाठ है। इसलिए फिर उस **'दठ्ठूण'** का अर्थ

प्रत्यक्ष डाला। देखकर। प्रत्यक्षपना प्राप्त कर। यह इसमें आ गया है न? दुर्लभ मनुष्यपना प्राप्त करके जो विषयों में रमता है, वह राख के लिये रत्न को जलाता है। मनुष्यपना प्राप्त करके तो सम्यग्दर्शन करना है। और वह मिला तो फिर पाँच इन्द्रियों के विषयों में रमना और टिकना उसमें, वह तो राख के लिये मणिरत्न को जलाता है। आहाहा! दृष्टान्त दिया है, नहीं? दूसरा दृष्टान्त दिया है। कि डोरा चाहिए हो तो हीरा का हार तोड़ डाला। हीरा का हार तोड़कर डोरा निकाला। इसी प्रकार मनुष्यपना प्राप्त करके पाँच इन्द्रियों के विषयों में रहना, वह तो ढोर भी रहता है, उसमें तूने नया क्या किया? आहाहा! समझ में आया? विषय शब्द से परसन्मुख के झुकाववाले भाव में तो पशु भी है। आहाहा! आत्मा को स्वविषय बनाना। आहाहा! ऐसा जो सम्यग्दर्शन उत्तमगोत्र का सफलपना है। उत्तमपना मनुष्यपना मिला, ऊँचाई मिली पुण्य की, परन्तु उसमें ऐसे समकित प्राप्त करे तो उसका सफलपना है।

मुमुक्षु : ऐसा अवसर प्राप्त होना....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुर्लभ है। धूल मिलना सरल है। अनन्त बार मिली है अरबोंपति (हुआ है)। था क्या उसमें? आहाहा! देखो न, चले गये वे। सो रहा होगा जब शाम को शान्तिभाई। उसे तो खबर भी नहीं होगा कि मैं मर जाऊँगा इस रात्रि में। आहाहा! नाशवान... नाशवान... वह रजाई में सो रहा होगा रात्रि में। सवेरे उठूँगा, फिर सब करूँगा। जो सोया वह जगा नहीं और उठा वह वापस सोया नहीं। आहाहा! वह सोया, वह वापस जगा नहीं। वह मर गया। आहाहा! और उठा, वह वापस रात्रि में उठकर मर जायेगा उसमें। आहाहा! किस पल में देह की स्थिति पूरी होगी? ऐसा नहीं समझना कि ऐसा शरीर ऐसा है, हमारे तो निरोग है, हमारे में कुछ है नहीं। नख में भी रोग नहीं। परन्तु नख में रोग नहीं, वह रोग तो भरे हैं सब। कितने लाख कहे?

मुमुक्षु : पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवें हजार पाँच सौ चौरासी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....पाँच सौ चौरासी रोग भरे हैं यहाँ। यह तो रोग की मूर्ति है। आहाहा!

मुमुक्षु : ... मन्दिरं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याधि मन्दिरं। भगवान आत्मा आनन्द का मन्दिर है। अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान है। इस शरीर में तो ऐसे रोग का धाम है। आहाहा! एक क्षण में दस मिनिट में उड़ गया। आहाहा! यह पैसे और इज्जत और सवेरे उठकर ऐसी चाय पीयूँगा, फिर यह करूँगा। कितने लोग कितने अनन्त का करे। साहेब! साहेब! साहेब! तेरे साहेब गये। आहाहा! नाशवान चीज़ की महत्ता क्या? भगवान अविनाशी की महत्ता करने से उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

अविनाशी आत्मा ध्रुव जिसका कभी हीन, कम, विपरीत होता नहीं। ऐसा भगवान आत्मा अविनाशी। उसकी श्रद्धा में एकाग्र होना वस्तु में, वह सम्यग्दर्शन। मनुष्यपना, उच्चगोत्र मिला, वह उसका सफलपना है। बाकी तो धूलधाणी और वा पाणी। आहाहा! अच्छे लड़के हुए और अच्छी जगह विवाह हुआ। हमने लड़कियों को अच्छी जगह विवाह किया, हमने बहुत अच्छे काम किये। धूल भी नहीं किया। कहो, ऐई! शान्तिभाई! क्या होगा यह सब। लड़के-बड़के तुम्हारे, देखो न! हीरा और माणेक का धन्धा बहुत करते हैं। आहाहा! हीरा-माणेक तो आत्मा है। उसकी कीमत करना नहीं आया, वे सब भिखारी चौरासी के अवतार में भटकनेवाले हैं। आहाहा!

कहते हैं कि उत्तम मनुष्यपना पाने का फल? आहाहा! **वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त करके अविनाशी सुखरूप...** आहाहा! उसमें आत्मा का दर्शन, सम्यक् प्रतीति, प्रतीति का अर्थ यह कि आत्मा है, ऐसा अन्तर में ज्ञान में, भान होकर निर्णय हो जाना। अनुभव में, हों! आहाहा! उसे प्राप्त करके **अविनाशी सुखरूप केवलज्ञान प्राप्त करते हैं,...** लो! ऐसा मनुष्यपना मिला गोत्र, उसमें समकित प्राप्त करके अब केवलज्ञान प्राप्त करेगा। आहाहा! है न? '**लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसोक्खं च मोक्खं च**' ऐसा पाठ है न? जिसके सुख का क्षय नहीं। अनन्त आनन्द... आनन्द।

मोक्ष अर्थात् क्या? रात्रि में पूछता था कोई। अरे! मोक्ष अर्थात् अनन्त आनन्द की प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष। दु:ख से मुक्त होना और अनन्त आनन्द की पूर्ण प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष। 'मोक्ष कहा निज शुद्धता, जो पावे सो पंथ।' ...में कहा न, फिर क्या कहा? 'समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' आहाहा! निर्ग्रन्थ सन्तों ने, केवलियों ने, परमात्मा ने यह मार्ग कहा है।

सम्यक्त्व प्राप्त करके अविनाशी सुखरूप केवलज्ञान प्राप्त करते हैं,... वापस ऐसा। समकित प्राप्त करके फिर चारित्र ग्रहण करके, उसके फल में केवलज्ञान प्राप्त करे। आहाहा! वह एक आता है दृष्टान्त में। ग्वाला था ग्वाला। बाहर में हीरा मिल गया। उत्कृष्ट हीरा था। उसे खबर नहीं कि यह किस कीमत का है। घर आकर स्त्री को कहे कि जो अपने अब हमेशा वह दीपक करना पड़ता है न घासलेट का। यह रखो प्रकाश में। रोटियाँ होंगी। अपने इतनी बचत। दीपक के बदले हीरा रखा। घासलेट में... चार पैसे का घासलेट जले। पहले तो सस्ता था न! उसमें एक झबेरी आया। उसने देखा। ऐ... परन्तु यह तेरे घर में क्या है? क्या है? कहे, प्रकाशित वस्तु है। अरे! यह तो हीरा है, तुझे खबर नहीं। इस हीरा की तो... हमारे पास अलमारियाँ हैं पैसे-रुपये से भरी हुई, वह सब तुझे दूँ और मुझे हीरा दे। हें! आहाहा! ऐसा कीमती! वह ऐसा कीमती है। तुझे कीमत लक्ष्य में न हो तो उसकी कीमत घट जायेगी? इसी प्रकार भगवान आत्मा की प्रतीति और ज्ञान की कीमत जो है, वह है। न माने, इससे कहीं कीमत घट जायेगी? आहाहा! महाप्रभु चैतन्य हीरा। अनन्त गुण के पासा से भरपूर। आहाहा! उसकी अन्तर में सम्यग्दर्शन की अनुभव में प्रतीति होना, ज्ञान में से निःशंकता, उससे चारित्र प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करे। कहा है न यह अन्दर? **अविनाशी सुखरूप केवलज्ञान प्राप्त करते हैं,...** कहीं चारित्र बिना केवलज्ञान नहीं होता। इसका अर्थ यह कि जब ऐसा उत्तम मनुष्यपना मिला, उसमें सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके, अक्षय अनन्त सुख को प्राप्त करे। आहाहा! बाहर की पदवियों में उलझ गया बेचारा। जहाँ लाख-दो लाख रुपये मिलें एक दिन के, वहाँ तो उसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा! अपने को क्या मिला? क्या हुआ? हम जगत से बड़े हो गये।

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि आत्मा परमस्वरूप परमात्मा हीरा, उसकी जिसे श्रद्धा, ज्ञान में अन्तर कीमत हुई है, उसका मनुष्यपना उत्तमगोत्र का प्राप्त होना सफल हो गया। और वह सम्यग्दर्शन द्वारा केवलज्ञान अक्षय सुख को प्राप्त करेगा। दुनिया को तो सुख चाहिए है न! सुख चाहिए है न! तो सुख तो यह है। केवलज्ञान सुख। और उसका उपाय तो यह सम्यग्दर्शन है और उस सम्यग्दर्शन का कारण तो भगवान आत्मा स्वयं है। आहाहा! समझ में आया?

.... **तथा उस सुखसहित मोक्ष प्राप्त करते हैं।** केवलज्ञान पाये। कहा न? इसलिए उसे अनन्त सुख की प्राप्ति मोक्ष की (प्राप्ति) होगी ही। **उस सुखसहित मोक्ष प्राप्त करते हैं।** और अनन्त आनन्दसहित सिद्धदशा प्राप्त करते हैं। अविनाशी सुख। अक्षय सुख है न? वह तो कल्पित सुख है। धूल भी नहीं वहाँ। आहाहा! पैसा पाँच-पचास लाख हों, स्त्री, पुत्र अच्छे हों और हम सुखी हैं। धूल भी सुख नहीं। दु:ख में जल गया है आत्मा शान्ति से। आहाहा! आकुलता है, वह तो आकुलता है। वह तो जहर का प्याला पीता है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन सहित जब केवलज्ञान प्राप्त करके अक्षयसुख... आहाहा! उस सुख को पीते-पीते पूर्ण सुख को प्राप्त करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में सुख की प्रतीति प्रगट होने पर सुख को पीते-पीते, वह केवलज्ञान सुख को पावे और मोक्ष के सुख को पीते-पीते पूर्ण सुख को पावे। आहाहा! रस चढ़ गया। रस का अर्थ एकाग्र होना। समझ में आया?

भावार्थ :— यह सब सम्यक्त्व का माहात्म्य है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न चाहिए। यह कहीं साधारण बात नहीं है। कोई शास्त्र का पठन करे, कोई त्याग करे, कोई शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे। इसलिए यह प्राप्त हो जाये, ऐसी यह चीज़ नहीं है। समझ में आया? अनन्त काल का दु:ख जिसमें छिदकर... आहाहा! अनन्त आनन्द की प्राप्ति का कारण, ऐसा सम्यग्दर्शन, उसका कारण ऐसा भगवान आत्मा कारणपरमात्मा। एक समय में पूर्ण कारणस्वरूप भगवान!

वे कहते थे न एक बार? कारणपरमात्मा कारण है तो कार्य क्यों नहीं आता? ऐसा कहा। परन्तु वह कारणस्वरूप है, ऐसी मान्यता करे, उसे कारण है? या श्रद्धा करे नहीं उसे (भी) कारणपरमात्मा है? आहाहा! वर्तमान पर्याय में उसे त्रिकाली ऐसा आत्मा है, ऐसा स्वीकार करे तो उसे कारणपरमात्मा हो न, तब तो कार्य हुए बिना रहे ही नहीं। समझ में आया? ओहोहो! चारों ओर से देखो तो एक ही सिद्धान्त। आहाहा! छठवें गुणस्थान में एक ... परद्रव्य के लक्ष्य को छोड़कर स्वद्रव्य की सेवा करने से, उसे यह शुद्धस्वरूप है, ऐसा ज्ञात होता है। पर्याय में शुद्धता प्रगट होने से, यह शुद्ध है—ऐसा ज्ञात होता है। उसकी अस्ति तब स्वीकार होती है। इसी प्रकार भगवान

कारणपरमात्मा पूर्ण स्वरूप की प्रतीति करने से उसे पूर्ण स्वरूप है, वह प्रतीति में आता है। है, परन्तु उसका माननेवाला जागे तो है ऐसा हो या नहीं तो चीज़ है, ऐसा कहाँ से हो? आहाहा! यह सम्यग्दर्शन। मेघाणी! मेघाणी कहते थे कि यह सम्यग्दर्शन... आहाहा!

यह सम्यग्दर्शन, वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के श्रीमुख से आयी हुई यह बात है। आहाहा! यह मूल तो सुनने में आता होगा यह? एक व्यक्ति यह लिखता था महाराज... तुरन्त आया सुनने। अब वह तो बेचारा ढोर है। लोग कहाँ के कहाँ.... महाराज थे और तुरन्त आया और बैठा थोड़ी देर। आया, क्या दिक्कत आयी तुझे?

मुमुक्षु : महाराज को आशीर्वाद देना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में सब बातें। गप्प-गप्प। जगत को बाह्य त्याग का माहात्म्य इतना करना है न! थोथा-थोथा। अभी कोई कहता था, हों! वह निर्मलस्वामी। उसके शिष्य सुनने जाये वहाँ नहीं? कहाँ? लश्कर। लश्कर। ग्वालियर। ग्वालियर। वहाँ आता है। हिम्मतसागर तो यहाँ रहे। शुभभाव में धर्म है। कौन कहता है कि नहीं? उसका शिष्य कहीं और ग्वालियर सुनने जाये। ... पत्र आया था... शिष्य... सुने। सुने तो सही, क्या कहते हैं? साधु होकर बैठा, इसलिए मानो अब हो गया। बापू! परन्तु साधु किसका? आहाहा! पहले सम्यग्दर्शन बिना आत्मा का साधन साधे कौन? सम्यग्दर्शन बिना साधन कौन? साधन तो प्रगटा नहीं और साध्य कहाँ से आया? आहाहा!

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जो सम्यक्त्व के प्रभाव से मोक्ष प्राप्त करते हैं, वे तत्काल ही प्राप्त करते हैं, या कुछ अवस्थान भी रहते हैं? ऐसा कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित मोक्ष प्राप्त करके स्थिर भी रहते हैं या नहीं? केवलज्ञान सहित कुछ शरीर रहता है या नहीं? या सीधे मोक्ष हो जाता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उसके समाधानरूप...** उसका हेतु तो यह है कि अभी सम्यग्दर्शन पाया और केवलज्ञान पाया। परन्तु कहीं तुरन्त ही मुक्ति हो जाती है, केवलज्ञान पाया इसलिए? उसे अभी उपदेश का काल रहता है। थोड़ा विहार का भी काल होता है, पश्चात् देहरहित होकर मुक्ति होती है। वह यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! उपदेश रहता है। कथन की पद्धति यहाँ। 'जिन' की बात है न? मूल तो तीर्थंकर की अपेक्षा की बात है।

विहरदि जाव जिणिंदो सहसट्ठसुलक्खणेहिं संजुत्तो।
चउतीस अइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया॥३५॥

आहाहा! **अर्थ :— केवलज्ञान होने के बाद जिनेन्द्र भगवान जब तक इस लोक में...** चौदह अतिशय 'जुतो' है न यहाँ तो ? उन्हें लेना है न यहाँ ? साधारण केवलज्ञान पावे और अतिशय नहीं, उसकी यहाँ बात नहीं लेना। पण्डितजी! उसकी नहीं लेना। यहाँ तो चौतीस अतिशय बात तीर्थंकर की लेनी है। वरना केवलज्ञान पाकर तुरन्त मोक्ष हो जाये, परन्तु उनकी बात यहाँ नहीं लेनी है। यहाँ तो केवलज्ञान पावे, थोड़ा समय रहे, उपदेश का काल रहे, विहार आदि करे, उसे यहाँ स्थावर प्रतिमा कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा शैली भी कोई अलौकिक है।

जिनेन्द्र भगवान जब तक इस लोक में—आर्यखण्ड में विहार करते हैं... यह तो उदय के कारण विहार होता है, हों! करते हैं, मैं विहार करूँ, ऐसा कुछ वहाँ नहीं है। **तब तक उनकी वह प्रतिमा अर्थात् शरीरसहित प्रतिबिम्ब उसको थावर प्रतिमा इस नाम से कहते हैं।** लो! स्थिर बिम्ब है और तो भी विहार होता है, ऐसा। उसे विहार देह की क्रिया है वह तो। मैं उपदेश दूँ या विहार करूँ, ऐसा कुछ उन्हें है नहीं। वे तो केवलज्ञानी हैं, वीतराग हैं। परन्तु उन्हें केवलज्ञान होने के बाद भी थोड़ा समय शरीरसहित प्रतिबिम्बवाला प्रतिमा विहार आदि होते हैं। वह स्थावर प्रतिमा उन्हें कहा जाता है।

वे जिनेन्द्र कैसे हैं ? एक हजार आठ लक्षणों से संयुक्त हैं। एक हजार आठ लक्षण जिनके शरीर में। तीर्थंकर लेना है न यहाँ ? सर्वोत्कृष्ट पुण्य और सर्वोत्कृष्ट पवित्रता। दोनों बातों को यहाँ लेना है। **एक हजार आठ लक्षणों से संयुक्त हैं।**

मुमुक्षु : शरीर सहित।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर सहित की बात है न।

वहाँ श्रीवृक्ष को आदि लेकर एक सौ आठ तो लक्षण होते हैं। वृक्ष, चन्दन आदि हो न चन्दन। **तिल, मुस को आदि लेकर नौ सौ व्यंजन होते हैं। चौंतीस अतिशयों में दस तो जन्म से ही लिये हुए उत्पन्न होते हैं :—** तीर्थंकर भगवान को दस अतिशय तो तीर्थंकर जन्मे, तब से होते हैं। इसका विस्तार करेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ८, शुक्रवार, दिनांक १९-१०-१९७३
गाथा-३५, ३६, प्रवचन-३१

यह अष्टपाहुड़। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कृत। उसमें दर्शनपाहुड़ चलता है। ३५वीं गाथा। पहले से लेते हैं फिर। **अब प्रश्न उत्पन्न होता है...** ३५ गाथा पर उपोद्घात है। **अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जो सम्यक्त्व के प्रभाव से मोक्ष प्राप्त करते हैं, वे तत्काल ही प्राप्त करते हैं या कुछ अवस्थान भी रहते हैं?** क्या कहते हैं? कि समकित के प्रभाव से... सम्यग्दर्शन का अर्थ क्या? कि जो आत्मा... लो वह तो यह आया सुबह का वीतराग विज्ञान। वह टोडरमल कहते हैं न पहले? मंगलमय मंगल करण वीतराग विज्ञान। उसका अर्थ यह है कि यह आत्मा जो है वस्तुरूप से त्रिकाल, वह वीतराग विज्ञानघन है। पर्याय में संसार विकारादि हो, परन्तु वस्तुस्वभाव है, वह तो 'मंगलमय मंगल करण वीतराग विज्ञान।' अपना निजस्वरूप त्रिकाली नित्य ध्रुवस्वरूप, वह तो वीतराग अर्थात् रागरहित है और विज्ञान अर्थात् सर्वज्ञघन स्वभाव है। सर्वज्ञस्वभाव है अपने आत्मा का। तो वह वीतराग-विज्ञानस्वभाव, उसकी अन्तर में निर्विकल्प प्रतीति सम्यग्दर्शन होना, वह धर्म की पहली सीढ़ी शुरुआत है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु जो वस्तु पदार्थ आत्मा है, वह तो वीतराग-विज्ञानघन है। वह वीतराग-विज्ञानघन स्वरूप, द्रव्यस्वरूप, भाव त्रिकाल स्वरूप उसकी अन्तर में दृष्टि करना, (वह) अनन्त काल में कभी नहीं किया। समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत लिया, पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण लिये। गृहस्थाश्रम छोड़कर अपवास आदि किया, मुनिपने की क्रिया अट्ठाईस मूलगुण पाली, वह धर्म नहीं। वह अनन्त बार किया परन्तु आत्मज्ञान किया नहीं उसने। आया न उसमें? कि 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' ग्रैवेयक स्वर्ग है, 'पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मा आनन्दस्वरूप विज्ञानघन। वीतराग स्वरूप कहो, सर्वज्ञ विज्ञानघन कहो, आनन्दघन कहो, ऐसी जो अपनी निज चीज़ त्रिकाली उसके अन्तर अनुभव बिना वह पंच महाव्रत आदि अनन्त बार लिया, वह तो दु:खरूप था। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' उसका अर्थ क्या हुआ? कि आत्मा वीतराग विज्ञानघन है ऐसा अन्तर्मुख होकर अनुभव न करे तो उसको आनन्द नहीं आता। वह

पंच महाव्रत का परिणाम हो, वह भी विकल्प, आस्रव और दु:ख है। आहाहा! समझ में आया? वह वीतराग-विज्ञानघन ऐसी निज त्रिकाली चीज़ का अनुभव करके, उसको अनुसरके वीतराग-विज्ञानघन स्वभाव का अनुसरण करके जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूप का आचरणरूप स्थिरता अंश होती है, वह तीनों वीतराग पर्याय हैं। समझ में आया?

वीतराग-विज्ञानघनस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द वस्तु स्वभाव, उसके अन्तर में स्वभाव-सन्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप में अंश से स्थिरता का होना, स्वरूपाचरण उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अंश में स्थिरता, वह वीतराग-विज्ञानघन के अवलम्बन से हुआ है तो वह पर्याय भी वीतराग-विज्ञानघन की अंश है। देवीलालजी! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा ने क्या सम्यग्दर्शन कहा और सम्यग्दर्शन कैसे होता है, खबर नहीं उसको। ऐसे के ऐस वाड़े में पड़े हैं। मान ले कि हम धर्मी हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना व्रत, तप, यात्रा, भक्ति और पूजा सब शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं। समझ में आया? ऐसा वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का फरमान है। यह आत्मा... यहाँ यह कहा न? समकित का माहात्म्य समकित के प्रभाव से। वह सम्यग्दर्शन। वह सम्यग्दर्शन ऐसी कोई चीज़ नहीं कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। ऐसा है नहीं। इसी तरह नव तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, वह भी सम्यग्दर्शन नहीं।

भगवान आत्मा। भगवान कहकर ही बुलाते हैं आचार्य तो आत्मा को। ७२ गाथा में। ७२ गाथा है न समयसार की? उसमें ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा। आहाहा! पर्याय में अवस्था में राग-द्वेष होने पर भी वस्तु है तो भगवानस्वरूप ही आत्मा है। जो भगवानस्वरूप न हो तो भगवान की पर्याय कहाँ से आयेगी? कोई बाहर से तो आती नहीं। समझ में आया? वह भगवान आत्मा पुण्य-पाप का विकल्प जो है, वह अचेतन जड़ है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव है न? शुभ-अशुभभाव। वह अचेतन है। अचेतन का अर्थ? उसमें विज्ञानघन, वीतराग-विज्ञानघन का अंश उसमें नहीं आया। आहाहा! समझ में आया? वह वीतराग-विज्ञानघन भगवान आत्मा। आहाहा! उसकी स्वरूप होकर

प्रतीति ज्ञान में रमणता करना, जो अनन्त काल में अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गये और हुआ नहीं, ऐसी वह दशा है। उस दशा के बिना धर्म का लाभ उसको होता नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि यह सम्यक्त्व माहात्म्य से—प्रभाव से। पीछे सम्यग्दर्शन हुआ तो पीछे स्वरूप में लीनता का चारित्र होगा ही और चारित्र से फिर मुक्ति होगी। वह आगे आयेगा। ३६ में। ३६ में। '**खविऊण विहिबलेण स्सं**' ऐसा है। इसके दो अर्थ किये हैं। एक चारित्रमोह और ये... इस जाति की सामग्री चारित्र। सम्यग्दर्शन होने के बाद भी स्वरूप में आत्मा के आनन्द में लीनता वह चारित्र है। चारित्र कोई बाह्य की देह की क्रिया या पंच महाव्रत का विकल्प, वह राग है; वह चारित्र नहीं। आहाहा! तो अपने स्वरूप की प्रतीति सम्यग्दर्शन उपरान्त स्वरूप में स्थिरता की चारित्रदशा होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। पहली पंक्ति का अर्थ होता है। ३५ का उपोद्घात ऊपर है न? है?

प्रश्न करते हैं। गम्भीर अर्थ है। ऐसे कोई कथा नहीं यह साधारण कि थोड़े शब्द में... बहुत शब्द में थोड़ा आ जाये। यह तो थोड़े शब्द में बहुत आता है। आहाहा! **प्रश्न उत्पन्न होता है कि जो सम्यक्त्व के प्रभाव से...** सम्यग्दर्शन वीतराग-विज्ञानघन का अनुभव होने से। आहाहा! और पीछे स्वरूप में लीनता करने से मोक्ष प्राप्त करते हैं। सिद्धपद की प्राप्ति तब उसको होती है। **वे तत्काल प्राप्त करते हैं...** शिष्य का प्रश्न है कि केवलज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र के प्रताप से वीतराग-विज्ञानघन के आश्रय से प्रगट वीतरागी पर्याय, उससे वीतराग-विज्ञानघन केवलज्ञान हुआ, तो वह केवलज्ञानी परमात्मा **तत्काल प्राप्त करते हैं या कुछ अवस्थान भी रहते हैं?** केवलज्ञान के पीछे थोड़ा काल रहते हैं या नहीं? कि एकदम केवलज्ञान हुआ और तुरन्त मोक्ष प्राप्त करते हैं? यह ऐसा प्रश्न है। समझ में आया? उसका उत्तर कहते हैं, देखो!

उसके समाधानरूप गाथा कहते हैं:—भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में हुए। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त मुनि। संवत् ४९ में। उनके पास जमीन से चार अंगुल ऊपर चलने की लब्धि थी। तो उस कारण से भगवान के पास गये थे। भगवान महाविदेह में वर्तमान श्री सीमन्धर तीर्थंकरदेव विहरमान, विद्यमान जीवन्त तीर्थंकर विराजते हैं। महाविदेह में, वर्तमान विराजते हैं। उस समय भी थे। क्योंकि आयुष्य तो बड़ा है। सीमन्धर का आयुष्य तो करोड़ पूर्व का है। और एक पूर्व में ७०

लाख करोड़ ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसा-ऐसा करोड़ पूर्व का तो आयुष्य भगवान का है। महाविदेह में विराजते हैं मनुष्यपने। केवलज्ञानी परमात्मा अरिहन्त पद में।

महावीर भगवान आदि जो हुए, वह तो यहाँ थे, तब अरिहन्त थे। अब तो सिद्ध हो गये। णमो सिद्धाणं। उनको शरीर नहीं, वह सिद्ध हो गये। भगवान विराजते हैं, अरिहन्त विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में। बीस विहरमान नहीं आते हैं? बीस विहरमान। विचरते तीर्थंकर बीस। भगवान विराजते हैं महाविदेह में। उनके पास गये थे कुन्दकुन्दाचार्य। आठ दिन वहाँ रहे थे। दिगम्बर सन्त। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि भगवान का यह फरमान है कि आत्मा वीतराग विज्ञानघन स्वरूप की अन्दर प्रतीति, ज्ञान और रमणता होती है तो उससे उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। कोई बाह्य की क्रियाकाण्ड से, शरीर की नग्नता से मोक्ष होता नहीं। समझ में आया? और वह केवलज्ञान होने पर भी आर्यखण्ड में विचरते थे। केवलज्ञान हुआ तो तुरन्त मोक्ष हो गया, ऐसा है नहीं। वह कहते हैं।

विहरदि जाव जिणिंदो सहसट्ठसुलक्खणेहिं संजुत्तो।
चउतीस अइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया॥३५॥

उसका **अर्थ :—केवलज्ञान होने के बाद जिनेन्द्र भगवान...** अपने स्वरूप का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कारण से केवलज्ञान होने पर भी **भगवान जब तक इस लोक में—आर्यखण्ड में विहार करते हैं...** केवलज्ञानी परमात्मा भी आर्यखण्ड में आयुष्य के प्रमाण में विहार करते हैं। **तब तक उनकी वह प्रतिमा अर्थात् शरीरसहित प्रतिबिम्ब उसको 'थावर प्रतिमा' इस नाम से कहते हैं।** क्योंकि केवलज्ञान हुआ तो थोड़ा काल यहाँ रहते हैं। थोड़ा कहते हैं न? थोड़ा। वह थोड़ा काल रहते हैं, उस स्थिति को थावर प्रतिमा कहते हैं। क्योंकि केवलज्ञान होने पर भी शरीरसहित उसकी क्रिया होती है विहारमान की, तो उसको थावर प्रतिमा कहते हैं। अवस्थान है न? उसमें रहते हैं न? तो उसको थावर प्रतिमा कहते हैं। और जब यहाँ से सिद्ध में जाते हैं एक समय में देह छूटकर, तो उसको जंगम प्रतिमा कहते हैं। समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की बात है यह तो। यह कोई कल्पना की बात नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त परमात्मा, जिसको एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक देखने में, जानने में आया। ऐसे भगवान की जो वाणी आयी, यह उसका कथन है। आहाहा! कहते हैं, जब तक भगवान शरीरसहित प्रतिबिम्ब, उसको थावर प्रतिमा नाम से कहते हैं। थावर। ऐसे तो थावर भगवान की प्रतिमा को कहे। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो इस प्रकार थावर कहते हैं। भगवान की प्रतिमा वह थावर प्रतिमा है, परन्तु व्यवहार थावर प्रतिमा है, और यह निश्चय थावर प्रतिमा है। समझ में आया? एक समय में सिद्ध भगवान यहाँ देह छूटकर जाते हैं, वह जंगम प्रतिमा। और यह स्थावर प्रतिमा की अपेक्षा से समवसरण में विराजमान भगवान को जंगम प्रतिमा कहते हैं। समझ में आया? प्रतिमा थावर होती है। जब शुभभाव होता है तो शुभभाव में भक्ति आदि का भाव, उसमें भगवान की प्रतिमा की ओर लक्ष्य जाता है, परन्तु वह शुभभाव पुण्य है, धर्म नहीं।

मुमुक्षु : धर्म का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। धर्म मतलब आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, उसके आश्रय से जो दशा हो उसका नाम धर्म है। पर के आश्रय से जितना विकल्प उठे, वह पुण्य और पाप है। सूक्ष्म बात है भगवान! यह मार्ग भिन्न है परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर। आहाहा! उसमें यह दिगम्बर धर्म। जैनधर्म वह दिगम्बर धर्म। समझ में आया? वह तो चली न। यह तो अब समकित की प्रधानता चलती है। स्वयं कहते हैं कि सम्यक्त्व की प्रधानता से कथन। कहेंगे आगे। आखिर में ऐसा कहेंगे। यह पूरा करेंगे, तब ऐसा कहेंगे। समझ में आया कुछ? आहाहा! यह माहात्म्य पीछे से आया है न? आहाहा!

जिनेन्द्र कैसे हैं? एक हजार आठ लक्षणों से संयुक्त हैं। भगवान के शरीर में एक हजार आठ तो लक्षण हैं। अन्तर में केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य और सुख। अनन्त सुख, अनन्त चतुष्टय। आत्मा में अनादि अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन और वीर्य वह पड़ा है अन्दर में। आत्मा में अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप, स्वभावरूप, ज्ञेयरूप, भावरूप आत्मा सत् है, उसका सत्त्व अनादि से पड़ा है

उसमें। आहाहा! समझ में आया? ऐसे उस चतुष्टय में से अनन्त चतुष्टय, वह वीतराग -विज्ञानघन है। उसमें अन्तर अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट किया, उससे मोक्ष हुआ अर्थात् केवलज्ञान हुआ, भावमोक्ष। पीछे मोक्ष तो ... जगह चली। तो वह केवलज्ञानी को शरीर में एक हजार आठ लक्षण होते हैं। वह जरा व्यवहार की बात आई। समझ में आया? वह कहते हैं, देखो!

एक हजार आठ लक्षणों से संयुकत हैं। वहाँ श्रीवृक्ष को आदि लेकर एक सौ आठ लक्षण होते हैं। तिल, मुसक आदि लेकर नौ सौ व्यंजन होते हैं। जानने की बात है। **चौंतीस अतिशयों में दस तो जन्म से ही लिये हुए उत्पन्न होते हैं :—**भगवान जब जन्मते हैं, तीर्थंकर, तब तो पहले से निःस्वेदता—पसीना होता ही नहीं। भगवान गृहस्थाश्रम में हो फिर भी तीर्थंकर का परम औदारिकशरीर होता है। उसको भोजन-आहार होता है, परन्तु पसीना, दिशा-जंगल (मल) और पेशाब वह होता ही नहीं। इतनी उनकी पवित्रता है। गृहस्थाश्रम में रहता है फिर भी। समझ में आया? त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ हुए पहले। जब स्वर्ग में से या नरक में से आते हैं, नरक में से भी आते हैं। स्वर्ग में से भी आते हैं। तीर्थंकर तो। श्रेणिक राजा। अब श्रेणिक राजा नरक में है। भगवान के पास तीर्थंकरगोत्र बाँधा था। श्रेणिक राजा जिनको नरक का आयुष्य बँध गया था। चौरासी हजार साल का आयुष्य है। तो नरक में गये अभी। परन्तु भविष्य के तीर्थंकर होंगे। आगामी चौबीसी में भरत में पहले तीर्थंकर होंगे। वह सम्यग्दर्शन में तीर्थंकरगोत्र बँधा इस कारण से। चारित्र नहीं, व्रत, तप कुछ नहीं था। परन्तु एक सम्यग्दर्शन, अपूर्व अनुभव जो अनन्त काल में कभी हुआ नहीं और उसके बिना सच्चा ज्ञान और सच्चा चारित्र होता नहीं। वह सम्यग्दर्शन प्राप्त किया श्रेणिक राजा ने भगवान महावीर परमात्मा के समय में...

वह आती है न बात नहीं मुनि की? यशोधर मुनि। कैसे? यशोधर मुनि। उसमें एक सर्प था न सर्प मुर्दा? तो श्रेणिक राजा ने गले में डाल दिया। वह बौद्ध थे, जैन नहीं थे पहले। बौद्धधर्मी था। गले में डाल दिया। फिर घर पर चेलना रानी समकिती थी। उसकी पत्नी थी वह सम्यग्दृष्टि, आत्मज्ञानी अनुभवी थी। आत्मा का भान था। वह स्त्री शरीर हो या पुरुष का वह तो हड्डी। यह तो हड्डी है। उसमें आत्मा में क्या आया?

आत्मा तो भिन्न चीज़ है। तो स्त्री को भी वहाँ सम्यग्दर्शन होता है। अपूर्व दृष्टि आनन्द की। तो वह चेलना को कहे कि मैंने तेरे साधु के ऊपर मरा हुआ सर्प डालकर आया हूँ। वह तो निकाल देगा। रानी कहती हैं, अन्नदाता! ऐसा न होता। हमारे मुनि तो वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान है। आनन्द में झूलते हैं वह तो। आहाहा! आपने सर्प डाला हों तो छुएगा नहीं, निकाले नहीं। आनन्द में रहते हैं। वह तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, मुनिदशा (में) तो अतीन्द्रिय आनन्द की लहर उठती है अन्दर में। ऐसी दशा में वह पड़े हैं। तो कहे, चलो।

श्रेणिक कहता है कि तुम कहती हो वह सच्ची बात है या हम कहते हैं वह सच्ची बात है? गये। सर्प पड़ा था। लाखों चींटियाँ... चींटियाँ हो गयी। तो (श्रेणिक ने) चींटियों को निकाल कर सर्प को उतार दिया। लो अन्नदाता! आप ... देखो! हमारे मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द में मशगुल हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हो, वह मुनिपना है। आहाहा! उसको उपसर्ग की कुछ खबर ही नहीं। खबर हो तो भी उपसर्ग निकालते नहीं। उस समय श्रेणिक राजा को मुनि ने उपदेश दिया... ओहोहो! ऐसी दशा! अन्तर आनन्दस्वरूप। केवल नग्नपना नहीं। केवल पंच महाव्रत का पालन, वह विकल्प वह भी नहीं। अन्तर में आनन्दस्वरूप में गाढ़ आनन्द में रहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन प्रचुर था। तो उनको उपसर्ग में कुछ खबर ही नहीं। श्रेणिक ने कहा ओहोहो! यह दशा मुनि की! महाराज! हमको धर्म कुछ कहो। ओहोहो! यह दशावन्त। धर्म कहा, उसी समय समकित पाया। आत्मानुभव। मन से राग से भिन्न आत्मा। उसका दृष्टि और अनुभव वहाँ समकित हुआ। परन्तु क्षायिक समकित नहीं। पश्चात् भगवान के समवसरण में गये श्रेणिक राजा। वहाँ क्षायिक समकित पाया। और वहाँ तीर्थंकरगोत्र का उपार्जन किया। तीर्थंकरगोत्र। समकिती है, हजारों राजा सेवा करते थे। समझ में आया? धर्म प्राप्त किया और तीर्थंकरगोत्र बाँधा। परन्तु पूर्व में आयुष्य बँध गया था नरक का। वह तो कुछ बदले नहीं। जाना पड़ा नरक में। बहुत आयुष्य बँधा था। ३३ सागर था पहले तो नरक आयुष्य। परन्तु भगवान के समवसरण में समकित पाया तो वह सब स्थिति नरक की घटा दी और ८४ हजार वर्ष की हो गयी। आत्मा अनुभव सम्यग्दर्शन आनन्द का स्वाद आया तो उसमें ८४ हजार वर्ष की स्थिति निश्चित रह गयी। ८४ हजार वर्ष

में अभी हैं। पहली नरक में। ढाई हजार साल गये अभी। साढ़े इक्यासी हजार वर्ष बाकी हैं। तो वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। नरक में से निकलकर तीर्थंकर होंगे। समकिती है न। ऐसे सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी लोगों को कीमत नहीं। भगवान को माना समकित है। ले लो व्रत और कर लो तप। एक के बिना के शून्य हैं सब। क्या कहते हैं? एक के बिना शून्य। आहाहा!

वह श्रेणिक राजा नरक में से तीर्थंकर होगा, महावीर भगवान आदि स्वर्ग में से आये और तीर्थंकर हुए हैं। समझ में आया? तो कहते हैं, उनको शरीर में इतने लक्षण होते हैं। शरीर में हों! मुनिपना ले, केवलज्ञान हो तो भी उसके १००८ लक्षण शरीर में हो। और उतना काल भगवान महावीर ने ४२ वर्ष में केवल पाया था। ४२ वर्ष उम्र। ३० वर्ष केवलज्ञान रहा। पश्चात् ७२ वर्ष (की उम्र) में सिद्ध हुए। परन्तु वह ३० (वर्ष) जब तक विचरते थे तो उनको केवलज्ञानसहित शरीर में एक हजार आठ लक्षण सहित उसको स्थावर प्रतिमा कहने में आता है। वह स्थित रहते न थोड़ा काल यहाँ। रहते हैं तो उस कारण से स्थावर कहते हैं। यहाँ कहते हैं एक हजार आठ लक्षण। ३४ अतिशय लो।

उसको **१. निःस्वेदता,...** परम औदारिकशरीर पहले से होता है। समझ में आया? वह श्वेताम्बर में ऐसा है नहीं। श्वेताम्बर में तो कहते हैं कि शरीर में रोग होता है, केवली को भी रोग होता है। ऐसा है नहीं। भगवान तीर्थंकर तो पहले से—जन्म से उसको निःस्वेदता है—पसीना नहीं होता। **२. निर्मलता,...** शरीर में निर्मलता दिखे बालकपने में भी। आहाहा! समझ में आया? जन्म होता है, वह आते हैं न इन्द्र जन्मोत्सव करने को। तो इन्द्राणी पहले उठाती हैं बालक को। इन्द्र के हाथ में देती हैं। इन्द्र एक हजार आठ नेत्र से देखते हैं। इतनी तो जिनके शरीर की सुन्दरता है। अन्तर तो तीन ज्ञान का स्वामी समकिती सहित है। समझ में आया? तो कहते हैं कि शरीर में निर्मलता होती है।

३. श्वेतरुधिरता,... रक्त सफेद होता है। भगवान को सफेद रक्त होता है। रक्त कहते हैं न क्या कहते हैं? खून-खून। सब तुम्हारी हिन्दी नहीं आती है। थोड़ी-थोड़ी आती है न। **४. समचतुरस्त्रसंस्थान,...** यह आकार शरीर का सुन्दर होता है। **५. वज्रवृषभ-**

नाराच संहनन,... हड्डी की मजबूताई **६. सुरूपता, ७. सुगन्धता,...** देखो! भगवान के शरीर में पहले से रूप सुन्दर, सुगन्ध। श्वास में गन्ध आती है। **८. सुलक्षणता, ९. अतुलवीर्य,...** पहले से अतुलवीर्य। **१०. हितमितवचन—ऐसे दस होते हैं। घातिया कर्मों के क्षय होने पर दस होते हैं :—१. शतयोजन सुभिक्षता,...** सौ-सौ योजन में दुष्काल नहीं। ऐसा पुण्य का प्रभाव है कि जगत की भी ऐसी स्थिति हो जाती है। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर जब विचरते हैं तो सौ-सौ योजन में दुष्काल नहीं। सुभिक्षता। आहाहा! अन्दर में सुकाल हो गया न अन्दर में। पर्याय में केवलज्ञान हो गया तो सुकाल हुआ। जब तक मिथ्यात्व था, तब तक दुष्काल था। समझ में आया? राग को अपना मानकर, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी था अनादि से, तब तक अपनी पर्याय में दुष्काल था। आहाहा!

अपना आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति का सम्यग्दर्शन हुआ तो सुकाल की शुरुआत हो गयी। समझ में आया? पश्चात् भले गृहस्थाश्रम में हो परन्तु उसकी अन्दर में पर्याय की सुकाल की शुरुआत हो गयी और पूर्ण केवलज्ञान हो, तब पूरा सुकाल हो गया। आहाहा! तो वह भगवान जब जाते हैं, वहाँ शतयोजन में सुभिक्षता। **२. आकाशगमन,...** ऊपर चलते हैं। नीचे नहीं चलते। **३. प्राणी वध का अभाव,...** भगवान जहाँ विचरते हैं, वहाँ प्राणी वध नहीं होता। ऐसा तो अतिशय है। **४. कवलाहार का अभाव,...** भगवान को खुराक नहीं होती। रोटी ग्रास-ग्रास। श्वेताम्बर में कहते हैं, भगवान को रोग हुआ महावीर को, फिर औषध ली। औषध-औषध लाये। खायी तो सारा रोग मिट गया। सब कल्पना, बापू! भगवान को कवलाहार होता ही नहीं। भगवान के शरीर में रोग ही होता नहीं। समझ में आया? मार्ग तो अनादि का ऐसा है। उसमें गड़बड़ हो गयी है यह ... समझ में आया?

भगवान ६०० वर्ष पश्चात् बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। बारह वर्ष एक बड़ा दुष्काल। तो उसमें से नग्नपना अन्तरदशा में निभ नहीं सके तो यह श्वेताम्बर निकल गये। उसमें से निकले हैं। वस्त्रसहित मुनिपना, भगवान को आहार, स्त्री की मुक्ति यह सब पीछे निकला है। वह भगवान का मार्ग नहीं। समझ में आया? वह कहते हैं, देखो। **४. कवलाहार का अभाव,...** भगवानजीभाई! भगवान को आहार नहीं होता। भगवतीसूत्र

में पाठ है। रोग हुआ तो ... आहार लेने गये। पाक लेकर आये भगवान ने खाया। ऐई! ...चन्दभाई! सुना है या नहीं? श्वेताम्बर हो उसने सुना हो न!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको होता है।

केवलज्ञान जहाँ... आहाहा! यहाँ तो अभी मुनिपना जिसको सच्चा भावलिंग आनन्द आता है, उसके मुख में से दन्त आदि सुगन्ध आती है। सच्चे मुनि की बात है। सच्चे मुनि अर्थात् सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप की रमणता अन्दर हो। समझ में आया? और जिसकी नींद भी पौन सेकेण्ड के अन्दर हो, उसको यहाँ जैनदर्शन में साधु कहने में आता है। आता है या नहीं, वह छहढाला में? 'पिछली रयण....'

मुमुक्षु : भूमाहि पिछली रयनि में, कछु शयन एकासन करन।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'कछु शयन एकासन।' वह छहढाला में आता है। पिछली रयण में थोड़ा निद्रा। परन्तु भावलिंगी सन्त, सम्यग्दृष्टि चारित्र उसकी बात है। मात्र नग्नपना और मात्र पंच महाव्रत वह कोई साधुपना नहीं। वह कोई मुनिदशा वीतरागमार्ग की नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, कवलाहार का अभाव, **५. उपसर्ग का अभाव,...** भगवान को उपसर्ग नहीं होता। श्वेताम्बर में कहते हैं कि भगवान के ऊपर लेश्या डाली तो भगवान को छह महीना क्या कहे पेचिस? पेचिस। जाडा हमारे जाडा कहते हैं। जाडा हो गया। छह महीने से। कल्पित है सब बात। यह बात सच्ची नहीं है। भगवान को रोग होता ही नहीं, उपसर्ग होता ही नहीं। **६. चतुर्मुखपना,...** चार मुख देखे। चारों तरफ। **७. सर्वविद्या प्रभुत्व,...** सर्वविद्याओं में प्रभुत्व, **८. छायारहितत्व,...** शरीर की छाया न पड़े। **९. लोचननिस्पंदन रहितत्त्व,...** ऐसा न हो। यह दशा जहाँ केवल हुआ वहाँ। आहाहा! **१०. केश-नखवृद्धिरहितत्त्व...** केश और नख बढ़े ही नहीं। वह दश।

देवों द्वारा किये हुए चौदह होते हैं :—१. सकलार्द्धमागधी भाषा,... भाषा सकल अर्धमागधी निकले। निकलता है ॐ। ऐसे ॐ निकले। 'ॐकार ध्वनि सुणी अर्थ गणधर विचारे।' भगवान की वाणी में तो होठ हिले नहीं, कण्ठ हिले नहीं। ॐ

ऐसी ध्वनि उठती हो तीर्थंकर को। उसमें से गणधरदेव शास्त्र रचते हैं। उसमें अर्धमागधीभाषा देव निमित्त और उसका अतिशय। **२. सर्व जीव मैत्रीभाव,...** सर्व जीव से मैत्री होती है। विरोध नहीं होता किसी से।

३. सर्वऋतुफल पुष्प प्रादुर्भाव,... सर्दी, गर्मी में, बारिश में सब फल पके। **४. दर्पण के समान पृथ्वी होना, ५. मन्द सुगन्ध पवन का चलना, ६. सारे संसार में आनन्द का होना,...** आहाहा! **७. भूमि कंटकादिरहित होना,...** भूमि में कंटक आदि नहीं होता। **८. देवों द्वारा गन्धोदक की वर्षा होना, ९. विहार के समय चरणकमल के नीचे देवों द्वारा सुवर्णमयी कमलों की रचना होना, १०. भूमि धान्यनिष्पत्ति सहित होना,...** भूमि में धान्य उत्पन्न हुआ हो। **११. दिशा-आकाश निर्मल होना, १२. देवों का आह्वानन शब्द होना, १३. धर्मचक्र का आगे चलना,...** भगवान चले तब धर्म (चक्र)। **१४. अष्ट मंगल द्रव्य होना—ऐसे चौदह होते हैं। सब मिलकर चौंतीस हो गये। आठ प्रातिहार्य होते हैं, उनके नाम :— १. अशोकवृक्ष,...** है न अपने समवसरण में। **२. पुष्पवृष्टि, ३. दिव्यध्वनि...** ॐ ऐसी ध्वनि उठती है। जगत का भाग्य उदय, पुण्य और भगवान की वाणी का निकलना। वह आता है या नहीं भव्य? भव्य जीव। 'भागन वसे जोगे वशाय' वह। भव्य का पुण्य का उदय भगवान की दिव्यध्वनि। ऐसी भाषा उनको न हो। हम बोलते हैं ऐसी भाषा उनको नहीं होती। वह तो वीतराग हो गया न? जब तक राग है, वहाँ भाषा खण्ड-खण्ड होती है। वीतराग जब हो गये ॐ एकाक्षरी ध्वनि। उसमें सब अक्षर है। परन्तु यह बोले ऐसी भाषा नहीं। ऐसी दिव्यध्वनि।

४. चामर, ५. सिंहासन, ६. छत्र, ७. भामण्डल,... शरीर में। शरीर में सात भव दिखे। भगवान का शरीर ऐसा उज्ज्वल है कि नजर करे तो सात भव दिखे हैं। सात भव देखने में आते हैं। तीन भूत, तीन भविष्य, एक वर्तमान। ओहोहो! आहाहा! **८. दुंदुभिवादित्र...** दुंदुभि आवाज। नगाड़े बजते हैं। **ऐसे आठ होते हैं।—ऐसे अतिशय सहित अनन्त ज्ञान,...** बाहर का अतिशय और अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त... अनन्त... अनन्त। एक क्षण में-समय में तीन काल—तीन लोक देखते हैं। ऐसा अरिहन्त परमात्मा का ज्ञान है। आहाहा!

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य,... आत्मा का अनन्त

आनन्द प्रगट हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन होते आनन्द अंश उत्पन्न होता है। अतीन्द्रिय, हों! सम्यग्दर्शन में प्रथम चौथा गुणस्थान। श्रावक और मुनि से पहली दशा तो उसमें भी अतीन्द्रिय आनन्द का अंश का स्वाद अंश से आता है। आहाहा! श्रावक सच्चा हो, पंचम गुणस्थानवाला। सच्चा श्रावक, उससे विशेष थोड़ा। मुनि को विशेष, सातवें विशेष करते-करते बारहवें में सुख पूर्ण और केवली को अनन्त सुख। आहाहा! यह मोक्षमार्ग के फल। अनन्त आनन्द। अतीन्द्रिय आनन्द।

अनन्त वीर्य सहित—तीर्थंकर परमदेव जब तक जीवों के सम्बोधन निमित्त विहार करते विराजते हैं, तब तक स्थावर प्रतिमा कहलाते हैं। लो! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज स्वयं उसको स्थावर प्रतिमा कहलाते हैं। **ऐसे स्थावर प्रतिमा कहने से तीर्थंकर केवलज्ञान होने के बाद में अवस्थान बताया है...** अवस्थान। केवलज्ञान होने के बाद भी थोड़ा काल रहते हैं। **और धातु पाषाण की प्रतिमा बनाकर स्थापित करते हैं, वह इसी का व्यवहार है।** यह तो व्यवहार है। मन्दिर बनवाना, प्रतिमा, वह तो सब व्यवहार, शुभभाव में निमित्त। शुभभाव में हों! धर्म में नहीं। परद्रव्य है न वह तो? तो ऐसा होता है। धर्मी को भी अशुभ से बचने को ऐसा शुभभाव भगवान की भक्ति, पूजा का आता है, परन्तु धर्मी जानते हैं कि वह राग है, वह पुण्य है। धर्म नहीं। धर्म तो राग से भिन्न होकर अपने स्वभाव की दृष्टि और स्थिरता करना, इतना धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

केवली परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का यह फरमान है। लोग तो बाहर से धर्म मान ले। पूजा की, भक्ति की, यात्रा की, अपवास किये, तपस्या की, व्रत ले लिया, यह तो सब शुभराग है, पुण्यास्त्रव है। संवर नहीं, धर्म नहीं। धर्म तो राग से भिन्न होकर अपना चैतन्यस्वरूप वीतराग विज्ञानघन की दृष्टि करना, अनुभव करना, वह पहला सम्यग्दर्शन धर्म है। आहाहा!

तो कहते हैं, भगवान परमात्मा को स्थावर प्रतिमा कहते हैं, तो व्यवहार से यह प्रतिमा कहते हैं। भगवान को। है वह। अनादि सिद्ध है। नहीं है ऐसा नहीं। व्यवहार ऐसा आता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होने के बाद भी शुभभाव भक्ति का आता है, होता है। परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है।

आगे कर्मों का नाश करके मोक्ष प्राप्त करते हैं... लो अन्तिम गाथा है न? अन्तिम गाथा। दर्शनपाहुड़ की अन्तिम गाथा। ३६ आयी देखो। ३ और ६ ऐसे।

बारसविहतवजुत्ता कम्मं खविऊण विहिबलेण सं।
वोसट्टचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता॥३६॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दर्शनपाहुड़ की अन्तिम गाथा में मोक्ष कैसे प्राप्त हुआ, ऐसी बात करते हैं। आहाहा! यह सब लिखा गया है हो उसमें। परमागम (मन्दिर में)। उसमें सब अक्षर पौने चार लाख उत्कीर्ण हो गये हैं। है न ४४८ पाटिया हैं। संगमरमर। ... अन्दर। मशीन। पहली मशीन आयी हिन्दुस्तान में।

मुमुक्षु : मशीन।

पूज्य गुरुदेवश्री : मशीन-मशीन। हम साँचा कहते हैं। मशीन। इटली से मशीन आयी है। पहली बार हिन्दुस्तान में। यहाँ किसी ने लिया पहले। ३० हजार रुपये की आती है। कभी हिन्दुस्तान में आयी नहीं। अपने यहाँ समयसारादि करने को कुदरत ने भेजा। और रामजीभाई के पुण्य बड़े। रामजीभाई करवाते हैं न! यह सब रामजीभाई करवाते हैं, हों! रामजीभाई सबमें ध्यान बहुत रखा है। मशीन में भी। मशीन भी वह स्वयं मशीन रखना। ... करावो। ... साँचा। मशीन में देखो न हिन्दुस्तान में पहली बार। मशीन द्वारा पौने चार लाख अक्षर। अध्यात्मशास्त्र। पौने चार लाख अक्षर ४४८ पाटिये पर लिखे हैं। पहली बार हिन्दुस्तान में यह चीज़ हुई है।

मुमुक्षु : उद्घाटन में आना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अपने तो यह बात चलती है।

यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! यह वाणी लिखी गयी है, हों! यह वाणी। लिखी गयी है। उत्कीर्ण हुई। पत्थर में। संगमरमर के पत्थर ४४८ पाटिये हैं। अभी रंग करना बाकी है। बराबर नहीं दिखते। रंग जब आयेगा अक्षर में। अक्षर तो एक समान। इटली की मशीन है। वह पड़ी है। पहली बार हिन्दुस्तान में। किसी को नहीं देते हैं। एक समान अक्षर अध्यात्म का अपने कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय और यह अष्टपाहुड़। अष्टपाहुड़ की टीका (नहीं है)। समयसार,

नियमसार, उसकी टीका संस्कृत सब कुछ लिखा गया है। उत्कीर्ण हो गये। हजारों वर्ष रहेगा यह। प्रतिमा के साथ। अब यहाँ कहते हैं। यह तो अक्षर लिखे गये उसके ऊपर से प्रश्न उठा। आहाहा!

अर्थ :— जो बारह प्रकार के तप से संयुक्त होते हुए... कहते हैं कि मुनि सम्यग्दर्शनसहित अन्तर आत्मा का वीतराग-विज्ञान का अनुभवसहित। और बारह प्रकार के तप सहित **विधि के बल से...** पाठ है न, विधि बल का। उसमें यह अर्थ करेंगे सामग्री। उसमें ऐसा किया विधि अर्थात् चारित्र। उसमें ऐसा कहा। विधिबल से, चारित्रबल से। यह भी ठीक है। **अपने कर्म को नष्ट कर वोसठ चत्त देहा...** जिसने यह शरीर छोड़ दिया। आहाहा! छूट गया। केवल आत्मा रह गया। सिद्ध भगवान जब हुए परमात्मा। वोसट चत्त देहा। **ऐसे होकर वे अनुत्तर अर्थात् जिससे आगे अन्य अवस्था नहीं है...** दूसरी कोई अवस्था उसको उत्कृष्ट नहीं ऐसी दशा प्राप्त हो गयी। **ऐसी निर्वाण अवस्था को प्राप्त होते हैं।** आहाहा! सम्यग्दर्शन का माहात्म्य से आगे बढ़कर चारित्र प्राप्त करके केवलज्ञान होकर शरीर को छोड़कर सिद्धपद को प्राप्त होता है। आहाहा! पन्द्रह मिनिट हैं।

भावार्थ :— जो तप द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर... तप अर्थात् स्वरूप की रमणता। तपस्या का अर्थ अपवास आदि नहीं। अन्दर आनन्दस्वरूप में उप उप अर्थात् समीप, आनन्द में बसकर रहना। उपवास। अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप भगवान आत्मा उसका उप अर्थात् वास स्थिर होना अन्दर में आनन्द में। इच्छा का निरोध होकर अतीन्द्रिय आनन्द की लहर का अनुभव करना, उसका नाम तप कहते हैं भगवान! आहाहा! तपंति इति तपः। जैसे सुवर्ण-सोना। सुवर्ण कहते हैं न! गेरु लगाते हैं न गेरु। गेरु नहीं समझते? सुवर्ण पर गेरु लगाते हैं तो सोना चकचकित होता है। ऐसे भगवान आत्मा अपने आनन्द के उग्र पुरुषार्थ से अतीन्द्रिय आनन्द के चकचकाट अन्दर प्रगट होती है। उसका नाम भगवान तप कहते हैं। आहाहा! और सम्यग्दर्शन के भान बिना जो कुछ अपवासादि करे, वह सब लंघन कहने में आती है। 'शेषं लंघन विधु' आता है न?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह। लंघन... उसको सब याद है। अर्थ का ठिकाना नहीं था। अब तो है। आहाहा!

आत्मा सम्यग्दर्शन न हो और अन्तर की दृष्टि का विकास न हो और मात्र अपवासादि करे तो उसको तो भगवान लंघन कहते हैं। समझ में आया? परन्तु आत्मा के आनन्दस्वरूप की दृष्टि हुई और पीछे स्वरूप में उप अर्थात् समीप में बसना, आनन्द की दशा में ओप करना, उसका नाम भावतप और यथार्थ तपस्या कहने में आती है। कठिन बातें, भाई! जगत से उल्टी बहुत। जगत उल्टा उससे यह उल्टा। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं कि **विधि के बल से अपने कर्म को नष्ट कर...** यहाँ आया। **जो तप द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर जब तक विहार करें, तब तक अवस्थान रहें, पीछे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सामग्रीरूप विधि के बल से...** सब अनुकूलता है न। चौदहवें गुणस्थान की। **कर्म नष्ट कर व्युत्सर्ग द्वारा शरीर को छोड़कर...** मात्र आत्मा रह जाता है। वह सिद्ध में जाते हैं तो एक समय लगता है तो उसको जंगम प्रतिमा कहने में आती है। आहाहा!

यहाँ आशय ऐसा है कि जब निर्वाण को प्राप्त होते हैं, तब लोकशिखर पर जाकर विराजते हैं,... सिद्ध भगवान तो ऊपर विराजते हैं। लोक के अग्र में, **वहाँ गमन में एक समय लगता है, उस समय जंगम प्रतिमा कहते हैं।** देखो! एक समय। 'क' बोले 'क' उसमें असंख्य समय जाता है। 'क' बोले तो उसमें असंख्य समय जाता है। उसमें एक समय। शरीर छूटकर सिद्ध होता है, एक समय में। गति करते हैं, उस अपेक्षा से उसको जंगम कहने में आया है। शरीररहित हुआ न? यहाँ शरीरसहित गति करते हैं, परन्तु शरीर सहित अवस्थान था। वह तो एक समय शरीर रहित था। समझ में आया?

ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से... लो! ऐसे सम्यग्दर्शन आत्मा आनन्दस्वरूप निर्विकल्प आनन्दघन उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसका चारित्र अन्दर लीनता से मोक्ष प्राप्त होता है। उसको मोक्ष होता है। **उसमें सम्यग्दर्शन प्रधान है।** देखो! यह तीनों में सम्यग्दर्शन मुख्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों अन्दर निर्दोष निर्विकल्प होते हैं। उसमें सम्यग्दर्शन प्रधान है। प्रधान अर्थात् मुख्य है। समझ में आया?

इस पाहुड़ में सम्यग्दर्शन के प्रधानपने का व्याख्यान किया है। लो। दर्शनपाहुड़ है न ? तो उसमें पहले तो वही लिया था कि दर्शन किसको कहे ? कि जिसको अन्तर आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, उसका अनुभव, ज्ञान और चारित्र है और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प है और नग्नदशा है। उसको जैनदर्शन कहने में आता है। निश्चय में अपना आनन्दस्वरूप में शुद्ध अखण्ड आनन्द का ज्ञान और श्रद्धा हुई और उसमें लीनता हुई। यह तीनों इकट्ठा होकर वह निश्चय जैनदर्शन और उस समय में उसको पंच महाव्रत का विकल्प और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प मुनि को जो अट्ठाईस मूलगुण होता है। वह व्यवहार। और नग्नपना निमित्त। वह तीनों मिलकर जैनदर्शन कहने में आता है। उसको जिनदर्शन कहते हैं। उससे भ्रष्ट को जैनदर्शन कहते नहीं। समझ में आया ? और तीनों में भी सम्यग्दर्शन प्रधान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

श्लोक है अब।

मोक्ष उपाय कह्यो जिनराज जु सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा।
तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य भये निज बोध फलै सुचरित्रा॥
जे नर आगम जानि करै पहचानि यथावत मित्रा।
घाति खिपाय रु केवल पाय अघाति हने लहि मोक्ष पवित्रा॥१॥

यह हिन्दी में सब हिन्दी में आज तो है। **मोक्ष उपाय कह्यो जिनराज...** त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त परमेश्वर ने जो मोक्ष का उपाय कहा। उपाय कहो, कारण कहो। क्या उपाय ? **सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा।** वह ...में आता है न पहले ? तत्त्वार्थ (सूत्र में) 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' तत्त्वार्थसूत्र का पहला सूत्र। उमास्वामी। उसमें पहला सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि। वह सम्यग्दर्शन। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' अपना पूर्ण स्वरूप वीतराग विज्ञानघन अर्थात् चारित्र और ज्ञान से परिपूर्ण भरा प्रभु ! उसके अन्तर्मुख होकर प्रतीति निर्विकल्प श्रद्धा और वह आत्मा का ज्ञान, दूसरा शास्त्र का ज्ञान हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आत्मा का ज्ञान और आत्मा में लीनता। वीतरागी दशा, अतीन्द्रिय आनन्द की भरती। भरती आती है। भरती को क्या कहते हैं ? बाढ़। आहाहा ! पर्याय में—अवस्था में मुनि सच्चा जिसको भगवान कहे, उसको अतीन्द्रिय

बाढ़ आती है। अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय में बाढ़ आती है। उसका नाम चारित्र कहते हैं। आहाहा! व्याख्या सब।

यह तो कहा न? '**मोक्ष उपाय कह्यो जिनराज जु सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा। तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य...**' कल आया था नहीं? सम्यग्दर्शन को तो '**अग्धेदि सुरासुरे लोए**' सुर और असुर लोक अर्थात् भवन में देव भी जिनको पूज्य मानते हैं। आया है या नहीं? ३३-३३। दो तिगड़ा है न?

कल्लाणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं।
सम्मद्दंसणरयणं अग्धेदि सुरासुरे लोए॥३३॥

सम्यग्दर्शन तो सुर और असुर लोक में भी जिसकी पूजा होती है। आहाहा! समझ में आया? भगवान जन्मते हैं तीर्थंकर, तब तो चारित्र तो है नहीं उनको। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और अंश में स्थिरता और तीन ज्ञान। वह लेकर माता गर्भ में आते हैं, जन्मते हैं। देव आकर पूजा करते हैं। संयम तो है नहीं। चारित्र तो है नहीं। परन्तु देव आकर सम्यग्दर्शन में उसकी पूजा करते हैं। ओहो! कहा था न कल तो पहले। पहले आते हैं तो माता के पैर छूते हैं। हे जनेता! ऐसे तीर्थंकर को तूने कोख में रखा। नमो रत्नकूखधारिणी। ऐसे जन्म-मरण का नाश करनेवाले भगवान इस भव में नाश करनेवाले हैं। बहुत जीवों को नाश करने में निमित्त होंगे। ऐसे रत्न को कूख में माता! तूने कोख में रखा। नमो नमो रत्नकूखधारिणी! माता! पहले तुझे नमस्कार। आहाहा! समझ में आया?

आता है न शास्त्र में नहीं भक्तामर में? दिशा तो सब है परन्तु पूर्व में सूर्य उगता है। भगवान की माता ही भगवान को जन्म देती है। स्त्री तो बहुत हैं। ओहोहो! माता भी मोक्षगामी है। समझ में आया? भगवान के माता-पिता भी मोक्षगामी हैं। भले माता उस भव में मोक्ष न जाये, स्त्री है तो। परन्तु बाद में मोक्ष में जायेगी। आहाहा! दो शीप-मोती। माता-पिता शीप मोती भगवान। परन्तु वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान है तो उसको इन्द्र भी पूजते हैं। आहाहा!

तो कहते हैं **तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य भये निज बोध...** निज बोध देखो। सम्यग्दर्शन हुए पश्चात् निज बोध—अपना बोध—आत्मा का ज्ञान—आत्मज्ञान। आहाहा! अपनी

ज्ञान की पर्याय में आत्मा का ज्ञान, वस्तु का ज्ञान, पदार्थ आत्मा का ज्ञान। **फलै सुचरित्रा।** और फिर सुचरित्र। सम्यग्दर्शन मुख्य, सम्यग्ज्ञान निजबोध, सुचरित्र स्वरूप में रमण करना। **जो नर आगम जानि करै पहचानि...** जो कोई मनुष्य भगवान के कहे हुए आगम में जाने और पहचान करे **यथावत मित्रा।** यथावत मैत्री करे। **घाति खिपाय रु केवल पाय...** वह चार घातिकर्म का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया तो चार घाति का नाश किया है ? पश्चात् अघाति का चार नाश करते हैं।

घाति खिपाय रु केवल पाय... पहले घाति समझे ? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय चारों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। और **अघाति हने...** फिर चार अघाति कर्म उसका भी नाश करे। **लहि मोक्ष पवित्रता।** आहाहा! पूर्ण पवित्र पद मोक्ष को प्राप्त। मोक्ष का अर्थ पूर्ण पवित्रता। आहाहा! संसारदशा में... संसार अपवित्रदशा है। और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ तो थोड़ी पवित्रदशा उत्पन्न हुई। और सर्वज्ञ परमात्मा को मोक्ष में पूर्ण पवित्रता प्रगट हुई। उसका नाम मोक्ष है। मोक्ष कोई दूसरी चीज़ नहीं, ऊपर लटका जाये, वह नहीं।

नमूं देव गुरु धर्मकूं,... वचनिका (कार का)। **जिन आगमकूं मानि।** भगवान के आगम को जानकर और **नमूं देव गुरु धर्मकूं,... 'जा प्रसाद पायो अमल, सम्यग्दर्शन जानि।'** उसके प्रसाद से सम्यग्दर्शन निर्मल जानने में आया, इसलिए देव-गुरु-शास्त्र को नमन करता हूँ। इस प्रकार कहकर पहला अधिकार पूर्ण किया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

:प्रकाशक:
श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ला, मुंबइ
www.vitragvani.com

अष्टपाहुड अमृत